शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका
पियर रिब्यूड शोध पत्रिका

शोध अंक 48 **मार्च** 2020 300.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फोन : 01342-263232, 07838090732
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा
डॉ॰ मीना अग्रवाल
बी-203, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)
फोन : 0124-4076565, 07838090237

दिल्ली एन॰सी॰आर॰
डॉ॰ अनुभूति
सी-106, शिवकला अपार्टमेंट्स
बी 9/11, सेक्टर 62, नोएडा
फोन : 09958070700

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ॰ शंकर क्षेम

उपसंपादक
डॉ॰ रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ॰ अनुभूति

उपसंपादक
डॉ॰ अशोककुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

शुल्क
आजीवन (दस वर्ष): व्यक्तिगत : पाँच हजार रुपए
संस्थागत : छह हजार रुपए
वार्षिक शुल्क : आठ सौ रुपए
यह प्रति : तीन सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008èk25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, MorrisVille, NC-27560 USA
डॉ॰ सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
प्रो॰ हरिशंकर आदेश, भारतीय प्राच्य विद्या संस्थान, कनाडा
डॉ॰ आर॰पी॰ सिंह, कुलपति, महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज॰)
प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰ विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद) उ॰प्र॰
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फ़ेज-1, दिल्ली 110052
प्रो॰ अशोक चक्रधर, जे-116, सरिता विहार, नई दिल्ली
प्रो॰ पूरनचंद टंडन, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो॰ नंदकिशोर पांडेय, निदेशक केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उ॰प्र॰)
प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, पूर्व आचार्य हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा
प्रो॰ बाबूराम, अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, चौ॰ बंशीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी (हरियाणा)
डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)
प्रो॰ रामसजन पांडेय, हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, मीरपुर, रेवाड़ी (हरियाणा)
प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
प्रो॰ आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
प्रो॰ अर्जुन चव्हाण, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा॰)
डॉ॰ माया टाक, पूर्व प्रोफ़ेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ अनिलकुमार जैन, पूर्व प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ डॉ॰ सदानंद भौसले, अध्यक्ष हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महा॰)
प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ अवनिजेश अवस्थी, हिंदी विभाग, पी॰जी॰ डी॰ए॰वी॰ कालेज, नेहरू नगर, नई दिल्ली
प्रो॰ हनुमानप्रसाद शुक्ल, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)
डॉ॰ मुकेश गर्ग, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो॰ जितेंद्र वत्स, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
डॉ॰ माला मिश्रा, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, अदिति कालेज (दिल्ली विश्व॰), बवाना
प्रो॰ श्यामधर तिवारी, हिंदी विभाग, संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
डॉ॰ दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
डॉ॰ शहाबुद्दीन शेख़, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰, औरंगाबाद (महा॰)
डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
डॉ॰ महेशचंद्र, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
श्री राकेशकुमार दुबे, पत्रकारिता और जनसंचार विभाग, उड़ीसा केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट (उड़ीसा)
डॉ॰ महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)
डॉ॰ अरुणकुमार भगत, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा (उ॰प्र॰)

आजीवन सदस्य

उत्तर प्रदेश/ उत्तराखंड

डॉ॰ रामानंद शर्मा
ई-89, वेव ग्रीन कॉलोनी
मुरादाबाद (उ॰प्र॰)

डॉ॰ मधुलिका तिवारी
रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एल॰आर॰ पी॰जी॰ कॉलिज, साहिबाबाद
गाजियाबाद (उ॰प्र॰)

श्री हरिराम 'पथिक'
स्नेहगंगा, विष्णुधाम कालोनी,
गली नं॰ 3, न्यू माधोनगर, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ वंदना सेमल्टे
टी॰एफ॰ 7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स,
गांधीनगर, गाजियाबाद 201001

डॉ॰ मनमोहन शुक्ल
147, मायापुरी, आवास योजना
झूँसी, इलाहाबाद 211019

श्री अरुणकुमार भगत
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर
'माध्यम' सी-56, ए/5, सेक्टर-62
नोएडा 201301 (उ॰प्र॰)

डॉ॰ विपिनकुमार गिरि
पुराना माधवनगर, भारद्वाज गली
सहारनपुर (उ॰प्र॰)

प्राचार्या
आर॰बी॰डी॰ महिला महाविद्यालय
बिजनौर (उ॰प्र॰) 246701

डॉ॰ शशिप्रभा
अध्यक्ष हिंदी विभाग, वर्धमान कालेज
बिजनौर (उ॰प्र॰) 246701

डॉ॰ सुधारानी सिंह
सी-54, सेक्टर-3, सुशांत सिटी
दिल्ली बाईपास, मेरठ (उ॰प्र॰)

डॉ॰ पूनम भारद्वाज
17 प्रेम विहार, मुजफ़्फ़रनगर 251001
09997100697

डॉ॰ प्रेमव्रत तिवारी
सरस्वती सदन, बेतियाहाता, गोरखपुर (उ॰प्र॰)

श्रीमती अल्पना
द्वारा श्री अरुण कपूर, III एच 288 नेहरूनगर
पवन सिनेमा के पीछे, राकेश मार्ग
गाजियाबाद 201001

डॉ॰ वंदना श्रीवास्तव
के 83 सी आशियाना, लखनऊ 226012

प्रो॰ धर्मेंद्रकुमार द्विवेदी
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत
राजकीय महाविद्यालय, पुँवारका, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ महेंद्रपाल सिंह
सहायक प्रोफेसर, हिंदी
सेठ पी॰सी॰ बागला पी॰जी॰ कॉलेज, हाथरस

श्री रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'
सी 1702, जे एम अरोमा
सेक्टर 75, नोएडा (उ॰प्र॰) 201301
मो॰ 09313727493

डॉ॰ सुचित्रा मलिक
37 गांधी आश्रम, विष्णु गार्डन
कनखल (हरिद्वार) उत्तराखंड

डॉ॰ श्रीकांत अवस्थी
राजीव गांधी विद्यालय
कोटा बाग, नैनीताल (उत्तराखंड)

सुरेंद्रकुमार जैन
हिंदी विभाग
स॰ भगतसिंह राजकीय स्नातकोत्तर महा॰
रुद्रपुर (नैनीताल)

मध्य प्रदेश

डॉ॰ राजेंद्र मिश्र
14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)

डॉ॰ सुरेंद्र यादव
102 नवदीप अपार्टमेंट, 7 शंकर नगर (साकेत)
इंदौर 452018 मो॰ 09009566220
डॉ॰ ज्योतिसिंह
213 अनूपनगर
सी॰एच॰एल॰ अपोलो हास्पिटल के सामने
ए॰बी॰ रोड, इंदौर 452008 (म॰प्र॰)
09926300355
डॉ॰ चंदा तलेरा जैन
जी-17, रेडियो कालोनी, इंदौर (म॰प्र॰) 452001
09425944773
डॉ॰ वंदना अग्निहोत्री
194 सुखदेव नगर, एरोड्रम रोड,
इंदौर (म॰प्र॰) 452001, मो॰ 09926477787
डॉ॰ पुष्पा शाक्य
110, सुंदरनगर मेन, सुकलिया, इंदौर (म॰प्र॰)
09827281203
डॉ॰ चंद्रकिरण अग्निहोत्री
108, रेडियो कालोनी, इंदौर (म॰प्र॰) 452001
प्रो॰ प्रहलाद तिवारी
111, वी॰आई॰पी॰, परस्पर नगर, स्कीम नं॰ 97
पार्ट 4, स्लाइस 4, इंदौर (म॰प्र॰) 452012
मो॰ 09406631688
डॉ॰ पंकज विरमाल
अध्यक्ष हिंदी विभाग, इंदौर क्रिश्चियन कालेज
इंदौर (म॰प्र॰) 452001
प्राचार्य, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई
कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
किला भवन, इंदौर (म॰प्र॰)
डॉ॰ प्रतिभा सोलंकी
ई डब्ल्यू 117, स्कीम 94, सेक्टर ई
रिंग रोड, निकट बंगाली चौराहा
इंदौर 452016 (म॰प्र॰)
डॉ॰ निशा तिवारी
650 नैपियर टाउन, भँवरताल वाटर टैंक के पीछे
जबलपुर 482001 (म॰प्र॰)
मो॰ 09425386234

डॉ॰ नीना उपाध्याय
प्रो॰ हिंदी विभाग
868, इंदिरा गांधी वार्ड, अंजनी बिल्डर्स के पास
गढ़ा, जबलपुर (म॰प्र॰) 482003
मो॰ 09424305641
डॉ॰ स्मृति शुक्ला
ए-16 पंचशील नगर, नर्मदा रोड
जबलपुर (म॰प्र॰)
प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया
6 दीप्ति विहार, इंदौर रोड, उज्जैन (म॰प्र॰) 456010
मो॰ 9826214024
डॉ॰ गीता नायक
बी 11/9, महाकाल वाणिज्य केंद्र
उज्जैन (म॰प्र॰) 456010
मो॰ 9926834596
डॉ॰ श्रीकांता अवस्थी
1189 गली नं॰ 17 जे॰डी॰ए॰गार्डन
शांतिनगर दमोहनाका
जबलपुर (म॰प्र॰) 482002
मो॰ 9300598160

पंजाब/ हरियाणा

श्री हेमांशु शर्मा
हिंदी विभाग, साईंदास ए॰एस॰सी॰ सी॰से॰ स्कूल
पटेल चौक, जालंधर शहर (पंजाब)
प्राचार्या
कमला नेहरू कालेज फॉर वुमैन
फगवाड़ा (कपूरथला) पंजाब
प्राचार्या
कन्या महाविद्यालय
विद्यालय मार्ग, जालंधर (पंजाब) 144004
डॉ॰ विद्या चौधरी
मिर्जापुर फार्म, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136119
डॉ॰ विजय इंदु
1608 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 10 ए, गुड़गाँव (हरियाणा) 122001
डॉ॰ कविता यादव
पुत्री श्री सुनिलकुमार, ग्राम व पोस्ट पालावास
जिला रेवाड़ी (हरियाणा) 123035

डॉ॰ राजाराम अग्रवाल
ग्राम व पोस्ट शेखपुर दरौली
जिला फतेहाबाद (हरि॰) 125053
मो॰ 09896789100

डॉ॰ पुष्पा अंतिल
203, टॉवर-9, फ्रेस्को
निर्वाणा, सेक्टर 50, गुड़गाँव (हरि॰) 122018
मो॰ 096547444800

प्राचार्य
राजकीय महाविद्यालय, सिधरावली (गुड़गाँव)

प्राचार्य
द्रोणाचार्य राजकीय महाविद्यालय, न्यू रेलवे रोड, गुड़गाँव (हरियाणा)

प्राचार्य
राजकीय महाविद्यालय, सेक्टर 14
गुड़गाँव (हरियाणा)

प्राचार्य
हरद्वारीलाल राजकीय महाविद्यालय,
तावडू (मेवात)

डॉ॰ ऋषिपाल
ऐसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिंदी-विभाग, बाबू अनंतराम जनता महाविद्यालय, कौल, कैथल (हरियाणा)

प्राचार्य
बाबू अनंतराम जनता महाविद्यालय,
कौल, कैथल (हरियाणा)

डॉ॰ कैलाशचंद्र शर्मा 'शंकी'
प्रोफेसर कॉलोनी, स्टेडियम रोड
चरखी दादरी (भिवानी) हरियाणा 127306
मो॰ 09812121233

महाराष्ट्र

डॉ॰ मेहमूद रसूल पटेल
दारुल अमन, काशीनगर,
जालना रोड, बीड़ (महा॰)

डॉ॰ संजय विक्रम ढोढरे
7, मोतीरामनगर, वाडीभोकर रोड,
देवपुर, धुले 424002 (महाराष्ट्र)

डॉ॰ शहाबुद्दीन नियाज़ मुहम्मद शेख़
(पूर्व प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰ औरंगाबाद)
अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी सेवी महासंघ
78/484 सिविल हडको
अहमदनगर 414003, मो॰ 09850119687

प्रो॰ शेख़ मुहम्मद शाकिर शेख़ बशीर
अध्यक्ष हिंदी विभाग
पूना कालेज ऑफ़ आट्‌र्स, कामर्स एंड साइंस
कैंप, पुणे 411201 (महा॰) मो॰ 09423017017

प्रा॰ डॉ॰ अभयकुमार रमेश खैरनार
मु॰पो॰ जुनवणे
तह॰ जि॰ धुले (महाराष्ट्र)

प्रा॰ अनंत नानाजी केदारे
5 पार्वती अपार्टमेंट, अयोध्या कॉलोनी
दातेनगर, गंगापुर रोड, नासिक 422005 (महा॰)

डॉ॰ मंजूर चाँदभाई सय्यद
'गुलसिता' 223 औदुंबरनगर, अमृतधाम
पंचवटी, नासिक 422004 (महा॰)
मो॰ 09822991516

डॉ॰ शोभा साहेबराव राणे
17 स्वर समृद्धि अपार्टमेंट, नंदनवन लॉन के सामने
आशाराम बापू आश्रम मार्ग, सावरकर नगर,
गंगापुर रोड, नासिक (महा॰) 422013

डॉ॰ लियाक़त मियाँ भाई शेख़
अखिलेश नगर, प्लाट क्र॰ 11
नए बस स्टैंड के पास,
गंगापुर (औरंगाबाद) महा॰, मो॰ 09423933402

डॉ॰ अशोक द्रौपद गायकवाड़
'कृतज्ञता', अवधूत पार्क, आरोह निसर्ग के पास
कादंबरी नगर क्रमांक 1 के पास
पाइप लाइन रोड, सावेडी
अहमदनगर (महा॰) 414003
09822941330

डॉ॰ अश्विनीकुमार 'विष्णु'
अध्यक्ष अँग्रेजी विभाग
सीताबाई आट्‌र्स कालेज, अकोला (महा॰)

प्रा॰ दत्तात्रय माधवराव टिलेकर
द्वारा संतोष मेडिकल, साई प्रेस्टिज, फ्लैट नं॰ 13
पाटील अली, ओतूर
तह॰ जुन्नर, शिला पुणे (महा॰) 412409
09860229544

डॉ॰ मजीद मुनीर शेख़
ग्राम व पो॰ साष्ट, पिंपल गाँव,
(वाया अंकुशनगर) तह॰ अंबड
शिला जालना (महा॰) 431212
मो॰ 09765944586

डॉ॰ भरत त्रयंबक शेणकर
द्वारा होटल जय महाराष्ट्र
ग्राम, पो॰ व तह॰ अकोले
शिला अहमदनगर (महा॰) 422601
09423164521

डॉ॰ पोपट विट्ठल कोटमे
फ्लैट नं॰ 5, सत्यसंगम
कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी
श्री जयनगर, इंदिरानगर, नासिक (महा॰) 422006
मो॰ 09850760866

डॉ॰ एस॰एन॰ देवरे
प्लाट नं॰ 17, सिद्धिविनायक कॉलोनी
देवपुर, धुले (महा॰) 424002

डॉ॰ श्रीमती विजयालक्ष्मी नारायण रामटेके
सुशीला सोसायटी, प्लाट क्र॰ 5
अजय जिम के पीछे, तेलरांधे के सामने
जरी पटका रिंगरोड, जरी पटका पोस्ट ऑफ़िस
नागपुर 440014 (महा॰)

सुश्री शारदा बी॰ जावरे
ओमकार, समृद्धि डेपलपर, फ्लेट क्र॰ 402
प्लाट नं॰ 26, सर्व क्र॰ 137/1 ए,
बराटे स्कूल के पास, वारजे, मालवाडी,
पुणे 411058 (महाराष्ट्र)
मो॰ 08805616654

प्रा॰ डॉ॰ प्रमोद गोकुळ पाटील
मु॰पो॰ मोराणे (प्र॰ल॰)
तह॰ जिला धुले 424001 (महाराष्ट्र)

प्रा॰ (श्रीमती) ऐनूर अजीजभाई इनामदार
स्वामी समर्थनगर, राजूरी रोड, कोल्हार 413710
तहसील राहाता, जिला अहमदनगर (महा॰)
मो॰ 09011449636

सुश्री कामिनी अशोक न्यायाधीश
661 अरुणोदय कालोनी, सिडको एन-5
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
मो॰ 09975773345

प्रो॰ डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग,
एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विश्वविद्यालय,
कर्वे रोड, पुणे 411038 (महाराष्ट्र)

प्रा॰ अशोक शामराव मराठे
116, सखाराम नगर,
पेरेजपुर रोड, साक्री, तह॰ साक्री,
जिला धुले 424304 (महाराष्ट्र)

प्रा॰ पंजाबी ममता नानकचंद
19/20, त्रिमूर्ति नगर,
मोरे अस्पताल के पास,
साक्री, तहसील साक्री, जिला धुले 424304

प्रा॰ डॉ॰ योगेश गोकुळ पाटिल
प्लॉट नं॰ 12, नयना सोसायटी,
नकाणे रोड, देवपुर, धुले 424002

प्रा॰ उषा पुंडलिक शिरोळे
द्वारा श्री शशिकांत हरी बागड़े
गुरुकृपा हास्पिटल, डाक पारीपत्यदार
सावतानगर मालेगाँव, तह-मालेगाँव
जिला नासिक (महा॰)

प्रा॰ करुणा दत्तात्रय अहिरे
व्ही॰यू॰ पाटिल कला एवं विज्ञान महाविद्यालय,
साक्री, तह॰ साक्री, जिला धुले 424304

प्रा॰ डॉ॰ अश्फाक सिकलगर
जीएफ-102 ताज अपार्टमेंट,
चालीसगाँव रोड, धुले (महाराष्ट्र)

प्रा॰ डॉ॰ महेंद्रसिंह रघुवंशी
सरस्वतीनगर, प्लॉट नं॰ 10,
वाघेश्वरी मंदिर के पास, नंदुरबार 425412

ISSN 0975-735X

श्रीमती वर्षा सुभाषचंद्र देशमुख
बी-6, चंद्रवेल अपार्टमेंट, गोविंदनगर होटेल
प्रकाश्या भागे, मुंबई नाका,
नासिक (महाराष्ट्र) 422010

डॉ॰ रेखा वसंत पाटील
सीतामाईनगर, चालिसगाँव
शिला जलगाँव (महा॰) 424101

प्रा॰ डॉ॰ मंजू तरड़ेजा (सिंघाणी)
ब्लॉक नं॰ आर-10, रूम नं॰ 10,
कुमारनगर, साक्री रोड, धुले 424001

प्रा॰ डॉ॰ चंद्रमादेवी पाटील
59, धनदाईनगर, गोंदुर रोड, वलवाडी,
देवपूर, धुले 424005 (महाराष्ट्र)

डॉ॰ संजयकुमार नंदलाल शर्मा
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,
तलोदा, जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

डॉ॰ देवकीनंदन महाजन
1 टेलीफोन कालोनी,
धुले रोड, अमलनेर (जलगाँव) महाराष्ट्र

डॉ॰ कल्पना राजेंद्र पाटील
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी, तलोदा
जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

सुश्री निर्मला पुरुषोत्तम तोमर
फ्लेट नं॰ 12, एस नं॰ 137/2
वारजे मलवाडी, पुणे 411058, मो॰ 08087612123

प्रा॰ डॉ॰ रामचंद्र माली
अध्यक्ष हिंदी विभाग,
क॰वा॰वि॰ महाविद्यालय
नवापुर, शिला नंदुरबार (महाराष्ट्र)

डॉ॰ सुषमा कोंडे
81/ए, प्लाट नं॰ 9/ए,
गिरिदर्शन हाउसिंग सोसायटी, बानेर रोड
पुणे 411007 (महाराष्ट्र)
मो॰ 09822848464

प्राचार्य, विद्यावर्धिनी महाविद्यालय
धुले (महा॰) 424001

डॉ॰ हेमलता कांचनकर
43 नंदनवन कालोनी (कैंट)
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
मो॰ 09730202528

सुश्री नेहा संदीप घोरपड़े
द्वारा सुश्री सुनीता पवार
फ्लैट नं॰ 404, प्रकाश मेमाराइज
एस नं॰ 73, दूध डेयरी, पुणे-411046

सुश्री भारती मधुकर पाटील
मु॰पो॰ सावलदे, तहसील शिरपूर
जिला धुले (महा॰)

प्रा॰ शिंदे नवनाथ सर्जेराव
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला
कडलास रोड, सांगोला (सोलापुर) 413307
मो॰ 09763602304

डॉ॰ मीनल प्रमोद बर्वे
7, गिरिजात्मक, अष्टविनायक रेजिडेंसी,
के॰जे॰ मेहता कालेज के पास, नासिक-पुणे हाईवे
नासिक रोड (महाराष्ट्र) 422001
मो॰ 09423968189

प्रो॰ अमानुल्लाह मो॰ शेख़
श्रद्धा रेजिडेंसी, बिल्डिग ए, बिंग ए-201
आई॰टी॰आई॰ कालेज के पास
पो॰ मुकिंदपुर, तह॰ नेवासा
जिला अहमदनगर (महा॰)

प्रा॰ ईश्वर पदमसिंग ठाकुर
जनशक्ति कालोनी
रिंग रोड, फैजपुर, तहसील यावल (जलगाँव)

डॉ॰ दीपक विश्वासराव पाटील
मुकाम सौंदाणे, निकट कलाविश्व कंप्यूटर सेंटर
पो॰ बडजाई (धुले) महा॰ 424002
मो॰ 099923811609

श्री शेख शिराज हसन
पोस्ट बोरी, तालुका खंडाला (सतारा)
415521 (महा॰), मो॰ 09011444059

डॉ॰ अनिता मधुकर अंतरे
मयूर सोलर ऐजेंसी
स्वामी समर्थ मंदिर के पास
पो॰ लोनी बी के, तालुका रहाता
जिला अहमदनगर (महाराष्ट्र) 413736
मो॰ 09970343766

डॉ॰ विट्ठलसिंह नंदरामसिंह ढाकरे
'सी' टाइप कालेज
शास्त्रीनगर, लासलगाँव
जिला नासिक (महाराष्ट्र) 422306
मो॰ 08888590156

डॉ॰ उर्मिला मानसिंह गायकवाड
प्लॉट नं॰ 290-292, सेक्टर-29
गुरु स्मृति अपार्टमेंट, ए-विंग,
फ्लैट नं॰ 303 रावेत निकट डी-मार्ट
पुणे 412101, मो॰ 07620225839

डॉ॰ एफ॰एम॰ शाह
द्वारा श्री टी॰एम॰ धुवारे
छोटा दत्त मंदिर के पास, टी॰बी॰ टोली
गोंदिया (महा॰) 441614
मो॰ 07620042772

डॉ॰ शैला पांडुरंग चव्हाण
फ्लेट नं॰ 1, सुविधिनाथ हाउसिंग सोसायटी
मुख्य फायर ब्रिगेड आफिस के सामने
हीरा-मोती शोरूम के पीछे,
सिंघाड़ा तालाब, नासिक (महा॰) 422001
मो॰ 09850827138

प्राचार्य
कला, वाणिज्य व कंप्यूटर
एप्लीकेशन महिला महाविद्यालय
डोंगर कठोरे, यावल,
जिला जलगाँव (महा॰)

प्रा॰ पुरुषोत्तम कुंदे
हिंदी विभाग, न्यू आर्ट्स कामर्स एंड साइंस कालेज
शेवगाँव (अहमदनगर) 414502 महाराष्ट्र
मो॰ 09850947267

प्रा॰ अमृता भरत पाटिल
प्लाट नं॰ 23, बालाप्पा कॉलोनी
अशोकनगर के पास, जमनागिरि रोड
धुले (महा॰) 424001

डॉ॰ सचिन कदम
हिंदी विभाग, संगमनेर महाविद्यालय
संगमनेर (महाराष्ट्र)

रूपाली नामदेवराव रिंगे
द्वारा बालाजी संभाजी कदम
फ्लैट नं॰ 12, साईं श्रद्धा रेसिडेंसी, प्लॉट नं॰ 78
सी॰डी॰सी॰ पूर्णनगर, चिंचवड,
पुणे 411019 महाराष्ट्र
मो॰ 09420848635, 07276268922

प्रो॰ मनोहर हिलाल पाटिल
प्लॉट नं॰ 1, परिजात कॉलोनी
निकट इंदिरा गार्डन, देवपुर धुले 424002 (महा॰)

गुजरात

श्री गुलाबराव शांताराम बाविस्कर
201, के-टॉवर, श्रीनंदनगर
सोखड़ा रोड, छाणी,
बड़ोदरा (गुजरात) 391740
मो॰ 09624501415

कर्नाटक

डॉ॰ जुबैदा हाशिम मुल्लाँ
बैतुल हाशमी, म॰नं॰ 152, ताजनगर
हुबली 580031 (कर्नाटक)

तमिलनाडु

Dr. V. Jayalakshmi
Mathura, Plot No. 38
5th Cross Street, Gokul Nagar
Perumbakkam, Chennai-600100

संपादकीय

आतंकवाद के साए में दुनिया

विश्व की वर्तमान परिस्थितियों को सामने रखते हुए आतंकवाद की सर्वमान्य परिभाषा करना कोई आसान काम नहीं है, क्योंकि आतंकवाद आज दुनिया के विभिन्न भागों में विभिन्न स्तरों पर विद्यमान है। कहीं यह धार्मिक संगठनों की हिंसक गतिविधियों के रूप में है; कहीं उग्र राजनीतिक विचारधाराओं के बीच हथियारबंद संघर्ष के रूप में है; कहीं क्षेत्रीय समस्याओं को लेकर मुखर हुए हिंसक गिरोहों के रूप में है; कहीं भाषागत, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विषमताओं की प्रतिक्रियास्वरूप जन्मे संगठनों के रूप में है; कहीं धार्मिक अल्पसंख्यकों द्वारा अपने उचित-अनुचित अधिकारों की लड़ाई के रूप में है; कहीं सेना और सुरक्षाबलों-द्वारा किए गए अमानवीय एवं अनुचित बल-प्रयोग के रूप में और कहीं एक देश की सरकार-द्वारा किसी अन्य देश में अपने निहित राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए उकसाए गए विद्रोहियों के रूप में।

आतंकवाद के ये विभिन्न रूप आज विश्व की शांत जनता के लोकतांत्रिक अधिकारों तथा क़ानून-व्यवस्था के लिए ज़बरदस्त ख़तरा बने हुए हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हिंसक, अलोकतांत्रिक, अमानवीय तथा अवैध तरीक़ों का प्रयोग कर जनता में आतंक फैलाना तथा लोगों के मानवीय अधिकारों का हनन करना ही आतंकवाद है, चाहे यह स्थिति कुछ संगठनों की ओर से पैदा की गई हो या सत्ताधारियों की ओर से, एक देश की ओर से, दूसरे देश के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप से उत्पन्न हुई हो अथवा किसी अन्य तरीक़े से, ऐसी सभी हिंसक गतिविधियाँ आतंकवाद की परिधि में आती हैं।

यह सच है कि गिरोहों तथा सत्ताधारियों द्वारा फैलाया गया आतंक आज से नहीं, विश्वभर में उस समय से जारी है, जबसे मानव-जाति ने समाज बनाकर समूहों में रहना तथा शासनतंत्र के माध्यम से अपने-आपको संचालित करना सीखा है। लेकिन आतंक व्याप्त करने की इस प्रवृत्ति ने बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक किसी राजनीतिक शैली या दृष्टि का रूप धारण नहीं किया था।

आतंकवाद को एक राजनीतिक दृष्टिकोण का आधार उस वक़्त मिला, जब दुनिया वैचारिक आधार पर विभिन्न वर्गों में विभाजित हो गई। सामंतशाही युग में विजेताओं द्वारा जो आतंक फैलाया जाता था और जिस प्रकार पराजित देश में भारी क़त्लेआम किया जाता था, उसके पीछे कोई दर्शन, कोई विचारधारा, कोई सिद्धांत या कोई विशेष दृष्टिकोण नहीं होता था। विजेता जनता को आतंकित कर अपना प्रभुत्व स्थापित करने अथवा विद्रोहियों को सिर झुकाने के लिए विवश करने के उद्देश्य से ऐसा करता था। उदाहरण के लिए तैमूर ने 1398 में और नादिरशाह ने 1739 में अपने आक्रमणों के समय भारत में दिल दहलाने वाला क़त्लेआम किया, तो उसके पीछे किसी वाद को स्थापित करने का उद्देश्य नहीं था। वे तो मात्र आतंक फैलाकर अपनी सत्ता की नींव मज़बूत करना तथा विद्रोहियों का हौसला तोड़ना चाहते थे, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। लेकिन यही नरसंहार कंबोडिया (कम्पूचिया) में 1979 के मध्य पालपोट द्वारा किया जाता है तो उस समय तक

स्थिति बिल्कुल बदल गई होती है। अब आतंक और हिंसा का आधार राजनीतिक विचारधारा बन जाती है। इस नरसंहार में लगभग 2 लाख लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। कम्पूचिया की राजधानी भूतों का शहर बन गई। ठीक इसी प्रकार अमरीकी सैनिकों ने वियतनाम में जैसी बर्बरतापूर्ण कार्रवाइयाँ कीं, वे मात्र आतंक फैलाने के लिए नहीं थीं, उनका उद्देश्य एक व्यवस्था को उखाड़कर अपनी पसंद की दूसरी व्यवस्था को स्थापित करना अथवा एक विचारधारा को पराजित कर दूसरी विचारधारा की जड़ जमाना था। 19-वीं सदी के बाद और 20वीं सदी के आरंभ में जन्मी राजनीतिक एवं सामाजिक विचारधाराओं के संघर्ष ने आतंक को सैद्धांतिक आधार उपलब्ध कराया और इस प्रकार यह संघर्ष आगे चलकर आतंकवाद में परिवर्तित हो गया।

इसमें संदेह नहीं कि 20वीं शताब्दी में आतंक को राजनीतिक आधार मिलने से पहले भी धर्म के नाम पर आतंक और हिंसा का प्रसार तथा नरसंहार होता रहा है। लेकिन गहराई से विश्लेषण किया जाए तो ज्ञात होगा सामंती युग की हिंसक कार्रवाइयाँ किसी धर्म-विशेष को फैलाने या धर्म-परिवर्तन की आड़ में अपनी सत्ता स्थापित करने तथा धन-दौलत लूटने के लिए ही की जाती थीं। धर्म की आड़ तो उन्हें केवल औचित्य प्रदान करने के लिए ली जाती थी। इसीलिए सामंतीयुग का आतंक भी कोई वाद या इज़्म का रूप धारण नहीं कर सका। वाद या 'इज़्म' का रूप तो इसने तभी ग्रहण किया, जब इस प्रवृत्ति को राजनीतिक विचारधारा का आधार प्राप्त हो गया। पिछले सौ-डेढ़-सौ वर्ष का इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है।

ध्यान देने की बात है कि ईसा ने जब लोगों को यह सीख दी थी कि यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे गाल पर तमाचा मारता है तो तुम बदला न लो, अपना दूसरा गाल भी उसके सामने पेश कर दो, तो क्या आप समझते हैं कि यह सीख लोगों को कमज़ोर अथवा कायर बनाने के लिए दी गई थी। क्या यह सीख इसलिए थी कि अत्याचारी अन्याय करते रहें और पीड़ित, पीड़ित ही बने रहें? नहीं, हमारा विचार है कि उस उपदेश का अर्थ यह नहीं था। उद्देश्य यह था कि हिंसा की प्रवृत्ति पर पूर्णविराम लगे और पूर्णविराम तभी लग सकता था, जब हिंसा का जवाब हिंसा से देने का क्रम समाप्त हो। वे जानते थे कि हिंसा से हिंसा उत्पन्न होती है। अगर हिंसा के मुक़ाबले में अहिंसा का अस्त्र प्रयोग किया जाएगा तो हिंसक प्रवृत्ति आगे नहीं बढ़ सकेगी और इस पर रोक लग जाएगी। किंतु खेद है कि ऐसा नहीं हो सका। हिंसा का उत्तर हिंसा से दिया जाता रहा। शक्ति के मुक़ाबले में शक्ति का प्रदर्शन किया जाता रहा। शस्त्रों की प्रतिस्पर्धा में और अधिक विनाशकारी शस्त्र बनाए जाते रहे। परिणाम यह हुआ कि संयम हार गया और शक्ति निर्णायक हो गई।

आज स्थिति यह है कि पूरा विश्व आतंकवादी गतिविधियों की चपेट में है। कहीं विद्रोही संगठन अपने निहित राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए हथियारबंद संघर्ष कर रहे हैं, कहीं सरकारें आतंक का सहारा लेकर अपना वर्चस्व स्थापित करने में लीन हैं। एक देश का सत्तातंत्र दूसरे देश में आतंकवादी गतिविधियों को बढ़ावा देकर उस देश को कमज़ोर करने में लगा है। प्रस्तुत पुस्तक में इन सभी प्रकारों के आतंकवाद पर विस्तृत चर्चा की गई है। हमने इसमें यह बताने का प्रयास भी किया है कि दुनिया का पहला आतंक कब, क्यों और कहाँ पैदा हुआ था और इसने वर्तमान समय तक आते-आते कैसा भयावह रूप धारण कर लिया है। इसमें आतंकवादी इतिहास के हर पक्ष पर विस्तृत बहस की गई है और यह बताया गया है कि आतंकवादी जौंक का वास्तविक चरित्र क्या है, जो आज विश्व की सुख-शांति का रक्त खुलेआम पी रही है।

आतंकवाद पर अब तक जो चर्चा होती रही है, उसका क्षेत्र साधारणतया विभिन्न देशों के विद्रोही संगठनों की हिंसक गतिविधियों तक सीमित रहा है। वहाँ यह बताने का प्रयास किया गया है कि आतंकवाद को कुछ सशस्त्र गिरोहों अथवा संगठनों की विस्फोटक एवं अवैध कार्रवाइयों के रूप में देखा जाना चाहिए किंतु इस पुस्तक में युद्ध के समय फैलाए गए आतंक तथा कुछ सत्ताधारियों की ओर से किए गए अत्याचारों को भी आतंक की परिधि में ले लिया गया है, ताकि यह सिद्ध किया जा सके कि अवैधानिक ढंग से अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए हिंसा करनेवाले संगठन तो निंदनीय हैं ही, वे सरकारें, सेनाएँ और गुप्तचर एजेंसियाँ भी कम दोषी नहीं हैं, जो अपने निहित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आतंकवाद को बढ़ावा दे रही हैं। एक ओर पाकिस्तान है, जो भारत के सीमाई क्षेत्रों पंजाब, कश्मीर आदि में विद्रोही संगठनों को धन और हथियार देकर मदद कर रहा है तो दूसरी ओर वह अफ़ग़ानिस्तान में अफ़ग़ानों के लड़ाकू गुटों को वहाँ की वैध सरकार को उखाड़ने के लिए उकसाता रहा है। इसी तरह ईराक़, लीबिया, अमरीका आदि देश विभिन्न स्तरों पर विभिन्न देशों की वैध सरकारों के विरुद्ध आतंकवादी गुटों को सहयोग देते रहे हैं और अब भी दे रहे हैं। अफ़ग़ानिस्तान में डॉ॰ नजीब की समाजवादी सरकार को अपदस्थ करने के लिए अमरीका ने जिस तरह पाकिस्तान के माध्यम से करोड़ों-अरबों डालर की मदद वहाँ के आतंकवादी संगठनों को दी थी, वह कोई अधिक पुरानी बात नहीं है। आधुनिक आतंकवादी इतिहास के पन्नों पर यह उल्लेख अभी ताज़ा है। इन संदर्भों को दृष्टि में रखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि 'आतंकवाद' अपनी मूल हिंसक प्रवृत्ति में, चाहे वह कुछ धार्मिक एवं राजनीतिक संगठनों की तरफ़ से हो, अथवा क़ानून के नाम पर चलनेवाली सरकारों की ओर से, यदि इनमें से कोई भी जनता के मौलिक अधिकारों का हनन करता है या अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आतंक फैलाता है तो वह निःसंदेह आतंकवाद का अपराधी माना जाएगा।

आधुनिक आतंकवाद की धार को और अधिक पैना करने में बीसवीं शताब्दी की शस्त्र-सभ्यता तथा वैचारिक स्तर पर राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जैसे-जैसे समाजवाद और पूँजीवाद की सैद्धांतिक एवं सत्तावादी लड़ाई तेज़ हुई तथा इस लड़ाई को आगे बढ़ाने के लिए घातक हथियारों की उपलब्धता सरल होती गई, धरती पर आतंकवाद का दानव अपने पाँव फैलाता गया। अब स्थिति यह है कि दुनिया के विभिन्न आतंकवादी संगठनों के पास आज जितने आधुनिकतम एवं अत्यंत विनाशकारी हथियार हैं, उतने क़ानूनी अधिकार रखनेवाले सुरक्षाबलों के पास तक नहीं हैं। ये हथियार इन संगठनों के पास कहाँ से पहुँचे? कौन दे रहा है, उन्हें ये अस्त्र-शस्त्र? स्पष्ट है कि ये उन शक्तियों की ओर से ही उपलब्ध हो रहे हैं, जिनके हित आतंकवाद की आग भड़काए रखने से जुड़े हैं। नैतिकता के स्थान पर जब शक्ति का प्रयोग निर्णायक बन जाता है तो हिंसा शेष रह जाती है, विवेक ग़ायब हो जाता है।

प्रश्न यह है कि हिंसा और शक्ति प्रयोग की इस प्रवृत्ति पर रोक कैसे लगे? शांतिदूत महात्मा गांधी ने विश्व की इस बिगड़ती हुई स्थिति को उस वक़्त भाँप लिया था, जब हिंसा का दैत्य मानव-समाज की ओर जबड़े फाड़कर बढ़ रहा था। हिंसा के जवाब में अहिंसा का सिद्धांत इसी प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए था। हमने देखा कि अहिंसा के इसी अचूक हथियार से महात्मा गांधी ने फ़ौलाद-जैसी साम्राज्यवादी शक्ति ब्रिटेन को, जिसने यूरोप में दो विश्वयुद्धों में जर्मनी को मित्र राष्ट्रों के सहयोग से ज़बरदस्त शिकस्त दी, मुँह के बल गिर जाने पर विवश कर

दिया था। लेकिन खेद है कि दुनिया गांधी को भूल गई, हिटलर को लेकर आगे बढ़ गई। यही विश्व का दुर्भाग्य था और इस दुर्भाग्य से मुक्त होने का अंतिम उपाय आज भी गांधी के पास है। गांधी आज भी प्रासंगिक हैं।

लेकिन यह हो कैसे? आज दुनिया, अंगारों की वह फ़सल काट रही है, जो उसने स्वयं अपने हाथों से बोई थी। गहराई से देखें तो पता चलेगा कि दुनिया में आतंकवाद के जो भी रूप हैं, उसके पीछे कहीं-न-कहीं और कोई-न-कोई बड़ी राजनीतिक भूल छिपी हुई है। विशेष रूप से पश्चिमी साम्राज्य ने जहाँ-जहाँ से अपना बिस्तर समेटा है तथा ग़ुलाम देशों को आज़ाद किया है, वहाँ-वहाँ कटुता के ऐसे स्थल छोड़ दिए हैं, जो शांति-व्यवस्था के लिए ख़तरा बने और बाद में उन्होंने आतंकवादी गुटों की इन्हीं शक्तियों को बढ़ावा भी दिया, जिनसे खाद-पानी लेकर उनका उदय हुआ था। आज स्थिति बहुत ही निराशाजनक है। इसका समाधान इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि विश्व की समस्त शक्तियाँ अपने-अपने निहित स्वार्थों को छोड़कर एक साथ बैठें और एक ऐसा मार्ग खोजने में एक-दूसरे से सहयोग करें, जिससे मानव-जाति को आतंकवाद के दानव से मुक्ति मिल सके। अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो कहना पड़ेगा कि :

तुम्हारी तहज़ीब अपने ख़ंज़र से आप ही ख़ुदकुशी करेगी
जो शाख़े-नाज़ुक पे आशियाना बनेगा, नापाएदार होगा।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

समीक्षा समिति

प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोशाबाद) उ॰प्र॰

प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, पूर्व प्रोफेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा (उ॰प्र॰)

प्रो॰ रामसजन पांडेय, पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, मीरपुर, रेवाड़ी (हरियाणा)

प्रो॰ अनिलकुमार जैन, पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)

प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म॰प्र॰)

प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)

प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला वि। ापीठ, पुणे (महा॰)

अनुक्रम

राधेश्याम शर्मा 'प्रगल्भ' का राष्ट्रीय काव्य/ **डॉ॰ रासुलता** 15

कश्मीर पर कविताएँ : 'आतंक के खिलाफ'/ **डॉ॰ निशा तिवारी** 35

द्विवेदीयुगीन अनूदित उपन्यासों में नारी-जीवन और संघर्ष/ **डॉ॰ इंदुबाला शर्मा, गणपतसिंह** 44

भारतवर्ष में सन् 1857 ई॰ से पूर्व ईसाई धर्मप्रचारक और हिंदी/ **डॉ॰ अशोक उपाध्याय** 49

आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा : एक समर्पित हिंदीसेवी/ **डॉ॰ कनुप्रिया प्रचंडिया** 61

डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया के निबंध : निकष पर/ **डॉ॰ कृष्णगोपाल मिश्र** 65

कबीर की सामाजिक मानवीय दृष्टि/ **डॉ॰ अखिलेश राम** 70

कामायनी में प्रसाद की स्त्री-दृष्टि/ **डॉ॰ अनिलकुमार** 73

'पचपन खंभे लाल दीवारें' उपन्यास में सुषमा की बेबसी/ **डॉ॰ बळीराम संभाजी भुक्तरे** 80

शब्द-अर्थ चिंतनधारा का संस्कृतनिष्ठ प्रवाह/ **प्रो॰ धर्मेंद्रकुमार द्विवेदी** 86

निराला के काव्य में राष्ट्रीय चेतना/ **डॉ॰ अखिलेश राम** 91

कुसुम अंसल के कथासाहित्य में चित्रित समलैंगिकता/ **प्रा॰ गजानन हरिभाऊ सर्वज्ञ** 94

विशिष्ट स्थान और गौरव का अधिकारी :/ पंडित श्रीनारायण शुक्ल कृत 'उर्मिलीयम्'/ **डॉ॰ ज्योति सिंह** 97

आस्था और शुचिता के प्रतीक : जनकवि पंडित बंशीधर शुक्ल/ **कुँवर डॉ॰ महाराणाप्रताप सिंह चौहान 'विद्रोही'** 101

भारत में सम्मान के लिए स्त्रियों की हत्या : उनके मानवाधिकारों का क्रूर हनन/ **डॉ॰ नीना रंजन** 105

मीरा के काव्य में गीतितत्त्व/ **डॉ॰ ओमप्रकाश शर्मा** 112

चित्रा मुद्गल के उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन/ **डॉ॰ प्रविता लक्ष्मी के॰** 117

जैनेंद्र के उपन्यास : मानव मन की सूक्ष्म पर्यवेक्षणशक्ति के परिचायक/ **डॉ॰ संजीवकुमार श्रीवास्तव** 123

नई कहानी आंदोलन और धर्मवीर भारती का कहानी-साहित्य/ **सोनी कुमारी** 127

निर्मला पुतुल की कविताओं में यथार्थबोध/ **सुनीता** 133

डॉ॰ परशुराम शुक्ल की बालकहानियों का परिचयात्मक अध्ययन/ **वनिता एल॰ पांडेय** 138

'चंदा अमरित बरसाइस' में आंचलिकता/ **योगेशकुमार साहू, डॉ॰ गौरी अग्रवाल** 151

हिंदी गजल में प्रकृति और प्रेम/ **डॉ॰ जियाउर रहमान जाफरी** 155
कथाकार शिवप्रसाद सिंह एवं उनके जीवन आदर्श/ **दुर्गाप्रसाद पटेल** 161
परशुराम शुक्ल की बालकहानियों में नैतिकता और विज्ञान/ **मंजुश्री राव** 165
रीतिमुक्त कवि आलम का रामलीला वर्णन/ **अशेष उपाध्याय** 171
किसान से मजदूर बनने की व्यथा-कथा : पूस की रात/ **डॉ॰ दत्ता कोल्हारे** 179
प्रवासी जीवन की संवेदनाओं को अभिव्यक्त करती हिंदी गजल/ **सुनीलकुमार** 183
आत्मकथा 'जूठन' के परिप्रेक्ष में दलित साहित्य/ **डॉ॰ लवलीन कौर** 192
21वीं सदी के कहानी-संग्रह 'रास्ता छोड़ो डार्लिंग' में
स्त्री-जीवन व उसकी समस्याएँ/ **पूनम चौहान** 199
सामंतवादी एवं पूँजीवादी व्यवस्था में वर्गसंघर्ष के परिदृश्य को चित्रित करती
लंबी कहानियाँ/ **प्रीति चौहान, डॉ॰ साधना तोमर** 205
बुंदेलखंडी संस्कृति के लोकगीत/ **डॉ॰ सुधारानी सिंह** 213
गीतिकाव्य-परंपरा और जयदेवकृत गीतगोविंद/ **शशिभूषण प्रसाद** 218
साहित्य की रक्षा की चिंता/ **प्रियाकुमारी** 223
उषा प्रियंवदा के कथासाहित्य में नारी-जीवन/ **डॉ॰ कीर्ति कुमारी** 227
युवा सशक्तिकरण एवं नेतृत्व/ **डॉ॰ त्रिसुख सिंह** 232
अरुण कमल का काव्य-शिल्प/ **रजनीकुमारी पांडेय** 237
'कोणार्क' नाटक में मिथकीय चेतना/ **विनोदकुमार यादव** 243
जीवन के यथार्थ से टकराते रेणु के रिपोर्ताज/ **डॉ॰ नीलू अग्रवाल** 250
मार्कंडेय की कहानियों में अस्तित्वबोध/ **डॉ॰ मिनाक्षी** 256
भारतीय सांस्कृतिक चेतना के सार्वभौम आयाम और विश्वकवि कालिदास/
डॉ॰ रजनीशकुमार पाठक 262
निराला के जीवन में 'कुल्लीभाट' का महत्त्व एवं राष्ट्रीय आंदोलन,
समाजिक रूढ़िवादी घटना का खंडन/ **सोनी कुमारी** 266
सांस्कृतिक संक्रमण के दौर में 'एकदा नैमिषारण्ये' की प्रासंगिकता/
डॉ॰ रेनू त्रिपाठी 272
कबीर और बाजारवाद/ **शालिनी शर्मा** 275
समाज एवं समाजिकता का महत्त्व निराला के उपन्यासों में/ **सोनीकुमारी** 282
कविता की कहानियों में सामाजिक परिदृश्य/ **डॉ॰ शालिनी** 290
भावों की सशक्त अभिव्यक्ति, भाषा का सरल प्रवाह/ **डॉ॰ सीमा शर्मा** 294
'बंद कर लो द्वार' का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन/ **डॉ॰ शिवजी श्रीवास्तव** 299
'साइबरमैन' : समय और समाज के सच का संधान/ **डॉ॰ लवलेश दत्त** 305
'शोध दिशा' का संग्रहणीय विशेषांक : डॉ. शेरजंग गर्ग 309
संपादक के नाम एक पत्र/ **गोपाल चतुर्वेदी** 309

राधेश्याम शर्मा 'प्रगल्भ' का राष्ट्रीय काव्य

डॉ॰ रासुलता

राधेश्याम शर्मा 'प्रगल्भ' के राष्ट्रीय काव्य का परिचय

'प्रगल्भ' जी की कविताओं का संग्रह–'महक माटी की' राष्ट्रीयता की भावनाओं से ओत–प्रोत है। इस संग्रह में उनकी सैंतीस कविताएँ संकलित हैं। प्रगल्भ जी ने इन कविताओं में अपने देश की विशेषताओं, समस्याओं और परिस्थितियों का उल्लेख बड़े मनोरम ढंग से किया है। इन कविताओं में उन्होंने मनुष्य की उस अनुराग–वृत्ति का परिचय दिया है, जो अपने राष्ट्र के प्रति किसी संवेदनशील प्राणी के हृदय में स्वभावत: उत्पन्न होती है। यह वही चेतना है, जो पाश्चात्य उपनिवेशवादी शासन के अत्याचार एवं शोषण से पुनर्जाग्रत होकर यातायात एवं संचार के साधनों के विकास के साथ उन्नीसवीं शताब्दी में पुनर्जीवित हो उठी थी। इसका प्रथम सामूहिक विस्फोट सन् 1857 के स्वतत्रंता–संग्राम के रूप में प्रकट हुआ था। तत्कालीन विदेशी शासन ने उसे विद्रोह अथवा गदर कहकर झुठलाने का प्रयास किया, किंतु वास्तव में वह भारतीय नागरिकों की स्वतंत्रता के लिए सक्रिय छटपटाहट थी। इस प्रकार यह रचना अपने स्थानीय सरोकारों से लेकर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय अथवा मानवतावादी सरोकारों के प्रति कवि की संवेदना की अभिव्यक्ति है। ऐसा इसलिए कि भारतीय राष्ट्रीयता कभी भी पाश्चात्य राष्ट्रों की राष्ट्रीयता की भाँति संकुचित नहीं रही है, उसका विस्तार मानवतावादी दृष्टिकोण तक हुआ है। भारतीय राष्ट्रीयता सदैव विश्व प्रेम, विश्व सेवा और वसुधैव कुटुंबकम तक विकसित रही है। महात्मा बुद्ध, विवेकानंद और महात्मा गाँधी आदि ने भी इसी विश्वबंधुत्व की भावना को आधार मानकर अपनी सोच एवं अपनी संवेदना को विकसित किया है। यही कारण है कि वे राष्ट्रीय सीमाओं से ऊपर उठकर अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्त्व बन गए। अधिकाश भारतीय आज भी उसी उदार संवेदना से अनुप्राणित हैं, 'महक माटी की' राष्ट्रीय कविताओं में कवि भी इन्हीं आदर्शों और प्रतिमानों का अनुयायी सिद्ध होता है।

'महक माटी की' संकलन में कवि ने भारत के प्राकृतिक सौंदर्य के साथ इसके अतीत के प्रति सम्मान और अपनत्व, वर्तमान तत्कालीन दशा के प्रति क्षोभ प्रकट किया है। भविष्य के प्रति चिन्ता को पूरी लग्न और भावुकता के साथ व्यंजित किया है। भारत का महिमा गान, महापुरुषों के प्रति श्रद्धांजलि को कवि ने बडे ही सुंदर रूप में प्रस्तुत किया है। इसी के साथ महापुरुषों में उपस्थित श्रेष्ठ मानवीय गुणों का भी सजीव चित्रण किया है। कवि ने अपनी समकालीन समस्याओं के साथ–साथ सामान्य जनों के सुख–दु:ख एवं आक्रोश को भी वाणी दी है। जहाँ आवश्यकता समझी वहाँ समाज के विभिन्न वर्गों के सम्मुख आदर्शों की भी शिक्षा देने का प्रयत्न किया है। कवि ने अपनी मातृभूमि और कर्मभूमि खुर्जानगर की मिट्‌टी से जुड़ी संवेदना से प्रारंभ करके एक ओर प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के नेतृत्वी बहादुरशाह जफ़र को श्रद्धांजलि दी है तो दूसरी ओर बाद के राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र के महापुरुषों, यथा–महात्मा गांधी, चाचा नेहरू, महामना मालवीय और लालबहादुर शास्त्री के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है। कवि ने अपने

कर्मक्षेत्र के महापुरुषों गोस्वामी–तुलसीदास और महाप्राण निराला के प्रति भी श्रद्धांजलि अर्पित की है। इन श्रद्धांजलियों के द्वारा कवि ने उपर्युक्त महापुरुषों के श्रेष्ठ मानवीय गुणों और उनके अद्‌भुत कार्यों का स्मरण किया है। इन महापुरुषों के साथ कवि ने एक ओर रामकृष्ण के प्रति भक्ति-भाव प्रकट किया है, दूसरी ओर चीन और पाक युद्धों के सेनानियों और शहीदों के प्रति भी सम्मान व्यक्त किया है। कवि ने तत्कालीन (वर्तमान परिवेश से संबंधित) जनसामान्य के सुख–दुःख, आशा–निराशा, सौहार्द–वैमनस्यता को भी भावुक हृदय के साथ अभिव्यक्ति दी है। वर्तमान युग के राजनेताओं की दशा के साथ सामान्य जनता की समस्याओं एवं उनकी प्रतिक्रियाओं को भी कवि ने प्रमुखता से अभिव्यक्त किया है। कवि ने सामाजिक यथार्थ के साथ विभिन्न वर्गों के लिए शिक्षा और आदर्श को भी महत्त्वपूर्ण बताया है।

इस प्रकार 'महक माटी की' राष्ट्रीय कविताओं के संकलन में कवि ने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857) से लेकर अपने जीवनकाल तक की प्रमुख घटनाओं और परिस्थितियों को संवेदनाओं का आधार बनाकर प्रस्तुत किया है। कवि ने संकलन के अन्त में नारी जीवन संबंधी अपनी भावनाओं को भी व्यक्त किया है। यह कवि की समग्र दृष्टि का ही परिणाम है।

रचनाओं का वर्गीकरण :

'महक माटी की' राष्ट्रीय कविताओं के संकलन की कविताओं को संवेदना और विषय-वस्तु के आधार पर निम्नलिखित 8 वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) स्वदेश भारत की स्तुति एवं महत्त्व
(2) महापुरुषों के प्रति श्रद्धांजलि
(3) राष्ट्रीय स्वतंत्रता से संबद्ध तीव्र संवेदना
(4) स्वतंत्र्योत्तर में राजनेताओं और अधिकारियों की संवेदनहीनता
(5) उपदेशपरक कविताएँ
(6) युद्ध के प्रति सैनिक और युवकों का उत्साहवर्धन
(7) नारी-चेतना अथवा मातृशक्ति के प्रति संवेदना

1. स्वदेश भारत की स्तुति एवं महत्त्व :

'महक की माटी' की संग्रह में संकलित सभी कविताएँ राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत हैं। इन कविताओं में प्रगल्भ जी ने देश की महिमा और विशेषताओं का गुणगान किया है। किंतु कुछ कविताओं में उन्होंने देश का नामोल्लेख भी किया है, ये कविताएँ हैं–हमारा देश, भारत देश।

प्राचीन भारतीय साहित्य की एक विशिष्ट परंपरा थी कि रचना के आरंभ में मंगलाचरण दिया जाता था। इसके अंतर्गत कवि अपने अराध्य की स्तुति करने के साथ अपनी रचना की कथा और उद्‌देश्य आदि का परिचय दिया करते थे। पाश्चात्य प्रभाव के कारण आधुनिक युग में यह परंपरा प्रायः लुप्त होती जा रही है। वर्तमान में कुछ रचनाकार रचना के प्रारंभ में एक ऐसी कविता अथवा नाटक में सवांद का आयोजन कर देते हैं, जो मंगलाचरण के रूप में स्वीकार किया जाता है। 'महक माटी की' संकलन में पहली कविता 'हमारा देश' भी इसी श्रेणी की कविता है। कवि ने इस कविता की रचना सन् 1977 में की थी। इस कविता को पुस्तक के आरंभ में प्रस्तुत करने में कवि का आशय है कि यह मंगलाचरण तुल्य है। इस कविता में कवि ने अपने देश का गौरवगान प्रस्तुत किया है। 'हमारा देश' नामक इस कविता में कवि ने भारत की प्राचीन गरिमा और

भविष्य के प्रति आकांक्षा प्रकट की है। कविता का प्रथम पद देश के स्वाभिमान से परिपूर्ण है। कवि ने इस कविता में विश्वशांति की कामना करते हुए लिखा है–

विश्व को पाठ अहिंसा और शांति का देता रहे सदैव,
सुखों की सरिता बहती रहे, न आने पावे दुख दुर्दैव,
जगाता रहे जगत को सदा, मिटता रहे अवनि का क्लेश,
हमारा देश हमारा देश

–महक माटी की, पृ० 13

इस कविता के दूसरे पद में कवि ने राम और कृष्ण के आदर्श का उदाहरण देते हुए शिक्षा दी है कि जिस प्रकार राम, रावण जैसे शक्तिशाली राक्षस से भी भयभीत नहीं हुए थे उसी प्रकार हमें भी अपनी विरोधी शक्तियों का साहस के साथ मुकाबला करना है। कविता में कवि ने जहाँ श्रीराम का उदाहरण देकर विरोधियों का सामना करने के लिए कहा है, वहीं श्रीकृष्ण की मधुर मुरली के द्वारा जन-जन के हृदय में प्रीति जगाने की प्रेरणा भी दी है–

हमारे राम बताते रहें, न होना रावण से भयभीत,
मुरलिया मधुर कृष्ण की सदा उगाती रहे उरों में प्रीति,
उठाता रहे गिरे को सदा, सहारा दे सदैव सर्वेश
हमारा देश हमारा देश।

–महक माटी की, पृ० 13

कविता का तीसरा पद देश की पवित्र सरिता गंगा एवं प्राकृतिक सौंदर्य से संबद्ध है। इस पद में कवि ने ईश्वर से प्रार्थना की है कि हमारे देश का प्राकृतिक सौंदर्य हमेशा बना रहे–

गंग की धारा पावन रहे, सुहावन वृंदावन के कुंज,
और यह नंदन सा कश्मीर, प्रकृति के रूप रंग का पुंज,
उभरता रहे केलि का धाम, बिहँसता रहे सदा अखिलेश।
हमारा देश हमारा देश।

–महक माटी की, पृ० 13

कवि ने इस कविता में जहाँ देश के शस्य-श्यामला रूप का वर्णन किया है, वहीं सूर, कबीर, मीरा जैसे भक्त कवियों का स्मरण भी किया है। अर्जुन की वीरता, दधीचि और कर्ण की दानवीरता को सराहा है तो देश के सच्चे प्रेम की नीति का भी उल्लेख किया है। यथा–

हमारी सीधी-सच्ची नीति प्रीति को सदा सरसती रहे,
जननि का ऊँचा ललाट, कृपा को जगति तरसती रहे,
सदा ही रहे सरल व्यवहार, छल, कपट, दंभ न हो लवलेश।
हमारा देश हमारा देश।

–महक माटी की, पृ० 14

संग्रह की दूसरी कविता 'भारत देश' है। कवि ने यह कविता सन् 1969 में लिखी थी। यह वह समय था, जब देश के वीरों को चीन और पाकिस्तान के आक्रमणों से जूझना पड़ा था। देश की एकता और सैनिकों के साहस से इन दोनों देशों के साथ युद्ध में भारत को जीत हासिल हुई थी। तब कुछ लोगों को आशंका हुई थी कि भारत दो-दो देशों से युद्ध करके थक गया है। ऐसे लोगों की आशंका मिटाने के लिए कवि ने बड़े चमत्कारिक ढंग से उत्तर दिया है। कवि का

मानना है कि भारत भी वह देश है, जो संपूर्ण ब्रह्मांड का भार वहन करने की सामर्थ्य रखता है–

ज्ञात होना चाहिए उसको कि होता शेष का क्या अर्थ?
शेष कहते हैं उसे जो नहीं–दो–चार देशों का
अपितु संसृति निखिल का भार धारण में सशक्त, समर्थ।
है अगर हम शेष तो है शेष ऐसे ही।

–महक माटी की, पृ० 70

कवि ने इसी कविता में पड़ोसी देश को अपने देश की नीतियाँ समझाते हुए कहा है कि हम विरोधियों के भी कल्याण की कामना करते हैं, इस कविता में कवि ने यह भी स्पष्ट किया है कि हम शांति के पुजारी हैं। हम शांति के मार्ग पर चलने वालों के हमेशा मित्र हैं, लेकिन यदि कोई इसे हमारी दुर्बलता समझता है तो यह उसकी भयंकर भूल है। हम मित्रों के लिए मित्र हैं तो शत्रुओं के लिए खंजर और तलवार भी हैं।

2. महापुरुषों के प्रति श्रद्धांजलि

अपने राष्ट्र की भूमि, इतिहास और राष्ट्रपुरुषों के प्रति सम्मान राष्ट्रीयता की पहली शर्त है। इसी कारण विभिन्न राष्ट्रप्रेमी कवि अपनी रुचि और क्षेत्र के महापुरुषों के प्रति श्रद्धांजलि काव्य रूप में देते रहे हैं। महापुरुषों के प्रति श्रद्धा राष्ट्र के प्रति श्रद्धा अथवा भक्ति का ही रूप है। 'महक माटी की' सग्रंह में कवि ने 'बहादुरशाह जफ़र' से लेकर 'लालबहादुर शास्त्री' तक अनेक स्वतंत्रता सेनानियों और राष्ट्रनेताओं को अपनी श्रद्धा के पुष्प अर्पित किए हैं। इन श्रद्धांजलियों में कवि ने प्रत्येक महापुरुष के कार्यों और आदर्शों को उजागर किया है। ऐसे महापुरुषों के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति का यह भाव सभी जागरूक नागरिकों की संयुक्त संवेदना है। ऐसी कविताएँ निश्चय ही युवा वर्ग में प्रेरणा भरकर आन्दोलित करती हैं। किसी भी वर्ग को जागरूक बनाने में ऐसी कविताएँ समर्थ रहती है। ऐसी कविताएँ देश के प्रति आसक्ति, त्याग, उत्साह, स्वाभिमान, प्रतिद्वंद्विता आदि मूल संवेदनाओं के साथ, विश्व-प्रेम और मानव मात्र के प्रति संवेदना के कारण करुणा आदि से परिपूर्ण होती हैं। सहृदयों के मन में ये श्रद्धांजलियाँ इन संवेदनाओं का उद्रेक करने में समर्थ हैं।

ऐतिहासिक कालक्रम से देखा जाए तो सबसे पहला वह सेनानी जिसके प्रति इस संकलन में श्रद्धांजलि दी गई है, तो वह अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफ़र है, जो प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का वयोवृद्ध परंतु युवकों जैसा साहस वाला भावुकहृदय सेनापति था। उसका त्याग, साहस और उसकी धर्मनिरपेक्ष नीति आज भी हमारा मार्गदर्शन करने में समर्थ है। प्रश्नावली में लिखी गई शैली में कवि देश के जवानों से प्रश्न करता हुआ कहता है–

कि था जो वृद्ध मगर जिसने यौवन ललकारा था
वह कौन? कि था जो मुसलमान, पर हर हिंदू को प्यारा था
जिसके झंडे के नीचे सारा देश क्रांति के लिए जुटा।
पाकर जिसका संकेत सुप्त भारत निद्रा से जाग उठा।
वह कौन? कि जिसने स्वेच्छा से काँटों का पंथ बुहारा था,
आजादी के दीवानों का जो सबसे बड़ा सहारा था
अँधियारे में उजियारा था।

–महक माटी की, पृ० 27-28

 ISSN 0975-735X

बहादुरशाह जफ़र वास्तव में ही ऐसा सेनानी था, जिसमें देश के प्रति सच्ची संवेदना थी और जिसने भारत की आगामी धर्म निरपेक्ष राष्ट्रीयता की नींव भी रखी।

'विजयलेख मानवता का' शीर्षक कविता में कवि ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है। कवि का मानना है कि बापू ऐसे करुणामय व्यक्तित्व थे, जिनके एक संकेत पर पूरा देश एकत्र हो जाता था। उनमें मौसम को बदलने की असीम शक्ति थी। उनके व्यक्तित्व की दृढ़ता का उल्लेख करते हुए कवि कहता है–

इनसे भी बढ़कर होते हैं कुछ दिव्य-पुरुष
जिनके तेवर पर मौसम बदला करता है।
मुसका दे तो ऋतुराज बिहँसता है भू पर,
जब हो उदास तो पतझर जैसा लगता है।

–महक माटी की, पृ० 21

बापू के व्यक्तित्व में अहिंसा, करुणा और न्याय-प्रियता ऐसे तत्त्व थे, जिन्होंने बापू के रूप में आकार ग्रहण किया था। इस तथ्य को उजागर करते हुए कवि ने लिखा है–

जब रूप सत्य ने रखा अहिंसा के तन में,
परपीड़ा को मिल गया कि जब अनुकूल हिया।
जब मिली न्याय को शरण दया की बस्ती में,
युग ने उसको ही तो गांधी का नाम दिया।

–महक माटी की, पृ० 21

इस कविता में कवि ने उस घटना का भी वर्णन किया है, जिसके कारण बापू ने अपनी वेशभूषा ही बदल डाली। इस घटना में कवि ने एक दरिद्र स्त्री की वस्त्रहीन दशा का करुणा-चित्र अंकित कर, उसके प्रति बापू की उस करुणा को व्यक्त किया है, जिसके बाद उन्हें अधिक वस्त्र तथा अधिक साधनों का उपयोग करना अन्याय पूर्ण लगा और उन्होंने अपने तन पर आधी धोती को ही पर्याप्त समझ लिया। बापू की दया, दरिद्रों के प्रति सहानुभूति और त्याग की इस संवेदना को अभिव्यक्ति देते हुए कवि ने लिखा है–

धरती डोली, हिल गया हिमालय का धीरज,
सागर का अंतराल भी अति ही अकुलाया,
गांधी की भीगी-भीगी पलकों के आगे,
दुखिया भारत-माता का चित्र उभर आया।

–महक माटी की, पृ० 22

इस कविता में कवि ने तत्कालीन देश की दशा के प्रति बापू के संकल्पी व्यक्तित्व का भी सुंदर चित्रण किया है–

संकल्प किया– जब तक यह दशा देश की है,
मैं भी तन पर बस अर्द्ध-बसन ही धारूँगा।
पशुता, दानवता, दमन दंभ से जूझूँगा,
दानव को मैं निःशस्त्र दया से मारूँगा।

–महक माटी की, पृ० 22

गांधी जी के व्यक्तित्व के आधार पर उनके नाम की व्याख्या करते हुए कवि कहता है–

गांधी है केवल नाम न चार अक्षरों का,
गांधी है एक विचार, क्रांति है, दर्शन है।
पशुता पर है वह विजय-लेख मानवता का,
लोहे के मस्तक पर खादी का चंदन है।

–महक माटी की, पृ० 23

प्रगल्भ जी की यह कविता वर्तमान युग के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण है। दरअसल, आज मनुष्य उपभोगतावाद की अंधी दौड़ में शामिल है। उसके हृदय से संवेदना जैसे समाप्त ही हो गई है। अपने स्वार्थ के हेतु मनुष्य किसी को भी कष्ट देने के लिए तैयार है। अत: ऐसी स्थिति में गांधी जी का स्मरण बहुत आवश्यक हो गया है। अत: कवि की यह कविता इस उद्देश्य को पूर्ण करती है।

'वह कौन?' शीर्षक कविता भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को समर्पित है। यह कविता भी प्रश्नोत्तर शैली में ही लिखी गई है। कवि पहले 'वह कौन' कहकर प्रश्न करता है और फिर पहेली की 'अता-पता' शैली में नेहरूजी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालता है। कवि पाठकों से जानना चाहता है कि उस व्यक्ति का नाम बताओ, जिसकी आँखों में आत्मविश्वास और कर्मठता का प्रकाश विद्यमान रहता था और जो प्रौढ़ हो जाने पर भी जीवंतता ही नहीं, जवानी की उमंगों से भरा रहता था। देश के शासन की बागडोर जिसके हाथों में थी फिर भी वह फ़क़ीरों जैसी निस्पृहता से परिपूर्ण था। जिसका व्यक्तित्व तो गुलाब की तरह सुंदर और गंधयुक्त था, किंतु उसने देश के दायित्वों का काँटों-भरा मुकुट धारण किया था। जिसके हृदय में विश्वशांति की एक ललक थी–

मन-वचन-कर्म से सच्चा था,
भावना हमेशा शुद्ध रही,
छोड़े कपोत के जोड़े जो
इसलिए कि हो अब युद्ध नहीं।

–महक माटी की, पृ० 24

विश्वशांति के लिए नेहरू जी ने गुटनिरपेक्ष देशों को संगठित करने का प्रयास किया। नेहरू जी की राजनीतिक कुशलता की सराहना करते समय कवि को चीन नीति में उनकी असफलता की भी याद आती है, परंतु कवि इसके लिए नेहरू जी को नहीं, चीन की कुटिलता को प्रमुख कारण मानता है। कवि का मानना है कि नेहरू जैसा राजनीतिज्ञ इस प्रकार के छल की कल्पना भी नहीं कर सकता था–

लेकिन वह सोच न सकता था,
मानव इतना गिर सकता था,
बन मित्र व्यक्ति छल सकता है,
वचनों तक से फिर सकता है।

–महक माटी की, पृ० 25

नेहरू जी अपने त्याग और बलिदान के कारण जहाँ देशभर में लोकप्रिय थे, वहीं विदेशों

में भी उनका गुणगान होता था। विदेशों में उन्हें हिंदुस्तान के नाम से पुकारा जाता था। इस बात को प्रमाणित करते हुए कवि ने लिखा है–

वह गया विदेशों में जब-जब
लोगों ने 'हिंदुस्तान' कहा।
घूमा स्वदेश में, जन-जन ने,
जीवित, जाग्रत बलिदान कहा।

–महक माटी की, पृ० 26

महामना पं० मदनमोहन मालवीय के व्यक्तित्व से भी कवि प्रभावित दिखाई देता है। 'मालवीय जी के प्रति' नामक कविता में कवि ने उन्हें अपने श्रद्धासुमन अर्पित किए हैं। यह कविता अतुकांत है और इस संग्रह की सबसे लंबी कविता है। वस्तुत: मालवीय जी का परिवार मालवा प्रांत का मूल निवासी होने के कारण 'मल्लई' नाम से जाना जाता था, किंतु पंडित जी ने इस नाम को बदलकर मालवीय रख दिया था। कवि ने इस प्रसंग का वर्णन इन पंक्तियों के माध्यम से किया है–

निश्चय ही मालवीय में
अशुद्ध को शुद्ध और परिष्कृत करने की
सजग जागरूकता विद्यमान थी बचपन से।
आगे चल जीवन में जो कुछ भी उन्हें मिला
हेय और कल्मष,
प्रेम बन गया वही, श्रेय बन गया वही।

–महक माटी की, पृ० 30

मालवीय जी की वाणी बड़ी मनहर और प्रभावपूर्ण थी। हिंदू-मुस्लिम विवाद के समय उन्होंने सबको भाईचारे का संदेश दिया। तब उनकी वाणी से प्रभावित होकर मुस्लिमों ने संकल्प लिया कि अब हम हिंदुओं पर कोई अत्याचार नहीं करेंगे। इस कविता में कवि ने मुसलमानों के उस संकल्प को इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

भूल हुई, क्षमा, क्षमा, अब नहीं होगा यह,
अपहृत संपत्ति भी वापस करेंगे सब,
और नहीं एक भी हिंदू को मारेंगे।
क्योंकि जैसा अभी आपने सुझाया है,
वे हमारे मीत है, साथी हैं, भ्राता है
दोनों की जननि ही यह भारत माता है।

–महक माटी की, पृ० 34

मालवीय जी के त्याग, समाजसेवा और देशभक्ति से कवि अत्यधिक प्रभावित है। तभी तो वह ईश्वर से कामना करता है कि मालवीय जी का भारत में फिर से जन्म हो–

उनका व्यक्तित्व महान/ जीवन वृत्त भव्य है
जो है अनुकरणीय/ जो नित ही नगण्य है
है ईश्वर आवें फिर/ वे अपने भारत में/ आशा है आएँगे

क्योंकि नहीं चाही थी/ मुक्ति उन्होंने कभी।

—महक माटी की, पृ० 40

'रूस भारत से गए तुम' शोकगीत के माध्यम से कवि ने भारत के लोकप्रिय प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री के सम्मान में भी अपने श्रद्धासुमन अर्पित किए हैं। दरअसल, शास्त्री जी जनता के बीच अपनी सादगी और मृदु-व्यवहार के कारण लोकप्रिय थे। भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय उन्हें विदेशी दबाव के कारण समझौता वार्ता के लिए रूस जाना पड़ा और वहाँ विदेशी दबाव में उन्हें सीमा समझौता भी करना पड़ा। इस कारण वे मन में बहुत दुखी हुए। दूसरी ओर भारतीय जनता भी उनके इस समझौते से रुष्ट हो गई और रूस से लौटने पर शास्त्री जी का विरोध करने के लिए तैयार हो गई। उधर विदेश में शास्त्री जी का मन समझौता वार्ता से दुखी तो था ही, और उन्हें जब अपने देश का यह समाचार मिला तो उनका हृदय इस दुख को सहन न कर सका। परिणामस्वरूप उन्हें हृदयाघात हो गया। भारतीय जनता को इस समाचार से बेहद दुख और यह पश्चात्ताप भी कि हमारी भूल के कारण ही हमारे प्रधानमंत्री की मृत्यु हुई है। कवि ने भारतीय जनता के इसी पश्चात्ताप को इस कविता में व्यक्त किया है—

जब गए थे/ मुस्कुराते थे
कि हँसते-बोलते थे और
जन-जन के हृदय में/ मधुरवाणी का अमृत तुम घोलते थे।
आज लौटे हो, मगर तुम मौन क्यों हो?
क्यों नहीं तुम बोलते हो?
देश सारा बिलखता है/ रो रहीं सारी दिशाएँ
क्यों न दो क्षण के लिए ही/ नयन अपने खोलते हो?

—महक माटी की, पृ० 78

इस कविता में कवि ने राष्ट्रपति से लेकर सामान्य जनता की शोकाकुल दशा को संक्षेप में व्यंजित किया है। कविता के अंत में कवि ने चमत्कारिक ढंग से जनता की उस अपराध आशंका को भी व्यक्त किया है, जो किसी बड़ी हानि अथवा प्रियजन की मृत्यु के समय मनुष्य के मन में व्याप्त होती है। उसे लगता है कि इस हानि के पीछे हमारे जाने-अनजाने अपराध का अस्तित्व रहा हो। कवि सोचता है कि शास्त्री जी की आत्मा यहाँ से जाकर जो नहीं लौटी, तो क्या वे हमसे रूस (रूठ) गए हैं? उनके रुठने का कारण हमारा कोई अपराध तो नहीं है। शोक के साथ इस अनजाने अपराध का बोध इस कविता की मूल संवेदना है। यथा—

आज तक तो शत्रु को भी
था नहीं तुमने कभी धोखा दिया था
कौनसा अपराध हमसे हो गया है, जो हमें धोखा दिया है
रूठ यों हमसे गए तुम था नियति का व्यंग्य
जिसको हम समझ पाए न थे
'रूस भारत से गए तुम'।

—महक माटी की, पृ० 80

राजनेताओं और स्वतंत्रता सेनानियों के अतिरिक्त कवि ने हिंदी साहित्य के पुरोधा साहित्यकारों

 ISSN 0975-735X

के प्रति भी श्रद्धा-सुमन संवेदना के रूप में समर्पित किए हैं। इनमें एक श्रद्धांजलि भक्तिकाल के प्रख्यात और जननायक लोकप्रिय कवि तुलसीदास जी के प्रति प्रकट की है। तत्कालीन समय में दरबारी प्रकृति को छोड़कर तुलसी जी ने स्वतंत्र रचना विधान तैयार किया। कवि के शब्दों में–

मेटी युग की लीक हुई ना दरबारों में बंद,
वही तुम्हारी कविता-सरिता गंगा सी स्वच्छंद।

–महक माटी की, पृ० 48

तुलसी ने हिंदी साहित्य-जगत को जो साहित्यिक उपहार दिया है, वह युगों-युगों तक विश्व का कल्याण करता रहेगा। कवि ने तुलसीदास जी के इस उपहार को अमूल्य मानते हुए, उनके प्रति अपने श्रद्धा-सुमन इस प्रकार अर्पित किए हैं–

हिंदी जग को दिया कि तुमने जो अनर्घ उपहार।
किया, कर रहा और करेगा, युग युग तक उपकार।

–महक माटी की, पृ० 48

हिंदी साहित्य के आधुनिककाल के प्रमुख साहित्यकार सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के प्रति भी कवि ने श्रद्धांजलि अर्पित की है। 'महाप्राण निराला' के महाप्रयाण पर' शीर्षक से रचित कविता में कवि ने मुक्तछंद के जन्मदाता की मुक्त-कंठ से सराहना की है। यथा–

मुक्त छंद का मुक्त कंठ वह हुआ सदा के लिए मूक है
आज उठ गया युग निर्माता उर में उठती बड़ी हूक है।
देते अर्घ्य तुम्हें हे कविवर हम भर-भर अपनी नयनांजलि
श्रीचरणों पर अर्पित करते विनत भाव से हम श्रद्धांजलि।

–महक माटी की, पृ० 51

3. राष्ट्रीय स्वतंत्रता से संबद्ध तीव्र संवेदना

'प्रगल्भ' जी ने अपनी कविताओं में राष्ट्रीय स्वतंत्रता से संबद्ध तीव्र वेदना व्यक्त की है। इस वर्ग की कविताओं में स्वतंत्रता के लिए किए गए संघर्ष तथा तत्कालीन आपदाओं और आकांक्षाओं के प्रति कविता लिखकर संवेदना प्रकट की गई है। इन कविताओं में स्वतंत्रता-प्राप्ति का उल्लास झलकता है, तो उसके बाद स्वप्न भंग को व्यक्त करनेवाली कविता भी है।

इस वर्ग की कविताओं में सबसे पहले उल्लेख-योग्य कविता 'पंद्रह अगस्त' है। यह कविता 1947 में लिखी गई है। उस समय देश स्वतंत्रता की ओर अग्रसर था। इस कविता में उस समय की पूरी राष्ट्रीय संवेदना झलकती है। उस समय सभी भारतवासी स्वतंत्रता से पूर्व विदेशी (उपनिवेशवादी) शाासन की यातनाओं को स्मरण कर उससे मुक्ति के उल्लास से ओत-प्रोत थे। साथ ही स्वतंत्रता सेनानियों और सैनिकों के बलिदान के प्रति आभार व्यक्त कर रहे थे–

जब/ मिली नहीं आज़ादी थी।
सोचो–वैसी बरबादी थी
सोचो–था वह कैसा आलम
कैसी दारुण थी वे घड़ियाँ।

–महक माटी की, पृ० 18

अत्याचार एवं अन्याय की इस पृष्ठभूमि के बाद कवि ने कुछ जीवंत घटनाओं के सजीव

चित्र अंकित किए हैं–

ऐसी दारुण घड़ियों के/ अनगिन वर्षों के
पिसती-कराहती/ जनता के संघर्षों के
परिणाम रूप/ पाया हमने/ पंद्रह अगस्त।

–महक माटी की, पृ० 19

कष्टों-भरी लंबी अवधि के बाद मिली आधी-अधूरी और दु:खभरी स्वतंत्रता को संकेत मात्र समझकर कहते हैं–

सन सैंतालीस/ चौदह अगस्त
सब अस्त-व्यस्त/ हम दु:खी त्रस्त
पश्चिमी सूर्य/ जो हुआ अस्त
अगले दिन था/ पंद्रह अगस्त।

–महक माटी की, पृ० 15

इस कविता में उस उल्लास और गौरव का गान किया गया है, जिसे हमने बड़े त्याग और बलिदान से प्राप्त किया था। कवि की संवेदना बड़ी आकर्षक है। यथा–

हम हुए मुक्त/ आश्वस्त/ हमारा पथ/ प्रशस्त।
है दिवस बंधु यह
सहनशीलता का प्रमाण/ भारत की
अजर-अमर रहने वाली/ स्वतंत्रता का निशान
पन्द्रह अगस्त/ है पुण्य-पर्व
पंद्रह अगस्त/ है दिन महान।

–महक माटी की, पृ० 19-20

स्वतंत्रता-दिवस यद्यपि बड़े उल्लास का दिन है, किंतु जब स्वतंत्रता दिलाने वाले अमर शहीदों की याद आती है तो मन वेदना से भर उठता है। कवि ने उन शहीदों के बलिदान को इस प्रकार नमन किया है–

है उचित कि अब/ होकर कृतज्ञ/ जय बोलें
सभी शहीदों की
जिनके/ अनर्घ बलिदान
उभरते आज/ बने देशाभिमान।

–महक माटी की, पृ० 16

देश की उपलब्धियों के साथ ही कवि ने वर्तमान समस्याओं का भी वर्णन किया है। संप्रदायवादी आतंकवाद आज सबसे बड़ी समस्या है, जिसे अनेक उपायों के बाद भी हम रोक नहीं पा रहे हैं। इस आतंकी हिंसा को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

रोक नहीं पाए हम/ संप्रदायवादी यह आतंकी आँधी,
लील गई हाय जो/ एक नहीं/ हाँ, कई गांधी।
अहिंसा के उपवन में/ हिंसा के विषधर ने/ फिर फन फैलाया है।

–महक माटी की, पृ० 124

ISSN 0975-735X

कवि का दृष्टिकोण आशावादी है। उसका विश्वास संकटों को चुनौती देने वाला है। अपने अराध्य देव के प्रति आश्वस्त होते कवि की संवेदना देखने योग्य है–

आशंकित धरती आतंकित है,
नभ में आश्वस्त मगर है दिनकर
यह विष भी/ अपना रंग लाएगा
आएगा/ वह दिन भी आएगा–
नागों के तने हुए फनों पर/ खड़ा हो
भारत जब बाँसुरी बजाएगा।

–महक माटी की, पृ० 125

'यह कैसा जनता का शासन' नामक कविता में कवि आतंकी हिंसा से सहमा हुआ दिखाई देता है। देश में हत्या और अपहरण आदि की घटनाओं को देखकर कवि को लगता है कि इन घटनाओं से अब यम भी सहम गया है और अब वह विष्णु को अपना त्यागपत्र देना चाहता है। अभिप्राय यह है कि आतंकवाद भयानक संवेदना का जन्मदाता है, जिससे यमराज तक भी आतंकित हैं। कवि की संवेदना सशक्त अभिव्यक्ति दे रही है–

सहसा बोले यमराज, नहीं अब और नहीं
बस और नहीं इसके आगे सह सकता हूँ,
विधि का आग्रह हो या कि कहें भगवान विष्णु,
इस पद पर मैं पल एक न अब रह सकता हूँ।

–महक माटी की, पृ० 81

यम फिर व्यथित होकर कहते हैं–

मेरा है हृदय वज्र का लेकिन है रोता
कौनसी धातु का दिल हत्यारों का होता?
बस और नहीं, बस और नहीं सह सकता हूँ
इस पद पर मैं पल एक न अब रह सकता हूँ।

–महक माटी की, पृ० 83

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् आर्थिक विषमता के कारण समाज में असमानता बढ़ती गई। परिणामस्वरूप समाज शोषक और शोषित वर्गों में विभाजित हो गया। शोषित वर्ग में धीरे-धीरे क्षोभ तीव्र हो रहा है। कवि ने 'भीड़-भाड़, रोटी-सोटी' तथा 'आग' जैसी कविताओं में समाज में पनपते इस असंतोष को व्यक्त किया है। 'भीड़-भाड़, रोटी-सोटी' शीर्षक कविता में प्रयुक्त 'भीड़' और 'रोटी' सार्थक शब्द है तथा 'भाड़' और 'सोटी' वैसे तो निरर्थक शब्द हैं, किंतु कवि ने इन निरर्थक शब्दों को अर्थ प्रदान करने का प्रयत्न किया है कवि का मानना है कि यह भीड़ (जनसामान्य) उपेक्षित होकर एक दिन 'भाड़' बन जाएगी और रोटी को प्राप्त करने के लिए सोटी अर्थात् लाठी का हथियार लेकर संघर्ष के लिए खड़ी हो जाएगी। यथा–

यह भीड़/ जिस दिन भाड़ बन जाएगी–
रोटी का सवाल/ सोटी से हल कर लेगी।

–महक माटी की, पृ० 89

कवि का मानना है कि यह शोषित वर्ग एक दिन अन्याय और शोषण के विरुद्ध खड़ा हो जाएगा। उसके विरोध से एक ऐसी आग पैदा होगी, जो किसी पानी से नहीं बुझ पाएगी। शोषित वर्ग के लिए यह मर्मयुक्त संवेदना 'आग' नामक कविता में दृष्टिगत होती है। यथा–

लगता है
यह आग/ किसी पानी से नहीं बुझ पाएगी
इसे बुझाने के लिए/ एक और आग चाहिए
काश, वह आग/ सूखी ठठरियों के कलेजे में
लगे तो
सोया हुआ हिंदुस्तान तड़पकर/ जगे तो।

–महक माटी की, पृ० 91

इसी प्रकार 'नया सिरा-नई लीक' कविता में कवि की संवेदना भारत से उठकर संपूर्ण विश्व की असमानता और वर्गचेतना की परिधि तक पहुँच गई है। वह विकसित और विकासशील देशों की बात करके अपने देश की स्थिति पर विचार करता है तथा उस स्थिति से बाहर निकलने के लिए संवेदना प्रकट करता है–

धरा का एक भाग/ निरंतर अँधेरे में है।
दु:ख तो यह है/ कि/ हमारा देश उसी घेरे में है।
और दूसरा दु:ख यह/ कि
जिन्हें होनी चाहिए थी इसकी चिंता/ उन्हीं को नहीं है।

–महक माटी की, पृ० 110

कवि नई विश्व-व्यवस्था की स्थापना के लिए उत्सुक है। कवि ने सूरज के निर्जीव घोड़ों को बदलने और संपूर्ण पृथ्वी पर प्रकाश जगमगाने की संवेदना प्रकट करते हुए कहा है–

प्रतीक्षा है कालपुरुष की/ कब आएगा वह?
कब आएगी वह घड़ी/ जब
बदल देगा वह सभी अश्वों को
कर देगा धरा की धुरी को ठीक
और हम पा जाएँगे/ नए सिरे से नई लीक।

–महक माटी की, पृ० 110

4. **स्वतंत्र्योत्तर भारत में राजनेताओं एवं अधिकारियों की संवेदनहीनता**

देश की ग़रीबी के प्रति नेताओं और अधिकारियों की संवेदनहीनता का परिचय प्रगल्भ जी की अनेक कविताओं में मिलता है। इन कविताओं में राष्ट्र नायक, राजनेताओं, अधिकारियों के प्रति कवि ने क्षोभ प्रकट किया है। इस प्रकार की कविताओं में 'बात वीर', 'पीना साँप', 'अग्निसागर' और बदलाव आदि प्रमुख हैं। 'बात वीर' शीर्षक कविता में कवि ने उच्चवर्ग के उन व्यक्तियों की कथनी और करनी का अंतर स्पष्ट किया है, जो हृदयहीन हैं–

पीड़ा की बातें करते हो, सच बतलाना,
पीड़ा से कितना परिचय रहा तुम्हारा है,
घावों को सहलाने की बात अभी छोड़ो,

क्या नेह-नयन से कभी निरीह निहारा है।

—महक माटी की, पृ० 119

हमारे देश के नेता राष्ट्र के विकास की बातें तो ख़ूब करते हैं। गाँवों और नगरों के सुधार की नई-नई योजनाएँ बनाते हैं, लेकिन इन योजनाओं से वे देश का नहीं, स्वयं का विकास करते हैं। देश के नेताओं की इस कार्यशैली पर व्यंग्य करते हुए, कवि ने कहा है—

तुम ख़ूब करो बातें सुधार की, सेवा की
पर क़सम तुम्हें जो पथ पर कदम बढ़ाओ तुम,
चाँदनी रात भर पियो, जियो, चहको, बहको
बातों ही से गाँवों को स्वर्ग बनाओ तुम।

—महक माटी की, पृ० 119

'पीना साँप' कविता में कवि ने सत्तालोलुप नेताओं पर व्यंग्य प्रहार किया है, कवि ने उन्हें साँप की उपमा दी है। अधिकारी सामान्य जनता को डाँट पिलाते हैं और स्वयं रिश्वत लेकर मौजमस्ती करते हैं। देश के प्रति इनकी उदासीनता को देखते हुए कवि ने कहा है—

बेबस-से/ देख रहे हैं सब कुछ ऊँघते से,
बेजान से
मानो, इन्हें कुछ नहीं लेना-देना/ हिंदुस्तान से।

—महक माटी की, पृ० 120

'बदलाव' शीर्षक कविता में स्वतंत्रता की रक्षा के लिए बेचैन दिखाई देता है। वह कहता है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात जिन राष्ट्रनायकों को उसकी रक्षा का भार सौंपा गया था, वे अपने निजी स्वार्थ में लगे हुए हैं। उनके लिए स्वतंत्रता के कोई माने नहीं हैं। उनका उद्देश्य मात्र सत्ता की कुर्सी प्राप्त करना है। कवि ने अपना क्षोभ इस प्रकार व्यक्त किया है—

आज़ादी के रखवाले सब कुर्सी के हो गए मुरीद
नहीं रहा उल्लास हृदय में होली हो अथवा हो ईद।

—महक माटी की, पृ० 130

इस कविता में भारत माता को इस दु:ख से तड़फते देखकर आकाश भी कह उठता है—

कुरसी की मातमपुरसी कर रख मत कोई लगाव री।
दे आवाज़ कर्मवीरों को लावें वे बदलाव री।

—महक माटी की, पृ० 130

जनता के द्वारा चुने गए नेता, जब सत्ता की कुर्सी पर बैठ जाते हैं, तो वे उस जनता को भूल जाते हैं। 'अग्निसार' कविता में कवि ने जनता की इसी वेदना को व्यक्त किया है। ऐसा लगता है मानो कवि भी इन नेताओं के इस छल से पीड़ित है और एक भयंकर आग में जल रहा है। यथा—

जब अपना ही साया खुद अपने को छलता है
मानव का मन एक अग्निसागर में जलता है।

—महक माठी की, पृ० 126

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद कवि ने पत्र-शैली का प्रयोग करते हुए, दो बाह्य देशों के प्रति

कविता लिखी है। पहली कविता 'सालाजार के नाम खुला पत्र' में पुर्तगाल के शासक के नाम स्वतंत्रता का औचित्य व्यक्त किया है, जिसमें कहा है कि तुम अपनी ताक़त के भ्रम में मत रहना, हम और हमारी गुट निरपेक्ष विदेश नीति तुम्हारा सामना करने में सक्षम है। इस संबंध में कवि ने नेहरू-नासिर की मित्रता का गर्व के साथ उल्लेख किया है। गोवा के स्वतंत्रता संघर्ष की कुछ मार्मिक घटनाओं के आधार पर भारत की संस्कृति और राजनीति की विशेषताओं का उल्लेख भी कवि ने किया है–

और गवर्नर घायल, जिनका किया गया उपचार।
स्वयं बता देंगे दुनिया को हम कितने अनुदार।
हम कुछ भी हों, किंतु तुम्हें हम इतना हैं बतलाते
संधि-ध्वजा फहराकर हम हैं गोली नहीं चलाते।

–महक माटी की, पृ० 42

इस काव्यमय पत्र के माध्यम से कवि ने उपनिवेशवादी विदेशी सत्ता को अपने देश की नीति के अन्तर्गत अहिंसा, विश्वप्रेम और मैत्री के साथ वीरता का भी परिचय दिया है।

दूसरी पत्र-कविता में कवि ने भारत की ओर से पड़ोसी देश पाकिस्तान को इंगित किया है, जिसमें कहा गया है कि हम अपने से शत्रुता रखने वाले पड़ोसी का भी भला चाहते हैं, परंतु एक तुम हो, जो हमारी उन्नति से जलकर हमें तबाह करने के स्वप्न देखते रहते हो। यथा–

जाने क्यों नहीं चाहता वह कि–
मेरे आँगन में/ सुख और चैन रहे
सुंदर सपने देखा करे गुलाब/ मंद-मंद बहती रहे पुरवाई
गाती-गुनगुनाती/ मस्ती बिखराती, इठलाती।

–महक माटी की, पृ० 94

इसी कविता में कवि ने पाकिस्तान को संकेतों से समझाया है कि तुम्हारे यहाँ कोई विष-बेल (आतंकवाद) उग आई है, उसे हमारी तरफ भेजने की अपेक्षा उसे स्वयं काटकर फेंक दो–

उग आई है तुम्हारे आँगन में/ कोई विषबेल
उसे काटो-छाँटो, पर/ पड़ोसी की तरफ़ मत मोड़ो।

–महक माटी की, पृ० 95

5. उपदेशपरक कविताएँ

'महक माटी की' कविता-संग्रह का कवि केवल स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की वेदनायुक्त स्थिति तक ही सीमित नहीं है। उसने वेदना के परिवेश से उभरने के लिए राजनेताओं से लेकर सामान्य वर्ग तक और उसमें भी युवा-वर्ग को उपदेश दिए हैं। वह बदलाव के लिए बादलों और अपने अराध्य श्रीकृष्ण से भी दशा सुधारने का आग्रह करता है। 'जागो देव लोकेश' में कवि का यही भाव दिखाई देता है। पौराणिक कथाओं के रोचक प्रसंग प्रस्तुत किए हैं। इंद्र की सभा में उर्वशी' अप्सरा का नृत्य होने पर इंद्र अपने सम्मोहित होने की आत्म स्वीकृति देते हैं, तो एक अद्‌भुत घटना घटती है, देव गुरु बृहस्पति वहाँ पहुँचते हैं। यह परिवर्तन विस्मयकारी होता है। वे इंद्रदेव को देवताओं की पराजय का स्पष्ट कारण बताकर सावधान करते हैं। यहाँ जो देवलोक की परिस्थितियाँ बताई गई हैं, वे अप्रत्यक्ष रूप से हमारे शासकों और जनता की हैं। इस प्रकार कवि ने

इंद्र के माध्यम से शासक वर्ग को सावधान किया है।

मरते हैं, मरें रोज़ देव दीन।
तुम तो बस नुपुर की ध्वनि में रहो लीन
झूमते रहो तुम सदा सोम, सुधा, परियों में,
तैरते रहो तुम सदा रास-रंग तरियों में, अप्सरा, किन्नरियों में
चेतो भी देवराज!
ऐसे कर पाओगे कब तक तुम राजकाज।
हरके ले जाएँ असुर देव पुत्रियों को
और कान तक तुम्हारे पहुँच पाए न चीत्कार
अहिर्निश घेरे रहें तुमको जब चाटुकार,
सुन लो स्वर्गेश!
जहाँ जन-गण-मन उन्मन हो, नृप छंदानुवर्तन हो
औ' असमय नर्तन हो,
ऐसा राज दरबार देता प्रकाश नहीं,
अंधकार, अंधकार।

—महक माटी की, पृ० 115

यहाँ कवि ने अप्रत्यक्ष रूप से शाासकवर्ग को चेताया है। उपदेशपरक कविता श्रेणी में 'लेकिन तब ही', 'ऊसर हो तो तोड़ दो' और 'विजय वरण का प्रश्न है' आदि कविताएँ प्रमुख हैं। इन कविताओं में कवि ने युगीन युवकों का मार्गदर्शन करते हुए उद्‌बोधन किया है। 'लेकिन तब ही' कविता में युवा-वर्ग में साहस, हिम्मत, उल्लास का संचार होने का उद्‌बोधन है। कवि ने जवानों की आकांक्षा पूर्ति की भी कामना की है—

श्रम करो कि फल निश्चय ही तुमको मिलना है
अंततः विजय की माँग सिंदूर भरोगे तुम
चंदा तारे निश्चय तुम पर बलि जाएँगे
लेकिन तब ही, जब मन से काम करोगे तुम।

—महक माटी की, पृ० 93

'ऊसर हो तो तोड़ दो' शीर्षक कविता में कवि ने युवकों को श्रम करने की प्रेरणा दी है। कवि का कहना है कि यदि श्रम होगा, तो ऊसर भूमि भी उपजाऊ हो जाएगी। थककर बढ़ने से कोई काम नहीं होगा, हिम्मत से काम लेना होगा। श्रम से दुर्दिनों का अंत हो जाएगा और शुभ दिनों का आगमन होगा—

मारो श्रम का मुक्का, तोड़ो भी दुर्दिन के जवड़े।
मेड़-मेड़ को तोड़ दो रे, खेत-खेत को जोड़ दो।
ऊसर हो तो तोड़ दो रे, बंजर हो तो गोड़ दो।

आगे कवि ने श्रम को सारी बाधाओं को पार करने का एक मात्र साधान बताया है—

टीले काटो, गड्ढे पाटो, राह बनाओ, बढ़ते जाओ,
तूफ़ानों का रुख मोड़ो तुम, चट्टानों से जा टकराओ,

तुम धरती के पुत्र, देवता श्रम ही सिर्फ़ तुम्हारा है।
अगर संगठित हो तो जग में सानी कहाँ तुम्हारा है।
सुख-समृद्धि की ओर राष्ट्र के जीवन की गति मोड़ दो।
अरे, अभावों की गरदन तुम श्रम के हाथ मरोड़ दो।

—महक माटी की, पृ० 99

'विजय वरण का प्रश्न है' कविता में कवि ने हिंदू-मुस्लिम एकता का उपदेश देने के साथ-साथ सांप्रदायिकता के समाधान का मार्ग भी सुझाया है। कवि ने इन दोनों वर्गों की एकता और सुदृढ़ता पर बल देते हुए कहा है कि राम और रहीम एक हैं, फिर झगड़ा, विवाद, फ़साद क्यों—

जानना पड़ेगा एक दिन, तो क्यों न जान लो।
मानना पड़ेगा एक दिन, तो क्यों न मान लो—
'जवाब है सरल बहुत, जटिल नहीं ये प्रश्न है।
रहीम ही तो राम है, रसूल ही तो कृष्ण है।'

—महक माटी की, पृ० 118

कवि ने मानवता की रक्षा के लिए एवं प्रेम का संदेश देने के लिए पुनः कृष्ण की आवश्यकता जताई गई है। आगे युवावर्ग को जागरूक किया है कि वे शत्रुओं को स्पष्ट बता दें कि सदा धर्म की जय होती है। कवि ने गीता के उपदेश को आधार बनाकर आज के युवकों को अर्जुन की भाँति मोह, शोक और क्लेश त्यागने के लिए भी कहा है—

एक बार फिर से वह सारथी मिले।
पार्थ अगर विचलित हो, वह दे उपदेश,
कैसा है मोह, शोक, कैसा यह क्लेश,
फल की आसक्ति त्याग, करना है कर्म,
हार-जीत मत विचार, है प्रहार धर्म।
टूटे प्रण फिर से, रथ-चक्र फिर चले।
एक बार फिर से वह सारथी मिले।

—महक माटी की, पृ० 112

दूसरी कविता 'बादल बरसो' में कवि बादलों से बरसने की विनती कर रहा है। ऐसा लगता है कवि ने यह कविता बच्चों के लिए लिखी होगी। यह कविता प्राकृतिक संदेश से संबद्ध है। अप्रत्यक्ष रूप में ज्ञान की वर्षा की पुकार है, जो अज्ञानता को दूर कर सके। यथा—

देख रहे हम कबसे राहें, देखो, बरसो,
खड़े हुए फैलाए बाहें, देखो, बरसो,
पूरी होगी अनगिन चाहें देखो, बरसो,
धरती के बेटे की आहें, देखो, बरसो!
बादल बरसो।

6. युद्ध के प्रति सैनिकों और युवकों का उत्साहवर्धन

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश को कई बार पाकिस्तान से तथा एक बार चीन से घोषित युद्ध लड़ना पड़ा। भारत की युद्ध करने की कोई इच्छा नहीं थी, किंतु शत्रुओं ने युद्ध के लिए विवश

किया। अनिच्छा के बाद भी हमारी सेना ने समुचित उत्तर दिया। पाक तो अभी भी अघोषित युद्ध लड़ रहा है। दरअसल, उसके मूल में आतंकवाद छिपा हुआ है। इस संग्रह की कुछ कविता सैनिकों और युवावर्ग के उत्साहवर्धन के लिए अर्पित हैं। 'माँ! मत पथ रोक' कविता में कवि ने भारत के वीर सैनिकों के युद्ध लड़ने की कामना को व्यंजित किया है। सैनिकों की माताओं द्वारा युद्ध में जाने के लिए रोके जाने पर वीरों का उत्साह बोल उठता है–

माँ! मत पथ रोक मुझे बलि-पथ पर जाने दे
श्वेत भूमि शोषित से लथपथ कर आने दे।

–महक माटी की, पृ० 72

माँ को जन्मभूमि का महत्त्व और शत्रु के प्रति अपना वीरभाव तथा अपना संकल्प बताते हुए सैनिक कहता है–

मेरी जन्म भू जननी दात्री है जीवन की,
दुश्मन के दुस्साहस ने ही तो अनबन की,
प्राप्त विजय हो कि न हो, किंतु नहीं हारूँगा,
प्राण शेष हैं जब तक, प्रण न यह विसारूँगा।

–महक माटी की, पृ० 74

'सिपाही देश के मेरे' शीर्षक कविता में कवि सैनिकों को देशभक्ति और राष्ट्र-प्रेम की भावना से अनुप्राणित होकर सैनिकों से कहता है–

कहो ललकार दुश्मन से
हमारे हर सिपाही को/ मरण सम्मान होता है,
युद्ध जब भी बुलाता है/ सिपाही तिलमिलाता है
जगाकर, जागकर पल में
हमारा देश/ राजस्थान होता है।

–महक माटी की, पृ० 76

'सच यह देश नहीं हारेगा' शीर्षक कविता में कवि ने एक काल्पनिक प्रसंग के माध्यम से भारत की नीतियों और देश के वीरों की वीरता का वर्णन किया है। इस कविता में कवि ने चीन के एक गाँव में माँ-बेटे के एक संवाद में भारतीय सेना को अजेय माना है। स्त्री के साथ लोकतांत्रिक व्यवस्था की तुलना चीन की नीतियों और जनता में व्याप्त शासन के आतंक से की गई है। चीनवासियों के मन में व्याप्त आतंक को माँ के शब्दों में कवि ने इस प्रकार प्रकट किया है–

फिर जो छेड़ा है प्रसंग, मन हुआ सशंकित
यहाँ पवन भी शासन के भय से आतंकित
अगर कहीं पहरेदारों ने इसे सुन लिया,
तो यह समझ मृत्यु ने हमको सहज चुन लिया।

–महक माटी की, पृ० 55

चीनी बच्चे का भारत की नीति के प्रति गुणगान भी उल्लेखनीय है–

मैंने सुना कि भारत तो है शांति-पुजारी,

उसके सत्य, अहिंसा से हिंसा है हारी।
और समझ में मेरी यह भी बात न आती,
रोज हमारी सीमा क्यों आगे बढ़ जाती।

–महक माटी की, पृ० 56

भारत की नीतियों से प्रसन्न हुई, एक विधवा साहस का परिचय देते हुए, नेहरू जी के सम्मुख अपना मंगलसूत्र समर्पित करते हुए कहती है–

लो यह मंगलसूत्र, ख़रीदो इसकी गोली
और कहो सैनिक से बदला आज चुकाएँ
बरसावें गोली, अरि को यमलोक पठाएँ।

–महक माटी की, पृ० 58

'घोषणा अपने दुश्मन के नाम' शीर्षक कविता में भी लगभग इसी प्रकार की संवेदना है। कवि ने भारत की ओर से चीन और भारत की तुलना करते हुए, चीनी देशवासियों को समझाया है। अपने देश की नीतियों की सराहना की है।

'हज़ार साल तक लड़ेंगे' कविता के माध्यम से कवि ने पाकिस्तान को सलाह दी है कि वह भारत के साथ युद्ध न करे। यदि वह भारत के साथ युद्ध करता है तो इसमें उसी की हानि है। भारत तो हज़ारों साल तक युद्ध करने की क्षमता रखता है। लेकिन पाकिस्तान को युद्ध लड़ने के लिए विदेशों से ऋण लेना पड़ेगा और उस ऋण के कारण उसे बेबसी, बेकसी तथा भुखमरी का भी सामना करना पड़ेगा। कवि की अभिव्यक्ति सराहनीय है–

वे हज़ारों साल तक लड़ते रहेंगे
बेबसी से, बेकसी से, भुखमरी से,
इसलिए समझा रहे हैं, बाज आएँ,
बाज आएँ वे स्वयं की सिरफिरी से।

–महक माटी की, पृ० 66

'तानाशाही एकतंत्र की' शीर्षक कविता में तानाशाही और प्रजातंत्र की व्यवस्थाओं में अंतर बताया गया है। भारत के प्रजातांत्रिक परिवेश की खुशहाली से एकतंत्रवादी तानाशाह ईर्ष्या करता है–

मैं तानाशाही एकतंत्र/ है अमन-चमन दोनों से मेरा बैर,
मैं नहीं चाहता यह
कि पड़ोसी के घर में/ सुख चैन रहे
मैं नहीं चाहता यह/कि वहाँ हो लोकतुंत्र
मैं नहीं चाहता यह/ कि वहाँ ढप-ढोल बजे।

–महक माटी की, पृ० 67

इस प्रकार अपनी इन कविताओं के माध्यम से कवि ने सैनिकों और युवाओं में साहस, वीरता, देशभक्ति आदि का संचार किया है।

7. नारी-चेतना अथवा मातृशक्ति

कवि राधेश्याम प्रगल्भ जी ने अपनी कविताओं में नारी-शक्ति को भी सम्मिलित किया

है, जो एक श्रेष्ठ साहित्यकार के लिए अनिवार्य भी है। नारी से संबद्ध कविताओं में कवि ने भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों दशाओं का चित्रण किया है। 'आदि शक्ति हो तुम ही' शीर्षक कविता में कवि ने भारतीय संस्कृति में नारी रूपों का अनेक गुणों के अनुरूप चित्रण किया है। सीता, सावित्री, राधा, सारधा, रानी लक्ष्मीबाई, गार्गी, उर्वशी, पन्नाधाय, मीरा, रत्नावली, श्रद्धा, पद्मिनि, कौशल्या, दुर्गा और भवानी आदि को प्रेरक बताकर, उनसे पवित्रता, वीरता, माता-बहिन के गुण स्वीकार करने पर बल दिया है। यथा–

तुम राखी का पावन बंधन
धरती का पर्याय तुम्हीं
हँसकर काट दिया निज सुत को
ऐसी पन्ना धाय तुम्हीं।

–महक माटी की, पृ० 67

त्याग, बलिदान और प्रेम की प्रतीक नारी वर्तमान में आधुनिका बनकर इन आदर्शों को त्याग करती जा रही है। नारी का यह परिवर्तन कवि की चिंता का विषय है। यथा–

तुमको श्रद्धा कहा किसी ने
श्रद्धा से हूँ नत होता।
किंतु देखकर रूप आधुनिक
आज हृदय कवि का रोता।

–महक माटी की, पृ० 128

नारी-संबंधी दूसरी कविता का शीर्षक है–'धरा की आत्मजा' इस कविता का वर्ण्य विषय रामकथा पर आधारित है, जिसमें वन-गमन का मार्मिक प्रसंग है। प्रबन्धात्मक शैली की इस कविता में सीता, राम और लक्ष्मण तीनों को आदर्श रूप में चित्रित करते हुए, भारतीय दांपत्य जीवन और भारतीय नारी के मार्मिक रूप को प्रस्तुत किया गया है। सीता की सहनशीलता और कष्ट, सहिष्णुता इस कविता की मूल संवेदना है। पारिवारिक सुख शान्ति के लिए दाम्पत्य जीवन का सुदृढ़ होना बहुत जरूरी है। सीता का कथन उल्लेखनीय है–

ज्ञात मुझको/ आपके उर की समरसता
कष्ट में मुझको कहाँ हैं देख पाते
इसलिए विश्राम का सुंदर बहाना।
शूल निकलेगा नहीं/ जब तक कि पद से सेविका के,
शूल स्वामी के हृदय चुभता रहेगा।

–महक माटी की, पृ० 133

इस कविता में सीता जी के माध्यम से निरंतर बढ़ते रहने का संदेश दिया गया है। कवि का मानना है कि मार्ग कितना ही कष्टकारक क्यों न हो, लेकिन निरंतर बढ़ते रहने में ही जीवन की सफलता है। यथा–

चलो/ चलते ही रहो अविराम
बस, जीवन यही है
शूल-सुमनों की हमें परवाह कैसी

हम पथिक हैं/ पंथ ही है पंथ पंथी का
फिर भले हो राह कैसी।

–महक माटी की, पृ० 132

नारी से संबंधित तीसरी कविता का शीर्षक है–'कविता ही कविता'। कवि ने इस कविता की रचना 1965 में की थी। दरअसल, देश की रक्षा करते हुए शहीद हुए भारतीय सेना के मेजर आशाराम त्यागी की पत्नी का नाम कविता त्यागी था। कवि ने कविता के नाम को आधार बनाकर उसकी वीरता, करुणा और उसके विधवा रूप को उद्‌घाटित करते हुए, कविता के तीन रस वीर, करुण और शृंगार की कसौटी पर उसे ख़रा बताया है। इस कविता में कवि अपने निजी अनुभव और संवेदना के आधार पर स्वयं से कहता है–

सहसा कवि मेरे ने/ मुझको झकझोर दिया–
कवि अब तो स्वीकारो–
करुणा यदि कविता/ वीरत्व अगर कविता है
व्यंग्य अगर कविता/ शृंगार अगर कविता है
वीर गति-प्राप्त/ वीर सैनिक की पत्नी
कविता ही कविता है, कविता ही कविता है।

–महक माटी की, पृ० 88

कवि ने कविता त्यागी के माध्यम से वर्तमान व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार पर गहरी चोट की है। कविता त्यागी का कथन देखिए–

दुखड़ा देख मेरा
दिया था शासन में मुझे/ भूमि का टुकड़ा एक
सब-कुछ चाकर/ रोज-रोज आकर/ करते हैं परेशान
चाहते हैं शायद वे/ नेग-दान।
इसलिए वीर पुत्र/ देते हैं आहुति क्या?
इसीलिए क्या हँस-हँस/ शीश वे कटाते हैं?
वक्ष पर वज्र के प्रहार/ झेलते हैं क्या,
इसीलिए, इसीलिए?

–महक माटी की, पृ० 85-86

अस्तु, 'महक माटी की' राष्ट्रीय कविताओं के संकलन की सभी कविताएँ संवेदना और शिल्प की दृष्टि से स्तरीय है। प्रगल्भ जी के इस संकलन में एक जिज्ञासु प्राणी की संवेदना है तो एक उच्चकोटि के साहित्यकार का शिल्प भी विद्यमान है। इस प्रकार इन कविताओं में संवेदना, कल्पना और शिल्प का सुंदर सामंजस्य हुआ है। वास्तव में ऐसी ही कविताएँ साहित्य की अमर धरोहर मानी जाती हैं। संकलन की 'विजयलेख मानवता का', 'सच यह देश नहीं हारेगा', 'यह कैसा जनता का शासन', 'नया सिरा-नई लीक', 'जागो देव लोकेश', 'बदलाव, 'धरा की आत्मजा', 'बात वीर', 'पीना साँप', 'आग', 'भीड़-भाड़-रोटी-सोटी' आदि कविताएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

कश्मीर पर कविताएँ : 'आतंक के खिलाफ'

डॉ॰ निशा तिवारी

डॉ॰ राजेन्द्र मिश्र का सद्य:प्रकाशित (2020) काव्य-संग्रह 'आतंक के खिलाफ' जूनून और आक्रोश से भरा क्रांतिकारी कविताओं की संश्लेषी एवं समावेशी संग्रह है, जिसके केंद्र में भारतीय संविधान की धारा 370 है। स्वयं लेखक के प्रारंभिक वक्तव्य की अभ्युक्ति है–'इन कविताओं में 370 को केंद्र में रखकर उसके पहले और बाद की घटनाओं की संवेदना को उभारा है।'

भगवान शिव ऐसे देवता हैं जिसमें लय और प्रलय दोनों समाहित हैं। अमंगल के संहार के लिए जब वे तीसरा नेत्र खोलते हैं तब सब कुछ जलकर भस्म हो जाता है। उनका यह तीसरा नेत्र मात्र संहार की नहीं करता बल्कि भूत-वर्तमान और भविष्य को भी देखता है। ठीक इसी तरह 'आतंक के खिलाफ काव्य-संग्रह में कवि की तीसरी आँख ने कश्मीर के भूत-वर्तमान, भविष्य को देखा है और यही नहीं, तीसरी आँख की संहारक दृष्टि आतंक को भारतीय सेना द्वारा भस्म किए जाने के लिए प्रतिश्रुत भी है।

कवि की पहली आँख तो स्वत: को देखती है। भावनाओं की उथल-पुथल, संवेदनाओं का संजाल सब-कुछ उद्‌बुद्ध होने को तैयार हो जाता है। कवि सामान्य व्यक्ति की तुलना में असाधारण होता है। सामान्य व्यक्ति से 'आँखिनु सब देखिये' परंतु 'आँखि न देखी जाहिं' असाधारण कवि अपनी आँख अर्थात् अपने आत्म को देख लेता है। यह आत्म-साक्षात्कार ही उसकी आत्मानुभूति (सहजानुभूति) है और यही उसकी पहली आँख है।

कवि की दूसरी आँख वह है, जो बाह्य घटनाओं अथवा दृश्य से टकराती है तथा द्रष्टा मन का दृश्य से साक्षात्कार होता है। मन दृश्य को प्रभावित करता है और दृश्य मन को। दोनों के बीच तादात्म्य स्थापित होता है। अंतत: कविता आकार लेने लगती है। कवि का तादात्म्य कठोर और मृदुल किसी भी भाव से हो सकता है और तदनुसार कवि के मन पर वैसी ही प्रतिक्रिया भी होती है।

कवि की तीसरी आँख वह है, जो मन प्रभावी प्रतिक्रिया पर या तो नम हो जाती है अथवा क्रोध से रक्तवर्णी। कवि बाह्य घटनाओं के वैषम्य से पीड़ित होता है और उसकी यही पीड़ा कविता में आक्रोश की ज्वाला धधकाने लगती है, कवि के कंठ से क्रांति का स्वर फूटने लगता है। डॉ॰ राजेन्द्र मिश्र का विद्रोही स्वर 'आतंक के खिलाफ' काव्य-संग्रह में इसी प्रखरता से अभिव्यक्त हुआ है। शास्त्रीय शब्दावली में कहें तो रौद्ररस की अभिव्यंजना अनेक सहयोगी और विरोधी रसों के साथ हुई है। आतंकवाद के अत्याचारों का भोक्ता कश्मीर, कवि के मन में वैसी ही करुणा जगाता है जैसी बहेलिये द्वारा क्रौंचवध के फलस्वरूप वाल्मीकि कवि के मन में उत्पन्न हुई थी; ऐसी ही करुणा जिसने रामायण रच डाला और मिश्रजी ने 'आतंक के खिलाफ' का सृजन कर डाला।

'आतंक के खिलाफ की कविताओं का केंद्र कश्मीर है और उसकी परिधि में है–आतंकवाद। केंद्र से परिधि तक अनेक कोण हैं, जिनमें भारतीय संविधान की धारा 370 और 35-ए का लगाया-हटाया जाना सबसे बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण कोण है। 1947 में कश्मीर का भारत में विलय, 1949 में धारा 370 लगाकर उसे विशेष राज्य का दर्जा दिया जाना, 1954 में 35-ए लगाकर कश्मीर से बाहर से आनेवाले व्यक्ति को स्थायी निवासी बनाए जाने पर पाबंदी, कश्मीर के सदरे-रियासत को राज्यपाल और वजीरे-आजम को मुख्यमंत्री का पदनाम दिया जाना, पाकिस्तान द्वारा आतंकवाद और अलगाववाद का फैलाव, आतंकवादियों और जेहादी संगठनों को प्रशिक्षण द्वारा भारत में घुसपैठ कराना, 1989-90 में कश्मीरी पंडितों का निष्कासन, अंततः 5 अगस्त 2019 को भारतीय संसद द्वारा 370 और 35ए का हटाया जाना इत्यादि प्रमुख घटनाएँ हैं, जिन्होंने कवि के संवेदनशील मन को काव्य-सृजन हेतु आंदोलित और प्रेरित किया है।

कश्मीर पर केंद्रित इन कविताओं में ऐतिहासिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, भौगोलिक और संदर्भगत, अर्थ संरचनाएँ एक-दूसरे से टकराती अवश्य हैं तथा कभी-कभी उनके यथार्थ आपस में उलझकर दोहराव भी पैदा करते हैं किंतु मिश्रजी का 'लिटरेरी काम्पीटेंस' उन्हें एक निश्चयात्मक परिणति प्रदान करता हुआ दोहराव की बोझिलता से पाठक को मुक्त कर देता है।

'आतंक के खिलाफ' की समस्त चौबीस कविताएँ मिश्रजी की अन्य कविताओं से भिन्न एवं विशिष्ट हैं। ये कविताएँ विवरण-प्रधान हैं, जिसका 'नैरेटिव' कुछ अलग सा रचाव करता है। उन्हें पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि अतुकांत छंद तथा लय-तुक विहीनता उन्हें गद्य की श्रेणी में ले आती है। इस तथ्य पर मुहर लगाते हुए उन्होंने स्वयं ही लिखा है–'इन कविताओं को अधिक संप्रेषणीय बनाने के लिए बोलचाल की भाषा का प्रयोग भी किया है, जिसमें गद्य और पद्य का अंतर मिट गया है।' यों भी समसामयिक साहित्य-लेखन में विधागत और भाषागत सीमाएँ टूट चुकी हैं। समस्त विधाओं का ढाँचागत निबद्धन अनिवार्य नहीं रह गया है। अब एक विधा स्वतः का ही रूपगत अतिक्रमण कर दूसरी विधा में समाहित हो जाती है। 'आतंक के खिलाफ' की कविताएँ भी रूपगत बंधनों से मुक्त होकर रची गई हैं। ये कविताएँ समाज-चेतना का प्रामाणिक बयान सी लगती हैं।

वर्तमान में इतिहास और अतीत के नकार का चलन हो गया है और लेखक की प्रातिनिधिकता समाप्त हो गई है, किंतु सच को जानने अथवा उसकी उत्पत्ति के कारणों और प्रामाणिकता की खोज करने के लिए इतिहास का संज्ञान आवश्यक है। बहुज्ञ कवि मिश्रजी ने कश्मीर में पनपते 'आतंकवाद' की उत्पत्ति और उसके अत्याचारों को कविता में सृजित करने के लिए ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक संदर्भों की पड़ताल की है–

> कश्मीर में आतंकवाद का उदय
> एक नए बदलाव के रूप में आया
> यह जम्हूरियत के खिलाफ था
> पर लोकतंत्र में जब जनआक्रोश उमड़ा
> तब कश्मीर की तस्वीर बदलती गई
> चुनावों से निराश होकर

 ISSN 0975-735X

राजनीति का उग्र चेहरा सामने आया
अलगाववादी सोच ने कश्मीर घाटी में
सद्‌भावना की संभावना को रौंदा
अनेक आतंकवादी संगठन हिजबुल मुजाहिदीन,
अलवर्क, हरकत-उल-संसार
सामने आए जिसका लाभ पाक की
खुफिया एजेंसी आईएसआई ने लिया। (इतिहास की आँख)

भारत के कश्मीर में ही आतंकवाद क्यों उत्पन्न हुआ? कवि उसके कारणों की तह तक जाकर उसे 'इतिहास की आँख' से देखते हैं–

सब तरफ आइने लगे हैं
उनमें 1947 के बाद के कई चेहरे दिख रहे हैं
उन चेहरों में बसी आकृतियाँ
उन पर इतिहास की सिलवटें पड़ी हैं।

सिलवटें तो क्या वे कथा के सीवन थे, जिसे एक-एक कर जब कवि ने उधेड़ा तो उसका मन पीड़ा से चीत्कार कर उठा, क्योंकि कश्मीर का भूगोल भारत और पाक के बीच विभाजित हो चुका था। क्षोभ और निराशा में डूबा कवि का मन तड़प उठा था–'यह कैसा राज'

जब देश बँटा तब किस तरह मजहब की वजह से भागते हुए लोग
लाशों में बदले थे
आजादी के पहले नोआखाली में
रक्त की नदी बही थी
लाहौर से लोगों का लगातार भागना जारी था
वहाँ से अमृतसर आनेवाली ट्रेने
लाशों से भरी थीं। ('यह कैसा राज' से)

जो कुछ भी 'सरहद के बीच' घटित हो रहा था, पाक की ओर से भारत के नागरिकों पर जो गोलियाँ बरस रही थीं, वह मानो कवि के हृदय को छलनी कर रही थीं और उस विगत स्मृति से उनका शरीर लहू-लुहान हो रहा है तभी तो वे लिखते हैं–

कश्मीर दो सरहदों में बँटा रहा
पाक की ओर से लगातार गोलियाँ बरसती रहीं
भारत के निहत्थे नागरिक मारे जाते रहे
जब कश्मीर का विलय हुआ तो 370 नहीं थी
कुछ साल बाद मुस्लिम राजनीति
के दबाव से हमारी सरकार ने
370 धारा लगा दी और कहा
वह कुछ समय के लिए है
बाद में इसे खत्म कर दिया जाएगा। ('सरहद के बीच' से)

आश्चर्य तो यह है कि 1947 में कश्मीर का विलय हुआ और 1949 में धारा 370 जोड़

दी गई, जिसके तहत कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा दिया गया तथा पृथक संविधान, राज्यीय झंडा तथा आंतरिक प्रशासन के अधिकार प्रदान किए गए। इस प्रकार जम्मू-कश्मीर को स्वायत्तता प्रदान अवश्य की गई किंतु उसे 'अस्थायी परिवर्तनीय और विशेष प्रावधान' नाम दिया गया। प्रावधानों को समय-समय पर परिवर्तित किया गया तथा 35ए का आरंभ 1954 से हुआ। इसका महत्त्व इसलिए भी है कि 1953 में उस समय के कश्मीर के वजीरे-आजम शेख अबदुल्ला को गिरफ्तार कर बंदी बनाया गया था। समस्त संशोधन जम्मू-कश्मीर के विधानसभा द्वारा पारित किए गए थे। 370 धारा का प्रमुख शब्द 'अस्थायी' है जबकि 70 वर्षों तक उसे स्थायी रूप में लागू किया जाता रहा। 'अस्थायी' शब्द के माध्यम से उसे हटाने की कोशिश नहीं की गई बल्कि 'परिवर्तनीय' शब्द की आड़ में अनेक बदलाव कर मनमानी अवश्य की गई। सदरे-रियासत राज्यपाल हो गए और प्रधानमंत्री को मुख्यमंत्री कहा गया। कश्मीर को राज्य दर्जा मिलने के कारण ये परिवर्तित पदनाम तो उचित था किंतु पाकिस्तान ने मजहब की आड़ में खूनी खेल खेला और आतंकवाद का जिन्न आग में घी का काम करता रहा।

कट्टरवादी इस्लाम ने
कश्मीर की तकदीर को बदल दिया
बहावी कट्टरता हावी हो गई।

इकबाल ने कहा है कि 'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना' किंतु पाकिस्तान तो 'नल बल जल ऊँचो चढ़ै, तऊ नीच को नीच' ही रहा। कार्ल मार्क्स ने धर्म के बारे में कहा है–"Religion is the sign of the oppressed creature, the heart of a heartless world, and the soul of soulless conditions. It is the opium of the people."

पाकिस्तान ने भी मजहब की अफीम का प्रयोग किया। धर्म तो जीवन जीने की कला सिखाता है किंतु उसने तो धर्म का ही राजनीतिकरण कर दिया। अनधिकृत सत्ता पर कब्जा जमाने की उसकी इस कुचाल ने ही आतंकवाद को अपना अस्त्र बनाकर मानवता को शर्मसार कर दिया। कवि की 'सच की आँखें' इसीलिए नम हैं, क्योंकि मुझे दु:ख है मेरे कश्मीर में हिंदू भाइयों को इन आतंकवादियों ने भागने को मजबूर किया, अनेक लोगों की तो हत्या कर दी गई, अनेक लड़कियों का अपहरण कर उनका धर्म बदल दिया गया, इन आतंकवादियों से निकाह कर उनकी जिंदगी बरबाद कर दी गई।

कवि की मन की आँखों ने इस रोते-बिलखते सच को देखा है। वह आहत है उन अलगाववादी ताकतों से जिन्होंने कश्मीर को तबाह करने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखी थी। कवि मिश्रजी का मन कहीं न कहीं दिनकर की इन पंक्तियों से मेल खाता है–भले ही संदर्भ भिन्न है–

वह कौन रोता है वहाँ–
इतिहास के अध्याय पर,
जिसमें लिखा है नौजवानों के लहू का मोल है
प्रत्यय किसी बूढ़े, कुटिल नीतिज्ञ के व्यवहार का,
जिसका हृदय उतना मलिन जितना कि शीर्ष वलक्ष है,

धारा 370 के साथ ही 1954 में धारा 35ए लगाई गई, जिसमें कश्मीर के राज्य विधान

मंडल को 'स्थायी निवासी' परिभाषित करने तथा उन नागरिकों को विशेषाधिकार दिए जाने का प्रावधान था। विडंबना तो यह कि यह अनुच्छेद भारतीय संविधान में राष्ट्रपति आदेश द्वारा बिना संसद में चर्चा हुए लागू किया गया। 370 और 35 ए दोनों ही ऐसे अनुच्छेद हैं, जो जम्मू और कश्मीर को विशेषाधिकार प्रदान करते थे। इसे नेहरू और शेख अब्दुल्ला के 1952 के 'दिल्ली एग्रीमेंट' के आधार पर बनाया गया था। वस्तुत: 35 ए 370 का ही हिस्सा था जिसमें गैर-कश्मीरी व्यक्ति को न तो जमीन खरीदने का अधिकार था और न ही भारत के किसी अन्य राज्य के नागरिकों को कश्मीर का निवासी बनने का अधिकार था। उसे वोट डालने का भी अधिकार नहीं था। यदि कश्मीर की लड़की बाहर विवाह कर ले तो उसके सारे अधिकार समाप्त हो जाते थे। वस्तुत: यह अनुच्छेद भारत के नागरिकों के साथ भेदभाव करता था। यह भेदभाव इसलिए कि वहाँ भी मजहब को तरजीह दी गई थी। मुसलमानों को समस्त अधिकार थे और गैर-मुस्लिम उससे वंचित किए जाते थे अर्थात् भारतीयता को भी विभाजित कर दिया गया था।

आर्टिकल 370, 35ए तथा उनसे उत्पन्न आतंकवाद यही सब यथार्थ थे, जिनसे कवि का मन विचलित और क्षुब्ध था, किंतु जब 5 अगस्त 2019 को दोनों धाराएँ संसद के द्वारा हटाई गईं तो कवि आनंदविभोर हो उठा और उसने सर्जना के लिए कलम उठा ली। अनुच्छेद, संविधान, अधिनियम ये सभी तथ्यात्मक होते हैं तथा उन्हें कविता में बाँधना अत्यंत दुष्कर है, वह भी अतुकांत छंद, लय-गति-विहीन शब्दावली में। 370 के हटते ही उनकी आत्मानुभूति जाग्रत हो गई–

लेकिन अचानक इतिहास ने आँख खोली और 370 आइने में दिखना बंद हो गया जो शब्द लंबी लाइनों में गद्य की तरह लगते थे, अब लगा कि वह कविता बन गई और यह गद्य अचानक लय से युक्त छंद हो गया।

यह कवि की आत्मस्वीकारोक्ति है और कविता की रचना-प्रक्रिया का मर्म भी। सर्जना में वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ जैसा 22 का विभाजन नहीं होता। कवि की संवेदनाएँ ही वस्तु से तदाकार लेकर कविता में ढल जाती हैं। 370, 35ए आतंकवाद और प्रमुखत: 370 को हटाये जानने जैसे 'नैरेटिव' प्रकरणों और प्रभावों को कविता जैसे भावात्मक रूप-विधान में अभिव्यक्त करना कवि की बौद्धिकता और साहित्यिक दक्षता का अनूठा दृष्टांत है।

370 लगाये जाने और हटाए जाने के बीच 70 वर्षों का अन्तराल है। 370, 1949 में लगाया गया और 2019 में हटाया गया। कवि ने 'आतंक के खिलाफ' काव्य में इन दोनों के प्रभावों की द्वंद्वात्मक अभिव्यक्ति की है। ये प्रभाव वृत्तांत जैसी क्रमिकता का परिचय नहीं देते। उनकी अधिकांश कविताओं में दोनों ही विवरण साथ-साथ दिखाई पड़ते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि कवि का मन इन दोनों ही परिस्थितियों से कितना अशांत अथवा शांत था। 370 लगे रहने पर कवि की मनोवृत्ति आक्रामक, आक्रोशमय तथाा क्रांतिकारी है, उसके मन में प्रचंड तूफान है; प्रखर उद्वेलन है तथा 370 के हटाए जाने पर हर्षोल्लास और आशा से आपूरित है–प्रसाद की इन पंक्तियों के साथ जैसे रचयिता का मन भी तदाकार हो गया है–

पुरातनता का यह निर्मोक, सहन करती न प्रकृति पल एक।
निव्य नूतनता का आनंद, किए है परिवर्तन में टेक।

सचमुच 370 एक विषैला नाग ही था जो हटते ही अपनी केंचुली छोड़कर अदृश्य हो

गया। अब 'जश्न में कश्मीर' है—

अब एक नई जन्नत उभर रही है—
अमन के फरिश्ते सब जगह एक नई रोशनी ला रहे हैं
हम सब जश्न में हैं
एक नया सूरज उगा है, एक नई सुबह आई है।

कवि आश्वस्त है कि अवाम जाग रहा है—'अवाम की अवाज' बुलंद हो रही है। 370 हटने पर फिर से कश्मीरियत आएगी, फिर से जम्हूरियत नए रंग में आएगी—

तब यहाँ चुनाव में लोग बढ़चढ़ कर हिस्सा लेंगे
कश्मीर एक नए भविष्य के लिए तैयार हो रहा है
पर अवाम को अपनी आवाज बुलंद करनी होगी
उन्हें बताना होगा अब अवाम जाग रहा है
अलगाववाद और आतंकवाद भाग रहा है।

उक्त पंक्तियाँ 'आतंक के खिलाफ' काव्य-संग्रह की विधायक पंक्तियाँ कही जा सकती हैं। 370 हटने से कवि की खुशी का पारावार नहीं है। ऐसी खुशी की अभिव्यक्ति के समय कवि का भावबोध अत्यंत सघन हो गया है—

नए कश्मीर में एक नई जन्नत बस रही है
एक नई उम्मीद कश्मीर की धरती पर उतर रही है
जनता नई उमंगों में सज रही है सँवर रही है
अब अमन की सुबह सूरज की धूप में नहा रही है
जिंदगी प्यार के गीत गा रही है
अब कश्मीर में अमन की नई सुबह आ रही है। ('अमन की सुबह' से)

'आतंक के खिलाफ' की अंतिम कविता 'नया कश्मीर' समस्त कविताओं का सार है जिसमें कवि ने अनेक निर्णयात्मक निष्कर्ष दिए हैं—

आतंकवादी अब दहशत में हैं
अवाम पर उनके फरमान अब बेअसर हो रहे हैं
कश्मीर का विलय 70 साल बाद भारत में हो गया है
अब यहाँ जम्हूरियत, इंसानियत और कश्मीरियत
अपना अलग चेहरा लेकर सामने आ रही है। (नया कश्मीर)

धारा 370 हटने के पश्चात् कश्मीर के लोकतंत्र में सभी लोग भारतीय नागरिक हैं। उन्हें लोकतंत्र के सभी अधिकार मिल गए हैं, सबको वोट डालने का अधिकार है। उन्हें वे सारे अधिकार प्राप्त हैं जो भारतीय संविधान में हैं। अब कश्मीर का अलग झंडा नहीं है। अन्य राज्यों के लोग भी कश्मीर के निवासी हो सकते हैं। तीस वर्षों से निष्कासित पंडितों के परिवारों को कश्मीर में लौटना संभव हो गया है। स्त्रियों के साथ होनेवाले भेदभाव समाप्त हो गए हैं। अब कश्मीर की भाषा भी उर्दू के स्थान पर हिंदी हो गई है। अब युवा लोग सेना और पुलिस में भर्ती हो रहे हैं। सीमापार से आने वाली गोलियों का मुँहतोड़ जवाब दिया जा रहा है। अब कश्मीर वास्तव में जन्नत होने को चरितार्थ कर रहा है और इस सत्य को भी साकार कर रहा है कि 'स्वंत्रता हमारा

जन्मसिद्ध अधिकार है।'

'फिजा लौटेगी' मिश्रजी की लंबी कविता है, जिसमें कश्मीर के इतिहास और उसकी संस्कृति का विवरण है। कश्मीर से जुड़े अनेक मिथकों के माध्यम से कवि ने उसे भारतीयता से अभिन्न बताया है–

वही कश्मीर जो प्राचीन भूगोल से जुड़ा था
जहाँ झीलों का फैलाव था और
उनकी दरारों से निकलते हुए पानी की वजह से
एक सुंदर जगह उभरकर आई थी
जहाँ कश्यप मुनि ने भगवान शंकर से कहा था
कि वे अपने त्रिशूल से धरती पर चोट करें
उससे वितस्ता नदी बहने लगी थी
फिर वह सिंधु नदी में समा गई।

'आतंक के खिलाफ' की अधिकांश कविताएँ द्वैतमूलक हैं। कवि सौंदर्य को कुरूपता के बरक्स देखते हैं। पहले तो 370 धारा के प्रभावों की कुत्सित और भयावह तस्वीर सामने लाते हैं फिर 370 के हटाए जाने पर उसके प्रभावों को साझा संस्कृति के जश्न से आनंदमय होने की कल्पना करते हैं और आश्वस्त होते हैं कि 'अब कश्मीर में फिर से फिजा लौटेगी।'

इस संग्रह की कविताओं में इंसानियत शब्द अनेक बाद प्रयुक्त हुआ है। जैसे हम इस सृष्टि से उसके कर्ता ईश्वर को पहचान लेते हैं उसी प्रकार रचना से रचयिता को। कवि की मानसिक बुनावट में मानवता रचा-बसा है। यह मानवतावाद कोई आदर्शवादी यूटोपिय नहीं है बल्कि आतंकवाद के अत्याचारों से प्रताड़ित तथा पीड़ित के भोगे हुए यथार्थ के प्रति मानवीय करुणा की गहन संवेदना है। यही कारण है कि मानवाधिकार के नाम पर सियासत करने वालों पर कवि अत्यंत आक्रोशित है–

संसार के लोग बहुत अजीब हैं
उनकी मनुष्यता की/परिभाषाएँ समझ से बाहर हैं
उन्हें यह नहीं दिखता जब 370 कश्मीर में थी
तब आइसिस के झंडे आसमान में फहराते थे
1990 में नरसंहार हुआ
उन लोगों का केवल
इसलिए कि वे मुस्लिम नहीं थे। ('सियासत' से)

मानवीयता की करुणा से आर्द्र कवि की आँखें उस सीरिया के शरणार्थी आलैन कुर्दी को खोजती हैं, जिसकी समुद्र की लहरों के किनारे लेटी हुई मृत देह मनुष्यता को धिक्कारती है। कुछ ऐसा ही दर्द कवि के मन को बार-बार दंशित करता है जब विभाजन के समय रेलों में केवल लाशें ही लाशें भरी पड़ी थीं। कवि का मानना है कि वास्तव में ऐसी अमानवीय घटनाएँ किसी देश की संस्कृति की टूटन को दर्शाती हैं–

हर देश की अपनी संस्कृति
जब टूटने लगती है

तब आँख बंद कर देती है
एक बड़ा हादसा होता है, सारे दृश्य पता नहीं
किस आकाश में खो जाते हैं
धरती रोने लगती है
दु:खों का पहाड़ बड़ा होने लगता है
आदमी बेघर हो जाता है
समुद्र के किनारे डूबता हुआ बच्चा
किस तरह मर रहा है। ('विभाजन का भूगोल' से)

धारा 370 लगे रहने पर जो इंसानियत मृत हो चुकी थी। वही इंसानियत उसके हट जाने पर पुनर्जीवित हो गई है। इस इंसानियत के पुनर्आगमन की वांछा 'आतंक के खिलाफ' की लगभग सभी कविताओं में अनेकश: अभिव्यक्त हुई है। इंसानियत का अमन और शांति से गहरा नाता है। अत: कवि ने कश्मीर में अमनचैन की बेहाली की कामना की और संकल्प लिया है–

अब कश्मीर में हमें
इसी जम्हूरियत और
इसी कश्मीरियत की रचना कर
नए युग का आरंभ करना है। (नया कश्मीर)

कवि मिश्रजी अपनी रचनाओं में अपनी बेबाक अभिव्यक्तियों के लिए ख्यात हैं। चाहे अलगाववादियों की कुटिल, कुचक्री और कलुष चालें हो अथवा भारत के नेताओं का बेवजह विरोधी अभियान, कवि ने उन पर अपना सीधा निशाना साधा है–

क्या 370 हटाकर हमारी सरकार ने
काई बहुत बड़ा गुनाह कर दिया है
जिससे संसार के मानवाधिकार वाले लोग
पाकिस्तान की सरकार और
हमारे सारे सेक्यूलर नेता दु:ख में डूब गए हैं
यह कैसा देश है जहाँ इस मुल्क में रहकर भी यहाँ के नेता अपने वतन के लिए नहीं हैं। (वतन के लिए)

कवि ने अमेरिका के मानवाधिकार संगठन से सीधी मुठभेड़ की है–

मैं अमेरिका के
मानवाधिकार संगठन से जान सकता हूँ
उन्हें कश्मीर के मुसलमानों की
इतनी फिक्र क्यों हैं?
वे इस पर बहस कर रहे हैं कि भारत में
मुसलमानों को प्रताड़ित किया जा रहा है
या वहाँ जो पाक के एजेंट बैठे हैं
वे कश्मीर में मानवाधिकारों की आड़ में
पाक की सियासत चला रहे हैं

धिक्कार है इन विश्व संगठनों पर (सच की आँख से)

कितने लोगों में ऐसा साहस दिखाई देता है केवल साहित्यकार ही ऐसा साहस कर सकता है जिसके कलम की ताकत तलवार को भी मात दे देती है। इस संग्रह की कविताओं में मिश्रजी ने भारत-पाक विभाजन की विडंबनाओं को अतिरेक के साथ पढ़ा है। कवि में संवेदनाओं के साथ- साथ विचारों की प्रौढ़ता है। उन्होंने कश्मीर के संपूर्ण इतिहास के परिप्रेक्ष्य में कश्मीरियत की पहचान की है जो धारा 370 हटाने के पश्चात् साकार हुई है और जिसके कारण नए भारत के स्वप्न को पूरा करने का रास्ता साफ हो गया है। इस संग्रह में कवि ने समाज और राजनीति की चुनौतियों का खुलकर सामना किया है। यह पुस्तक सुप्त नागरिकों को जगाती है; उनकी चेतना को झकझोरती है। कार्लयुंग के शब्दों में कहें कि वर्तमान में समाज में फैली असंगति को कोई कवि, नेता या मसीहा ही दूर करता है तो मानना होगा कि इस स्थिति में उसका 'सामूहिक अचेतन' क्रियाशील रहता है। कुशलता से होने के अर्थ में मिश्र जी का 'सामूहिक अचेतन' भी उसी प्रकार जाग्रत हुआ है तभी वे प्रत्येक कश्मीरी सामाजिक के मन के 'आर्केटाइप' को अपनी कविता के माध्यम से संप्रेषित करने में सफल हुए हैं।

सेवानिवृत्त स्नातकोत्तर प्राचार्य

650, **नेपियर टाउन, भँवरताल पानी की टंकी के सामने**

जबलपुर (म॰प्र॰) 482001

ईमेल- pawanknisha@gmail.com

मो॰ 9425386234

द्विवेदीयुगीन अनूदित उपन्यासों में नारी-जीवन और संघर्ष

डॉ॰ इंदुबाला शर्मा
शोध निर्देशिका, पूर्व व्याख्याता हिंदी
राज॰पी॰जी॰ महाविद्यालय, दौसा (राजस्थान)
गणपतसिंह
शोधार्थी, हिंदी विभाग, राज॰ विश्वविद्यालय, जयपुर

उपन्यास ही वह विधा है, जो समाज के प्रत्येक रूप को यथार्थ के धरातल पर लाता है। रामदरश मिश्र कहते हैं, 'उपन्यास कोई हल्की-फुलकी विधा नहीं है, जो संभव असंभव घटनाओं और चटकीले-भड़कीले प्रसंगों की अवतारणा करती चलने वाली कथा के माध्यम से पाठकों का मनोरंजन करे। उपन्यास की वास्तविक शक्ति महान है, इसका उद्देश्य बड़ा है।'[1]

हिंदी में मौलिक और अनूदित उपन्यासों का क्षेत्र विशाल है। मौलिक उपन्यासों के लिए भूमि तैयार करने में अनूदित उपन्यासों का बड़ा योगदान रहा। द्विवेदीजी स्वयं अनुवाद के पक्षधर थे। उस युग में द्विवेदीजी हिंदीभाषा को प्रतिष्ठित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे थे और इसके लिए वे स्वयं अनुवाद करते और अन्य लोगों को भी इस हेतु प्रेरित कर रहे थे। एक तरह से दूसरे साहित्य में वर्णित विभिन्न सामाजिक पहलू यथा वर्गसंघर्ष, नारी-चेतना, सामाजिक चेतना आदि को लोगों के सामने लाने का प्रयास कर रहे थे। उन्होंने कानपुर में संपन्न तेहरवें हिंदी सम्मेलन में भाषण देते हुए कहा था-'जो समर्थ हैं और जो अँग्रेजीदाँ बनकर, अनेक बातों में, अँग्रेजी की नकल करना ही अपना परम धर्म समझते है, उनको कृपा करके किसी तरह जगा दीजिए। उन्हें अपने साहित्य की उन्नति से होनेवाले लाभ बता दीजिए और उनको इस बात की प्रेरणा दीजिए कि वे अँग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के आदरणीय ग्रंथों का अनुवाद करके अपनी भाषा के साहित्य की वृद्धि करें।'[2]

द्विवेदीजी द्वारा किए गए महान प्रयासों से बांग्ला और अँग्रेजी से अनेक उपन्यास हिंदी में अनूदित हुए। बांग्ला से जो उपन्यास हिंदी में अनूदित हुए उनमें बंकिमचंद्र चटर्जी के उपन्यास महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। चटर्जी के उपन्यासों का अनुवाद प्रतापनारायण मिश्र ने 'कपाल-कुंडला' (1901), गदाधर सिंह ने 'दुर्गेशनंदिनी' (1905), हरिदास वैद्य ने 'राजसिंह' (1918), गुलजारीलाल चतुर्वेदी ने 'विषवृक्ष' (1915), अक्षयवट मिश्र ने 'देवी चौधरानी' (1913) नाम से किया। रूपनारायण पांडेय ने टैगोर के उपन्यास 'आँख की किरकिरी' (1902) एवं जनार्दन झा ने 'राजर्षि' का अनुवाद किया। जनार्दन झा ने रमेशचंद्र दत्त के माधवी-कंकण का अनुवाद 1912 में किया । उपन्यास सम्राट् प्रेमचंद ने अपने उर्दू उपन्यास 'बाजारे हुस्न का अनुवाद 'सेवासदन' (1918) नाम से किया। डॉ॰ नगेंद्र अपने इतिहास ग्रंथ 'हिंदी साहित्य के इतिहास' ग्रंथ में द्विवेदीयुगीन अनूदित उपन्यासों की चर्चा करते हुए लिखते हैं-'आलोच्य युग में अँग्रेजी और बांग्ला से बहुत से उपन्यास अनूदित हुए। उदाहरणार्थ गंगाप्रसाद गुप्त ने रेनाल्ड के 'लब्ज ऑफ द हेयर'

 ISSN 0975-735X

का 'रंगमहल' (1904), जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' ने डिफो के 'रॉबिंसन क्रूसो' का इसी नाम से, महावीरप्रसाद पोद्दार ने स्टो के 'अंकल टॉम्स केबिन' का 'टॉम काका की कुटिया' नाम से अनुवाद किया।'[3]

प्रत्येक उपन्यास के निर्माण के पीछे सामाजिक जीवन के उद्देश्य होते हैं। द्विवेदीयुगीन सभी उपन्यासों में सामाजिक जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति होती दिखाई देती है। सभी सामाजिक पहलुओं को प्रमुखता से उठाते हैं ये उपन्यास। सामाजिक पहलुओं में नारी-संघर्ष का स्वर इन उपन्यासों में दिखाई पड़ता है।

रमेशचंद्र दत्त कृत एवं जनार्दन झा द्वारा अनूदित 'माधवी कंकण' उपन्यास की पृष्ठभूमि सम्राट शाहजहाँ का शासनकाल है। औरंगजेब द्वारा कपटपूर्ण तरीके से शासन प्राप्त करने की घटनाओं को लेकर इस उपन्यास की रचना हुई है। रमेशचंद्र दत्त ने इस उपन्यास में नारी-व्यथा को स्वर दिया है। एक जगह वे वर्णन करते हुए कहते हैं, 'पति से पतिव्रता नारी किस चीज की अपेक्षा करती है! प्रेम की भिक्षा के सिवाय उसे मांगने को और क्या है? प्रेमलता की भांति वह दोनों पाँव पकड़ लेती है। वह बोलती है प्यार देकर उसे संजीवित रखो, कहीं वह मुरझा न जाय। अपना सब कुछ त्यागकर वह तुम्हारे पास आई है, तुम्हारे सुख में वह सुखी होना चाहती है, दुःख में वह दुखी होना चाहती है। तुम्हारा साया उसे मिले, यही उसकी प्रार्थना है। जितने दिन पति के प्राण हैं यही उसकी भिक्षा है। प्राण का अंत होने पर पति के चरण पकड़ पति के मुँह को देखती हुई वह प्राण त्याग देगी, इसके सिवाय सती की दूसरी कौनसी तमन्ना हो सकती है?'[4]

तत्कालीन समाज में सती-प्रथा का कितना भयावह रूप सामने था, यह उक्त कथन से साफ नजर आता है। यूँ लगता है जैसे नारी का जीवन मात्र जन्म और मृत्यु के बीच पीसकर रह गया हो। नारी का जो रूप पूर्व में था, वह इस युग में आकर शिथिल होता दिखाई पड़ता है।

बंकिमचंद्र चटर्जी द्वारा रचित 'कपाल कुंडला' को 'मृण्मयी' नाम से भी जाना जाता है। इसका अनुवाद प्रतापनारायण मिश्र ने हिंदी में किया। यह उपन्यास एक ऐसे किरदार कपाल-कुंडला नाम की स्त्री पर आधारित है, जिसने अपने प्रेम का बलिदान किया। बंकिमचंद्र ने इस उपन्यास में स्त्री चरित को अपनी पृष्टभूमि में रखा है। बंकिमचंद्र कपाल-कुंडला के विषय में लिखते हुए कहते है, 'कपाल-कुंडला दिन-भर उसी छद्मवेशी ब्राह्मण के विचार में मग्न रही कि उससे मिलना उचित है या नहीं! एक पतिव्रता स्त्री के लिए निर्जन वन में परपुरुष से भेंट करना कहाँ तक उचित है? यह विचार कर उसके मन में कुछ हिचकिचाहट सी थी। फिर उसका इरादा इस संबंध में पक्का हो गया।'[5] कपाल कुंडला के मन में उठे द्वंद्व को बड़ी ही सफलता के साथ बंकिमचंद्र द्वारा सामने लाया गया। इस प्रकार कपाल-कुंडला में स्त्री की अभिव्यक्ति को स्वर मिला है। कपाल-कुंडला का अपनी स्वतंत्रता से प्रेम इस उपन्यास में दिखाई देता है।

'देवी चौधरानी' चटर्जी द्वारा रचित उपन्यास है। इसका अनुवाद अक्षयवट मिश्र ने किया है। इस उपन्यास में बंकिमचंद्र ने भारतीय स्त्रियों की दुर्दशा को जीवंत रूप दिया है। प्रफुल्ल एक गरीब लड़की है, जिसका विवाह सुखी-संपन्न परिवार में होता है। गरीब परिवार की होने के कारण उसे घर से निकल दिया जाता है और कहानी में अंत तक वह संघर्ष करती हुई नजर आती है। चटर्जी ने एक जगह वर्णन करते हुए लिखा है, 'सवेरा होने पर प्रफुल्ल जंगल में इधर-उधर घूमने लगी। बहार निकलने की अभी भी हिम्मत नहीं होती थी। उसने देखा जंगल में एक स्पष्ट

पगडंडी चली गई है, तब इधर अवश्य कोई रहता होगा। प्रफुल्ल उधर ही चली। घर लौटने में डरती थी, क्योंकि डाकू फिर से उठा ले जा सकते थे। बाघ भालू खा ले तो भी डाकुओं के हाथ पड़ने से तो अच्छा ही हो।'[6] स्त्रियों के साथ होनेवाले क्रूरतापूर्ण व्यवहार को इस उपन्यास में चित्रित किया गया है। इतना ही नहीं, कालांतर में प्रफुल्ल डाकुओं के चंगुल में पड़कर डाकू बन जाती है, फिर भी गरीब और निस्सहायों के प्रति उसका व्यवहार दयापूर्ण रहता है। इस उपन्यास में समाज के प्रति स्त्री के कर्तव्यों और मजबूत इरादों को प्रफुल्ल जैसे चरित्र के माध्यम से उकेरा गया है।

बंकिमचंद्र चटर्जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'विषवृक्ष' का हिंदी अनुवाद गुलजारीलाल नंदा ने किया। यह उपन्यास नारी की अंतर्वेदना पर आधारित है। उपन्यास की नायिका कुंद नगेंद्र से कहती है, 'ऐसा न सोचना! मैंने जो कहा, वह मन के आवेग से कहा है। तुम्हारे आने से पहले ही मैंने तय कर लिया था कि तुम्हें देखकर मरूँगी, मन ही मन तय कर लिया था कि यदि दीदी कभी लौटकर आये तो तुम्हें उनको सौंपकर मरूँगी। अब उनके सुख की रह में काँटा बनकर न रहूँगी। मैंने मरना ही तय किया था फिर भी तुम्हें देखकर मरने की मेरी इच्छा नहीं होती।'[7] अपने अंत समय में भी कुंद के मन में नगेंद्र के लिए त्याग है। बड़े ही प्रभावशाली ढंग से नारी की अंतर्वेदना और उसकी शक्तिमत्ता को चटर्जी ने इस उपन्यास में अभिव्यक्त किया है।

हरिदास वैद्य द्वारा अनूदित 'राजसिंह' चटर्जी का महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जो राजस्थान के राजपूतों की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। महाराणा राजसिंह औरंगजेब के समकालीन थे। चटर्जी ने इस उपन्यास में तत्कालीन नारी की व्यथा को अपने शब्दों में पिरोया है। नारी की स्थिति का चित्रण करते हुए चटर्जी लिखते हैं, 'यूँ तो औरंगजेब की अनेक बेगमें थीं। नियमानुसार उनका कोई संबंध न था, अनेक वेतनभोगी भी थीं। पर बादशाह जिससे सर्वप्रथम विवाह करता था, वही पटरानी होती थी। उस समय तक राजपूतों की कन्या से विवाह-प्रथा प्रचलित हो चुकी थी। इसी कारण रजा की पटरानी जोधपुरी बेगम थी। पटरानी होने के बावजूद जोधपुरी बेगम रजा की प्रिय न थी। प्रिय तो थी उदयपुरी बेगम, हालाँकि उदयपुर से उसका संबंध न था। वह एशिया से दूर पश्चिम प्रांत के जार्जिया की रहने वाली थी। एक व्यापारी द्वारा दारा ने उसके रूप से आकर्षित होकर उसे खरीद लिया था। जब दारा औरंगजेब द्वारा पराजित हुआ तो राज्य सहित यह बेगम भी उसे प्राप्त हुई। उसने रानी उदयपुरी को अर्धांगिनी बना लिया।'[8] इस उपन्यास में तत्कालीन स्त्री मात्र भोग की वस्तु दिखाई पड़ती है। औरंगजेब के शासन में स्वयं बादशाह द्वारा वेतन पर बेगम रखना, उस दौर की स्त्री के अपमान की पराकाष्ठा को इंगित करता है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' जैसी संस्कृति भी धूमिल होती दिखाई पड़ती है।

बंकिमचंद्र चटर्जी द्वारा रचित 'दुर्गेशनंदिनी' का अनुवाद गदाधरसिंह ने किया। यह उपन्यास 16वीं शताब्दी के उड़ीसा को केंद्र में रखकर मुगलों और पठानों के आपसी संघर्ष की पृष्ठभूमि में रचित है। यह उपन्यास मुगल जनरल जगतसिंह, बंगाली सामंत पुत्री तिलोत्तमा एवं विद्रोही पठान की पुत्री आयशा के मध्य त्रिकोणीय प्रेम की कहानी है। स्त्री-अस्मिता को स्वर देता यह उपन्यास एक रोमानी उपन्यास है। एक तरफ तिलोत्तमा का अद्‌भुत प्रेम है तो दूसरी और आयशा का अद्‌भुत त्याग। चटर्जी ने प्रेम और त्याग को उसकी पराकाष्ठा तक पहुँचाया है। वे वर्णन करते हैं, 'जिस समय राजपुत्र आकर तिलोत्तमा की शय्या के पास खड़े हुए, उस समय तिलोत्तमा की आँखें मुँदी

हुई थीं। अभिराम स्वामी ने पुकारकर कहा—'तिलोत्तमा, राजकुमार जगतसिंह आए हैं।' तिलोत्तमा ने आँखें खोलकर जगतसिंह की तरफ देखा। वह दृष्टि कोमल, स्नेहव्यंजक थी। तिरस्कार लेशमात्र भी उसमें नहीं था। तिलोत्तमा ने एक बार भर आँख देखकर निगाह नीची कर ली। देखते-देखते आँखों से अश्रु की धारा बह चली। राजकुमार भी शांत न रह सके। लज्जा दूर चली गई। तिलोत्तमा के पैरों के पास बैठकर नीरव आँसुओं से उसकी देहलता को सींचने लगे।'[9]

कितना अद्‌भुत और निश्चल प्रेम है, जिसने मौन रहकर भी सर्वस्व प्रकट कर दिया। दूसरी और आयशा का त्याग, जिसने समूचे नारी-जगत को गर्वित महसूस कराया। चटर्जी ने आयशा के चरित्र को गरिमामय बना दिया। वे लिखते हैं—'आयशा खिड़की पर खड़ी बहुत देर तक विचार करती रही। उसने अपनी उँगली से अँगूठी निकाली। उसमें जहर भरा हुआ था। एक बार मन में हुआ कि इसे पीकर समूची तृष्णा का निवारण कर लूँ। फिर सोचा—क्या इसी कार्य के लिए भगवान ने मुझे संसार में भेजा था? यदि इस यंत्रणा को न सह सकी तो व्यर्थ है मेरा नारी जन्म। भला जगतसिंह सुनकर क्या कहेंगे?'[10] कितना अद्‌भुत वर्णन है चटर्जी का। उन्होंने स्त्री के दु:ख, प्रेम, त्याग को स्वर देकर हिंदी को अपना कृतज्ञ बना लिया।

रवींद्रनाथ टैगोर के प्रसिद्ध बांग्ला उपन्यास 'चोखेर बाली' का हिंदी में अनुवाद रूपनारायण पांडेय ने 'आँख की किरकिरी' नाम से किया। यह उपन्यास एक विधवा नारी पर धर्म और समाज के नाम पर होनेवाले अत्याचारों का वर्णन करता है। इस उपन्यास का प्रमुख किरदार विनोदिनी है, जो युवा विधवा है। विनोदिनी समाज के दुर्व्यवहार के कारण नारकीय जिंदगी जीने को मजबूर हो जाती है। जीवन के ऐसे मोड़ पर भी वह बिहारी में अपना वजूद तलाश करती है। विनोदिनी कहती है, 'गाँव में मेरे लिए जगह न रह गई। दुबारा मैंने तुम्हें बेहद तलाशा कि तुम्हारा आदेश लूँ, पर तुमको पा न सकी। मेरी खुली चिट्ठी तुम्हारे यहाँ से लाकर मुझे देते हुए महेंद्र ने धोखा दिया। मैंने समझा तुमने मुझे एकबारगी त्याग दिया। इसके बाद मैं बिलकुल नष्ट हो सकती थी, मगर पता नहीं तुममें क्या सिफ्त है, तुम दूर रहकर भी बचा सकते हो। मैंने दिल में तुम्हें जगह दी है, इसी से पवित्र रह सकी। कभी तुमने मुझे ठुकराकर अपना जो परिचय दिया, तुम्हारा वही कठिन परिचय सख्त सोने की तरह, ठोस मणि की तरह मेरे मन में है, उसने मुझे मूल्यवान बनाया है। देवता! तुम्हारे पैर छूकर कहती हूँ, वह मूल्य नष्ट नहीं हुआ है।'[11] उपन्यास के अंत में जिस समाज को विनोदिनी अपना दुश्मन मानती थी, वही समाज सभी प्रकार के अपराधों से विनोदिनी को मुक्त कर देता है। यह उपन्यास मध्यमवर्गीय नारी की मन:स्थिति को अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

अँग्रेजी से भी बहुत से उपन्यास हिंदी में अनूदित हुए। हेरियर बीचर स्टो कृत 'अंकल टॉम्स केबिन' का अनुवाद महावीरप्रसाद पोद्दार ने 'टॉम काका की कुटिया' नाम से किया। इस उपन्यास ने दुनिया को हिलाकर रख दिया। इस उपन्यास ने अमेरिका में प्रचलित दास-प्रथा को जड़ से उखाड़ फेंका। दास-कार्य के लिए न केवन पुरुष अपितु बच्चे, महिलाएँ सभी की माँग थी। यह उपन्यास स्त्री के प्रति हुए अत्याचारों को भी प्रमुखता से उकेरता है। महावीरप्रसाद पोद्दार एक जगह वर्णन करते हैं, 'बहुतेरे दास व्यवसायी जरा सी भावुकता में सारा खेल बिगड़ देते हैं। सच कहता हूँ उन्हें इससे बड़ा नुकसान उठाना पड़ता है। तुम्हारी कसम! चाल से काम न लेने की वजह से अर्लिंस में ऐसे ही एक व्यापारी के बहुत से रुपए मिट्टी में मिल गए। उसने एक औरत खरीदी थी। उसके एक छोटा सा लड़का था। लड़का दूसरे के हाथ बिका था। खरीददार ने लड़के

को औरत की गोद से खींचकर फेंक दिया और उसकी मुश्कें कसकर घर ले गया। इसी से वह रो-रोकर पागल हो गई और आखिर में मर गई।'[12] अमेरिका जैसे देश में नारी की ऐसी स्थिति उस दौर की भयानकता को दिखाती है। उपन्यास में एक अन्य जगह नारी के साथ हुई क्रूरता का वर्णन इस प्रकार है–'अमेरिका में और जो बहुत से गोरे अँग्रेज सौदागर थे, वे सुंदर दासियों के गर्भ से लड़के लड़की पैदा करके बाजार में उन्हें ऊँचे दामों में बेच डालते थे। उन पापी, कलंकी गोरे अँग्रेज सौदागरों के घर इन अभागी सुंदर दासियों के सतीत्व की रक्षा की कोई संभावना न रहती थी।'[13] हेरियर बीचर स्टो ने इस उपन्यास को लिखकर स्त्री-दुर्दशा को विश्वपटल पर लाकर रख दिया। महावीरप्रसाद द्विवेदी इस अनूदित उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं, 'अफ्रीका के हब्शियों को उन्होंने भेड़-बकरियों की तरह बिकवाया। उनका सर्वस्व तक हरण कर लिया गया। उनकी इज्जत-आबरू ले डाली। उनके शरीर पर हंटरों की वर्षा कराई। सैकड़ों-हजारों परिवारों का नाश करा दिया। सहस्राधिक क्या, संख्यातीत कुमारियों और कामिनियों को न इस लोक का रखा, न उस लोक का। यह सारी निर्दयता सारी अमानुषिकता अमरीका के अधिवासियों द्वारा हुई।'[14]

निष्कर्ष यह है कि द्विवेदीयुग के अनूदित उपन्यासों का लक्ष्य स्त्री-संघर्ष के स्वर को हिंदी पाठकों तक पहुँचाना है। रवींद्रनाथ टैगोर एवं बंकिमचंद्र चटर्जी जैसे उपन्यासकारों ने न केवल नारी की वेदना अपितु 'देवी चौधरानी' जैसे चरित्रों का गठन करके उसकी शक्तिमत्ता को भी अभिव्यक्त किया है। बांग्ला, अँग्रेजी साहित्य में भी नारी को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। अनूदित उपन्यासों के माध्यम से नारी की गरिमा को पहचान मिली है। नारी को मात्र 'भोग की वस्तु' से भी आगे सोचने की दृष्टि देते है। कई मायनों में ये उपन्यास हमारे लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

संदर्भ

1. हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा, रामदरश मिश्र , संस्करण 2016 पृ॰ 14
2. महावीरप्रसाद द्विवेदी रचनावली, भाग-1 पृ॰ 77-78
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ नगेंद्र, संस्करण 2016, पृ॰ 500
4. रमेशचंद्र दत्त, माधवी कंकण, संस्करण 2001, पृ॰ 71
5. कपाल-कुंडला, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय, डायमंड पॉकेट बुक्स, 2003, पृ॰ 50
6. देवी चौधरानी, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय,लाइब्रेरी बुक सेंटर संस्करण-1987, पृ॰ 29
7. विषवृक्ष, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय, संस्करण 2001, पृ॰ 124
8. राजसिंह, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय, संस्करण 2013, पृ॰ 14
9. दुर्गेशनंदिनी, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय, संस्करण 2013, पृ॰ 136
10. दुर्गेशनंदिनी, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय, संस्करण 2013, पृ॰ 140
11. आँख की किरकिरी, रवींद्रनाथ टैगोर, संस्करण 2006, पृ॰ 227
12. टॉम काका की कुटिया, महावीरप्रसाद पोद्दार, प्रथम संस्करण 1916, पृ॰14
13. वही, पृ॰ 19
14. वही, भूमिका

ग्राम व पोस्ट बगडी, तह॰ पीपलू (टोंक)

राजस्थान 304801

मो॰ 9509798023

भारतवर्ष में सन् 1857 ई॰ से पूर्व ईसाई धर्मप्रचारक और हिंदी

डॉ॰ अशोक उपाध्याय
हिंदी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली

प्रत्येक मनुष्य को अपनी स्वभाव-जनित इच्छाओं तथा अपेक्षाओं को ईश्वरादिष्ट धर्म में निहित परम सत्य का अनुसरण करने की सामर्थ्य अर्जित करने का सार्थक प्रयास करना चाहिए। दृश्यमान जगत में विद्यमान विभेद की समाप्ति हेतु समरसता, स्वतंत्रता और परस्पर सद्भावपूर्ण आनंदमय जीवन में सहायता प्रदान करने का सर्वोत्तम साधन धर्म है। धर्म सामान्य जीवन से उच्चतर एवं उच्चतम स्थिति की ओर अग्रसर होने के साथ ही इसके रूपांतरण के सत्कर्म का आदर्श भी प्रकट करता है। वास्तविक धार्मिक उपासना विभिन्न प्रकार की पीड़ाओं से ग्रस्त मानवों की कष्ट-मुक्ति के कार्यों में कर्त्तव्य-पालन का परोपकारपूर्ण संकल्प है। निष्ठुर विधि-विधान के समक्ष नतमस्तक होकर प्राकृतिक शक्तियों का आखेट बनकर जीवनयापन उचित नहीं है। हृदय की प्रबुद्धता हमारे धार्मिक अन्वेषण का स्वभाव होना चाहिए। उच्चतम आत्म-कल्याणात्मक जीवनमूल्यों की स्थापना का पुन: प्रयत्न, आत्मबोध, आत्मशोध एवं आत्मालोचन की प्रवृत्ति के विकासमान आंतरिक रूपांतरण हेतु अति आवश्यक है। अज्ञान की अधमता और आत्मोद्वार के मार्ग में व्यवधान की जड़ता से मुक्त होकर आत्मा में ईश्वरीय दीपक का अनुभव ग्रहण करते हुए ज्ञान की दशा में उन्नयन हमारा लक्ष्य होना चाहिए। सभी प्रकार के योग्य और अयोग्य मनुष्य अपना क्रूस स्वयं ही उठाकर चलने की सामर्थ्य से युक्त होते हैं। हमारे समस्त भ्रामक कृत्य, दुराचरण, निम्नस्तरीय वैचारिक वास्तविकताओं के दोष और कुप्रसिद्धि का कलंक परिलक्षित होने पर भी हमारे आचरण में निहित किसी-न-किसी प्रकार के उज्ज्वल अंश में समाहित स्वर्णरश्मि परमपिता से हमारे शाश्वत संबंध को सुरक्षित रखती हैं। हम हीन से हीनतर-हीनतम, अपवित्र तथा दुराचरणशील होते हुए भी अपने मनोलोक के अंत:स्थल में विराजमान दिव्य-ज्योति-किरण के स्वरूप में उसका सर्वव्यापी से योग अनुभव कर सकते हैं। इस दृष्टिकोण से सभी मनुष्य वर्तमान विश्व में अवतरित हुए हैं और अपने दायित्व का यथासंभव संवहन कर रहे हैं। महापुरुष का अवतरण सामान्य स्त्री-पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्रभावपूर्ण दायित्व कर्म से साध्य होने के कारण विशाल विश्व के प्रति अपना कर्त्तव्य पूर्ण करने में समर्थ हुआ है। इसकी महानता के समक्ष शेष मनुष्यों का अल्प प्रभावशाली होना स्वयं-सिद्ध है। फिर भी उन सबके द्वारा अपने लघुकाय आवासों में अपनी सीमित परिधि में अपना क्रूस धारण करके जीवन-यात्रा का सफल अवसान किया गया है। सामाजिक जीवन की उन्नति हेतु सतत् प्रयासरत अपार चेष्टा-शक्ति संयुक्त परोपकारशील पावन आत्मा का जीवंत रूपाकार महापुरुष सभी के लिए अनुकरणीय और प्रार्थनीय है। प्रत्येक युग और देश में दीन-हीन-दुखियों कष्ट-विनाश के लिए इसके द्वारा नए धर्म की स्थापना की गई है।

ईसा मसीह के अवतरण-काल में यहूदी समुदाय में 'फैरिसी' और 'सैड्यूसी' नामक

सम्प्रदाय प्रचलित थे। 'फैरिसी' संप्रदाय के अनुयायी धार्मिक यथार्थबोध की उपेक्षा करते थे। इनके आचरण में बाह्य अनुष्ठानों का विशेष महत्त्व आत्मोन्नति के मार्ग में व्यवधान बन गया था। 'सैड्यूसी' संप्रदाय का वंशगत अभिजात्य तथा संदेहवाद कार्यशीलता की अपेक्षा उत्पीड़न की स्थिति उत्पन्न करने में सहायक हो गया था। ये दोनों संप्रदाय अपनी कपट्शीलता के कारण धर्म-शक्ति से वंचित होकर अकरणीय कार्यों में संलिप्त हो गए थे। सामाजिक जीवन में विशेषाधिकार प्राप्त उच्चवर्ग के मनुष्यों की जीवन की असाधारण गतिविधियों में सहभागिता तथा जनसामान्य की अवहेलना एवं निष्क्रियता की कार्यप्रणाली लोक-उत्पीड़न की निरंतर अभिवृद्धि का कारण बन गई थी। शासन करने में दक्ष अल्पसंख्यक-समूह के व्यक्ति अपनी शक्ति से बहुसंख्यक जनसमुदाय को आक्रांत करने में सफल होते जा रहे थे। महान आत्मा ईसा मसीह द्वारा प्रवर्तित ईसाई धर्म इसी के सक्रिय प्रतिरोध का परिणाम है। इन्होंने मरियम और यूसुफ को माता-पिता के रूप में प्राप्त करके 'बेथले हम' में जन्म ग्रहण किया था। अत्याचारी राजा हिरोद के भय से यूसुफ और मरियम (मेरी) इन्हें सुरक्षापूर्ण पालन-पोषण हेतु 'यरूशलम' लाए तथा गुप्त रूप से 'नाजरथ निवासी बन गए। 'यरूशलम' पश्चिम एशिया के 'पैलेस्टाइन' (पेलेस्टिना) भूभाग में स्थित रोमन-अरब साम्राज्य के सीरिया प्रांत की प्राचीन राजधानी के रूप में विश्वविख्यात है। तीस वर्ष की अवस्था में ईसु ने 'योहान' से दीक्षा लेकर चालीस दिनों तक एक पहाड़ पर निवास करते हुए उपवास के साथ ईश्वर की प्रार्थना करके धर्म तत्त्व का बोध तथा अलौकिक ज्ञान प्राप्त किया। 'योहान' के द्वारा अपने अनुयायियों को जल छिड़ककर अपने मत में दीक्षित किया जाता था। उसके इस कार्य का व्यापक प्रभाव पड़ा और सामाजिक जीवन में उसकी प्रसिद्धि 'दीक्षा योहान' के नाम से हुई। उसकी सरलता, पवित्रता एवं स्पष्टवादिता सभी के लिए आकर्षण का केंद्र बन गई। वह मिथ्या कुलाभिमान, जात्याभिमान तथा पांडित्याभिमान का कट्टर विरोधी था। पापों के निस्तारण हेतु उसके द्वारा पश्चातापपूर्वक चित्त शुद्धि के विधान का उपदेश दिया गया और निकट भविष्य में धर्म राज्य के आगमन का शुभंस देश प्रचारित किया गया। राजा के दुराचरण का विरोध करने के कारण उसे जेल की सजा मिली और वहीं निर्ममतापूर्वक उसका प्राणांत कर दिया गया। इस प्रकार के राजकोप से भयभीत दीन-दुखी यहूदी समाज में ईसु के उपदेशों से नवजीवन का उन्नयन हुआ। इनकी लोकप्रियता में इतनी अधिक वृद्धि हुई कि 'फैरिसी', 'सैड्यूसी' तथा पुरातनपंथी पुजारी इत्यादि इनके विरुद्ध समूहबद्ध होकर शासक दल को भी इनका विरोधी बनाने में सफल हो गए। ईसु की आलोचनात्मक तीक्ष्णता शासक दल की प्रभावहीनता का सूचक होने के साथ ही उनकी क्रोधाग्नि उत्पन्न करने का महत्त्वपूर्ण कारण बन गई थी।

'गलेलिया' निवासी ईसु को परमेश्वर द्वारा यहूदियों के उद्धार हेतु भेजा गया मसीहा स्वीकार करके इतने अधिक उत्साहित थे कि उन्होंने 'यरुशलम' में इनका भव्य स्वागत यहूदियों के राजा के रूप में करने का प्रयत्न किया। इसे स्वयं ईसु ने यह घोषणा करके अस्वीकृत कर दिया कि 'मसीहा' होने के कारण उनका राज्य इस भूमि पर संभव नहीं है। सर्वोच्च पुजारी 'कैफस' अपना पद छीने जाने की आशंका से भयग्रस्त हो गया। उसने ईसु के ही अनुगामी 'जूडस' को प्रलोभन द्वारा कुचक्रतापूर्वक अपने पक्ष में लेकर इन्हें राजद्रोही तथा पाखंड प्रदर्शक पथभ्रष्टकारक आततायी सिद्ध कर दिया। इसके परिणामस्वरूप निर्दोष महात्मा 'ईसु मसीह' को

 ISSN 0975-735X

यहूदिया के शासक 'पोंटिउस-पिलाटे' द्वारा 'सलीब' या 'क्रूस' पर चढ़ाकर मृत्युदंड प्रदान करने का भयंकर कृत्य पूर्ण किया गया। इसे उचित और न्यायपूर्ण समझाने के लिए जनसमुदाय में यह असत्य और दुर्भाव भी प्रचारित हुआ कि ईसु की आत्मा दोष एवं प्रपंच से परिपूर्ण थी। इसे पवित्र मार्ग पर स्थित करने के लिए मृत्युदंड या क्रूस पर आरोहण अपरिहार्य हो गया था। ईसु जीवित रूप में भी मसीहा थे और मरणोपरांत भी मसीहा के रूप में सदैव के लिए प्रतिष्ठित हो गए। 'गुडफ्राइडे' का उपवास एवं 'ईस्टर संडे' को इनका पुनः जीवन समस्त विश्व में आस्था एवं विश्वास का धार्मिक अनुष्ठान है। सांसारिक पराभूतता, क्रूस्तापूर्ण यातना आदि के अतिरिक्त 'क्रूस' अथवा 'सलीब' का अत्यंत प्रभावेत्पादक अर्थ सिद्ध होता है भौतिक पराजय के उपयोग से आध्यात्मिक शत्रु विनाशक विजय-यात्रा। इस संसार में परोपकार हेतु पीड़ा-सहन मुक्ति का सन्मार्ग है। दिव्य-त्राता ईसु के पुनः जीवित रूप में स्वर्गारोहण कार्य ने इनके अनुयायियों के लिए भी पुनरुज्जीवन का शुभमार्ग प्रशस्त करके धार्मिक क्षेत्र में अपनी श्रेष्ठतम स्थिति सिद्ध करके समस्त लोकजीवन को आश्चर्य तथा श्रद्धा और प्रेम से परिपूर्ण कर दिया। इनके द्वारा स्वयं के बलिदान को अपने शिष्यों के पाप-कर्मों के प्रायश्चित स्वरूप में स्वीकार किया गया। ईसाई धर्म में पवित्र त्रय—परमेश्वर पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा का सिद्धांत इनके इसी आचरण का धार्मिक रूप है। मनुष्यों को अपने स्वभाव का इस धर्म के अनुसार रूपांतरण करके अज्ञानजनित अधमता—दोष और आत्मोद्धार में बाधक दशा की निश्चेष्टता से मुक्त होकर ज्ञान की अवस्था प्राप्त करना चाहिए। यही ईसु की शिक्षा के अनुसार धार्मिक अन्वेषण है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि इनके द्वितीय आगमन के अभीष्ट रूप में यह अभिमत भी प्रचलित हआ है कि ये मृतकों और जीवित मनुष्यों के संदर्भ में न्यायकर्त्ता के रूप में पाप-कर्मियों को नारकीय यातनाएँ तथा धर्मपरायणों को स्थायी स्वर्गिक आनंद प्रदान करेंगे। यह ऐसे चातुर्य-कुशल वचन थे जिनसे ईसाई धर्मगुरु किसी अन्यायपूर्ण सामाजिक प्रणाली के प्रतिजन सामान्य को प्रतिबद्ध और सहिष्णुतामय बनाने के संकल्प से अनुप्राणित होते रहे हैं। कालांतर में ईसाई धर्म की परमात्मा-संबंधी अवधारणा प्रेमानंद निमग्न पिता, कठोर न्यायकर्त्ता, गुप्तचर अधिकारी, निर्दयी शिक्षक तथा धर्माचार्य समाज के अध्यक्ष के रूप में असहज और परिवर्त्तित दृष्टिगोचर हुई है। 'विशपहेवर' द्वारा रचित गीत की निम्न पंक्तियाँ भी इस प्रकरण में पठनीय हैं—

> क्या हम लोग, जिनकी आत्माएँ आलोकित हो चुकी हैं,
> जो ज्ञान को लिए ऊँचाई पर खड़े हैं,
> रात्रि के अंधकार में भटकने वाले लोगों को
> जीवन का दीप दीखाने से इंकार कर सकते हैं?
> मुक्ति, आहामुक्ति,
> यह आनंदपूर्ण ध्वनि तब तक गूँजती रहे
> जब तक कि दूर से दूर स्थित प्रत्येक राष्ट्र
> मसीहा के नाम को न जान जाए।[1]

मालाबार तट के निवासियों में धर्म-पिता के रूप में सम्मानित 'संत टामस' 21 दिसंबर सन् 65 ई० में मद्रास के निकटवर्त्ती माइलापुर नामक स्थान पर पहुँचकर भारत में प्रविष्ट हुए। उनके द्वारा यहाँ सिरियक संप्रदाय की स्थापना की गई थी। इसी नाम के 'संत टामस मनिकीय'

ने ईसा की तीसरी शताब्दी में यहाँ पहुँचकर अभिनव ईसाई धर्म प्रचलित किया था। दक्षिण के संत 'टामस' इन्हीं के शिष्य थे। यह भी कहा जाता है कि 'टामस' नामक अर्मनी वणिक ईसा की आठवीं शताब्दी में मालाबार में व्यापार-लाभ हेतु आए और केरल की दो स्त्रियों से विवाह-संबंध करके पर्याप्त धनोपार्जन के साथ ही ईसाई धर्माचार्य बनकर धर्म-प्रचार में संलग्न हो गए। यहाँ ईसाई तभी से स्वयं को 'टामस' का शिष्य कहकर महत्त्व प्रदर्शित करते रहे हैं। यह भी जनश्रुति है कि ईसु के एक प्रधान शिष्य तीसरी शताब्दी में धर्म-प्रचार हेतु भ्रमण करते हुए भारत में भी आए थे। वैसे यह तथ्य पूर्ण तथा विश्वासपूर्ण है कि सिरीयक धर्म-प्रचारक ही सर्वप्रथम भारत में प्रविष्ट हुए थे। संभवत: 27 अथवा 28 मई 1498 ई॰ को पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा ने कालीकट के समुद्रतट पर लंगर डालकर विदेशी व्यापार-समूह के लिए भारत में व्यापार के लिए जलमार्ग का अन्वेषण करने में सफलता प्राप्त की थी। उसने कालीकट के राजा जमोरिन से भेंट की और भारत आगमन के दो मुख्य कारण—'ईसाइयों तथा मसालों की खोज' बताए जो कि परवर्त्तीकाल में धर्म-प्रचार तथा व्यापार द्वारा धनोपार्जन के मुख्य उद्‌देश्य के रूप में विदेशी व्यापारिक कंपनियों के आवश्यक उपादान के रूप में स्थिर हो गए। इनमें इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी, डच ईस्ट इंडिया कंपनी तथा फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी ने यहाँ आशातीत व्यापारिक सफलता उपार्जित करके ईसाई धर्म-प्रचार का यथासंभव प्रयत्न किया। इन सभी के द्वारा राजनीतिक प्रभुत्व-स्थापना के चातुर्यपूर्ण प्रयास भी यथाशक्ति किए गए। कालीकट के राजा जमोरिन ने विदेशी व्यवसायियों के आमंत्रण की उदारता प्रकट करते हुए पुर्तगाल के राजा को मैत्रीभाव से परस्पर मुक्त व्यापार हेतु पत्र लिखा। इसके उत्तर में कूटनीति कुशल पुर्तगाली राजा ने कालीकट को अपना उपनिवेश बनाने की घोषण के द्वारा एक विशाल जहाजी बेड़ा भेजा और अपने राज्य के व्यापारियों को यह आदेश दिया कि यथासंभव व्यापार करो, स्थानीय निवासियों को अधिक-से-अधिक संख्या में ईसाई बनाओ तथा आवश्यकतानुसार युद्ध करके अपना वर्चस्व सिद्ध करो। इसके अनुपालन में पुर्तगालियों ने सन् 1510 ई॰ में धन और तलवार के बल से गोआ में अपना किला निर्माण कर लिया। यहाँ इन्होंने हिंदुओं तथा मुसलमानों पर धर्म परिवर्तन हेतु संचालित धर्मयुद्ध की स्वार्थनीति से अत्यंत क्रूरतापूर्ण प्रहार किए।

भारतवर्ष में इनके वर्चस्व स्थापना के निहित स्वार्थ थे—व्यापार और धर्म प्रचार। पुर्तगाली आत्म-तंत्रता के अनुरूप इनके द्वारा अपने देश के विधि-विधान तथा आचार-विचार के द्वारा अपने अधिकार-क्षेत्र के ग्रामों तथा नगरों के निवासियों को प्रताड़ित करके पुर्तगाली बनने के लिए बाध्य कर दिया। ईसाई-धर्म एवं पुर्तगाल के विरुद्ध बोलने पर मनुष्यों को 'इनक्विजिशन' नियम के अंतर्गत कठोर दंड देकर इन्होंने सभी का मुँह बंद करने के क्रूर एवं घृणित कर्म द्वारा सभी को आंतकित कर दिया। गोआ के पुर्तगाली राज्यपाल ने सन् 1545 ई॰ में गर्वोन्नत स्वर में वहाँ के हिंदू और मुसलमान नागरिकों को चुनौती देकर कहा—हम एक हाथ में क्रास तथा दूसरे हाथ में धर्मरक्षक तलवार लेकर प्रविष्ट हुए हैं, जो चाहे हमारा मुकाबला कर सकता है। इसका प्रमाण आज भी गोआ के वाइसराय-गेट पर स्थित मूर्ति के रूप में स्थित है। इसमें एक भारतवासी के वक्ष-स्थल पर चढ़ा हुआ पुर्तगाली साधु भारतवर्ष की ओर तलवार से संकेत करता हुआ क्रूरतापूर्ण दायित्व-गर्व के प्रतीक-रूप में विद्यमान है। समुद्री मार्गों पर एकाधिकार होने के कारण संभवत: शताधिक वर्षपर्यंत पुर्तगाल के निवासी समस्त भारतवर्ष के व्यापारिक कार्यों में लाभ-प्राप्त

आच्छादन के गर्वोन्नत रूप में आवागमन करते रहे। इनके द्वारा यहाँ के सामाजिक जीवन को भी प्रभावित किया गया और स्त्रियों के साथ विवाह इत्यादि के द्वारा परवर्त्तीकाल में यूरेशियन संप्रदाय में समाहित एक नवीन जाति का विस्तार किया गया। पुर्तगाली भारत और यूरोप के व्यापारिक कार्यों की संपर्क-भाषा बन गई। इसका प्रभाव तत्कालीन भारतीय भाषाओं पर भी पड़ा। अनानास, पपीता, कोवी (गोभी), हुक्का, तंबाकू, कमरा, मेज, कुंजी, कमीज, अलमारी, क्रिस्तान, किरच, गमला, गारद, तौलिया, नीलाम, बिसकुट, बोतल, आलपीन, लबादा, संतरा, पादरी, पिस्तौल, पीपा, बालटी आदि शब्द हिंदी में पुर्तगाली से गृहीत होकर इसके व्यावहारिक रूप में समाविष्ट हो गए, जो कि आज भी स्थानीय शैली के साथ अपने सार्थक रूप में प्रचलित हैं। यह चिरस्मरणीय है कि ईसाई-धर्म के प्रचार हेतु आए मिशनरियों में सन् 1542 में भारत आए सेंट फ्रांसिस जेवियर' तथा इनसे कुछ अंतराल के उपरांत यहाँ आए 'सेंट नोविली' बहुत प्रसिद्ध हुए। 'सेंट फ्रांसिस जेवियर' घंटा बजाकर ग्रामों तथा नगरों में ईसाई-धर्म की पुस्तकों का वितरण करके वहाँ के निवासियों को ईसा मसीह के धर्म को स्वीकार करने के लिए धार्मिक शिक्षा देकर प्रेरित करते थे। इस प्रकार उनके द्वारा अनायास ही निरक्षर जनसमुदाय की शिक्षा का कार्य भी पूर्ण कर दिया जाता था। 'सेंट नोबिनी' हिंदू साधुओं के वेश में मस्तक पर हिंदू-तिलक धारण करके धर्म प्रचार करते थे। स्वयं को पश्चिम का ब्राह्मण घोषित करके उन्होंने यह प्रचार करने में सफलता प्राप्त की थी कि वे काल के गर्त्त में छिप गए वेदों का प्रत्यावर्त्तन करने भारत आए हैं। ब्राह्मण सेवक रखना और शुद्ध-सात्विक भोजन ग्रहण करना उनका स्वभाव था। इसके कारण उच्चवर्ग में उन्हें यथेष्ट प्रतिष्ठा तथा धर्म-प्रचार का सुलभ अवसर प्राप्त हो गया था। उनका यह नकली आडंबरपूर्ण प्रयत्न कुछ समय तक सफल रहा, किंतु वास्तविकता प्रकट होते ही जनता में इनकी अवहेलना विकसित हो गई। फ्रांसीसी और डचों ने भी अपने अधिपत्य-क्षेत्र में ईसाई धर्म के प्रचार हेतु धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था की। सन् 1706 ई० में धर्म-प्रचार के लिए डेनमार्क से भारत आए 'जीगेन बल्ग' का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। इनके द्वारा 'ट्रानक्यूबर' तथा 'सीरामपुर' में धर्म-प्रचार करने के लिए तमिल भाषा का अध्ययन किया और बाइबिल का अनुवाद इस भाषा में करने के साथ ही इसका व्याकरण एवं शब्दकोश का निर्माण किया। सन् 1719 ई० में इनकी आकस्मिक मृत्यु के उपरांत 'ग्रंडलर', 'कायरेंडर', एवं 'श्वार्ज' द्वारा इनका यथेष्ट अनुकरण करके महत्त्व अर्जित किया गया।

ब्रिटेन के व्यापार कुशल नागरिकों द्वारा सन् 1599 ई० में स्थापित 'इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी' को महारानी 'एलिजाबेथ प्रथम' के द्वारा भारत इत्यादि पूर्वी देशों में व्यापार हेतु 31 दिसंबर सन् 1600 ई० में प्रदत्त आज्ञा-पत्र के अनुसार भारत में अपने व्यापारिक कार्यक्रमों को प्रभावपूर्ण स्थायी स्वरूप प्रदान करने के लिए सन् 1911 ई० में 'मछली पट्टम्' तथा सन् 1613 ई० में 'सूरत' में अपने कारखानों का निर्माण किया गया। सूरत के कारखाने में निर्मित तंबाकू का नाम ही पुर्तगालियों की स्पर्धा में 'सुरती' के रूप में प्रसिद्ध हो गया। इन्होंने अत्यंत चातुर्यपूर्ण कौशल से अपने व्यापार विस्तार की महत्त्वाकांक्षा के वशीभूत सिद्ध करके ब्रिटिश कंपनी से संबंधित स्त्री-पुरुषों का धार्मिक शिक्षा द्वारा आध्यात्मिक विकास तथा भारतवर्ष के निवासियों में ईसाई धर्म स्वीकार करने की प्रवृत्ति जाग्रत करने के लिए ब्रिटिश प्रोटैस्टैंट मिशनरियों को आमंत्रित किया। कैथोलिक मिशनरियाँ पोप की अमोघता एवं संप्रभुता में परमविश्वास ग्रहण करते हुए संसार

में पोप को ईसा मसीह का एकमात्र प्रतिनिधि स्वीकार करने के धार्मिक सिद्धांत का दृढ़ता से पालन करती थीं। इनके धर्म-सिद्धांत में पवित्र आत्मा के संचरण की स्वीकृति पिता परमात्मा के साथ ही पुत्र परमात्मा के रूप में भी अधिगृहीत है। प्रोटैस्टैंट मतावलंबी पवित्रत्रय-परमेश्वर पिता, परमेश्वर पुत्र एवं पवित्र आत्मा के उपासक थे। ये परमात्मा एवं मानव के मध्य इंद्रियों तथा उनके अर्थों में घटित निश्चयात्मक ज्ञान को महत्त्व प्रदान करते थे। आध्यात्मिक आनंद प्राप्त करने वाले मनुष्यों को ईश्वरीय उपासना के लिए चर्च का माध्यम आवश्यक नहीं है। मनुष्य को मुक्ति की अनुभवगम्य सिद्धि अपनी श्रद्धा एवं परमेश्वर की कृपा से प्राप्त होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रोटैस्टैंट संप्रदाय ने कैथोलिक चर्च की संप्रभुता को क्षत-विक्षत करके मानवीय आत्मा में स्वयं के महत्त्व एवं व्यक्तिवाद को नवीन साधना-संदर्भ से प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय बना दिया था। इसमें 'बपतिस्मा' तथा 'यूखारिस्त' नामक धार्मिक संस्कारों के साथ नियमपूर्वक प्रवचन, भजन-कीर्त्तन और सामूहिक प्रार्थना-सभा में अपने अनन्य आधार बाइबिल का अनुशीलन मुख्य रूप से समाहित था। व्यावहारिक जीवन में इनके अपने आस्थाजन्य प्रतीक, प्रामाणिक अधिकार-संपन्न कार्यकर्त्ता एवं पवित्र पुस्तकें धर्म-साधना के उपादान थे। सन् 1614 ई० में कंपनी ने प्रोटेस्टेंट मिशनरियों की सहायता से ईसाई धर्म-प्रचार में अपना कर्त्तव्य प्रदर्शित करने के लिए भारत के निवासियों को इसका प्रशिक्षण देने का सफल प्रयत्न किया और यहाँ के कुछ व्यक्तियों को धार्मिक दीक्षा हेतु ब्रिटेन में आमंत्रित कराया। सन् 1636 ई० 'आर्कविशप लॉड' द्वारा भारतवर्ष में धर्म-प्रचार हेतु तत्पर मिशनरियों को अरबी भाषा की शिक्षा देकर भेजने के लिए ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में अरबी भाषा-विभाग का निर्माण किया गया। ईस्ट इंडिया कंपनी के संचालक मंडल द्वारा अपने आदेशपत्र सन् 1659 में इस धर्म को और अधिक मनुष्यों तक पहुँचाने तथा अधिक-से-अधिक ईसाई बनाने की आकांक्षा से भारतीय आवागमन और व्यापार-कर्म किया। कंपनी के भारतीय अधिकारियों ने भारतीय समाज की धार्मिक भावनाओं के संदर्भ में धर्मांतरण की इस नीति को अपने व्यापार-कार्य में बाधक मानकर किसी के धर्म में हस्तक्षेप के अनौचित्य का समर्थन करते हुए धार्मिक तटस्थतापूर्ण नीति का अनुसरण किया। सन् 1698 ई० के आदेश-पत्र में भारतवर्ष में कंपनी द्वारा स्थापित दुर्ग-स्थानों, सैन्यबलों एवं सुव्यवस्थित उद्योग केंद्रों में अँग्रेजी माध्यम के विद्यालय संचालित करने का आदेश दिया गया। अँग्रेजी शिक्षण का वह आदेश कालांतर में ब्रिटिश शासन के विकास के साथ निरंतर पुष्पित और पल्लवित होकर ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति का संवाहक बन गया। प्रसिद्ध समाज-सुधारक एवं शिक्षाविद् राजा राममोहन राय ने भी देश के शैक्षिक विकास हेतु अँग्रेजी तथा इसके माध्यम से पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का दृढ़तापूर्वक समर्थन किया।

ईस्ट इंडिया कंपनी के भारतीय अधिकारी ईसाई मत के समर्थक होते हुए भी भारतवासियों के धार्मिक जीवन में अनुचित रूप से प्रविष्ट ईसाई मिशनरियों द्वारा प्रलोभनपूर्ण निरंकुश धर्म-प्रचार के पक्ष में नहीं थे। पुर्तगाली मिशनरियों के छल-कपट तथा हिंसात्मक उपायों से धर्म-परिवर्तन के कारण भारतीय समाज में उत्पन्न कुख्याति से सावधान थे। वे धनोपार्जन का प्रथम दायित्व लेकर भारतवर्ष में आए थे इसलिए इनके कार्य-कलापों से जनजीवन में संभावित घृणा की भावना से अपनी अल्पमात्रा में भी व्यापारिक हानि संवहन हेतु तत्पर नहीं थे। उनमें यह भी आशंका परिव्याप्त हो गई थी कि ये धर्म-प्रचारक अपनी कुटिल स्वार्थ-नीति से उनके सत्ता-प्रयासों में बाधक होकर

स्वयं उनका स्थान ले सकते हैं। इस परिस्थिति में भी ईसाई धर्म-प्रचारक निराश नहीं हुए। इनके द्वारा भारत में ही नहीं, अपितु ब्रिटेन में भी अपने समर्थन हेतु वहाँ की संसद में सन् 1793 ई॰ में ईस्ट इंडिया कंपनी के आदेश-पत्र के पुनर्शोधन में प्रस्तुत प्रस्ताव में शिक्षा से संबंधित एक अधिनियम स्वीकृत कराने का प्रयत्न किया गया। इस अधिनियम के अनुसार ब्रिटेन की संसद का ध्यान इस विशेष एवं अनिवार्य कर्त्तव्य की ओर आकर्षित किया गया कि उसके द्वारा भारतवर्ष में सभी प्रकार के विवेकसम्मत संसाधनों के माध्यम से उचित रीति से ब्रिटिश साम्राज्य के लाभ तथा ऐश्वर्य वृद्धिकारक कार्यों का सुनिश्चय पूर्ण किया जाना चाहिए। इसे भारतवासियों के ज्ञान, धर्म एवं नैतिक विश्वासों की उन्नति के लिए सोद्देश्यतापूर्ण सार्थक उपायों को ग्रहण करने का आदेश देना चाहिए। भारतीय व्यापार से संबंधित कंपनी के संचालक सदस्यों ने इस संदर्भ में संसद के ध्यानाकर्षण हेतु यह स्पष्ट किया कि हिंदुओं के धर्मांतरण अथवा उन्हें अपेक्षाकृत अधिक ज्ञान प्रदान करने की संकल्पना उन्मत्ततापूर्ण प्रलाप सिद्ध होगी। इसके द्वारा अमेरिका में अपनी भाषा के प्रसार का दुष्परिणाम वहाँ के उपनिवेशों में हुई पराजय के रूप में स्मरण करके भारतवर्ष में इस प्रकार का अविवेकसम्मत कार्य किया जाना उचित नहीं है। सन् 1800 ई॰ में लार्ड बेलेजली ने कलकत्ता में कंपनी में कार्यरत युवकों तथा अन्य विद्यार्थियों को हिंदू-मुस्लिम विधि-व्यवस्था, भारतीय इतिहास-भूगोल, अरबी, फारसी, संस्कृत, बंगला, अँग्रेजी, हिंदी आदि की ऐच्छिक शिक्षा हेतु 'फोर्ट विलियम कॉलेज' का निर्माण कराया। डॉ॰ गिलक्राइस्ट, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, कोलब्रुक, डॉ॰ केरे, लल्लूलाल, सदल मिश्र, सैयद इंशाउल्लाह खान तथा मुंशी सदासुख लाल आदि इस कॉलेज के प्रतिष्ठित अध्यापकों द्वारा भारतीय शिक्षा-जगत् को अपना बहुमूल्य योगदान समर्पित करके गौरवान्वित करने का सफल प्रयास किया गया था। कंपनी के द्वारा ब्रिटिश कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं में दक्षता प्रदान करने के लिए ऐसा ही कॉलेज मद्रास में 'फोर्ट सेंट जार्ज' के नाम से सन् 1818 ई॰ में निर्मित किया गया था। ज्ञातव्य है कि मुंशी सदासुख लाल और लल्लूलाल की हिंदी-गद्य-रचना की भाषा को ही ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म-प्रचार हेतु उपयोगी भाषा के रूप में चयनित किया था। यही वह भाषा थी जो अँग्रेजी आवासों के कर्मचारियों, कचहरी के मुंशियों तथा कारिंदों की उर्दू अथवा हिंदुस्तानी से अलग सभी प्रकार के जनसमुदाय के द्वारा धर्म, ज्ञान, पुराण, कथा-वार्त्ता एवं भजन-कीर्तन इत्यादि में प्रचलित थी। सन् 1806 ई॰ तक धर्म-प्रचारकों के परिश्रम का फल यह हुआ कि इसमें नवीनता-संपन्न शब्दराशि का विस्तार हुआ और भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य के साथ ही खड़ीबोली गद्य के व्यापक विकास की पृष्ठभूमि अनायास ही विकसित हो गई। वाद-विवाद, भावाख्यान, तथ्यातथ्य विवेचन तथा विभिन्न प्रकार की शैलियों का आरोह-अवरोह इसमें सहज रूप से प्रवाहमान होकर खंडन-मंडन का आकर्षण बन गया। उदाहरणार्थ निम्न गद्यांश अवलोकनीय है–

'भट्ट ने पहले यह बात लिखी है कि देवताओं के कुकर्म सुकर्म हैं, क्योंकि शास्त्र ने इनको सुकर्म ठहराया है। यह सच है परंतु हमारी समझ में इन्हीं बातों से हिंदू शास्त्र झूठे ठहरते हैं। ऐसी बातों में शास्त्र के कहने का कुछ प्रमाण नहीं। जैसे चोर के कहने का प्रमाण नहीं जो चोरी करे फिर कहे मैं तो चोर नहीं। पहले अवश्य है कि शास्त्र सुधारे जाएँ और अच्छे-अच्छे प्रमाणों से यह ठहराया जाए कि यह पुस्तक ईश्वर की है तब इसके पीछे उनके कहने का प्रमाण होगा। यह निश्चय जानो कि यदि ईश्वर अवतार लेता तो ऐसा कुकर्म कभी न करता और अपनी पुस्तक में

कभी न लिखता कि कुकर्म सुकर्म है।'[2] चर्च मिशनरी सोसायटी, लंदन मिशनरी सोसायटी, वेपटिस्ट मिशनरी सोसायटी, क्रिश्चियन वर्नाक्यूलर लिटरेचर सोसायटी तथा नार्थ इंडिया बाइबिल सोसायटी आदि में सिरामपुर मिशनरी के विलियम केरे, मार्श मैन और वार्ड की लिमूर्त्ति का नाम बहुत प्रसिद्ध है। भारतवर्ष में धर्म-प्रचारार्थ विलियम केरे का आगमन सन् 1793 ई॰ में हुआ। इन्होंने सिरामपुर में वेपटिस्ट मिशन की स्थापना करके असाधारण कार्य-क्षमता तथा सहिष्णु-भाव से बाइबिल के प्रचार हेतु निरंतर परिश्रम किया। फोर्ट विलियम कॉलेज में नियुक्त होने के उपरांत इनके द्वारा कंपनी से प्रदत्त धनराशि के सदुपयोग से यह धार्मिक कार्य संपन्न करने का सफल प्रयास किया गया। इसी कॉलेज के संस्कृत एवं हिंदू धर्मशास्त्र के प्राध्यापक हेनरी टामस कोलब्रुक ने कंपनी से प्राप्त धन का व्यय करके सन् 1806 ई॰ में बाइबिल के सर्वप्रथम हिंदी अनुवाद का प्रकाशन कराने के उपरांत इसकी 400 प्रतियों को विभिन्न मिशनरियों में वितरित कराया। सीरामपुर (श्रीरामपुर) त्रिमूर्ति के द्वारा अपने सहयोगियों के साथ किया गया ईसाई धर्म-प्रचार का कार्य अन्य मिशनरी समाज की अपेक्षा अधिक उत्साहपूर्ण और उद्वेलनकारी रूप में विकसित हुआ। इनके द्वारा सन् 1800 ई॰ में मुद्रणालय का निर्माण किया गया। इसमें बाइबिल का भारतवर्ष की बहुप्रचलित मुख्य भाषाओं तथा अल्पप्रचलित स्थानीय देशी भाषाओं में अनूदित रूप प्रकाशित करने के उपरांत अनौपचारिक रूप से अन्य धार्मिक पुस्तकों के साथ अतिशय स्नेह-भाव से वितरित किया। कंपनी प्रशासन की तटस्थ नीति में भी उनकी धार्मिक भावना इन धर्म-प्रचारकों के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति से परिपूर्ण थी। अँग्रेज शासकों की जाति-विरादरी से संबंधित होने के कारण सभी प्रकार के हिंदू और मुसलमान स्वयमेव इनके प्रभावचक्र में संक्रमित होते चले जा रहे थे। अल्पकाल में ही इनका प्रचार-उत्साह अधिनायकता की चरम सीमा को स्पर्श करके हिंदू एवं मुस्लिम धर्म के विरुद्ध दुष्प्रचार में तल्लीन हो गया। इसके परिणामस्वरूप सन् 1808 ई॰ में हिंदुओं और मुसलमानों के नाम संदेश नामक पुस्तिका के द्वारा इन्होंने हिंदू एवं मुसलमानों की धार्मिक मान्यताओं तथा पैगंबर इत्यादि के प्रति निंदात्मक विचारों का प्रदर्शन करके भारतीय समाज में स्तब्धता उत्पन्न करने का प्रयास किया। इस धर्म विरोधी कृत्य का हिंदू और मुसलमानों ने निर्भीकता पूर्वक विरोध किया। यह विरोध इतना उग्र हो गया कि इसे शांत करने के लिए 'लार्ड मिंटों' को प्रेस जब्त करने के उपरांत मिशनरी प्रचारकों को अविलंब बंदी बनाकर कलकत्ता में रखना पड़ा। इसका प्रभाव भारतवर्ष में स्थित अन्य मिशनरियों पर भी पड़ा। यहाँ इस दमन प्रक्रिया का विरोध करने में असमर्थ धर्म-प्रचार मंडलियों के द्वारा ब्रिटेन में अपने पक्ष के समर्थनकर्त्ताओं के साथ सम्मिलित होकर आंदोलन प्रारंभ कर दिया गया। भारतवर्ष में तेईस वर्ष तक ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारी और व्यवसायी के रूप में कार्य करने के उपरांत ग्रेट ब्रिटेन लौटने वाले 'चार्ल्स ग्रांट' इस आंदोलन के मुख्य नेता थे। उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर मिशनरियों का पक्ष लेते हुए 'ग्रेट ब्रिटेन को एशियाई प्रजा की सामाजिक दशा पर विचार' नामक पुस्तक लिखकर सरकार के समक्ष यह प्रमाणित करने में सफलता प्राप्त की कि यूरोप के सर्वाधिक दुर्दशाग्रस्त क्षेत्रों में निश्चित रूप से सत्यनिष्ठ, विश्वासपात्र एवं शुद्ध हृदययुक्त असंख्य मनुष्य विद्यमान हैं। बंगाल में सत्यनिष्ठ और विश्वासपात्र मनुष्य अप्राप्य हैं। जीवन में संपूर्ण रूप में पवित्र आचरणपूर्ण मनुष्य प्राप्त करना असंभव हो गया है। भारतवर्ष की निवासी ईस्ट इंडिया कंपनी को प्रदत्त शक्ति अत्याचारपूर्ण प्रविधि से प्रयुक्त हो रही है अथवा अन्यायसम्मत कार्यों में व्यर्थ हो रही है। समस्त

 ISSN 0975-735X

स्थितियों में समस्त प्रकार के पदों अथवा अधिकारों का उपयोग अर्थोपार्जन के उद्देश्य से किया जाता है। सामान्य रूप से सभी को उपलब्ध होने वाला न्याय भी व्यापारिक लाभ प्रदायक वस्तु के रूप में उपार्जनशील बन गया है। भारतीय समाज के नैतिक स्तर के उच्चीकरण और पुनरुत्थान के लिए शिक्षा का प्रसार अतिआवश्यक था। इस कटु सत्य को अनदेखा करना संभव नहीं है कि तत्कालीन ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा शासित भारत में निरंतर अनैतिकता, निरक्षरता, भ्रष्टाचरण इत्यादि के कारण पतनोन्मुख सामाजिक परिस्थितियों की अभिवृद्धि हो रही थी। अतएव इस तथ्य से सहमत होना आवश्यक था कि इस दुर्दशा का यथार्थ उपचार ज्ञान का प्रसार करना है। हिंदुओं के त्रुटिपूर्ण कार्यों का मुख्य कारण इनका अज्ञान है। इन्हें इसके कारण कभी इनके द्वारा किए जा रहे त्रुटिपूर्ण कार्यों से अवगत कराने की सोद्देश्यपूर्ण व्यवस्था नहीं की गई। अत: हमारे प्रकाश एवं ज्ञान का प्रदान ही इनके लिए सर्वश्रेष्ठ उपचार स्वीकृत होना चाहिए। शिक्षा तथा ज्ञान के पुनरुद्धार के लिए चार्ल्स ग्रांट के लाभप्रद विचारों को स्वीकार करके सन् 1813 ई॰ में ईस्ट इंडिया कंपनी के आदेश-पत्र में पुनर्शोधन के द्वारा दो नवीन धाराएँ निर्मित की गईं। इनमें प्रथम धारा के अनुपालन में समस्त मिशनरी धर्म-प्रचारकों को भारतवर्ष में धर्म-प्रचार की उपलब्धता हो गई। द्वितीय धारा के अनुसार कंपनी का यह कर्त्तव्य माना गया कि वह भारत में शिक्षा की व्यवस्था करे और प्रतिवर्ष न्यूनतम एक लाख रुपया भारतीय साहित्य के पुनरुत्थान तथा ज्ञान विज्ञानों के विकास हेतु उपलब्ध कराया जाए। 'सीरामपुर' (श्री रामपुर) के प्रचारकों ने 'विलियम केरे' के माध्यम से कंपनी सरकार से प्राप्त धन से अपनी आर्थिक स्थिति की सुदृढ़ता से एकाग्रचित होकर भारतवर्ष में मिशरियों के इतिहास में अभूतपूर्व कार्य करने का उल्लास संभवत: चालीस विभिन्न प्रकार की लघु एवं दीर्घस्तरीय भाषाओं में सन् 1801 ई॰ से सन् 1832 ई॰ तक प्रकाशित ईसाई धर्म की बाइबिल आदि पुस्तकों के माध्यम से प्रकट किया। इनमें खड़ीबोली, अवधी, मगधी, उज्जैनी, उदयपुरी, जयपुरी, कन्नौजी, ब्रजभाषा, कुमायूँनी तथा गढ़वाली इत्यादि में धर्म पुस्तकों का प्रकाशन सन् 1809 ई॰ से 1826 ई॰ तक पूर्ण हुआ था। विलियम के द्वारा अनुदित एवं संपादित धर्म पुस्तकों के प्रथम संस्करणों में सन् 1809-11 ई॰ में खड़ीबोली में 'न्यूटैस्टामेंट', सन् 1818 ई॰ में बहोली तथा सन् 1818 ई॰ में 'ओल्डटैस्टामेंट', सन् 1822-32 ई॰ में ब्रजभाषा में, सन् 1815-22 ई॰ में कनौजी, सन् 1821 ई॰ में बहोली तथा सन् 1823 ई॰ में उज्जैनी में 'न्यूटेस्टामेंट' का महत्त्व सर्वविदित है। बाइबिल अनुवाद के क्षेत्र में 'हेनरी मार्टिन' का नाम विशेष चर्चित रहा है। इन्होंने सन् 1806 ई॰ में पटना के कुछ उर्दू लेखकों, लखनऊ में एक कवि, दिल्ली के 'सैयद', 'बाबिर अली' तथा मशहूर विद्वान 'मिर्जा फितरत' के सहयोग से उर्दू में अनुवाद की गई बाइबिल को सन् 1817 ई॰ में प्रकाशित कराया। यही कार्य 'मिर्जा फितरत' की योग्यता का उपयोग करके 'विलियम हंटर' ने उर्दू बाइबिल हेतु देवनागरी लिपि प्रयुक्त करके किया। इसकी निम्न पंक्तियाँ प्रमाण हेतु पठनीय हैं–

'फिर उसने अपने शार्गिदों से कहा लिहाल मैं तुमसे कहता हूँ कि अपनी जान के लिए अंदेश न करो कि हम क्या खाएँगे और न तन के लिए कि हम क्या पहनेंगे। क्यूँकि जान खुरिश से अफज़ल है और बदन पोशिश से। देखो कौवों को कि वे न बोते न दिरौ करते हैं जो खलियान और खत्ते नहीं रखते लेकिन खुदा उन्हें खिलाता है। तुम परंदों से कित्ते जियाद: बिहत्तर हो। और कौन तुममें अंदेश करने से अपने कद को एक हाथ बढ़ा सकता है।'[3] 'कलकत्ता बाइबिल

सोसायटी' के 'रेवरेंडप पाउले' ने सन् 1820 ई० में 'सेंट जान सुसमाचार, सन् 1826 ई० में 'न्यूटेस्टामेंट' और सन् 1834 ई० में 'ओल्डटेस्टामेंट' के 'हेनरी मार्टिन' की बाइबिल में उर्दू भाषा में गृहीत अरबी-फारसी की शब्दावली को संस्कृत शब्दावली के सहजतापूर्ण परिवर्तित रूप में प्रकाशित करके धर्म-प्रचार किया। 'जग तारक प्रभु ईसा मसीह का नया नियम' के अनुवाद में उन्होंने लिखा है कि 'ईसा उनके समीप आया और यह कहके बोला कि स्वर्ग और पृथ्वी पर समस्त पराक्रम मुझे दिया गया है। इस कारण तुम जाओ और समस्त लोगों को पिता और पुत्र और धर्मात्मा के नाम से स्नान करके शिष्य करो कि जो कुछ मैंने आज्ञा की है वे उन सभी को पालन करें और देखो मैं सर्वदा जगत के समाप्ति लों तुम्हारे संग हों।'[4] बेपटिस्ट मिशनरी के 'विलियम येट्स', ए० लेसली, 'जॉन पारसंस' तथा 'जॉन क्रिश्चियन' के नाम भी इस प्रकार के संशोधित बाइबिल संस्करणों के प्रकाशन हेतु भाषानुवाद की दृष्टि से प्रशंसनीय हैं। 'आगरा की नार्थ इंडिया बाइबिल सोसायटी' और 'चर्च मिशनरी सोसायटी' के साथ ही बनारस द्वारा व्यवस्थित संशोधन समिति के संपादकत्व में सन् 1849 ई० में संपूर्ण 'न्यूटेस्टामेंट' एवं सन् 1852 ई० में 'ओल्डटेस्टोमेंट' का ईसाई धर्म के प्रचारार्थ प्रकाशन किया गया।

यहाँ यह तथ्य स्मरणीय है कि सन् 1813 ई० में अँग्रेजी मिशनरी धर्म-प्रचार से प्रतिबंध समाप्त होने के साथ ही प्रशासनिक प्रोत्साहन के फलस्वरूप यहाँ के प्रचारक यह अनुमान करके प्रसन्न और अभिमान से परिपूर्ण थे कि भारतवर्ष निकट भविष्य में पूर्ण रूप से ईसाईधर्म में समाविष्ट हो जाएगा। इस कार्य में इनके मुख्य सहायक थे स्थानीय भाषाओं में बाइबिल के धर्म-प्रचारक और अँग्रेजी माध्यम के कलकत्ता स्थित 'विशप कॉलेज', 'डफ कॉलेज', त्रिचनापल्ली के एस०पी०जी० तथा विलसन आदि शिक्षण संस्थान, जिनमें विद्यार्थियों के लिए सभी विषयों की अँग्रेजी शिक्षा के साथ ही धार्मिक शिक्षा की विशेष व्यवस्था की गई थी। हिंदू धर्म की तीव्र आलोचना एवं ईसाई धर्मानुसार भारतीय जनजीवन की कष्टदायक समस्याओं के निराकरण का आश्वासन और प्रपंचशील धार्मिक स्वभाव से पूर्ण मनोमुग्धकारी हिंदी-गद्य का प्रयोग इनकी कार्य-प्रणाली का सटीक संधान था। सन् 1848 ई० में जॉनम्योर द्वारा रचित 'सतमत निरूपण' का कुछ अंश इस संदर्भ में प्रमाण हेतु पठनीय है–

'हे प्रिय हिंदुओ तुम इसके विषय में सोचो कि तुम्हारे मत में पाप के प्रायश्चित करने का ऐसा विधान है। कहीं वेदशास्त्र में परमेश्वर की पवित्रता का कुछ लेश है अथवा कहीं उनमें लिखा है कि परमेश्वर पश्चाताप करने की सामर्थ्य मनुष्य को देता है जब हिंदू अपने पाप को देख के कुछ चिंतायमान और भयमान होता है तो वह क्या करे। वह तो काम, क्रोध, लोभ, मोह में बह गया और कहीं सहायक दृष्टि नहीं आता, वरन् उसका शास्त्र उससे कहता है कि जैसा तूने किया वैसा तू पावेगा। सो वह निराश होके और अधिक पाप में डूबेगा अथवा अपना मन कठोर करके यह सोचेगा कि मैं पाप से काहे को भयमान होऊँ। मैं बुरा तो हूँ परंतु देवताओं से बुरा तो नहीं हूँ वरन् उनसे कहीं भला हूँ।'[5] यूरोपियन, यूरेशियन और भारतीयों के सहकार्य द्वारा वेप्टिस्ट मिशनरी ने सन् 1816 ई० में, चर्च मिशनरी ने सन् 1818 ई० में तथा सन् 1820 ई० में लंदन मिशनरी ने बनारस एवं उसके निकटवर्ती कस्बों, ग्रामों और जिला स्थानों को अपने धर्म-प्रचार के लिए उपयुक्त कार्य-स्थल के रूप में ग्रहण करके अभूतपूर्व सफलता अर्जित की। सीरामपुर (श्रीरामपुर) मिशनरी के हिंदुस्तानी सेना में ढोल-बजाने के साथ-साथ अच्छी तरह हिंदी समझने और बोलने

 ISSN 0975-735X

के लिए विख्यात 'विलियम स्मिथ' ने धर्म-प्रचार का ढोल भी अपने सहयोगियों के साथ मिलकर इस प्रकार बजाया कि स्त्री-पुरुष ईसा के उपदेशों के दीवाने हो गए। 'पर्किन्स', 'ल्यूपोल्ट', 'बोआज', 'लाक्रोक्स', 'ओवेन', 'बुडेन', 'फ्रेंच', 'हेवर', 'स्टुअर्ट', 'हॉर्नले', 'वॉट', इत्यादि धर्म-प्रचारकों ने भी इस कार्य का यथासंभव उन्नयन करके अपने कर्त्तव्य का पालन किया। आगरा एवं बनारस के यूरोपियन चैपलेन 'डेनियल कोरी' ने सन् 1817 ई० में हिंदी भाषी नवयुवकों के द्वारा धर्म-प्रचार-कार्य संपन्न कराया। इलाहाबाद, मिर्जापुर इत्यादि की धार्मिक सोसायटियों ने भी हिंदी में धर्म-प्रचार तथा शिक्षण-कार्य प्रारंभ किया। 'लंदन मिशनरी' के 'मैथ्यूटाक्सन एडम' सन् 1820 ई० में सन् 1830 ई० तक भारतवर्ष में धर्म-प्रचार-कार्य में संलग्न रहे। इन्होंने स्थानीयजनों की आवश्यकतानुसार अँग्रेजी-हिंदी शब्दकोश के साथ-साथ हिंदी शिक्षण की छोटी पुस्तकों का लेखन भी किया। अँग्रेजी के मिशनरी शिक्षालयों में विदेशी ज्ञान-विज्ञान और भारतीय भाषाओं की शिक्षा का व्यापक महत्त्व सन् 1813 ई० के उपरांत स्वीकृत हो गया था। हिंदीभाषी जनता की संख्या अधिक होने के कारण हिंदी-गद्य में प्रकाशित पुस्तकें सभी प्रकार के अध्ययन-अध्यापन तथा शिक्षा-प्रसार की दृष्टि से लाभदायक बन गई थीं। आगरा की 'स्कूल बुक सोसायटी' का नाम इस क्षेत्र में अत्यंत सम्मान का अधिकारी है। सन् 1839 ई० में 'मार्श मैन' द्वारा रचित 'प्राचीन इतिहास' का अनुवाद पंडित रतनलाल द्वारा 'कथासार' के शीर्षक से, सन् 1840 ई० में पंडित ओंकार भट्ट का 'भूगोलसार' और सन् 1847 ई० में पंडित बद्रीलाल द्वारा रचित 'रसायन प्रकाश' आदि को इस सोसायटी के द्वारा हिंदी-गद्य में प्रकाशित किया गया था। 'स्कूल बुक सोसायटी' द्वारा हिंदी-गद्य में प्रकाशित पुस्तकों में सन् 1846 ई० में 'पदार्थ विद्यासागर' बहुत प्रसिद्ध हुई। इन सबके द्वारा प्रस्तुत बाइबिल के अनुवादों की हिंदी-गद्य की भाषा में भी निरंतर सुधार परिलक्षित हुआ। इसमें सहज बोधगम्यता से परिपूर्ण स्थानीय शब्दावली का लोकतात्त्विक स्वरूप धर्म-प्रचार की सुविधा हेतु यथावसर प्रयुक्त हुआ है। घर-परिवार, ग्राम और जनपद की सुगम शब्दावली में ईसाई धर्म का विस्तृत गुणानुवाद प्रस्तुत करके धर्मांतरण की प्रेरणा देना इसकी सोद्देश्यतापूर्ण उपादेयता की कसौटी थी। इनकी सामान्य शिक्षा तथा विशेष ज्ञान-विज्ञान के पठन-पाठन हेतु गृहीत भाषा-शैली अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत तथा प्रभावशाली प्रतीत हुई है। खड़ीबोली हिंदी-गद्य में पाठ-लेखन तथा प्रवचन शैली के विकास में इसे सदैव साधुवादपूर्ण प्रेरक रूप में स्वीकार किया गया है।

ईसाई मिशनरियों के धर्म-परिवर्तन-कार्य की निरंतर उन्नति का महत्त्वपूर्ण कारण अँग्रेजी प्रशासन, अँग्रेजों की जाति में समावेश की आकांक्षा, ऊँची नौकरी तथा भरण-पोषण की समस्या से संबद्ध था। भाषा एवं वेशभूषा से अँग्रेज बनने के असफल प्रयास को सफल समझने के भ्रम में अनुरक्त अँग्रेजी माध्यम से शिक्षित सुरा-सुंदरीप्रिय भारतीय नवयुवक समाज सुधारकों तथा शिक्षाविदों के लिए नवीन चिंता बन गए थे। हिंदूधर्म के परित्याग की भावना उत्पन्न करने के लिए ईसाई धर्म-प्रचारकों द्वारा इसके वहिरंग पक्ष के दोषों का अतिशयोक्तिपूर्ण प्रदर्शन निम्नस्तरीय दुष्प्रचार का संवाहक बन गया था। ईस्ट-इंडिया कंपनी की राज्य विस्तार की शक्तिशाली महत्त्वाकांक्षा के साथ विकीर्ण इस धार्मिक दावानल के मोहमायामय अंधकार की प्रलापाकुल प्रवंचना की विभीषिका से हिंदू धर्म के संरक्षण एवं अभ्युत्थान के लिए राजा राममोहन राय एवं स्वामी दयानंद सरस्वती ने ब्रह्म-समाज और आर्यसमाज की स्थापना करके धार्मिक एवं सामाजिक

नवजागरण का श्रीगणेश किया।

संदर्भ

1. विश पहेवर, धर्म तुलनात्मक दृष्टि में, डॉ॰ राधाकृष्णन, राजपाल एंड संस, दिल्ली, पृ॰ 18, 19
2. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, हिंदी-गद्य शैली का विकास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 1990 वि॰, पृ॰ 26
3. मिर्जा फितरत और डब्ल्यू इंटर, न्यूटेस्टामेंट (हिंदुस्तानी), हिंदुस्तानी प्रेस, कलकत्ता, सन् 1805 ई॰, पृ॰ 287
4. विलियम पाडले, संपूर्ण न्यूटेस्टामेंट, चर्च मिशन प्रेस, कलकत्ता, सन् 1826 ई॰, पृ॰ 79
5. जॉनम्योर, सतमत निरूपण, इलाहाबाद क्रिश्चियन लिटरेरी सोसायटी, 1848 ई॰, पृ॰ 307, 308

197/199, **डॉक्टर्स कॉलोनी**
सिविल लाइंस, बरेली (उ॰प्र॰)
मो॰ 9927373723

 ISSN 0975-735X

आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा : एक समर्पित हिंदीसेवी

विद्याप्रभाकर डॉ॰ कनुप्रिया प्रचंडिया
सचिव, जैन शोध अकादमी, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)

धूप और छाँव की तरह जीवन में कभी दु:ख ज्यादा तो कभी सुख का आधिक्य होता है। जिंदगी की सोच का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि जिंदगी में जितनी अधिक समस्याएँ होती हैं, सफलताएँ भी उतनी तेजी से कदमों को चूमती हैं। बिना समस्याओं के जीवन के कोई मायने नहीं। जोहान बॉन गोथे ने कहा था–'जिस पल कोई व्यक्ति खुद को पूर्णत: समर्पित कर देता है, ईश्वर भी उसके साथ चलता है। जैसे ही आप अपने मस्तिष्क में नए विचार डालते हैं सारी ब्रह्मांडीय शक्तियाँ अनुकूल रूप में काम करती हैं।' यदि हमारे पास विश्वास, साहस, उमंग और संकल्पित मन है तो दुनिया की कोई ताकत हमें अपने पथ से विचलित नहीं कर सकती और सफलता का राजमार्ग भी यही है। जीवन बस एक दर्पण है और बाहर की दुनिया का प्रतिबिंब है। जरूरत है संतुलित जीवनशैली की। जीवनशैली के शुभ मुहूर्त पर हमारा मन उगती धूप की तरह ताजगी भरा होना चाहिए। एक साधक को कौन-सी बातें महान बनाती हैं। दरअसल, एक अच्छे और सच्चे साधक में सहानुभूति, निष्काम कर्म, आत्ममंथन, भीतरी सजगता, निडरता व मजाकिया अंदाज और अपने चयन की जिम्मेदारी का अहसास होना चाहिए। कमाल की बात यह है कि आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा में ये सभी गुण कमोवेशी विद्यमान हैं। भारत-भारती के समर्पित हिंदी साधक कर्मयोगी आचार्य मेहरोत्रा स्वामी विवेकानंद के अनुयायी हैं। आचार्य मेहरोत्रा के 'हिंदी विश्व' एवं 'विश्वव्यापी हिंदी' शृंखलाओं के अंतर्गत प्रकाशित आठ ग्रंथों का समीक्षात्मक आकलन और विश्लेषण करना हमें यहाँ अभीप्सित है।

'हिंदी-विश्व गौरव व ग्रंथ (प्रथम खंड)'[1] का लोकार्पण सोलह जून 2011 को आई॰सी॰सी॰आर॰ के सभागार, आजाद भवन इंद्रप्रस्थ एस्टेट, दिल्ली में वेदप्रताप वैदिक, कमलकिशोर गोयनका, सुरेशकुमार गोयल की उपस्थिति में संपन्न हुआ। दीर्घ अतीत से हिंदी का देश-विदेश में निरंतर हो रहा प्रसार, हिंदी उन्नायकों एवं निर्माताओं का बहुरंगी चित्रमय विवरण देश के हिंदीतर भाषी प्रदेशों के हिंदी मनीषियों और विदुषियों के उत्साहवर्धन के बहुरंगी चित्र, हिंदी की महिमा विषयक काव्य-रचनाएँ, भाषायी एकता के उद्देश्य से अनुवादों का विभिन्न भाषाओं की नागरी लिपि में प्रस्तुतीकरण, प्रत्येक रचना के साथ रचनाकार का चित्र, पता, दूरभाष, चलभाष तथा ई-मेल इत्यादि का यथासंभव उपलब्ध विवरण का प्रकाशन इस ग्रंथ की विशेषताएँ हैं। देश-विदेश के हिंदी मनीषियों एवं विदुषियों को एक मंच पर एकत्रित व संगठित करके हिंदी का विश्वव्यापी भव्य साहित्यिक भंडार निर्मित करने के उद्देश्य से भारतीय संस्कृति एवं उसकी संवाहिका हिंदी विषयक सामग्री इस समीक्ष्य ग्रंथ में संकलित हैं। इस ग्रंथ के प्रत्येक अध्याय के अंत में अतीत के प्रतिष्ठित कतिपय हिंदी उन्नायकों को श्रद्धा-सुमन अर्पित किए गए हैं। इस बहुरंगी आकर्षक ग्रंथ का शोध की उपयोगिता की दृष्टि से महनीय है।

'हिंदी-विश्वकाव्यांजलि (प्रथम खंड)'[2] का तमिलनाडु की राजधानी चेन्नै के राजभवन के दरबार हॉल में राज्यपाल डॉ॰ के॰ रोसैया गारु, बालशौरि रेड्डी के सान्निध्य में छठे विश्व हिंदी 2012 को भव्य लोकार्पण हुआ। हिंदी विश्व शृंखला के अंतर्गत देश-विदेश के लगभग सौ हिंदीप्रेमी विद्वानों-विदुषियों की भारतीय संस्कृति एवं गौरवमयी हिंदी-महिमा विषयक काव्याभिव्यक्तियों के इस विरल संकलन में दो सौ पचास काव्य रचनाएँ संगृहीत हैं। आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा रचित 'पुनः जागा है भारत हमारा' एवं 'कहो गर्व से हमारी है हिंदी' का भारत की बीस भाषाओं में अनुवाद नागरी लिपि में प्रकाशित किया गया है। प्रत्येक रचना के साथ-साथ रचनाकार का चित्र एवं संपर्क विवरण प्रकाशित करने का, राष्ट्रव्यापी भाषाविज्ञों को एक मंच पर लाने का प्रयास प्रशंस्य है। हिंदी की विकास-यात्रा एवं विभिन्न भाषाओं में परस्पर समन्वय का दिग्दर्शन हुआ है। हिंदी की सरलता, प्रांजलता एवं वैज्ञानिकता को अद्वितीय मानने वाले गणेशशंकर विद्यार्थी का मानना था कि 'विश्व के शांतिमय उत्थान में हिंदी महत्त्वपूर्ण योगदान देगी।' जापान के भाषाविद् प्रो॰ क्यूयादोई का मत था कि 'विश्व की सरलतम भाषा हिंदी, विश्व संपर्क भाषा के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है।' आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन समारोह के अवसर पर राष्ट्र संघ के महासचिव कोरिया निवासी मून ने कहा था कि 'विश्व समुदाय को परस्पर निकट लाने का काम हिंदी कर रही है।' इन्हीं भावनाओं से अनुप्राणित अभिव्यंजना इस ग्रंथ की काव्य रचनाओं में मुखर है।

'हिंदी-विश्व महाकवि गोस्वामी तुलसीदास साहित्य-शोध-समीक्षा-संदर्भकोश (प्रथम खंड)'[3] का लोकार्पण नौवें विश्व हिंदी सम्मेलन जोहांसबर्ग, दक्षिण अफ्रीका में चौबीस सितंबर 2012 को श्रीमती प्रणीत कौर, विदेश राज्यमंत्री भारत शासन द्वारा संपन्न हुआ। आचार्य निशांतकेतु, जितेंद्र वत्स की उपस्थिति उल्लेख्य रही। महाकवि गोस्वामी तुलसी प्रणीत महाकाव्य 'रामचरितमानस' विश्व में श्रेष्ठ और मान्य है। तुलसी की रचनाएँ झोपड़ी से लेकर भव्य प्रासादों तक ससम्मान गाई-बाँची जाती हैं। इस ग्रंथ में 5011 प्रविष्टियों के माध्यम से तुलसी साहित्य विषयक जिज्ञासाओं का अप्रतिम समाधान हुआ है। इटली के युवा अनुसंधित्सु एल॰पी॰ तेस्सीतोरी को इताल्वी में ही 'रामचरितमानस' व रामायण पर वर्ष 1911 में प्रो॰ पैवोलिनी के कुशल निर्देशन में फ्लोरेंस विश्वविद्यालय ने डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की। डॉ॰ तेस्सीतोरी अंतराष्ट्रीय परिदृश्य के श्रेष्ठ शोधार्थी थे। तेस्सीतोरी भारत में आकर बस गए और बत्तीस वर्ष की अल्पायु में निमोनिया के कारण नश्वर संसार को तज गए। यह ग्रंथ तेस्सीतोरी की स्मृति को समर्पित है। आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा ने स्पष्ट किया है कि हिंदी का वैश्विक काव्य 'रामचरितमानस' का शब्दभंडार विश्व के श्रेष्ठ कवियों में सर्वोच्च है। होमर के ग्रंथों में नौ हजार शब्द हैं, मिल्टन के आठ हजार, शेक्सपीयर के पंद्रह सौ एवं तुलसीदास के सोलह हजार शब्द प्रयुक्त हैं।

'हिंदी-विश्व भारतीय संस्कृति संवाहिनी सरितारएँ (प्रथम खंड)'[4] ग्रंथ का विमोचन समारोह राष्ट्रीय कवि संगम, दिल्ली के भव्य राष्ट्रीय अधिवेशन गुवाहटी (असम) में सत्रह अगस्त 2014 को जगदीश मित्तल, शंकरलाल गोयनका, विमल बजाज, रामनिरंजन गोयनका, जी॰एम॰ श्रीवास्तव, चंद्रप्रकाश पोद्दार, अशोक बत्रा तथा रजनीश मिश्र की सक्रिय भागीदारी के साथ संपन्न हुआ। भारतवर्ष में नदियों को सदा ही संस्कृति-संवाहिनी एवं जीवन-प्रदायिनी का वंदनीय संबोधन दिया गया है। नदियों के किनारे ही हमारे ऋषि-मुनियों ने गहन तपस्या की एवं भारतीय संस्कृति को समुन्नत किया। नदियों की पवित्रता एवं दिव्यतापूर्वक संरक्षण हमारा दायित्व है। हमारी संस्कृति, नदियों की

पूजा-अर्चा-आरती करके उन्हें वंदनीय मानती है। उनमें दूषित सामग्री प्रवाहित करके उनके पवित्र एवं निर्मल जल को हम प्रदूषित कर रहे हैं। नदी-विषयक बहुरंग चित्र देकर इस ग्रंथ को आकर्षक, उपयोगी और संग्रहणीय बना दिया है। समीक्षकों का कहना है कि भारत जैसे आध्यात्मिक देश के हर प्रबुद्ध नागरिक के घर पर नदियों से संबंधित पठनीय सामग्री, वंदनाओं से युक्त यह नदीय ग्रंथ होना चाहिए। नदी के तट पर ही आर्षसंस्कृति एवं कृषि संस्कृति का विकाससमान अभ्युदय होता है। ऋषियों ने तीर्थ बनाए, नदियों के तट को कृषकों ने बीजबपन किया, जहाँ अंकुरण, पल्लवन, पुष्पन और फलन जैसी उत्तरोत्तर परंपरा का श्रीगणेश हुआ।

'हिंदी विश्व काव्यांजलि (द्वितीयखंड)'5 हिंदी विश्व शृंखला का पाँचवाँ ग्रंथ है जिसका लोकार्पण जी एम॰डी॰सी॰ ऑडीटोरियन, मेमनगर, अहमदाबाद में आठ मार्च 2015 को गुजरात के तत्कालीन राज्यपाल डॉ॰ ओमप्रकाश जी कोहली द्वारा हुआ। इस समारोह में स्वामी अध्यात्मानंद जी महाराज, पी॰के॰ लहेरी की उपस्थिति उल्लेखनीय थी। इस ग्रंथ के तीन सौ छप्पन पृष्ठों में लगभग सात सौ पचास रचनाओं के माध्यम से विश्वव्यापी हिंदी के रचनाकारों को एक मंच पर एकत्रित करने का आचार्य मेहरोत्रा का यह प्रयास स्तुत्य है। प्रत्येक अध्याय के अंत में भारतीय संस्कृति एवं उन्नायकों के जीवन से पाठकगण परिचित हो सकते हैं।

'भारतीय संस्कृति-संवाहिनी विश्वव्यापी हिंदी (प्रथमखंड)'6 आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा के संपादन का तीन सौ पृष्ठीय यह छठा ग्रंथ हिंदी साहित्य वाटिका का गुलदस्ता है, जिसका विमोचन सोलह सितंबर 2016 को उमाशंकर शर्मा, परमेंद्र दशोरा, श्रीमती अजित गुप्त, माधव हाड़ा, आशीष सिसोदिया की सक्रिय उपस्थिति में मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के हिंदी विभाग के सभागार में हुआ। यह कृति भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रभाषा हिंदी-विषयक संलेख ग्रंथ है। विश्वभर के चुने हुए दिवंगत विद्वानों-विदुषियों की श्रद्धांजलियाँ एवं वर्तमान हिंदीसेवियों के प्रणम्य उद्गार आर्ष संस्कृति के निदर्शनार्थ इसके हर अध्याय के अंत में दिए गए हैं। अनेक प्रेरक प्रयंगों में भारतवर्ष के महान संतों आदि शंकराचार्य, स्वामी दयानंद सरस्वती तथा अनेकानेक हिंदी मनीषियों के प्रति विस्तृत जानकारियाँ, राष्ट्रभाषा चिंतन पर अनेक उत्कृष्ट आलेख, आचार्य मेहरोत्रा विरवित 'पुन: जागा है भारत हमारा' और 'कहो गर्व से हमारी है हिंदी' का देश-विदेश की पच्चीस भाषाओं में अनुवाद, दस विश्वहिंदी सम्मेलनों के जीवंत इतिवृत्त संग्रहणीय हैं। हिंदी को विश्वभर की संपर्क भाषा बनाने के लिए यह ग्रंथ उपादेयी है।

'रामकथा एवं मुस्लिम साहित्यकार (प्रथम खंड)'[7] नामक ग्रंथ अक्टूबर 2018 को प्रकाश में आया। इस ग्रंथ के आरंभ में आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा लिखते हैं–'भारत में हिंदू व मुस्लिम दोनों समुदायों के प्रबुद्ध मनीषी परस्पर घुल-मिल रहे थे और सांस्कृतिक समन्वय के वातावरण की अपेक्षाएँ करते हुए शांतिमय व सकारात्मक चिंतन के प्रति आकर्षित होते रहे थे। इसी तारतम्य में प्रबुद्ध मुस्लिम साहित्यकारों में भारतीय सांस्कृतिक प्रतीक 'रामकथा' एवं कृष्ण भक्ति आदि के प्रति आकर्षण बढ़ा और उन्होंने साहित्य सृजन किया। भारतवर्ष में रामकथा सदैव राजमहलों से लेकर साधारण झोपड़ियों तक आस्थायुक्त गाई जाती रही है।' दीर्घातीत से जो भी मुसलमान भारत में आकर बसे, वे मर्यादा पुरुषोत्तम राम से बहुत प्रभावित हुए हैं–इनमें कुछ महत्त्वपूर्ण हैं–अमीर खुसरो, कबीरदास, जायसी, रहीम, मुल्ला अब्दुल खादिर बदाऊँनी, याकूब खाँ। समन्वयात्मकता की दृष्टि से आधुनिक परिप्रेक्ष्य में रामकथा और मुस्लिम साहित्यकार ग्रंथ का भारत के इतिहास

में विशिष्ट स्थान है। रामकथा पर मुस्लिम साहित्य विभूतियों की रचनाएँ एवं अन्य सामग्रियाँ—वाल्मीकि कृत रामायण का फारसी से हिंदी अनुवाद का चित्ताकर्षक सचित्र संक्षिप्त वर्णन, रामकथा संबंधी उद्धरण, पहेलियाँ आदि की विपुष्ट भव्य प्रस्तुति इस ग्रंथ में प्रदृष्ट है।

'शांति प्रदायिनी संजीवनी सुमंगलकारिणी सरिताएँ [8] नामक ग्रंथ अगस्त 2019 में पाठकों के सामने आया। 'संपादकीय' में आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा लिखते हैं, 'भारतीय वैदिक संस्कृति में वर्णित कुछ प्रमुख भारतीय सरिताओं के चिंतन-मनन विषयक प्रणयन-प्रकाशन की बहुत महत्त्वपूर्ण व कल्याणकारी सामग्री ने तथा ऋषि-मुनियों, कर्मयोगियों एवं प्रतिष्ठित साहित्यकारों के प्रगाढ़-गवेषणात्मक साहित्य ने भारतीय वाड्.मय को समृद्ध बनाया है।' इस ग्रंथ से पाठक समुदाय में अपनी भारतभूमि एवं भारतीय संस्कृति के प्रति प्रबल अनुराग जाग्रत व पल्लवित होता है। अपने देश की नदियों के इन आकर्षक व उपयोगी स्वरूपों को देखकर कौन राष्ट्रप्रेमी आनंदित न होगा। निश्चित ही हिंदी वाड्.मय के विरल, शोधपरक, बहुरंगी संजीवनी सरिताएँ विषयक ग्रंथ की उपोगिता प्रत्येक परिवार व संस्थान के पुस्तकालय की शोभा बढ़ाने में सक्षम है।

इस प्रकार हिंदी अनुरागी, समर्पित हिंदीसेवी, निष्ठावान राष्ट्रप्रेमी, स्वामी विवेकानंद के अनुयायी आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा की शाश्वत हिंदी चिंतनधारा का प्रवाह दर्शाती उक्त आठ कृतियाँ भारत-भारती को समर्पित हैं। आचार्य मेहरोत्रा के श्रमसाध्य, स्फूर्तिवान योजनाबद्ध शैली के अभिदर्शन इन ग्रंथों में भलीभाँति होते हैं। आचार्य मेहरोत्रा के प्रकाशनाधीन ग्रंथ हैं—'हिंदी-विश्व-गौरव ग्रंथ (द्वितीय खंड)', 'हिंदी विश्व भारतीय अध्यात्म विद्या (प्रथम खंड)', 'विश्वव्यापी-हिंदी वसुधैव कुटुंबकम्।' प्रत्येक मनुष्य का अपना-अपना भावनालोक और कर्मक्षेत्र होता है, जिसका सृजन वह अपनी प्रतिभा और उदात्त भावनाओं के मानक के अनुसार करता है। वस्तुत: आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा ने भारत और भारत-सुता हिंदी की भावना को न केवल जिया है अपितु उसके प्रचार-प्रसार में अपना महनीय योगदान दिया है।

संदर्भ

1. आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा, हिंदी विश्व गौरव ग्रंथ (प्रथमखंड), कर्मण्य तपोभूमि सेवा न्यास प्रकाशन, ग्वालियर, पृ॰ 254
2. आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा, हिंदी विश्व काव्यांजलि (प्रथम खंड), पृ॰ 352
3. आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा, महाकवि गोस्वामी तुलसीदास साहित्य-शोध-समीक्षा-संदर्भ कोश, पृ॰ 225
4. आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा, भारतीय संस्कृति-संवाहिनी सरिताएँ (प्रथमखंड), पृ॰ 334
5. आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा, हिंदी विश्व काव्यांजलि (द्वितीय खंड), पृ॰ 354
6. आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा, भारतीय संस्कृति-संवाहिनी विश्वव्यापी हिंदी (प्रथम खंड), पृ॰ 298
7. आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा, रामकथा एवं मुस्लिम साहित्यकार (प्रथम खंड), पृ॰ 345
8. आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा, शांति प्रदायिनी संजीवनी सुमंगलकारिणी सरिताएँ, पृ॰ 176

मंगलकलश
394, **सर्वोदयनगर**
आगरा रोड, अलीगढ़-202001 (**उ॰प्र॰**)
चलभाष-9897144022

डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया के निबंध : निकष पर

डॉ॰ कृष्णगोपाल मिश्र
प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
शासकीय नर्मदा स्नातकेनदर महाविद्यालय, होशंगाबाद (म॰प्र॰)

निबंध गद्य साहित्य की उत्कृष्ट विधा है क्योंकि निबंध में साहित्य की विभिन्न विधाओं की एकान्वित एवं जीवंत प्रस्तुति मिलती है। निबंध में काव्य की सरसता, रमणीयता एवं भाव- प्रवणता के साथ-साथ कहीं कथासाहित्य-सी जिज्ञासापूर्ण आनंद प्रसविनी रसात्मकता, कहीं नाट्य-रचना जैसी अभिनय-संयुक्त संवादात्मकता, कहीं जीवनी-साहित्य सदृश व्यक्तित्व की विवृत्तिजनित निजता एवं आत्मविश्लेषण परकता, संस्मरण साहित्य-सी निष्पक्ष विवरणात्मकता, रेखाचित्र-सी चित्रात्मकता संयुत मनोवैज्ञानिकता सहित गद्यगीत-सी भावुक अनुभूति प्रवणता-सम्मत एकाग्रता सन्निहित रहती है। इसीलिए गद्य की श्रेष्ठ विधा निबंध सुधी पाठकों पर स्थायी प्रभाव अंकित करती है। गद्यकवियों की कसौटी है–'गद्यं कवीनाम् निकषम् वदन्ति' तो निबंध गद्य का निकष है। उक्ति-वैदग्ध्य, अर्थ-दीप्ति एवं लालित्यपूर्ण अभिव्यक्ति सामर्थ्य निबंध-रचना के अनिवार्य उपादान हैं। इनकी समन्वित प्रभावान्विति निबंध-रचना को प्रेरकता प्रदान कर निबंधकार को स्थायी प्रतिष्ठा देती है। हिंदी साहित्य में भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ॰ नगेंद्र, डॉ॰ विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय आदि असंख्य हिंदी निबंधकारों का कीर्तिकलश निबंध की उपर्युक्त वर्णित गुणसमन्वित प्रभावान्विति पर निर्भर है। डॉ॰ प्रादित्य प्रचंडिया के निबंध-संग्रह भी इसी समृद्ध-परंपरा की अभिनव शृंखला के रूप में विचारणीय हैं।

वर्ष 2019 में हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ॰प्र॰) से डॉ॰ प्रचंडिया के तीन निबंध-संग्रह प्रकाश में आए हैं–'भावों के शिलालेख', 'आस्था के शिलापंख' तथा 'विचार और बोध'। 'भावों के शिलालेख' में कुल तीस निबंध हैं–आइए, हम सम्मान करें, क्या हम बदल गए हैं, कितने झूठे, कितने सच्चे, लोकविश्वास के आईने में शकुन-अपशकुन, शाकाहार, भाव-शुद्धि, धर्म, भाव का प्रभाव, पुण्य और पाप, देवता और मनुष्य, विधि की विचित्रता, वाणी का वर्चस्व, ज्ञान के बीज, तीन काँटे, दुष्टता, मूढ़ता और आग्रहवादिता, मन का रथ, धर्म उत्कृष्ट मंगल, अंतराय कर्म, आत्मरक्षा, हाथ दिए कर दान रे, तप की तालीम, शील जीवन का आभूषण, धर्म का मूल विनय, ज्ञान-मंदिर का प्रवेशद्वार, सेवा का सौरभ, ध्यान की साधना और भावों के शिलालेख। इस निबंध-संग्रह का अंतिम निबंध ही इस संकलन का शीर्षक बना है।

डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया के द्वितीय निबंध-संग्रह–'आस्था के शिलापंख' में बत्तीस निबंध संकलित किए गए हैं। इनके शीर्षक इस प्रकार हैं–फूल और काँटे, वाणी का विवेक, श्रद्धा, जीवन जिएँ, अहिंसा का मार्ग, संघ, क्षमा का माहात्म्य, अति से बचिए, बीमारी, कृष्ण-शुक्ल पक्ष, मनुष्य, मरघट, पनघट, दुश्मन, दीक्षा, विचार, धर्म, संवेदनशीलता, पाप से मुक्ति, भावना, शिक्षा, समय, गुरु, बालक और पालक, अहिंसा, भूत, वर्तमान और भविष्य, ज्ञान, प्रसन्नता, तप, अनुभव,

'सुखी परिवार' और मना मत करो। इस संकलन में इसके शीर्षक से संबंधित कोई निबंध नहीं है।

'विचार और बोध' डॉ॰ प्रचंडिया का तृतीय निबंध-संग्रह है, जिसमें नई सदी और हम, धर्म, धर्म: क्या और क्यों, धर्म का मर्म, सुखी जीवन के तीन सूत्र, पुरुषार्थ का शास्त्र, 'बालक', प्यार, चेहरा या चरित्र, बोलने की कला, क्रोध का बारूद, परिवार और संबंध, उपकार की वृत्ति', शून्य का महत्त्व, युवाशक्ति के पाँच रंग, समग्र शिक्षा के पाँच पहलू, संस्कार निर्माण में नारी की भूमिका, नारी की शक्ति, गुरु का महत्त्व, शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी, पिता : सत्ता और महत्ता, पुत्र का महत्त्व, नारी की महिमा, आहार: विचार और व्यवहार, कषाय-मुक्ति का पर्व, अपेक्षा और उपेक्षा, व्रत-विमर्श, अहिंसा : जीवन का संगीत, तप : जीवन का उपहार, शिष्टाचार का शंख, चातुर्मास, आत्म-आलोचना और जैन परंपरा में पर्यावरण संरक्षण शीर्षकों से तैंतीस निबंध संकलित हैं। इस प्रकार तीनों संग्रहों में कुल पिचानवे निबंध प्रकाशित हुए हैं। निबंधों का यह संख्यात्मक विस्तार विषयगत-विविधता, युगीन अपेक्षाओं के अनुरूप आवश्यक संदेशात्मकता तथा सुचिंतित वैचारिकता के आधार पर अपनी गुणात्मकता भी प्रतिपादित करता है।

डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया की निबंध-सृजन यात्रा चार दशक से अधिक अवधि की है और उनके उपर्युक्त निबंध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित-चर्चित होते रहे हैं। 'भावों के शिलालेख' में प्रस्तुत 'स्वकथ्य' के अंतर्गत यह तथ्य इन शब्दों में संकेतित हुआ है–'मेरे निबंध-लेखन का शुभारंभ सन् 1978 के आसपास हो गया था। नवनीत, डाइजेस्ट, तीर्थंकर, पंजाब केशरी जैसी पत्रिकाओं तथा अनेक पुस्तकों, अभिनंदन-स्मृति ग्रंथों में मेरे मौलिक निबंधों का प्रकाशन होने लगा।'[1] इस लेखकीय अभिस्वीकृति से स्पष्ट है कि निबंधकार डॉ॰ प्रचंडिया ने पुस्तक-प्रकाशन की अभीप्सा-लालसा से शीघ्रता में निबंध सृजन नहीं किया है। उनके निबंध उनकी स्वप्रेरित स्व-चिंतित आत्मानुभूति की सहज विवृत्ति हैं जो मानव मन की दुर्बलताओं और दुरभिलाषाओं का परिष्कार कर उसे स्वस्थ एवं रचनात्मक दिशा-दर्शन हेतु रचित हैं।

समीक्ष्य-निबंधों की प्रेरक पृष्ठभूमि डॉ॰ प्रचंडिया के स्वाध्याय और आत्माभिव्यंजना से संदीप्त है। 'आस्था के शिलापंख' में इन निबंधों की रचना-प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है–'जब-जब एकांत क्षणों में बैठकर मैंने सत्साहित्य का स्वाध्याय किया, तब-तब उसके भीतर छिपी प्रेरणा पर चिंतन किया, उसके जीवन-संदेशों पर मनन किया। जो चिंतत-मनन करता है उसे ज्ञान के मोती अवश्य मिलते हैं।...नाना विषयों पर चिंतन करने में ज्ञान की गहरी पर्तें खुलती-सी प्रतीत होती हैं और लगता है एक सूत्र के रूप में पूरा एक जीवनशास्त्र रच गया है। शास्त्र के गंभीर अर्थों को समझा जा सकता है। उनमें छिपी प्रेरणा को ग्रहण कर सकते हैं। प्रेरणा की ये तरंगें वायरलेस संदेश की तरह चित्त की फ्रीक्वेंसी में चलती हैं, जब चित्त चैतन्य होता है तब जीवन-सूत्र भावयोग से तरंगित होते उन मंगल संदेशों को हम ग्रहण कर सकते हैं और फिर उनकी व्याख्या भी की जा सकती है। किसी को कायल करने के लिए हमें विश्वसनीय होना चाहिए। विश्वसनीय होने के लिए हमें निष्ठावान होना चाहिए। हमारी आस्था का यही आधार है। लीक से हटकर कुछ एक नया विषय, नई दृष्टि और इसकी विविधता का मुझे जो अनुभव हुआ तो मैंने अपने उस चिंतन को सार रूप आलेख में निबद्ध कर लिया।'[2] समाज के लिए सात्विक जीवन-शैली का संदेश प्रसारित करते ये निबंध अपने निबंधकार की निजता एवं जीवन-दृष्टि के साक्षी हैं।

वर्ण्यविषय की दृष्टि से उपर्युक्त निबंध तीन वर्गों में वर्गीकृत होने योग्य हैं—आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों पर प्रस्तुत निबंध, सामाजिक-पारिवारिक विषयों पर रचित निबंध तथा अन्य समसायिक बिंदुओं पर केंद्रित निबंध। सर्वाधिक निबंध आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों पर आधारित हैं। धर्म, धर्म का मर्म, व्रत-विमर्श, तप जीवन का उपहार, विचार, अहिंसा का मार्ग, तप, ज्ञान, मन का रथ, ध्यान की साधना आदि निबंध मानवीय-मनीषा की लोकोपकारी दृष्टि को व्याख्यायित करते हैं। ये निबंध शाश्वत महत्त्व के हैं और अशांति एवं हिंसक संघर्ष के गर्त्त में पतनोन्मुख आधुनिक भौतिक से मुक्ति का पथ प्रशस्त करते हैं। 'युवाशक्ति के पाँच रंग', 'संस्कार निर्माण में नारी की भूमिका', 'पिता : सत्ता और महत्ता', 'पुत्र का महत्त्व', 'नारी की शक्ति', 'गुरु का महत्त्व', 'शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी', 'परिवार और संबंध आदि निबंधों में समकालीन सामजिक-पारिवारिक समस्याओं के समाधान सुझाए गए हैं। 'क्रोध का बारूद', 'चेहरा या चरित्र', 'कुषाय मुक्ति का पर्व', 'आत्मालोचना', 'बीमारी', 'मनुष्य', 'मरघट', 'पनघट', 'संवेदनशीलता' आदि अनेक निबंधों की विषयवस्तु जैनधर्म की मान्यताओं, शिक्षाप्रद, संदेशों और सदुपदेशों से संबंधित है। समग्रत: ये निबंध विविध कोणों से मानव-स्वभाव की दुर्बलताओं को दूर करने और अंत:करण की शुचिता के साथ मानसिक सबलता को दृढ़ता प्रदान करने में सहायक हैं। अत: सर्वथा समाजोपयोगी हैं।

रचना-शैली की दृष्टि से समीक्ष्य निबंध अधिकतर विचारात्मक हैं। विचारात्मक निबंधों की सफलता का मूल्यांकन निकष निर्देशित करते हुए आचार्यप्रवर रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है—'शुद्ध विचारात्मक निबंधों का चरम उत्कर्ष वहीं कहा जा सकता है, जहाँ एक-एक पैराग्राफ में विचार दबा-दबाकर ठूँसे गए हों और एक-एक वाक्य किसी संबद्ध विचारखंड को लिए हो।'[3] डॉ० प्रचंडिया के निबंध इस निकष पर खरे उतरते हैं। विचारात्मक निबंधों में उनके स्वतंत्र विचार तार्किक रीति से अभिव्यक्त हुए हैं। समाज सुधार की प्रबल भावना और समसामयिक समस्याओं के प्रति जागरूकता इन निबंधों की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। उनमें वैचारिक सघनता और संबद्धता सहज सुलभ है। निम्नांकित उद्धरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं—

(1) 'अर्थ का अर्थहीन करना, व्यक्ति के उत्कर्ष की परीक्षा है, अर्थ सदैव साधन रहे, सारे कार्यों का साधन न होने पाए। अर्थ साधना तपस्या है, इसके लिए व्यवस्थित और संयमित व्यवहार की कामना है।'[4]

(2) 'अहिंसा केवल धर्म स्थान से ही जुड़ी नहीं है, हमारे जीवन के हरेक पक्ष, हरेक पहलू के साथ अहिंसा का संबंध है। हर पल, हर जगह हमारे भावों में निर्मलता रहे, समानुभूति की भावना रहे, यही पूर्ण अहिंसा है। जितना-जितना यह प्रभाव बढ़ता है, उतना-उतना हमारा सुख और आनंद भी बढ़ता जाता है।'[5]

डॉ० आदित्य प्रचंडिया की निबंध-रचनाप्रज्ञा जहाँ विचार-वीथियों में विचरण से विराम पाती है वहाँ वह भावुकता, सरसता और अलंकारिता से सर्वथा अभिषिक्त हो उठती है। प्रश्न-शैली के साथ काव्योचित भावात्मकता एवं अलंकारिकता का विनियोग निम्नांकित गद्यांश में देखते ही बनता है—'भला गन्ना मिठास से भिन्न क्या दे सकता है? पुष्प के पास सुरभि और मकरंद के अतिरिक्त क्या मिलेगा? कपूर की डिबिया का ढक्कन जितनी बार उठाओगे, सुगंध से प्राण तृप्त हो जाएँगे। शुष्क वन पादपों को हरा-भरा करना ही तो बसंत का काम है। गुरुजन सहजभाव से उद्विग्नतागज के अंकुश होते हैं। वे समभावी रहकर संसारीजनों में समभाविता का निर्माण करते हैं और धर्म के अमृत

छंदों को लोक-प्राणों में व्यापारित करते रहते हैं।'[6] इस प्रकार की रचना शैली से समृद्ध समीक्ष्य निबंधों में लालित्य तत्त्व और कवित्व-गर्भित अलंकारिकता का सौंदर्य सर्वथा अपूर्व है।

समीक्ष्य संकलनों में संकलित निबंधों की तात्विक समीक्षा करने पर स्पष्ट होता है कि इनमें बुद्धि-तत्त्व की प्रधानता है। उनके चिंतन की मौलिकता में बुद्धितत्त्व का प्रखर रूप विद्यमान है। स्पष्टता, तार्किकता, भाव-व्यंजना, स्वच्छंता, सजीवता आदि विशेषताओं का सन्निवेश भी बौद्धिकता के आग्रह से उत्पन्न है। 'शून्य का महत्त्व' निबंध की ये पंक्तियाँ इस संदर्भ में उद्धरणीय हैं–'जो साधना संसार घटाने के लिए होती है, उससे हम माँगकर संसार बढ़ा लेते हैं। जो साधना सिद्ध गति का शाश्वत सुख प्राप्त कराने वाली है, उससे हम संसार के नश्वर सुख माँग लेते हैं। क्या यह हमारी समझदारी है?'[7] समीक्ष्य निबंधों में ऐसी बौद्धिकता-तार्किकता सहज सुलभ है।

समीक्ष्य निबंधों में अनुभूति-तत्त्व भी सर्वत्र द्रष्टव्य है। समसामयिक समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करने वाले निबंधों में अनुभूति की गहनता एवं परिपक्वता स्पृस्णीय है। कल्पना तत्त्व को डॉ॰ प्रचंडिया ने विशेष महत्त्व नहीं दिया है। वे यथार्थ के धरातल पर विचार और तर्क माध्यम से सार्थक संदेश देने में प्रयत्नशील रहे हैं। अत: कोरी-कल्पना का वायवी सौंदर्य समीक्ष्य निबंधों में प्राय: नगण्य है तथापि उनमें सुलभ व्यंजकता तथा मर्मस्पर्शिणी सरसता का कारण स्वत: समाविष्ट काल्पनिकता ही है। 'शून्य का महत्त्व', 'अति से बचिए' आदि निबंधों में प्रस्तुत कथात्मक उद्धरण कल्पनाजनित है। 'अहं' तत्त्व की व्याप्ति समीक्ष्य निबंधों की अन्यतम निधि है। निबंधों में अहं तत्त्व से आशय निबंधकार की व्यक्तिगत विशेषताओं/वैयक्तिक प्रभावों से होता है। डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया आध्यात्मिक आदर्शों को समर्पित व्यक्तित्व के धनी हैं और सहज-सात्विक जीवन के समर्थक हैं। उनकी इस निजता की छाया उनके निबंधों में पग-पग पर अंकित है। विषय चयन से लेकर विचार अभिव्यक्ति तक की समस्त रचना-प्रक्रिया पर निबंधकार प्रचंडिया के व्यक्तित्व का गंभीर प्रभाव सर्वत्र परिलक्षित होता है। उनके सभी निबंध इस तथ्य के साक्षी हैं। समीक्ष्य निबंधों में शैली तत्त्व वैविध्यपूर्ण है। कथात्मक, संवादात्मक, भावात्मक और विचारात्मक शैलियाँ अलंकारिक सौंदर्य से संयुक्त होकर समीक्ष्य निबंधों में प्रस्तुत हुई हैं और इनमें प्रकट जीवंतता का हेतु बनी है। इस प्रकार डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया की निबंध सृष्टि निबंध साहित्य के लिए अपेक्षित समस्त तत्त्वों से समृद्ध है।

समीक्ष्य निबंधों की भाषा भावानुकूल है। डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया ने अपने निबंधों में सहज सुबोध परिनिष्ठित हिंदी का प्रयोग किया है। उनके निबंधों की भाषा तत्सम प्रधान है, किंतु उसमें विदेशी शब्दों का भी स्वाभाविक समावेश दिखाई देता है। निम्नांकित उद्धरण भाषा के इन दोनों रूपों की बानगी प्रस्तुत करते हैं–

(1) 'अहिंसा मानवता के लिए अमृत है, जीवनशैली है। जीवन का अमर व सरस संगीत है, संपूर्ण सृष्टि की आधारभूमि है। जगत में जहाँ भी जीवन है, उसके टिके रहने का मूल आधार अहिंसा ही है।'[8]

(2) 'अनेक युवक असमय ही बुड्ढे हो जाते हैं या मौत के मुँह में चले जाते हैं। आत्मविश्वास जगाने के लिए किसी दवा या टॉनिक की जरूरत नहीं है, किंतु आपको ध्यान, योग, जप, स्वाध्याय जैसी विधियों का सहारा लेना पड़ता है। ध्यान, योग, जप यही आपका टॉनिक है। यही वह पावर हाउस है, जहाँ का कनेक्शन जुड़ते ही शक्ति का अक्षय स्रोत फूट पड़ेगा।'[9]

उपर्युक्त प्रथम उद्धरण की भाषा तत्सम शब्द प्रधान है किंतु द्वितीय उद्धरण में 'बुड्ढे' और

 ISSN 0975-735X

'मुँह' देशज और तद्भव शब्द हैं, जबकि 'दवा', 'सहारा', 'टॉनिक', 'पॉवर हाउस', 'कनेक्शन' आदि शब्दों में विदेशी शब्द समूहों से गृहीत शब्द द्रष्टव्य हैं। समग्रत: समीक्ष्य निबंधों की भाषा आम बोलचाल की भाषा के समीप है।

डॉ॰ प्रचंडिया के निबंधों की भाषा में मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग अधिक नहीं हैं, किंतु सूक्तियों की प्रस्तुति उसमें सहज द्रष्टव्य है। कुछ सूक्तियाँ निम्नवत् प्रस्तत हैं–

(1) दीक्षा वह ट्रेन है, जो मुक्ति नगर को प्राप्त करवाती है।[10]

(2) पुरुषार्थ मानव-जीवन का पूर्ण कार्यक्रम है।[11]

(3) शून्य बड़ी कीमत रखता है। शून्य का मतलब है समर्पण शर्त रहित जीवन।[12]

(4) माया एक ऐसा मीठा जहर है, जो अंदर ही अंदर व्यक्ति को काटता रहता है।[13]

(5) कपटी संसार को ठगने जाता है और अपने आप से ठगा जाता है।[14]

इस प्रकार डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया के निबंध भाव, भाषा, विचार आदि की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। उनका आकार संतुलित है–नातिदीर्घ और नातिसंक्षिप्त। उनमें विचारों की व्यवस्थित प्रस्तुति प्रभावित करती है और उनकी संदेशात्मकता लोकमंगल का पथ-प्रशस्त कर उनकी साहित्यिक उपादेयता प्रतिपादित करती है। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ने उनके निबंधों का महत्त्व रेखांकित करते हुए सत्य ही लिखा है–'निबंध हमें शांति प्रदान करते हैं, मन में उठने वाले विषय विकारों के प्रति सजग करते हैं, मानवता की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। श्रद्धा और विश्वास के प्रति आश्वस्त करते हैं।'[15] इसी आश्वस्ति में इन निबंधों की सार्थकता हैं, डॉ॰ प्रचंडिया के सारस्वत-श्रम की सफलता है।

संदर्भ

1. भावों के शिलालेख, पृ॰ 7
2. आस्था के शिलापंख, पृ॰ 7
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 509
4. विचार और बोध, पृ॰ 31
5. भावों के शिलालेख, पृ॰ 47
6. विचार और बोध, पृ॰ 83
7. वही, पृ॰ 61
8. वही, पृ॰ 130
9. वही, पृ॰ 65
10. आस्था के शिलापंख, पृ॰ 52
11. विचार और बोध, पृ॰ 27
12. विचार और बोध, पृ॰ 61
13. विचार और बोध, पृ॰ 114
14. भावों के शिलालेख, पृ॰ 89
15. आस्था के शिलापंख, फ्लैप दो

ए-20 बी, कुंदननगर, अवधपुरी

भोपाल 462021 (**म॰प्र॰**)

मो॰ 9893189646

कबीर की सामाजिक मानवीय दृष्टि

डॉ॰ अखिलेश राम
असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत
रा॰म॰म॰वि॰, शाहगंज, जौनपुर (उ॰प्र॰)

भक्तिकाल की सामाजिक चेतना के केंद्र में मानवीयता का पक्ष अहम है। भक्तिकाल में राजनीतिक रूप से भारत में सामंती प्रथा थी। मुगलों का समय था और इस आधार पर सामाजिक चेतना शून्य थी। इसका कारण जड़ धार्मिकता व कर्मकांडों की अतिशयता थी। साहित्य काल, परिस्थिति, सत्ता और अन्य तंत्रों की पड़ताल करता है। इतिहास व समाज में घटित होनेवाली घटनाओं का कवि एवं साहित्यकार सूक्ष्म निरीक्षण करता है तथा मानव मात्र की स्थापना का उत्तम मार्ग तलाशता है। इस क्रम में सीधे-सीधे सत्ता, व्यवस्था तथा स्थापित संस्थाओं से टकराने में गुरेज नहीं करता है। कबीर की सामाजिक चेतना के केंद्र में महत्त्वपूर्ण वाक्यांश, मानवता का सार है, जब वह कहते हैं–'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।'

वाणी में सहजता के साथ मानवता का प्रेम उनके काव्य को स्वत: प्रमाणित करता है। व्यक्तित्व विश्लेषण के क्रम में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन सर्वाधिक उपयुक्त है– 'कबीरदास की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी।'[1]

इस आधार पर यह समझा जा सकता है कि योग और भक्तों के संयोग से ही वाणी की शुचिता, सहजता व विनयशीलता समझी जा सकती है। मनुष्य तब तक मनुष्य नहीं हो सकता जब तक उसके अंदर रागात्मक भक्ति व प्रेम का संचार न हो। इंसान की मुक्ति और उसे विकसित होने का, पूर्ण इंसान बनने का, प्रेम और स्नेह का, श्रम के मूल्य का, विमल दृष्टि का मार्ग कबीर ने प्रशस्त किया था,[2] सामाजिक मानवीय दृष्टि के पूर्व कबीर के समय के इतिहास एवं समाज को समझना अति आवश्यक है। यह ऐतिहासिक दृष्टि से पतन का काल है। सांस्कृतिक रूप से संक्रमणकाल है। कत्लेआम का समय है। तमाम प्रकार की सामाजिक विभीषिकाएँ मनुष्य को जगह-जगह से तोड़ रही हैं, ऐसे समय कबीर का स्वर सस्वर होकर मुखरित होता है। इतिहास, संस्कृति, दर्शन सामाजिक न्याय से विचलित हैं। धार्मिक पराभव से जनता को बाहर निकालना संतों, सुधारकों एवं कवियों का महत्त्वपूर्ण दायित्व बन जाता है। इसीलिए वे कहते हैं–

कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ,
जो घर फूँके आपना सो चले हमारे साथ।[3]

हिंदू-मुस्लिम के प्रश्न पर, दलितों, स्त्रियों के सवाल पर हर प्रकार से वंचित प्रत्येक मनुष्यजाति के लिए समानता, मानवता, भ्रातृत्व और बंधुत्व का संदेश कबीर के काव्य का मुख्य तत्त्व है। यही कारण है कि वे हिंदू-मुस्लिम दोनों के प्रश्न पर कर्कश प्रहार करते हैं–

कबीर हिंदू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहैं कबीर सो जीवता, दुइ मैं कदे न जाइ।[4]

 ISSN 0975-735X

अपने इन्हीं खंडनकारी स्वभाव के कारण उन्हें दोनों धर्माधिकारियों का विरोध भी झेलना पड़ता है, पर वे इसकी तनिक भी परवाह नहीं करते हैं। एक नहीं अनगिनत उलझे हुए बिंदुओं को कबीर काटने का माद्दा रखते हैं और उसे बेबाकी के साथ काटते भी हैं। जाति की श्रेष्ठता पर सवाल करते हैं और सब में एक ही रक्त के प्रवाह को स्वीकार करते हैं क्योंकि मानवता ही उनके लिए सर्वोपरि है। इसीलिए उन्हें उपदेशक एवं सुधारक की संज्ञा से अभिचिह्नित किया जाता है। उनके मानवता के केंद्र में पूर्णत: समाज दर्शन काम करता है। निर्गुण व निराकार ईश्वर की उपासना का मार्ग उसी सामाजिक दर्शन का ही प्रतिफल है। अपने जीवनभर जो कबीर ने कहा और सुनाया उसका फलक बड़ा है, उसमें कबीर का कहा सब कुछ है, जिसके चलते कई तरह के विचारों के दायरे में हर किसी के जरिए ग्रहण और विश्लेषण किए जाते रहे हैं। किसी को कबीर की भक्ति प्रिय है तो किसी को उनका योग, कोई उनके ज्ञान पर रीझा हुआ है तो कोई उनके रहस्यवाद पर। इन तमाम बातों के साथ कबीर के अपने जिए भोगे और देखे-सुने को प्रतिफल बनाकर सामने आनेवाला उनका समाज-दर्शन है।[5] वास्तव में मानवता का चरम बिंदु इन्हीं राहों से होकर ही प्रगतिशील होता है। वे सामाजिक संरचना की तमाम जटिल अवधारणाओं, धर्मशास्त्रों की अमानवीयता, उसकी भेदभावपूर्ण दृष्टि और उससे जुड़े संपूर्ण विधि-निषेधों, नियमों, मान्यताओं, रूढ़ियों आदि को अस्वीकार करते हैं क्योंकि मनुष्य के विकास में ऐसी चीजें सर्वथा बाधक रही हैं। कबीर इन्हीं विरोध के कारण आलोचकों द्वारा अमान्य व अस्वीकार के भाव से देखे जाते हैं, परंतु वे नितांत करुणार्द्र, शांत और मृदु हैं, कारण हमेशा प्रेम को ही प्रबल और सर्वोपरि मानते हैं। उनका आदर्श, संत-समूह के लिए प्रेरणा व संबल रहा है। इसीलिए शिवकुमार मिश्र लिखते हैं–

'उनका आक्रामक और विद्रोही तेवर उनकी मानवीय करुणा का ही प्रसंग के अनुरूप प्रतिफलन है, उनके व्यक्तित्व के समग्र आकलन में इस तथ्य को ध्यान में लाने की जरूरत है।'[6]

समग्रता में मूल्यांकन ही किसी कवि की वास्तविक पहचान निर्मित करती है। किसी पूर्वाग्रह व्यक्तिगत पसंद-नापसंद के आधार पर हम कवि के काव्य का मूल्यांकन न करके कवि के चरित्र के किसी एक पक्ष पर टिके रहना मूल्यांकन की स्वस्थ परंपरा का सूचक नहीं हो सकता। अपनी बेबाक वाणी के कारण कबीर डिक्टेटर के रूप में स्थापित किए जाते हैं–

'कबीर को कथनी और करनी में जहाँ भी भेद दिखा वे उसे बर्दाश्त नहीं कर सके हैं। तीर्थ, व्रत, माला और तिलक, जप और तप कुछ भी हो अगर वह करनी के मार्ग में खड़ा होता है तो कबीर उसे अस्वीकार कर देते हैं।'[7]

शोषण, उत्पीड़न, विद्रूपताओं, धार्मिक जकड़न, निरीह जनता का शोषण, झूठ, फरेब, पूँजीवादी मानसिकता आदि कलुषित विचार आज भी समाज में हो रहे हैं इसीलिए बहुत गहराई के साथ कबीर अपनी मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण प्रासंगिक हैं–

'समाजवाद के लिए आज के संघर्ष तथा कबीर के ऐतिहासिक अनुभव का आपस में जुड़ना आज की सामाजिक ऐतिहासिक आवश्यकता है।'[8]

भक्ति और प्रेम के माध्यम से कबीरदास हर प्रकार के द्वंद्व को दूर करने की बात करते हैं। उनका मानना है कि न कोई छोटा है, न कोई बड़ा, न कोई नीच और न कोई अधम। सब ईश्वर की संतान हैं, सबमें एक ही परमात्मा समाहित है तभी वे कहते हैं–

भीजै चुनरिया प्रेम रस बूँदन, आरती साज के चली है सुहागिनी, प्रिय अपन को ढूँढन।[9]

इहलौकिकता में पारलौकिक का ध्रुवीकरण भक्तिकालीन संतों का मूल ध्येय रहा है। दूसरा गैर-बराबरी, ऊँच-नीच, जात-पात, छुआछूत, आर्थिक असमानता आदि को सर्वदा समाप्त कर देने की उत्कंठा उन्हें आक्रामक बना देती है पर संत कभी वैयक्तिक नहीं होता उसकी चेतना समष्टिवादी होती है। जनकल्याण, परोपकार, मानवतावाद ही उसके काव्य का अंतिम सत्य होता है। फिर कबीर तो संत भी हैं, कवि भी हैं और सुधारक भी।

इस त्रिवेणी युक्त स्वभाव के कारण ही उन्हें मानवतावादी कवि कहा जाता है।

संदर्भ

1. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ॰ 123
2. कबीरदास : विविध आयाम, संपादक प्रभाकर श्रोत्रिय, भारतीय भाषा परिषद कोलकाता, पृ॰ 97
3. वही, पृ॰ 92
4. कबीर ग्रंथावली, संपादक माताप्रसाद, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड जीरो रोड इलाहाबाद, पृ॰ 6
5. भक्ति आंदोलन और भक्तिकाव्य, शिवकुमार मिश्र, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृ॰ 104,
6. वही, पृ॰ 108
7. कबीर आधुनिक संदर्भ में, डॉक्टर राजदेवसिंह, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृ॰ 30
8. कबीरदास विविध आयाम, संपादक प्रभाकर श्रोत्रिय, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, पृ॰ 83
9. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 156

कामायनी में प्रसाद की स्त्री-दृष्टि

डॉ॰ अनिलकुमार

समाज को वर्तमान अवस्था तक आने में हजारों वर्ष लगे हैं। समाज का निर्माण स्त्री और पुरुष दोनों के परस्पर सहयोग से हुआ है। परंतु आज के विमर्शों के दौर में या यह कहिए कि पुरुष-वर्ग की स्वार्थी मनोवृत्ति और पश्चिमी नारीवाद के अंधानुकरण के फलस्वरूप ऐसा लगता है कि स्त्री जन्म से ही पुरुष की गुलाम है, और पुरुषों के प्रति स्त्रियों के मन में परस्पर विद्रोही और स्पर्धा के भाव को हवा दी जा रही है। पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण करने के कारण स्वयं स्त्री भी आज 'बिखरी अलकें ज्यों तर्कजाल... चरणों में थी गति भरी ताल' के अनुरूप अत्याधुनिक परिधानों व प्रसाधनों से सजी-धजी वासनापूर्ति की प्रतिमूर्ति बन तीव्र गति से भागती सी प्रतीत हो रही है।

किसी विषय के प्रति किसी कवि या लेखक का क्या नजरिया है, इस बात का अंदाजा उसकी कृतियों के अध्ययन-मनन से लगाया जा सकता है। मानव समाज की मनोसंरचना में काल-परिवेश की माँग के अनुरूप संशोधन करने का प्रयास कवि/लेखक करता है। इस दृष्टि के चलते ही साहित्य 'समाज का दर्पण' एवं उससे भी आगे बढ़कर 'समाज का मार्गदर्शक' बन पाता है। स्त्री-दृष्टि से तात्पर्य है स्त्री के प्रति एक सोच-समझ एवं चेतना। यह एक तरह की ज्ञानात्मक मनोवृत्ति है। साहित्य में स्त्री-दृष्टि के केंद्र में स्त्री को पुरुष बनाने के स्थान पर स्त्री को मानव बनाए जाने-मानवी रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास है। यह स्त्री-दृष्टि, स्त्री को न तो पुरुष के स्थान पर स्थापित करना चाहती है और न ही पुरुष को स्त्री के अनुकूल बनाना चाहती है। यह पुरुष को नहीं, बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था को दोषी मानती है जो पुरुषों के मन में यह बैठाती है कि स्त्रियाँ उनसे हीनतर हैं और पुरुषों के भोग का साधन मात्र हैं। इससे यह तथ्य उभरकर आता है कि पुरुष के स्थान पर उसकी मानसिकता और उसकी सोच में संस्कार-परिष्कार कर स्त्री को भी उसका अधिकार-सम्मान प्रदान किया जाए।

स्त्री-दृष्टि समाज में स्त्री और पुरुष वर्ग के ध्रुवीकरण को रोककर समाज को महाविनाश से बचाने का प्रयास है। यदि समाज में इस ध्रुवीकरण को नहीं रोका गया तो वह दिन दूर नहीं जब समाज की हालत जयशंकर प्रसाद के विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य 'कामायनी' के नायक 'मनु' के समान हो जाएगी, जहाँ मनु की तरह पुरुष प्रधान समाज 'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर' तो विराजमान होगा, पर वहाँ किसी 'शिला की शीतल छाँह' नहीं होगी तथा उसे भी 'भीगे नयनों से' मानवता रूपी सागर में 'प्रलय प्रवाह' देखना पड़ेगा। और उसकी विभीषिका को भोगना पड़ेगा। अत: पुरुष-प्रधान समाज को महाविनाश से बचाने हेतु स्त्री को उसकी पूर्णता में स्वीकार कर एक वर्चस्वहीन समाज का निर्माण करना होगा। अन्यथा 'देव-दंभ के महामेध में सब कुछ ही बन गया हविष्य' वाली स्थिति मानव समाज के समक्ष उपस्थित हो जाएगी। स्त्री-दृष्टि संपूर्ण मानव समाज को उस स्थिति से अवगत करवाना चाहती है जिसका संकेत प्रसाद जी ने 'कामायनी' के 'इड़ा'

सर्ग में पारिवारिक समरसता का महत्त्व बताते हुए काम की शाप ध्वनि के माध्यम से कहा है–

तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की,
समरसता है संबंध बनी, अधिकार और अधिकारी की।

यहाँ कामायनी में प्रसाद की स्त्री-दृष्टि पर बात करने से पूर्व प्रसाद और उनकी मनोसंरचना को जान लेना आवश्यक है। क्योंकि इस मनोसंरचना के चलते ही कवि अपनी बात कहता है। तुलसी के शब्दों में–'कहयो बिन रह्यौ न परत' यानी रचना लेखक से कहलवा लेती है। प्रसाद का साहित्य सृजनकाल हिंदीकाव्य का स्वर्णिम कालखंड छायावाद है। उस समय देश में स्वतंत्रता आंदोलन तेज गति पर था, परंतु देश और समाज को आशानुरूप सुपरिणाम नहीं मिल रहे थे। इसके लिए देश में अनेक धर्म और समाज-सुधार-संबंधी आंदोलन भी जोर पकड़ रहे थे। फलस्वरूप सतीप्रथा बंद हुई, बालविवाह के विरुद्ध और विधवा-विवाह के समर्थन में आवाज उठी, पर्दाप्रथा का विरोध कर स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया गया। नारी को असहाय और निरीह बनानेवाली कुरीतियों–अनमेल विवाह, बालविवाह, बहुविवाह, सतीप्रथा आदि के प्रति समाज की मनोवृत्ति में बदलाव की धमक महसूस की जाने लगी। छायावादकाल में स्त्री के प्रति कवियों की दृष्टि में जो परिवर्तन हुआ, वह उपर्युक्त सुधार-आंदोलनों का ही सुपरिणाम था। वास्तव में 'नारी उत्थान की दृष्टि से छायावाद आदर्शयुग है। छायावाद ने नारी भावना का पुनरुत्थान किया। हमें यह भी विदित इसी युग से हुआ कि भारतीय नारी गौरव-गरिमा से मंडित पुरुष के कंधे से कंधा मिलाते हुए, कर्म यज्ञ के मैदान में उतर सकती है। इस युग के कवियों ने एक बार फिर से नारी को 'अपाला' और 'घोषा' के रूप में पहचाना, उनका स्पर्श उन्हें पावन गंगा की तरह पवित्र लगा। उसके श्रद्धामय रूप से जीवन में 'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' की अनुभूति हुई। उसकी वाणी से त्रिवेणी की धारा छायावाद की लहरों में प्रवाहित हुई।...छायावाद ने नारी के अस्तित्व को पहचाना। सामंतवादी प्रवृत्तियों का शिकार बनकर जो नारी समाज में अभिशाप के रूप में जीवित थी, उसे नर से भी अधिक गरिमा एवं महिमा से मंडित करके देवि, माँ, सहचरि के रूप में प्रतिष्ठित किया।'

प्रसाद का साहित्य उपर्युक्त विशिष्ट दृष्टि यानी चेतना से अनुप्राणित है। अपने साहित्य में वे मानव, समाज, देश और युग की जिन समस्याओं को उठाते हैं, उनका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। समाज के नग्न स्वरूप को वे अपने उपन्यासों में प्रस्तुत करते हैं और सामाजिक आडंबरों एवं विषमताओं को जगजाहिर करते हैं। नाटकों में प्रसाद की दृष्टि सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक नवोत्थान पर केंद्रित है। उनकी प्रतिभा परंपरा, सभ्यता एवं संस्कृति की विकासोन्मुखी प्रगति एवं मौलिक चिंतन की दृष्टि से आज भी बड़ी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध एवं चंपू आदि समस्त साहित्यिक विधाओं में अपनी सृजन प्रतिभा का परिचय बखूबी दिया।

इस तरह बहुमुखी प्रतिभा के धनी, महान साहित्यकार जयशंकर प्रसाद का काल बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। इनके समक्ष सदियों से प्रचलित सामंती और पूँजीवादी व्यवस्था की अहमन्यता, विलासिता और इसके फलस्वरूप जनसामान्य सहित समाज की दरिद्रता का साम्राज्य था। प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका से मानव समाज अभी उभरा भी नहीं था कि द्वितीय विश्वयुद्ध के गहरे काले बादल फिर से उमड़ने-घुमड़ने लगे। युगचेता प्रसाद मानव-समाज में अशांति के मूल कारण को भलीभांति समझ रहे थे। अपने साहित्यकार धर्म का निर्वाह करते हुए उन्होंने वस्तुजगत् का अवलोकन व आलोचन कर अपनी सामर्थ्यानुसार भाव-विचारकल्प प्रस्तुत

किया। डॉ० शशि मुदिराज प्रसाद की मानसिक संरचना के विषय में टिप्पणी करती हैं कि 'प्रसाद की जीवन स्थितियाँ दो विरोधी स्वरों से परिचालित थीं। प्रथम, भोग-विलास, ऐश्वर्य और आभिजात्य। द्वितीय, नियति के आघात से उत्पन्न पारिवारिक अशांति, कलह, ऋण और अभाव। प्रसाद जिस परिवार में जन्मे थे, वह अपनी व्यावसायिक ख्याति, कुलीनता, धर्मपरायणता और सामाजिक स्थिति के लिए विख्यात था। प्रसाद के पितामह श्रीशिवरत्न साहु अपनी दानशीलता, कलाविदों के सत्कार और व्यावसायिक कुशलता के कारण इतने लोकप्रिय थे कि काशी नरेश के बाद इन्हें ही पूरी काशी में 'जय महादेव' अथवा 'जयशंकर' कहकर अभिनंदित किया जाता था। इसी कारण प्रसाद के संस्कारों में दो तत्त्व प्रमुख थे—आभिजात्य और आस्था। आभिजात्य अपनी पारिवारिक परिस्थिति के कारण और आस्था-पूर्वजों में चली आ रही शैवधर्म में प्रगाढ़ विश्वास और तद्नुसार आचरण। ये दोनों तत्त्व प्रसाद के व्यक्ति और अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरों पर आजीवन उन्हें आक्रांत किए रहे।'

उपर्युक्त दृष्टि से प्रसाद जी के संपूर्ण साहित्य का अध्ययन-मनन करने पर यह बात स्पष्ट दिखती है कि उनके साहित्य में इतिहास, दर्शन, समाज, मनोविज्ञान, राष्ट्रीयता आदि मुख्य रूप से व्यक्त हुए हैं परंतु कवि-मन प्राय: स्त्री सौंदर्य और प्रेम जैसे सरस विषयों के वर्णन पर ठहर-सा गया है। प्रसाद के साहित्य में उनकी स्त्री-दृष्टि अतीत से जुड़े रहकर वर्तमान के लिए उपयोगी हैं और साथ ही आनेवाले भविष्य के लिए भी समाज में सशक्त आधारभूमि प्रदान करती है। उन्होंने अपने समग्र साहित्य में सभी पात्रों में मौलिकता का समावेश किया, परंतु उन्हें सर्वाधिक सफलता स्त्री पात्रों के चित्रण में मिली है। उन्होंने अनेक ऐसे स्त्री चरित्रों की सृजना की जो स्त्री ही नहीं अपितु पुरुषवर्ग के समक्ष यथार्थ, व्यावहारिक, ज्वलंत व अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करती हैं। वे स्त्री को 'स्नेहमयी रमणी' के रूप में देखते हैं। यही कारण है कि इनके साहित्य में वर्णित नारी-पात्र जीवन की विकट स्थितियों के घात-प्रतिघात से और अधिक उज्ज्वलता लिए हुए हैं। इस नजरिए से प्रसाद के स्त्री चरित्र 'कामायनी' की श्रद्धा, पुरस्कार की मधुलिका, विराम चिह्न की राधे की बूढ़ी माँ, 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की ध्रुवस्वामिनी आदि के माध्यम से यह संदेश दिया है कि पुरुष के जुर्म के समक्ष स्त्री को घुटने न टेककर प्रतिकार करना चाहिए। इससे स्त्री स्वातंत्र्य का मार्ग प्रशस्त हुआ।

जयशंकर प्रसाद ने कामायनी में 'श्रद्धा' और 'मनु' के मिथक के माध्यम से मानव जीवन के शाश्वत् तथ्यों का उद्घाटन किया है। कोई भी रचना तभी प्राणवान और कालजयी बनती है जब उसमें मानव-जीवन संदर्भित हो, उसमें आत्मविकास, मूल्य, धर्म एवं संस्कृति का निदर्शन हो। इस दृष्टि से 'यह काव्य बड़ी विशद कल्पना और मार्मिक उक्तियों से पूर्ण है। इसका विचारात्मक आधार या अर्थभूमि केवल इतनी ही है कि श्रद्धा या विश्वासमयी रागात्मिकावृत्ति ही मनुष्य को इस जीवन में शांतिमय आनंद का अनुभव और चारों ओर प्रसार करती हुई कल्याणमार्ग पर ले चलती है और निर्विशेष आनंदधाम तक पहुँचाती है। इड़ा या बुद्धि मनुष्य को सदा चंचल रखती है, अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क और निर्मम कर्मजाल में फँसाए रहती है और तृप्ति या संतोष के आनंद से दूर रखती है। अंत में पहुँचकर कवि ने इच्छा, कर्म और ज्ञान के सामंजस्य पर, तीनों के मेल पर जोर दिया है। एक-दूसरे से अलग रहने पर ही जीवन में विषमता आती है।'

वैयक्तिक स्वार्थ एवं भोगवादी प्रवृत्तिवश पुरुष यानी मनु स्त्री के आकर्षण के प्रति

वासनात्मक हो उठता है। जब प्रलय यानी कोई विपत्ति आती है तो वह स्त्री को भूल जाता है और जीवन में सुख आने पर उसकी आँखों में मादकता छा जाती है यानी भोग। विलास की भावना प्रबल हो जाती है। परन्तु जब स्त्री-पुरुष के संबंधों में छल-छद्म का समावेश हो जाता है तो फिर देर-सवेर पछताना ही पड़ता है। यहाँ तक कि छल-छद्म करनेवाले को दूसरे के बारे में जानने में भी संकोच का अनुभव होता है। कवि ने मनु से कहलवाया है–

कितना है उपकार तुम्हारा आश्रित मेरा प्रणय हुआ,
कितना आभारी हूँ, इतना संवेदनमय हृदय हुआ।

प्रसाद ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों में 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' कहकर संकेत किया है कि पुरुष के लिए नारी यानी श्रद्धा के अभाव में जीवन निर्वाह संभव नहीं है। कामायनी के सर्गों के नामकरण पर एक विहंगम दृष्टिपात किया जाए तो पहला सर्ग 'चिंता' है। चिंता यानी प्रलय के पश्चात् सृष्टि का पुनर्निर्माण कैसे हो? चिंता के पश्चात् ही 'आशा' का जन्म होता है। आशा के बाद 'श्रद्धा'। श्रद्धा के बिना आशा की कल्पना नहीं हो सकती। कामायनी की नायिका श्रद्धा है। नायक मनु जब श्रद्धा से पृथक् होकर इड़ा यानी बुद्धि की ओर प्रयाण करता है तो उसे दुखों-द्वंद्वों से सामना करना पड़ता है। बुद्धि की अति होने पर मनु की महत्त्वाकांक्षाओं में वृद्धि होती है और यही मनु के पतन का मूल कारण बनता है। अंत में मनु को श्रद्धा के संसर्ग से ही आनंद की प्राप्ति होती है। 'दर्शन'सर्ग में कवि ने मनु से कहलवाया है–

तुम देवि! आह कितनी उदार/यह मातृमूर्त्ति निर्विकार।
हे सर्वमंगले! तुम महती/सबका दुख अपने पर सहती।
कल्याणमयी वाणी कहती/तुम क्षमा निलय में ही रहती।

कुल मिलाकर पंद्रह सर्गों–चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य, आनंद में रची गई यह कृति कभी आत्मवाद तो कभी आनंदवाद, कभी मानववाद, तो कभी प्रकृतिवाद, कभी विज्ञानवाद, तो कभी नारीवाद, कभी पुरातन या सनातन मूल्य, तो कभी आधुनिकतावाद का जयघोष करती हुई हिंदी पाठक वर्ग की सर्वाधिक रुचिपूर्ण रचना सिद्ध हुई है। इस रचना के महत्त्व के विषय में नंददुलारे वाजपेयी अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य रचना और विचार' में 'स्वच्छंदतावाद, छायावाद, रहस्यवाद' के संदर्भ में कामायनी पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि 'कामायनी का दर्शन वाद की श्रेणी में नहीं आता। महाकाव्य जीवन की महान आकांक्षाओं और युग के प्रतिनिधि होते हैं। वाद के दायरे में उन्हें खींचना अन्याय है। 'कामायनी' की भावधारा और शैली स्वच्छंदतावादी है तथा शास्त्रीय शैली से भिन्न है। इसका नायक आधुनिक युग का प्रतिनिधि है, उसमें शक्तियाँ, दुर्बलताएँ, अतृप्ति, संघर्ष, सब कुछ है। अत: शास्त्रीय महाकाव्य के नायक से वह भिन्न है। 'कामायनी' स्वच्छंदधारा के नव्यतम काव्यों में प्रतिनिधि रूप है। उसका दार्शनिक आधार शैव दर्शन है। अंतिम सर्ग में सांसारिक भेद-प्रभेदों का आवरण हटाकर समरसता और आनंद की भूमिका अपनाई गई है। मनुष्य सृष्टि का चरम पुण्य है। देखने में जो संघर्ष है वह मानो आनंदतत्त्व को प्राप्त करने की भूमिका है।' यहाँ, यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं है कि प्रसाद की कामायनी मानव-समाज के लिए प्रकाश स्तंभ है।

वास्तव में, मानव समाज में भौतिक सुख-सुविधाएँ जितनी अधिक बढ़ती जा रही हैं,

मानव की लालसाएँ भी उतनी ही अधिक बढ़ती जा रही हैं और उसी अनुपात में मानव के दुख भी बढ़ते जा रहे हैं। 'कामायनी' में प्रसाद ने मनु, श्रद्धा और इड़ा आदि पात्रों के माध्यम से मानवता की विकास-कथा को रूपायित किया है। प्रसाद ने मनु और श्रद्धा के प्रसंग से जीवन की क्षुद्रताओं से ऊपर उठकर मानव को कर्म का संदेश दिया है। इस महाकाव्य में प्रसाद जी ने निरंतर द्रव्यता में लगे रहने के फलस्वरूप अनजान समस्याओं में व्यस्त और समाज की एकता के नष्ट हो जाने के कारण अनंत कोलाहल व कलह में फँसी संकुचित दृष्टि वाली आधुनिकयुग की 'अभिनव मानव प्रजा-सृष्टि' को संदेश दिया है कि दुखों से घबराकर संसार से भागने की आवश्यकता नहीं है। जिसे मनुष्य दुख समझता है वह तो ईश्वर का रहस्यमय वरदान है। अपनी कमियों पर विजय प्राप्त कर मनुष्य विजयी कहलाने का अधिकारी हो सकता है। वह अपनी अंतश्चेतना को समझकर ही शक्तिशाली हो सकता है। प्रसाद का मानव को उपदेश है–'शक्तिशाली हो, विजयी बनो।'

मनुष्य विधाता की इस कल्याणी सृष्टि को सफल तभी बना सकता है जब वह कर्मशील रहकर मानवता की उन्नति में सहायक बने। इस संदर्भ में उन्होंने जो संकल्पना की है उसके विषय में डॉ॰ सुरेंद्रनाथ सिंह उल्लेख करते हैं कि 'अपनी संकल्पना को उन्होंने चार सोपानों में संयोजित किया और मनु को केंद्र में रखकर चिंतन को आगे बढ़ाया। पहला सोपान प्रस्तावना रूप है, जिसमें देव-देवांगनाओं का वैभव-विलास में मदमाता जीवन, फिर प्रलय में उनका अवसान वर्णित है। मनु उसी देव-जाति के प्रतिनिधि हैं जो प्रलय में बच गए हैं और स्वजाति देवों के विनाश का कारण उनके उन्मत विलास को मानते हैं। दूसरा सोपान मनु-जीवन का वह पक्ष है जो प्रकृति के निभृत एकांत में नए सिरे से शुरू हुआ है, जिसमें वे श्रद्धा के सहयोग से आनंद-उल्लास प्राप्त करते हुए कुछ समय तक सहज रूप में रहते हैं, किंतु देव-संस्कारजन्य भोगवादी प्रकृति के प्रबल होने पर श्रद्धा को छोड़कर 'कुछ और नया' प्राप्त करने के लिए अन्यत्र चल देते हैं। तीसरा सोपान वह है जिसमें मनु सारस्वत नगर में पहुँचते हैं। वहाँ वे इड़ा की प्रेरणा में यंत्र-प्रधान कर्म-संकुल व्यवस्था का निर्माण करते हैं, जिसके द्वारा प्रकृति-संपदा का जमकर दोहन होता है और नगर भौतिक समृद्धि के शिखर पर पहुँच जाता है। किंतु, अपने अंतर्विरोध से पूरी व्यवस्था चरमरा उठती है और अतिचार के कारण मनु का पराभव होता है। और चौथा सोपान मनु-श्रद्धा के पुनर्मिलन के पश्चात् प्रारंभ होता है। मनु-श्रद्धा के साहचर्य में मन को संयमित करके भेद-बुद्धि से मुक्त होकर सबके सुख में अपने सुख की तत्त्वानुभूति करते हैं।'

प्रसाद का 'कामायनी' नायिका प्रधान महाकाव्य है। 'मनु' और 'श्रद्धा' दोनों ही प्रलय में किसी तरह बचे रह गए थे। एक ओर 'मनु' प्रलय की विभीषिका से विक्षिप्त, निराश और हताश थे–

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर/बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरुष भीगे नयनों से/देख रहा था प्रलय प्रवाह।

वहीं दूसरी ओर श्रद्धा चेतना उद्दीप्त हो हृदय सत्ता की खोज में घूम रही थी। वह मनु से जब प्रथम साक्षात्कार करती है तो मनु की चिंता का शमन कर कवि ने श्रद्धा से मनु के लिए कहलवाया–

'दया, माया, ममता लो आज/ मधुरिमा लो, अगाध विश्वास।
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ/ तुम्हारे लिए खुला है पास।

बनो संसृति के मूल रहस्य/ तुम्हीं से फैलेगी वह बेल।
विश्वभर सौरभ से भर जाय/ सुमन के खेलो सुंदर खेल।

मनु निराशा या नकारात्मक विचारों से आक्रांत है और श्रद्धा सकारात्मक सोच को लिए हुए थी। कवि मनु को श्रद्धा के माध्यम से बताते हैं कि स्त्री और पुरुष का संबंध विधाता का मंगलमय वरदान है। प्रसाद जी स्त्री-पुरुष संबंधों में भय, अविश्वास, अकर्मण्यता को त्यागकर श्रद्धा के माध्यम से अमृतमय जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं–

डरो मत, अरे अमृत संतान! अग्रसर है मंगलमय वृद्धि,
पूर्ण आकर्षण, जीवन केंद्र, खींची आवेगी सकल समृद्धि।

सांसारिक जटिलताओं के भय को दूर करते हुए श्रद्धा जीवन में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का महत्त्व बताते हुए उद्‌बोधित करती है–

दुख के डर से तुम अज्ञात/ जटिलताओं का कर अनुमान।
काम से झिझक रहे हो आज/ भविष्यत् से बनकर अनजान।

प्रसाद सृजित 'कामायनी' की नायिका श्रद्धा 'काम' पर बात करने वाली आधुनिक हिंदी साहित्य की संभवतः पहली स्त्री है। श्रद्धा मनु को समझाती है कि इस परिवर्तनशील प्रकृति और मानव जीवन के लिए नवीनता आत्यावश्यक है–

प्रकृति के यौवन का शृंगार/करेंगे कभी न बासी फूल।
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र/ आह उत्सुक है उनकी धूल।

श्रद्धा अभिभावक सम मनु को संस्कारित कर सामाजिक मनुष्य बनाती है और 'विजयिनी मानवता' का सूत्र मनु को समझाते हुए कहती है–

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरूपाय,
समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।

वस्तुतः प्रसाद जी जीवन में सुख-दुख की समरसता का दर्शन कामायनी में स्थापित करते प्रतीत होते हैं-

समरस थे जड़ या चेतन सुंदर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती आनंद अखंड घना था।

इस तरह 'कामायनी' प्रसाद की प्रौढ़तम कृति है। इसमें प्रसादजी ने अपनी संपूर्ण साधना का निचौड़ इसमें भर दिया है। इसमें इन्होंने स्त्री-पुरुष संबंधों को दार्शनिक संबंधों के आलोक में प्रस्तुत कर 'वसुधैव कुटुंबकम्' का मानवतावादी महान् संदेश दिया। मानव समाज में स्त्री और पुरुष परस्पर पूरक हैं। प्रसाद के सभी स्त्री-पात्र मानव-जीवन की व्यापक भावभूमि पर प्रतिष्ठित हैं। ये स्त्री-पात्र पुरुष में कहीं न कहीं शक्ति और गति भरती हैं- दिशा-निर्देश करती हैं। 'इतना ही नहीं वे स्वयं कर्मभूमि में उतरकर कंधे से कंधा मिलाकर विरोधी स्थितियों से संघर्ष करती हैं। वे राग से तरल, बुद्धि से प्रखर और कर्म से ऊर्जस्वित हैं।' यह तथ्य कामायनी में 'श्रद्धा' के आचार-व्यवहार से भलीभांति व्यक्त हुआ है। स्त्री और पुरुष में सामरस्य स्थापित करने के लिए कवि का आह्वान है–

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास-रजत-नग पग तल में
पीयूस स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।

संदर्भ

1. स्त्री चिंतन और हिंदी कविता, डॉ॰ पवनकुमार पांडे, ईशा ज्ञानदीप, नई दिल्ली, 2017, पृ॰ 19
2. कामायनी, इड़ा सर्ग, पृ॰ 65
3. प्रसाद साहित्य में स्त्री-चेतना, गीतासिंह, आयुषमान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 2015, पृ॰ 1
4. छायावाद में आत्माभिव्यक्ति, डॉ॰ शशि मुदिराज, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1980, पृ॰ 93-94
5. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, 2012, पृ॰ 470
6. कामायनी, निर्वेद सर्ग, पृ॰ 100
7. वही, पृ॰- 112
8. हिंदी साहित्य : रचना और विचार, नंददुलारे वाजपेयी, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृ॰ 37
9. कालजयी जयशंकर प्रसाद, डॉ॰ सुरेंद्रनाथ सिंह, के॰एल॰ पचौरी प्रकाशन, 2002, पृ॰ 40-41
10. कामायनी (चिंता सर्ग), जयशंकर प्रसाद, श्री प्रकाशन दिल्ली, पृ॰ 13
11. वही, श्रद्धा सर्ग, पृ॰ 28
12. वही, श्रद्धा सर्ग, पृ॰ 29
13. वही, श्रद्धा सर्ग, पृ॰ 27
14. वही, श्रद्धा सर्ग, पृ॰ 28
15. वही, श्रद्धा सर्ग, पृ॰- 29
16. वही, पृ॰ 128
17. कालजयी जयशंकर 'प्रसाद', डॉ॰ सुरेंद्रनाथ सिंह, पृ॰ 12-13
18. कामायनी, लज्जा सर्ग, पृ॰ 46

‘पचपन खंभे लाल दीवारें’ उपन्यास में सुषमा की बेबसी

डॉ॰ बळीराम संभाजी भुक्तरे

पचपन खंभे लाल दीवारें उषा प्रियंवदा का पहला बहुचर्चित उपन्यास है। यह उपन्यास राजकमल प्रकाशन से 1962 में प्रकाशित हुआ है। उपन्यास में भारतीय नारी की सामाजिक आर्थिक विषमताओं से जन्मी मानसिक यंत्रणा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है। आधुनिक नारी के ऊब, घुटन, तनाव का तीखा एहसास हमें इस उपन्यास में देखने को मिलता है। उपन्यास का आरंभ फ्लैशबैक पद्धति में लिखा गया है। उपन्यास की नायिका सुषमा अपने अतीत का अवलोकन कर रही है। उसे लगता है कि नील आकर उसके सिरहाने खड़ा हो गया है। सुषमा चौककर उठती है, लेकिन चारों ओर अँधेरा ही होता है फिर सुषमा अपने दु:ख-भरे अतीत में खो जाती है। सुषमा कॉलेज की अध्यापिका है और हॉस्टल की वार्डन भी है। कॉलेज में जब वह क्लास लेने जाती है तब दो चपरासी उसे सलाम करते हैं, तो उसे महसूस होता है कि अब वह कुछ बन गई है–‘मिस शर्मा वार्डन गर्ल्स हॉस्टल।’[1]

मिस शास्त्री कॉलेज में संस्कृत पढ़ाती थी। उसका सारा समय इसी में बीतता था कि कौन कितने बजे आया, किस लड़की की मित्रता किस छात्र से है। कौन अध्यापिका घर कितने रूपए भेजती है। कौन सेक्स स्टावर्ड है। पूरे कॉलेज में मीनाक्षी ही सुषमा की सहेली है और शुभचिंतक भी। सुषमा के जीवन में कृष्णा मौसी की बड़ी अहमियत थी। वह सुषमा से बहुत प्यार करती थी। सुषमा ने उन्हें साड़ियाँ कढ़वाकर भेजने को कहा था। इस सिलसिले में वह मौसी को पत्र लिखती है। जिसके उत्तर में मौसी ने लिखा था कि उसने अपनी सहेली कौशल्याजी के एक रिश्तेदार के साथ साड़ियाँ भेजी हैं, जो दिल्ली आ रहा था। एक बार सुषमा से कृष्णा मौसी विवाह करने के बारे में कहती है कि ‘यह भाई बहन किसी के नहीं होते आज की दुनिया में कौन किसका होता है।’[2]

मौसी की यह बात सुषमा को सही लगती है, पर उसके ऊपर अपने घर की जिम्मेदारी है, जिससे उसे न चाहकर भी निभाना है। वह अपने घर की दशा से अवगत कराते हुए कहती है–‘पिताजी को पेंशन मिलती ही कितनी है उसमें दो वक्त की दाल रोटी भी ना चले।’[3] सुषमा के माता-पिता उसकी शादी के बारे में नहीं सोचते हैं। अगर कोई शादी की बात छेड़ भी देता है, तो वह ऐसे मौके पर सारा बोझ सुषमा पर ही डालते हुए कहते हैं कि अगर लड़की ही न माने तो हम क्या कर सकते हैं। सुषमा के माँ-बाप यही चाहते हैं कि सुषमा के वेतन से घर चलता रहे। एक बार कृष्णा मौसी जब शादी की बात अम्मा से करती है तो अम्मा कहती है–‘तुम जानो कृष्णा सुषमा की शादी अब हमारे बस की बात रही नहीं। इतना पढ़-लिख गई, अच्छी नौकरी है और अब तो क्या कहते हैं हॉस्पिटल में वार्डन भी बनने वाली है। बँगला और चपरासी अलग से मिलेगा। बताओ इसके जोड़ का लड़का मिलना तो मुश्किल ही है। तुम्हारे जीजा तो कहते हैं कि लड़की सयानी है, जिससे मन मिले उसी से कर ले। हम खुशी-खुशी शामिल हो जाएँगे।’[4] इसका

 ISSN 0975-735X

उत्तर देते हुए कृष्णा मौसी कहती हैं–'जीजा की गैरजिम्मेदारी है जब पढ़ रही थी तभी कर देते। लड़की तो अपने आप मुँह खोलकर कहती नहीं और लोगों की कानी-खुत्री ब्याही जाती हैं, तुम्हारी ऐसी अच्छी लड़की बिना ब्याही रहेगी।'[5] इधर हॉस्पिटल और कॉलेज का दुगना काम सुषमा के ऊपर आ पड़ता है। मीनाक्षी सुषमा को शादी कर लेने के लिए कहती रहती है, लेकिन वह बात को टाल देती है। अम्मा को अब निरूपमा की शादी की चिंता है। उसने सुषमा से फिजूलखर्ची बंद करके रूपए जमा करने को भी कह दिया था। फिर एक दिन कृष्णा मौसी द्वारा भेजी गई साड़ियाँ लेकर नील आता है। वह फिलिप्स फर्म में काम करता था। सुषमा उसके लिए कोकोकोला मँगवाती है, पर बातचीत के दौरान पता चलता है कि नील को कृष्णामा ने भेजा है, साड़ियाँ लेकर। तो सुषमा कोल्ड कॉफी के लिए आर्डर दे देती है। सुषमा के सौंदर्य को देखकर नील उसकी ओर आकर्षित हो जाता है।

नील चला जाता है फिर एक दिन अचानक नील सुषमा को बाजार में मिलता है। दोनों रेस्टोरेंट में चाय पीने जाते हैं। नील उसे पसंद करने लगा था। नील सुषमा को घर छोड़ने आता है। सुषमा को रात में साढे नौ बजे नील का उसके साथ आना अच्छा नहीं लगता। वह जानती थी कि उसकी हर क्रिया को सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाता है। नील उसके साथ कुछ और समय बिताने के लिए कोटेज तक आया था, लेकिन वह सुषमा को असमंजस में देखकर चला जाता है। शनिवार की शाम सुषमा अपने कॉलेज और हॉस्टल दोनों को देख रही थी। बाद में वह नील के बारे में सोचती है इतने में मीनाक्षी सुषमा का बटुआ लेने के लिए आती है। मीनाक्षी के चले जाने के बाद सुषमा को अकेले अकेलापन घेरने लगता है। एकाएक वह सोच उठती है–'यदि कुछ परिस्थितियों वर्ष उसका विवाह न टल गया होता तो आज उसके पास भी सब कुछ होता, एकांत श्याम का साथी, घर, मोटर, बच्चे।'[6] उसे इस बात के लिए अपने माता-पिता ही दोषी प्रतीत होते हैं। वह एकाएक नील के संबंध में सोच भी उठती है। नील ने सुषमा के बंदे जीवन में ऐसी हिलोरे पैदा कर दी थी कि उसके परिणाम की आशंका से सुषमा विचलित हो उठी थी। पर वह अपने परिवार और पद की जिम्मेदारियों की दीवारों से ऐसी बंद गई थी कि अब वह कुछ नहीं कर सकती। फिर भी उसकी चाह थी कि दो बाहें उसे भी सहारा को हो। कॉलेज में जब अविवाहित स्वाति का गर्भपात हो जाता हौ तो सब उसकी निंदा करते हैं। उसके बाद जब मैसेज पूरी सामाजिक मापदंड के उल्लंघन की बात करती है तो सुषमा तुरंत कहती है–'आपके सामाजिक मापदंड यह कहते हैं कि आप सबके सामने किसी के व्यक्तिगत जीवन की धज्जियाँ उड़ा दीजिए? हर एक का जीवन एक ऐसा आंदोलन घनी दुर्ग है। जिसका अतिक्रमण करना किसी का अधिकार नहीं है।'[7] उसके बाद मीनाक्षी सुषमा से नील के बारे में पूछती है और सुषमा उसे नील का थोड़ा बहुत परिचय देती है।

दशहरे की छुट्टियों के कारण कॉलेज बंद हो गया था। खाली हॉस्पिटल में सुषमा को तीन-चार दिन रुकना पड़ रहा है। घर जाने के एक दिन पहले जब सुषमा बाहर लॉन में बैठी थी तब वहाँ अचानक नील आता है। नील की उँगलियाँ उसकी बाहों को छूने लगती हैं। वह बिना हिले बैठी रहती है। नील ने सुषमा से पूछा–'क्या सोच रही हो? सुषमा ने कहा कुछ नहीं खंबे देख रही हूँ कितने खंभे हैं? आप ही गिन लीजिए उसी तरह बैठे-बैठे नील ने पचपन तक गिना।'[8] बाद में नील ने अपने बारे में कुछ बताने के लिए सुषमा को कहा सुषमा प्रेरित होकर करती है–'उम्र 33 बरस, घर

की गरीब, हिंदी की टीचर।'[8] यह कहकर सुषमा रोने लगती है और नील को वहाँ से चले जाने के लिए कह देती है। नील चला जाता है उसके जाने के बाद सुषमा उदास हो जाती है।

दूसरे दिन सुषमा घर चली जाती है। स्टेशन पर उसके दोनों भाई उसे लेने आए थे। सुषमा भाई, बहन, माँ-बाप सभी के लिए कुछ-न-कुछ लेकर आई थी। घर जाकर उसे लग रहा था कि पिताजी ने उसके साथ बड़ा अन्याय किया था। अगर पिताजी चाहते तो उसकी शादी हो सकती थी क्योंकि उसके मामा उसकी शादी करने के पक्ष में थे, पर पिताजी ढील कर गए थे। फिर सुषमा को अपने पिता के बूढ़ेपन को देखकर लगता है कि उन्होंने भी सोचा होगा कि उनकी बेटी अविवाहित रह जाए, पर उनकी भी कोई व्यवस्था रही होगी।

एक बार सुषमा की पुरानी चोट फिर से ताजा हो उठती है। युवावस्था में एक स्वप्न सँजोया था कि उसकी नारायण के साथ शादी हो जाए। पर उसका वह सपना टूट जाता है। नारायण की किसी और के साथ शादी हो जाती है फिर थोड़े दिनों बाद सुषमा को मीनाक्षी का पत्र मिलता है। उसमें उसकी शादी की बात थी। उसे लगता है कि मीनाक्षी भी अब वहाँ नहीं रहेगी। वह एक अकेले ही उसके मन के करीब थी फिर थोड़े दिनों के बाद सुषमा दिल्ली लौट आती है।

सुषमा को दिल्ली स्टेशन पर नील लेने आता है और बाद में मना करने पर भी वह उसे कॉलेज तक पहुँचाने के लिए टैक्सी में बैठ जाता है। नील टैक्सी में उसके पास सरक आता है सुषमा उसे कहती है–टैक्सी चलाने वाला क्या सोचेगा? तब नील कहता है कि 'आप क्यों अपने को भुलावे में डालती हैं? मैं जानता हूँ कि आप चाहती हैं अगर नहीं चाहती हैं तो क्यों मेरी याद आती या बर्दाश्त करती जाती हैं? माना कि आप बहुत करुणामयी हैं मैं तो इतना स्वार्थी हो गया हूँ कि प्यार नहीं तो करुणा ही सही, जो भी मिले। बताइए क्यों मुझे दुत्कारती रहती हैं?'[9] फिर नील और सुषमा दोनों टैक्सी से हॉस्पिटल में आते हैं। दोनों जब खाना खाते हैं तब सुषमा को पिताजी की याद आ जाती है। उन्हें खाने के बाद पान मिला होगा या नहीं। इसी प्रकार परिजनों से अलग होना उसे उदास कर जाता है। फिर दूसरे दिन अम्मा के खत से उदास हो जाती है। वह अपनी परेशानी नील को बताती है कि घर से माँ की चिट्ठी आई है। माँ नीरू की शादी के लिए परेशान हैं और माँ मुझ पर ही आश्रित रहती हैं। यह सुनकर नील सुषमा से कहता है कि मुझे लगता है–'सुषमा कि तुम्हारा परिवार तुम्हारा अन्यथा एडवांटेज लेता है। तुम्हारे भाई-बहन तुम्हारे माता-पिता की जिम्मेदारी हैं, तुम्हारी नहीं।'[10] नील के इतना कहने से सुषमा उदास हो जाती है।

सुषमा नील के साथ घूमने चली जाती है। वह भूल जाती है कि मिसेज पुरी के यहाँ डिनर है। दूसरे दिन मीनाक्षी आकर बताती है कि 'तुम कब जाती हो, कब तुम्हारे यहाँ कौन आता है किसने तुम्हें सिनेमा में देखा, किसने क्लब में सब का सब वर्णन हुआ।'[11] आजकल लड़कियों में, स्टाफरूम में, नौकरों में हर जगह तुम्हारी ही चर्चा चल रही है। यह सुनकर सुषमा कहती है–'मैं किसी की परवाह नहीं करती।'[12] तब मीनाक्षी सुषमा से कहती है–'तुम एक जिम्मेदारी के पद पर हो तुम्हें अपनी छात्राओं के सम्मुख अपना उदाहरण प्रस्तुत करना है, तब सुषमा कहती है कि मैं अपना काम ठीक करती हूँ मुझसे किसी की शिकायत नहीं है फिर मेरे व्यक्तिगत जीवन में किसी को दखल देने का क्या हक है? मैं वार्डन हूँ इसका मतलब यह तो नहीं कि मैं हर समय गंभीर इयत्ता की नकली खोल चढ़ाए रहूँ।'[13]

 ISSN 0975-735X

नील सुषमा की सारी जिम्मेदारियाँ अपने ऊपर लेना चाहता है, पर सुषमा नील को अपने बीते जीवन की बात बताती है। वह कहती है कि मैं गरीब भले रही, पर स्वाभिमानी भी बहुत रही हूँ। एम॰ए॰ करने के बाद मैंने एक प्राइवेट कॉलेज में नौकरी कर ली, पर वहाँ के सेक्रेटरी पुराने रईसों में से थे। उन्होंने मुझे बहुत प्रलोभन दिए। पर मैंने वह नौकरी छोड़ दी। पिताजी बीमार थे, मुझे नौकरी की सख्त जरूरत थी, पर माँ ने भी मुझे कभी सहारा नहीं दिया। ढाँढस नहीं बँधाया। हर बार वह जब कोई आभूषण बेचने जाती, तो मुझे ऐसे देखती जैसे उन सब मुसीबतों की जड़ मैं ही हूँ। उन्हीं दिनों वह मुझ से एक धनी वकील से विवाह कर लेने का आग्रह भी करती रही। पर मैं पत्थर हो गई थी। माँ ने भी मुझे कभी हिम्मत नहीं दी।

नील किसी काम से मुंबई जाता है। फिर सुषमा मिस शास्त्री के टिफिन में मेंढक रखने के सिलसिले में सरिता और मोहिंदर को डाँटती है। कई दिन बीत जाते हैं, नील की कोई खबर नहीं थी। वह उसकी राह देखती है। मीनाक्षी जिद करके सुषमा को पिक्चर ले जाती है। नील सुषमा के घर आता है, पर उसके न होने से चला जाता है। वह भौरी से कह जाता है कि वह शाम का खाना यहीं खाएँगे। सुषमा नील की प्रतीक्षा करने लगती है। इतने में नील हाथों में कुछ पैकेट लिए हुए आ जाता है। तब सुषमा कहती है कि इतना सारा सामान लाने की क्या जरूरत थी? नील सहज भाव से कहता है–'मेरे लिए तो सिर्फ एक सुषमा है वन एंड ओनली।'[14] सुषमा भी नील से कहती है कि 'जो तुम हो मेरे लिए वह कोई और कैसे हो सकता है।'[15] यहाँ पर दोनों का एक दूसरे के प्रति प्रेम दिखाई देता है। माँ निरूपमा को लड़के वालों को दिखाने के लिए दिल्ली आ जाती है। अम्मा बेटी का घर देखकर बहुत प्रसन्न हो जाती है। शाम को नील वहाँ आता है। तो सुषमा अपनी माँ के साथ नील का परिचय कराती है और कहती है कि नील कृष्णा मौसी को जानता है। फिर अम्मा नील से सब-कुछ पूछने लग जाती है। दूसरे दिन नीरू को देखने के लिए लड़के वाले आने वाले थे। इसी वजह से घर को व्यवस्थित किया गया और घर में क्या-क्या चीजें बनेगीं वह तय किया गया। सुषमा कुछ काम से बाहर जाती है। इतने में अम्मा नीरू को नील की लाई हुई साड़ी पहना देती है। जिससे सुषमा नाराज हो जाती है। सुषमा जिद में आकर शादी साड़ी पहनती है। अतिथियों के आगमन पर सुषमा नमस्कार करके अंदर चली जाती है। सुषमा और मीनाक्षी खाद्य-सामग्री ट्रे में सजाकर बाहर भेजती हैं। फिर नीरू चाय लेकर जाती है, पर डर के मारे वह चाय साड़ी पर गिरा देती है। लड़के वाले दूसरे दिन जवाब देंगे, कहकर चले जाते हैं। फिर अम्मा सुषमा से कहती है कि शादी रूपयों पर आकर अटक गई है। वह सुषमा से रूपयों का बंदोबस्त करने के लिए कहती है। इस बात पर सुषमा क्रोधित हो जाती है। सुषमा के क्रोध को शांत करने के लिए अम्मा उसे समझाते हुए कहती है कि तुम्हारे पास तो सब-कुछ है। यह दोनों भी अपने घर जाएँ सुख से रहें। तब सुषमा कहती है कि अभी भी कौन-सा दुखी है? भूखी रहती है या तन ढकने को कपड़े नहीं हैं? 'मैं कुँवारी रह गई, तो कौन-सा आसमान फट पड़ा। इन दोनों की भी अगर शादी ना हो सकी तो क्या हो जाएगा?'[16] दूसरे दिन अम्मा नीरू की शादी नील से करने के लिए कहती हैं। इस बात पर सुषमा कुछ नहीं कह पाती। अम्मा और नीरू घर चले जाते हैं। अम्मा सुषमा को घर जाते ही नील और नीरू की शादी के बारे में खत लिखती है, पर सुषमा उस खत को फाड़कर फेंक देती है।

मिस शास्त्री सुषमा को वार्डन पद से हटाने के लिए षड्यंत्र रचती है, जिससे सुषमा

अनजान थी। एक दिन नील आया हुआ था। मानसिक थकान के कारण सुषमा नील से लिपट जाती है। तभी भौरी आकर सुषमा को बताती है कि मिसेज राय चौधरी, मिसेज अग्रवाल, मिस शास्त्री आ रहे हैं। सुषमा इन लोगों के आने का मतलब समझ गई थी। सुषमा सबका परिचय नील से कराती है। नील सबको नमस्कार करके चला जाता है। दूसरे दिन सुषमा लाइब्रेरी में भी लड़कियों के मुँह से अपनी और नील की बात को सुनती है। तब उसे बहुत दुख होता है, वह सोचती है कि जिन लड़कियों के लिए उसने इतना किया। वह लड़कियाँ उसके लिए इतनी गिरी हुई बातें करती हैं। सुषमा नील को फोन करके बुला लेती है। वह उसके साथ चली जाती है। नील बताता है कि फर्म की ओर से वह कॉलिंग जानेवाला है। वह सुषमा को भी साथ ले जाना चाहता है लेकिन वह मना कर देती है। वह चाहती है कि जो कुछ खुद के साथ हुआ वह अपने भाई-बहनों के साथ न हो। एक बार मीनाक्षी से सुषमा कहती है कि 'आज से सोलह साल बाद शायद तुम अपनी बेटी को लेकर इस कॉलेज में आओ तब भी मुझे यहीं पाओगी। कॉलेज के पचपन खंभों की तरह स्थिर अचल...!'[17]

प्रिंसिपल का सुषमा पर स्नेह था। कई लोगों ने सुषमा की शिकायत की थी। प्रिंसिपल इस मामले को वहीं दबा देना चाहती थीं। वह चाहती हैं कि सुषमा अपने आप इस्तीफा दे दें। प्रिंसिपल के सामने सुषमा कुछ न कह सकी। लेकिन सुषमा अपनी परेशानी नील को बताते हुए कहती है–'मेरी बहुत जिम्मेदारियाँ हैं तुमसे तो कुछ भी छिपा नहीं है। पक्षाघात से पीड़ित बाबू, दो बहनें और भाई सब-कुछ मुझे ही करना है।'[18]

नील सुषमा को अपने साथ ले जाना चाहता है। पर वह अपने परिवार को भटकते दुखी होते नहीं देख सकती थी। खुद पर कोई भी आँच आए या कोई भी दुख हो, वह झेल सकती है, लेकिन उनके परिवार को बीच समंदर में छोड़ना उसे सही नहीं था। अपनी उलझनों को अकेले ही पार लगाने का तय करके नील से कह देती है कि 'यह कॉलेज, यह खंबे मेरी डेस्टिनी है, मुझे यहीं छोड़ दो।'[19] सुषमा मजबूर है, उनके परिवार का भला सोचने वाली सुषमा को अपनी खुशियों का गला घोटना पड़ता है। फिर सुषमा कॉलेज से छुट्टी लेकर नीरू की शादी पर चली जाती है। नीरू की शादी होने के बाद सुषमा वापस दिल्ली लौट आती है। दिल्ली आने के बाद सुषमा नीरू की शादी की खुशी में पार्टी देती है। उसमें सब शामिल हुए थे, पर नील की कमी थी। सारे अतिथि आपस में कह रहे थे कि सुषमा ने नील के साथ संबंध तोड़कर समझदारी का काम किया है। उसकी जिम्मेदारियाँ हैं और फिर ऋण भी तो चुकाना है। वह जाकर प्रिंसिपल से कह आई थी कि अगर नील के आने से लोगों को आपत्ति है, तो वह अब यहाँ नहीं आएगा। उसे सबसे अधिक क्रोध अपने सहयोगियों पर था। सुषमा कॉलेज के अनेक कामों में उलझ जाती है। अब उसके लेक्चर में पहले जैसे तन्मयता नहीं रहती। सुषमा सोचती है कि 'नील के बगैर मैं कुछ भी नहीं हूँ। केवल एक छाया, एक खोए हुए स्वर की प्रतिध्वनि और अब ऐसी ही रहूँगी, मन में विरानिया में भटकती हुई।'[20] अकेलेपन से उबरने के लिए सुषमा बाहर चली जाती है। फिर जब वह वापस आती है तो नील की कार को देखती है। वह नील की कार में बैठ जाती है और दोनों किसी एकांत जगह पर चले जाते हैं। नील सुषमा को फिर समझाने की कोशिश करता है पर वह मौन है। नील सुषमा से कहता है–'सुषमा क्या मेरे लिए कोई आशा नहीं है? तुम मेरे प्रति इतनी क्रूर क्यों हो गई हो।'[21] नील का हर प्रयत्न नाकामयाब रहता है। वह सुषमा को बंदीघर में छोड़कर चला जाता है।

 ISSN 0975-735X

नील के जाने के बाद सुषमा के जीवन में कोई उत्साह नहीं रहता। एक बार वह और मीनाक्षी बाजार जाते हैं। वहाँ उसे कौशल्याजी नील की माँ और बहन मिलते हैं वह बताते हैं कि नील कल रात को हौलैंड जा रहा है। सुषमा हिस्ट्री एसोसिएशन की प्रेसिडेंट थी। सारे दिन काम में व्यस्त होने के बावजूद वह एक पल भी नील को भुला नहीं पाई थी। वह नील से मिलने के लिए तड़प रही थी। वह मीनाक्षी से टैक्सी लाने के लिए कहती है, लेकिन कुछ क्षण में ही सारी आकुलता और उत्सुकता शांत हो जाता है। वह कहती है–'टैक्सी वापस कर दो मीनाक्षी, मैं नहीं जाऊँगी।'[22] इस तरह उपन्यास का अंत हो जाता है। अजनबीपन के इस माहौल में सुषमा अपने को बिल्कुल अकेला पाती है। वह जीवित तो रहती है, पर पचपन खंभे की तरह स्थिर। इस उपन्यास के मूल में सुषमा का पारिवारिक शोषण प्रेमकथा में प्रेमी की बेबसी एवं निष्क्रियता का चित्रण हुआ है।

संदर्भ

1. पचपन खंबे लाल दीवारें, उषा प्रियवंदा, पृ॰ 10
2. वही, पृ॰ 15
3. वही, पृ॰ 15
4. वही, पृ॰ 13
5. वही, पृ॰ 14
6. वही, पृ॰ 33
7. वही, पृ॰ 36
8. वही, पृ॰ 41
9. वही, पृ॰ 41
10. वही, पृ॰ 54
11. वही, पृ॰ 63
12. वही, पृ॰ 65
13. वही, पृ॰ 66
14. वही, पृ॰ 66
15. वही, पृ॰ 89
16. वही, पृ॰ 89
17. वही, पृ॰ 129
18. वही, पृ॰ 134
19. वही, पृ॰ 135
20. वही, पृ॰ 145
21. वही, पृ॰ 149
22. वही, पृ॰ 156

सहयोगी प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष
स्नातकोतर हिंदी विभाग
महाराष्ट्र उदयगिरी महाविद्यालय, उदगीर
जि॰ लातूर 413517 **महाराष्ट्र**

शब्द-अर्थ चिंतनधारा का संस्कृतनिष्ठ प्रवाह

प्रो॰ धर्मेंद्रकुमार द्विवेदी
संस्कृत विभाग
राजकीय महाविद्यालय, पुंवारका, सहारनपुर

अइउण् से हल् पर्यंत कुल चौदह माहेश्वर सूत्र, जो भगवान शिव के द्वारा अष्टाध्यायी के प्रणेता महर्षि पाणिनि को प्राप्त हुए[1], जिसके आधार पर संपूर्ण संस्कृत व्याकरण प्रतिष्ठित है, भाषा परिमार्जित या परिष्कृत है, देवभाषा के रूप में ज्ञात है, उसी के संबंध में आचार्य दंडी कहते हैं– 'संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।[2]

इसी देवभाषा के अंतर्गत देवनागरी वर्णमाला में बयालीस वर्ण या अक्षर स्वर-व्यंजन के रूप में हैं।[3] इन स्वर-व्यंजन वर्णों का विकसित स्वरूप शब्द है। शब्द, जिसमें तीन व्यंजन एवं दो स्वर मिले हैं, वास्तव में अखिल जगत् का सार है, आधार है, प्राणतत्त्व है, मूलतत्त्व है, जिसके बिना जीवन जीने की कल्पना, कल्पनामात्र ही है। यही कारण है कि वाक्यपदीय के प्रणेता आचार्य भर्तृहरि ब्रह्मकांड में शब्दतत्त्व के संबंध में उद्घोष करते हैं–

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्तते अर्थभावेन प्र8िया जगतो यतः।[4]

अर्थात् जो उत्पन्न एवं विनष्ट नहीं होता, जिसमें आगे-पीछे उत्पन्न होने का कोई क्रम भी नहीं है, जो ककारादि वर्णों का कारण होते हुए भी कार्य अर्थ के रूप में भासित हुआ करता है अथवा जो शब्द-अर्थ उभय रूप है, जिससे जगत् की प्रक्रिया चलती रहती है, वह पश्यन्ती वाक् रूप शब्दतत्त्व ही ब्रह्म है। शब्द में ब्रह्म का आरोपण करके भगवान भर्तृहरि ने शब्द के व्यापकत्व की तरफ भी संकेत कर दिया है। जिस तरह, ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है तथा इस सत्य में सांसारिक प्रपंच की प्रतीति मिथ्या है (ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः)[5], अतः इस सांसारिक प्रपंच को ब्रह्म का परिणाम मानना उचित नहीं होकर विवर्त मानना उचित है, उसी तरह, शब्द को देखा जाना चाहिए, जो है तो एक-एक परंतु व्यवहार के कारण परिणाम में परिवर्तन दृष्टिगत है। महाभाष्यकार पतंजलि तभी तो लिखते हैं–'एकेकस्य हि शब्दस्य बहवो अपभ्रशाः।'[6]

सचमुच एक-एक शब्दों के बहुत सारे अपभ्रंश हैं। इसे ब्रह्मवत् ऐसे कह सकते हैं कि व्यवहार वैचित्र्य के कारण अपभ्रंशवत् शब्दों का ही दर्शन अन्य अर्थों में किया जाता है। देखिए जरा वाक्यपदीयकार को, जिन्होंने इस शब्दब्रह्म को एक मानकर इससे भिन्न-भिन्न कार्यों, वेदादि की उत्पत्ति को कहते हुए भी वास्तविक भेद की जगह भेदवत् शक्ति-वैचित्र्य के कारण कहा है–

एकमेव यदाम्नातं भिन्नं शक्तिव्यपाश्रयात्।
अपृथक्तवेपि शक्तिभ्यःपृथक्तवेनेव वर्तते।[7]

कहना यहाँ यह है कि शक्ति की विचित्रता से हम शब्दब्रह्म का पृथक्-पृथक् रूपों में ज्ञान प्राप्त करते हैं। यहाँ लौकिक रूप से यह मानना गलत नहीं कि जिस ब्रह्मरूपी शब्द का

 ISSN 0975-735X

विभिन्न रूपों में हम ग्रहण करते हैं, उसका व्यवहार करते हैं, उसमें सावधानी का होना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि ऐसा नहीं होने पर जगत् में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कहा भी गया है–'जैसी करनी वैसी भरनी।'

मूल बात यह है कि शब्द अर्थत: है और अर्थ को प्रतिभासित करना हमारे हाथ में है। अत: यह आवश्यक है कि हम शब्दों की सम्यक् जानकारी प्राप्त करें तथा उसका शास्त्रसम्मत प्रयोक्ता बनकर स्वयं का ही सही, कल्याण तो करें। व्याकरणमहाभाष्य के प्रतिष्ठित टीकाकार केयट ने प्रदीप-टीका में लिखा है–'एक: शब्द:सम्यक् ज्ञात:शास्त्रान्वित:सुप्रयुक्त:स्वर्गेलोके कामधुग्भवति।'[8]

महर्षि पतंजलि ने 'अथ शब्दानुशासनम्[9], केषां शब्दानाम्[10], लौकिकानां वैदिकानां च[11], अथ गौरित्यत्र क:शब्द:[12], किं यत्तत् सास्नालांगूलककुदखुरविषाण्यर्थरूपं स शब्द: [13], प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनि: शब्द इत्युच्यते[14], कानि पुन: शब्दानुशासनस्य प्रयोजनानि[15], इत्यादि वाक्यों के माध्यम से पूर्णत: यह स्पष्ट किया है कि शब्द व्यापकत्व संपन्न है। इसी क्रम में स्फोट/ध्वनि आदि की विस्तृत चर्चा भी है। शब्द प्रयोग में चिंतनशीलता, मननशीलता अत्यावश्यक है जिससे संभावित दोष का परिष्कार संभव हो सके–'अथ यो वाग्योगविद्, विज्ञानं तस्य शरणम्।'[16]

यहाँ यह विचारणीय है कि शब्द प्रयोग का ज्ञाता कैसे बनें? स्वाभाविक उत्तर है कि इसके लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है–महतादेवेन न: साम्यं यथा स्यादित्यध्येयं व्याकरणम्।'[17]

व्याकरण वैसे भी वेदपुरुष का मुख कहलाता है–'मुखं व्याकरणं स्मृतम्।'[18]

अन्यत्र कथित है–

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजन:श्वजनो मा भूत्सकलं शकलं सकृत् शकृत्।[19]

यहां दन्त्य-स् तथा तालव्य-श् के अंतर से अर्थ परिवर्तन विचारणीय है–

1. स्वजन:-अपने लोग, श्वजन:-कुत्ते लोग
2. सकलम्-सब, शकलम्-आधा
3. सकृत्-एक बार, शकृत्-शौच

अतएव उक्त अनर्थ से बचने के लिए व्याकरण-ज्ञान आवश्यक है। सत्यत:जो वाक् तत्त्व को जानता है तथा शब्दविद् है, उसके लिए वाणी अपने स्वरूप को इस प्रकार प्रकट कर देती है जिस प्रकार स्त्री अपने स्वरूप को अपने पति के लिए–

उत त्व: पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्व:श्रृण्वन्न श्रृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासा:।[20]

निश्चित रूप से सुशब्दप्रयोगवेत्ता/कवि आदि की कीर्तिपताका अनंतकाल तक जय-जयकार योग्य है। मम्मट कहते हैं–'कवे: भारती जयति।'[21]

ध्वन्यालोककार आनंदवर्धनाचार्य ने कवि को स्वयं प्रजापति या ब्रह्म और काव्य-संसार को उनकी सृष्टि कहा है–

अपारे काव्यसंसारे कविरेक: प्रजापति:।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।[22]

स्पष्टत: कवि अर्थात् शब्दार्थ (काव्य)का विशिष्ट प्रयोक्ता ही प्रजापति (ब्रह्म) है। वाक्यपदीयकार भगवान भर्तृहरि एकत्व भाव से शब्द को ब्रह्म कहकर या शब्द में ब्रह्म की प्रतिष्ठा

कर कहते हैं–'तत् शब्दतत्त्वं पश्यन्ती वाग्रूपं ब्रह्मेति सम्बन्धः।'[23]

इसी का अवलंबन कर कवि, काव्य एवं साहित्य की अखिल जगत् में ख्याति होती है। देखा जाए तो शब्द एवं अर्थ के विशेष संबंध का नाम है 'साहित्य।' शब्द-अर्थ के बीच साहित्यिक दृष्टि से चार प्रकार के विशिष्ट संबंध दृष्टिगोचर होते हैं–

1. दोष का अभाव
2. गुण का सद्भाव
3. अलंकार का योग
4. रस का अवियोग

वस्तुतः साहित्य में अर्थ सौंदर्य की अपेक्षा शब्द सौंदर्य और शब्द सौंदर्य की अपेक्षा अर्थ सौंदर्य, दोनों ही अन्यून (Not Less) एवं अनतिरिक्त (No More) रूप में विद्यमान रहते हैं–अवस्थित रहते हैं। शब्द एवं अर्थ के इस संतुलित (Balance) सौंदर्य में ही काव्यत्व प्रतिभासित हुआ करता है। शब्द-अर्थ के इस मिलित-मधुर स्वरूप को विभिन्न काव्यकार काव्य-लक्षण का आधार मानते हैं। [24]

1. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि–मम्मट
2. शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद् द्विधा–भामह
3. काव्यशब्दो अयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते–वामन
4. शब्दार्थौ काव्यम्–रुद्रट
5. अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्–हेमचन्द्र
6. शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालंकारौ च काव्यम्–वाग्भट्ट
7. गुणालंकारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ–विद्यानाथ
8. शब्दार्थौ वपुरस्य तत्र विवुधैरात्माभ्यधायि ध्वनिः–विद्याधर

उपयुक्त काव्य-लक्षण शब्द एवं अर्थ दोनों में काव्यत्व को कहता है और यही बहुजन समादृत मत है। कहना अनुचित नहीं होगा कि इष्ट अर्थात् मनोरम हृदयाह्लादक अर्थ से युक्त पदावली-शब्द समूह-अर्थात् शब्द और अर्थ दोनों मिलकर ही काव्य के शरीर हैं–'शरीरं तावदिष्टार्थ-व्यवच्छिन्ना पदावली।'[25]

यहाँ आचार्य दंडी ने शब्द-अर्थ मंजुल समन्वय में काव्य शरीर को फल के रूप में कहा है। वैसे काव्यकारों ने काव्य की आत्मा (रीतिरात्मा काव्यस्य [26], काव्यस्यात्मा ध्वनिः [27]) पर भी बातें की हैं। कविराज राजशेखर ने शब्दार्थौ ते शरीरम् [28] के साथ ही 'रस आत्मा'[29] कहकर शब्द-अर्थ सहित काव्य में रसतत्त्व को आत्मतत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। इसी रसतत्त्व को प्रधानभूत मानकर साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ का उद्‌घोष द्रष्टव्य है–'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।' [30]

इस लक्षण से विश्वनाथ ने रसवादी परंपरा को महत्त्वपूर्ण गति प्रदान की है। उनका मानना है कि जिस वाक्य में आत्मतत्त्व रस हो, उस वाक्य को रसात्मक वाक्य कहते हैं। इसके अभाव में कोई भी वाक्य काव्य कहला नहीं सकता। रस से अभिप्राय यहाँ आस्वाद के विषय से है, मात्र शृंगारादि रस से नहीं। यहाँ रस के अंतर्गत भाव, भावाभास, रसाभास आदि सभी आ जाते हैं क्योंकि ये सभी सहृदयों के आस्वाद के विषय होते हैं।[31] पंडितराज जगन्नाथ का काव्य के विषय में आकलन थोड़ा भिन्न है जो 'रमणीयता' को काव्य का मूल तत्त्व कहते हैं अर्थात् रमणीय अर्थ के

 ISSN 0975-735X

प्रतिपादक शब्द ही काव्य हैं–'रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्।'[32]

इस क्रम में पंडितराज ने मम्मट प्रतिपादित 'शब्दार्थौ' विशेष्यांश का खंडन करते हुए लिखा है कि शब्द ही काव्य हैं, शब्दार्थ नहीं, क्योंकि काव्य सुना पर अर्थ समझ में नहीं आया, वह उच्च स्वर से काव्यपाठ करता है आदि वाक्यों में काव्य-शब्द 'शब्द' का वाचक है, अर्थ का नहीं। दूसरी बात यह कि शब्द और अर्थ दोनों को मिलाकर भी काव्य नहीं कह सकते हैं, साथ ही दोनों अलग-अलग भी काव्य नहीं। वास्तव में एक और मिलकर 'दो' होते हैं, अत: न तो दो 'एक' को तथा न ही एक 'दो' को कह सकते हैं। कारण यह है कि अवयव एवं अवयवी की सत्ता में सदा पार्थक्य रहता है। अत: शब्द ही काव्य है। वस्तुत: पंडितराज के ये दोनों तर्क महत्त्वपूर्ण नहीं हैं क्योंकि 'काव्य सुना' वाक्य में 'काव्य' शब्द का वाचक है और 'काव्य समझा' में 'काव्य शब्द' अर्थ का वाचक है। फिर शब्द और अर्थ में से किसी एक के लिए रूढ़ा लक्षणा द्वारा अन्यार्थ की प्रतीति संभव है। अत: शब्दार्थ को काव्य मानना अधिक तर्कसंगत है।[33] इस शब्दार्थ का अर्थात् काव्य में शब्द-अर्थ का साधारण प्रयोग से भिन्न प्रयोग/वक्रपूर्ण प्रयोग काव्य की आत्मा है। आचार्य कुंतक कहते हैं–'वक्रोक्ति काव्यजीवितम्।'[34]

और भी, 'काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा'[35] कहकर ध्वन्यालोककार आनंदवर्धनाचार्य ने ध्वनि-काव्य को प्रतिष्ठित कर दिया है। ध्वनि के संबंध में कहा गया–[36]

1. ध्वनति य: स: व्यंजक: शब्द: ध्वनि:
2. ध्वनति ध्वनयति वा य: स: व्यंजको अर्थ: ध्वनि:
3. ध्वन्यते इति ध्वनि:
4. ध्वन्यते अनेन इति ध्वनि:
5. ध्वन्यते अस्मिन्निति ध्वनि:

आचार्य अभिनवगुप्त ने ध्वनि के उक्त अर्थों पर विचार करते हुए कहा है कि सर्वत्र शब्द और अर्थ दोनों का ही ध्वनन व्यापार होता है। ...यह काव्य विशेष का अर्थ है, अर्थ या शब्द या व्यापार। वाच्य अर्थ भी ध्वनन करता है और शब्द भी। इसी प्रकार, व्यंग्य अर्थ भी ध्वनित होता है अथवा शब्द अर्थ का व्यापार भी ध्वनन है। इस प्रकार, कारिका के द्वारा प्रधानतया समुदाय शब्द, शब्द-वाच्य (व्यंजक) अर्थ, व्यंग्य अर्थ तथा शब्द एवं अर्थ का व्यापार ही ध्वनि है।[37] स्पष्टत: काव्यमर्मज्ञगण शब्द-अर्थ समन्वित काव्य के मूल में विविध तत्त्वों को स्थान देते रहे हैं परंतु यहाँ लगभग एकमत यह है कि शब्द-अर्थ का वैशिष्ट्यपूर्ण प्रयोग, चाहे अलग-अलग दृष्टि से हो, होने पर ही काव्य-सर्जना संभव है।

निष्कर्षत: यह स्पष्ट होता है कि भारतवर्ष के महामनस्वियों ने अपनी-अपनी सुदीर्घ प्रतिभा का अवलंबन करके शब्द-अर्थ को दार्शनिक, व्याकरणिक, साहित्यिक एवं अन्य दृष्टिकोणों से जाँचा-परखा है, जिससे कई तथ्य हमारे समक्ष उपस्थित हुए हैं। एक बात जो सार्वकालिक रूप में है,वह यह है कि शब्दब्रह्म के अर्थत: ग्राह्य होने पर अखिल जगत् में प्रतिष्ठा संभव है।

संदर्भ

1. काले हायर संस्कृत ग्रामर, (उपोद्घात), डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, रामनारायणलाल बेनीप्रसाद, इलाहाबाद, पृ॰ 7
2. वही, पृ॰ 1

3. वही, पृ॰ 1
4. वाक्यपदीयम् (ब्रह्मकाण्डम्), पं॰ श्री रुद्रप्रसाद अवस्थी, चौखंभा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ॰ 02
5. संस्कृतनिबंधशतकम्, डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन , वाराणसी, पृ॰ 56
6. व्याकरणमहाभाष्यम्, पं॰ श्री मधुसूदन प्रसाद मिश्र, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, पृ॰ 14
7. वाक्यपदीयम् (प्रथमं ब्रह्मकाण्डम्), डॉ॰ शिवशंकर अवस्थी, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, पृ॰ 51
8. व्याकरणमहाभाष्यम्, पं॰ श्री मधुसूदनप्रसाद मिश्र, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, पृ॰ 17
9. वही, पृ॰ 2
10. वही, पृ॰ 3
11. वही, पृ॰ 3
12. वही, पृ॰ 4
13. वही, पृ॰ 5
14. वही, पृ॰ 7
15. वही, पृ॰ 8
16. वही, पृ॰ 15
17. वही, पृ॰ 19
18. पाणिनीय शिक्षा, विद्यासागर डॉ॰ दामोदर महतो, मोतीलाल बनारसीदास, पृ॰ 48
19. काले हायर संस्कृत ग्रामर, डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, पृ॰ 1(उपोद्घात)
20. व्याकरणमहाभाष्यम्, पं॰ श्री मधुसूदनप्रसाद मिश्र, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, पृ॰ 21
21. काव्यप्रकाश, आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, पृ॰ 05
22. वही, पृ॰ 05
23. वाक्यपदीयम् (ब्रह्मकाण्डम्), पं॰ श्री रुद्रप्रसाद अवस्थी, चौखंभा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ॰ 02
24. काव्यप्रकाश, आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, पृ॰ 19-24
25. वही, पृ॰ 25
26. वही, पृ॰ 26
27. वही, पृ॰ 26
28. काव्यमीमांसा, डॉ॰ श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पृ॰ 27
29. वही, पृ॰ 27
30. साहित्यदर्पणः, श्री शालिग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ॰ 19
31. साहित्यालोचन, डॉ॰ राजकिशोर सिंह, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ, पृ॰ 32
32. वही, पृ॰ 33-34
33. वही, पृ॰ 34-35
34. वही, पृ॰ 159
35. ध्वन्यालोक, आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, पृ॰ 29
36. साहित्यालोचन, डॉ॰ राजकिशोर सिंह, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ, पृ॰ 231
37. वही, पृ॰ 232

राजकीय महाविद्यालय, पुंवारका, सहारनपुर
(उत्तर प्रदेश)
मो॰ 9838499591

निराला के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

डॉ॰ अखिलेश राम
असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
रा॰म॰म॰वि॰, शाहगंज (जौनपुर)

आधुनिक हिंदी कविताक्रम का विकास नवजागरणकाल से संबंधित है। इस क्रम में अनेक प्रवृत्तियाँ साहित्यिक कालक्रम में परिलक्षित होती हैं। भारतेंदुयुग और द्विवेदीयुग में एक साथ कई प्रकार के रचनाएँ लिखी जा रही हैं परंतु सुस्पष्ट, वैविध्यपूर्ण तथा स्वच्छंद मानसिकता के आधार पर काव्य सृजन प्रथम बार छायावाद में ही होता है। इतिहास में स्वाधीन वह राष्ट्रीय चेतना का मुख्य स्वर इस काल की हिंदी रचनाओं में एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में दृष्टिगोचर है। निराला जी ऐसे समय एक क्रांतिकारी कवि के रूप में हिंदी साहित्य के पटल पर आभामान होते हैं। राष्ट्रमुक्ति का सवाल अहम है और उनका नजरिया भी साफ है, जब वे कहते हैं–

योग्य-जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नहीं
गीता है, गीता है
स्मरण करो बार-बार,
जागो फिर एक बार।[1]

उनकी कविताओं में भारत की गुलामी से मुक्ति का आह्वान, उस आह्वान के प्रति उनका रुख तथा प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं, विचारकों से उनकी विचारधारा का तालमेल उनकी राष्ट्रीयता का बारीक मूल्यांकन होगा। ऐसे बहुत से सवाल उठते हैं कि वे किस प्रकार की राष्ट्रीयता को उचित मानते थे। वे पुनरुत्थानवादी हैं या पुनर्जागरण मात्र को राष्ट्रीय उत्थान के लिए आवश्यक मानते हैं क्योंकि अपनी कविताओं में भारतीय संस्कृति की गौरव व परंपरा को स्वीकार करते हैं। बहरहाल, राष्ट्रीयता का सवाल उनके काव्य में राष्ट्र व मानव उत्थान से जुड़े हर पहलुओं से रूबरू होने का रहा है। निराला के काव्य में राष्ट्रीय चेतना प्राचीन संस्कृति, भारतीय गौरव अस्मिता से होते हुए ही राष्ट्रीय संदर्भ को प्राप्त करती है जैसा कि इस बात को शिवदानसिंह चौहान भी स्वीकार करते हुए कहते हैं–

'राष्ट्रीय जागरण और आंदोलन की प्रेरणाएँ सामयिक और बाह्य स्तर की होने के कारण अधिक बलवती होती हैं। उन पर समूचे देश का सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास निर्भर करता है। इसलिए अधिक व्यापक और तलस्पर्शी होते हुए भी सांस्कृतिक भावना का रूप-विन्यास राष्ट्रीय जागृति से प्रभावित होता है। इस दृष्टि से ही हम कह सकते हैं कि देश की प्राचीन संस्कृति और पाश्चात्य काव्य साहित्य के प्रभावों को ग्रहण करती हुई छायावादी कविता राष्ट्रीय जागरण के क्रोड में पनपी और फूली फली।'[2]

इस आधार पर राष्ट्रीयता की बुनियाद निर्मित होती है।इसके पीछे प्रमुख कारण सैनिक के

साथ सांस्कृतिक टकराहट का भी प्रश्न है। राष्ट्रीय चेतना का प्रेरक बिंदु राष्ट्रीयता व सांस्कृतिक चेतना का समिश्र रहा है परंतु वे रूढ़िगत सांस्कृतिक चेतना को तोड़ देना चाहते हैं, एक साथ कई मुक्त के सवालों पर कार्य करते हैं–

अमरण भर वरण गान, वन-वन,
उपवन-उपवन जागी छवि खुले प्राण।[3]

बड़ी कविताओं में वे राष्ट्रीय मुक्ति के सवाल पर एक साथ देश, समाज और व्यक्ति तीनों की मुक्ति की बात करते हैं जैसे राम की शक्ति पूजा, सरोज-स्मृति और तुलसीदास जैसी लंबी कविताओं की मूल स्थिति भारतीय संस्कृति व राष्ट्रीय स्वाधीनता की चेतना गहराई तक जुड़ी है। जब निराला राम की शक्ति पूजा में कहते हैं–

आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन
छोड़ दो समर जब तक न सिद्ध हो रघुनंदन।[4]

'राम की शक्ति पूजा' में राम को अपनी शक्ति के लिए संधान करना पड़ता है क्योंकि देवी उनका साथ छोड़कर आसुरी शक्तियों की मददगार हो गई हैं। दूसरे रूप में देवी खुद अपने साधक की साधना को परीक्षित करती है, साधक अर्थात् भगवान राम के धैर्य, साहस व संकल्प की परीक्षा लेती है। अंततः राम उचित व सार्थक संकल्पधर्मी साधना व तपस्या से देवी का वरण करते हैं–

होगी जय होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन,
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।[5]

जब तक राम सत्य की मौलिक कल्पना से दूर रहते हैं और आराधन का दृढ़ आराधन से उत्तर नहीं देते हैं तब तक वह बार-बार विचलित होते हैं। अपने को धरती में समा लेना चाहते हैं। इन सभी प्रसंगों की कायदे से पड़ताल की जाए तो स्वाधीन व राष्ट्रीय चेतना का संदर्भ मुखरित होता है। भारत माँ आसुरी शक्तियों अर्थात् अँग्रेजी हुकूमत की बेड़ियों में जकड़ गई है। बेड़ी से बाहर अर्थात् मुक्ति का मार्ग संकल्पधर्मिता और आराधना का दृढ़ आराधन से उत्तर देने पर ही परिणाम प्राप्त हो सकता है। इसी तरह सांस्कृतिक संकट को दूर करने के लिए तुलसीदास को उद्धारक व सूर्य के प्रकाश के रूप में प्रस्तुत करते हैं क्योंकि भारत देश पर भयंकर सांस्कृतिक अँधेरा छा गया है। 'कुकुरमुत्ता' में पूँजीवाद की व्यंग्यात्मक शैली में धज्जियाँ उड़ा देते हैं। 'सरोज-स्मृति' में रीति-रिवाजों व कर्मकांडों को चुनौती देते हुए अमान्य कर देते हैं। इस संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी की बात अधिक न्यायोचित प्रतीत होती है–

'पुनर्जागरणयुग में यह सांस्कृतिक संघर्ष की वस्तु अर्थ के स्तर पर और संचरणशील हो जाती है, अब टकराहट भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियों के बीच है। रचना-शक्ति की जय, भारती (तुलसीदास) और दुर्गा (राम की शक्ति पूजा) जिसकी अधिष्ठात्री हैं, में कवि की गहरी आस्था है।'[6]

कोई भी कवि अपने इतिहास एवं संस्कृति के मूल्यों के आधार पर ही मुक्तिगामी चेतना की बात करता है।ठीक निराला भी उसी प्रकार से राष्ट्रीय चेतना के पक्षधर रहे हैं। राष्ट्रीय चेतना के अंदर निराला सिर्फ अँग्रेजी सत्ता पर ही चोट नहीं करते हैं बल्कि अँग्रेजी मानसिकता परक

 ISSN 0975-735X

विचारधाराओं से जुड़े प्रमुखों पर भी चोट करते हैं। इसके साथ ही साथ देश के भीतर जड़ पूँजीवादी ताकतों की जड़ों को भी हिला देते हैं। कुकुरमुत्ता, बेला, नए पत्ते, तोड़ती पत्थर व सरोज-स्मृति आदि प्रमुख रचनाओं में यह चेतना व स्वर देखने को मिल जाएगा। इसका कारण उस समय की घटनाएँ रही हैं जैसा कि इस बात से भी समझा जा सकता है।

निराला की रचनात्मक ऊर्जा का विकास जिन वर्षों में हुआ है, वह मुख्य काँग्रेस और ब्रिटिश राज के बीच घोर संघर्ष का समय है। निराला शुरू में आजादी के विचार से भावनात्मक स्तर पर बहुत उद्वेलित दिखाई पड़ते हैं। इस उद्वेलन में कभी-कभी उनकी अनुभूतियाँ उच्छल स्तर पर उद्वेलित दिखाई पड़ती हैं, तो कभी राम, तुलसी और शिवाजी के माध्यम से वे गुलामी से मुक्ति का स्वप्न देखते हुए भारतीय जनमानस को जगाने और उठ खड़े होने के लिए ललकारते हैं।[7]

निराला के काव्य का मूल्यांकन करते हुए आलोचकों ने उन्हें क्रांतिकारी कवि के रूप में स्थापित किया है। उनके राजनीतिक विचार व साहित्यिक विचार अलग-अलग नहीं थे बल्कि उनकी विचारधारा राष्ट्र व मानव-जाति के उत्थान से जुड़ी थी। राष्ट्रवाद के संदर्भ में इस कथन पर ध्यान दिया जाना जरूरी है।

'अरविंद घोष का विश्वास था कि मानव-जाति के विकास के लिए राष्ट्रवाद पहली आवश्यकता है। उनके विचार से राष्ट्र का विकास मूल्य मनुष्य का विकास है क्योंकि व्यक्तिगत स्वार्थ व पारिवारिक स्वार्थ की, जिनकी जड़ें बहुत गहरी हैं, उनके लिए व्यापक राष्ट्रीय हित में राष्ट्र की व्यवस्था में विलीन होना जरूरी है क्योंकि इसी में मानवता का कल्याण निहित है।'[8]

इस कसौटी पर निराला का काव्य खरा उतरता है। जागो फिर एक बार, बादल राग, गर्जन से भर दो वन, अध्यात्म फल, ध्वनि, वर दे! वीणावादिनी वर दे!, भारत जय विजय करे! जैसी लघु कविताओं में भी राष्ट्रीय चेतना की ध्वनि विद्यमान है। लंबी कविताओं में निराला का तीव्र स्वर राष्ट्रीय चेतना व सांस्कृतिक चेतना के रूप में मुखरित होता है। इस प्रकार निराला राष्ट्रीय चेतना के सशक्त हस्ताक्षर के रूप में हिंदी साहित्य में अमर हैं।

संदर्भ

1. निराला आत्महंता आस्था, दूधनाथसिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ॰ 135
2. हिंदी साहित्य के 80 वर्ष, शिवदानसिंह चौहान, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 69
3. राग-विराग, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, संपा॰ रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ॰ 43
4. वही, पृ॰ 100
5. वही, पृ॰ 104
6. प्रसाद-निराला-अज्ञेय, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ॰ 54
7. निराला आत्महंता आस्था, दूधनाथसिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ॰ 147
8. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ॰ अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 302

कुसुम अंसल के कथासाहित्य में चित्रित समलैंगिकता

प्रा॰ गजानन हरिभाऊ सर्वज्ञ

कुसुम अंसल एक बहुमुखी प्रतिभा की लेखिका हैं। उन्होंने समकालीन समस्याओं को अपने साहित्य का विषय बनाया है। वह सभी विषयों पर सशक्त रूप से लेखन करती हुई दिखाई देती हैं। उन्होंने समकालीन प्रश्नों को अपने समग्र साहित्य में स्थान दिया है। उनके साहित्य में मनुष्य की आज की महत्त्वपूर्ण समस्याएँ चित्रित हुई हैं। उसमें समलैंगिकता भी एक महत्त्वपूर्ण समस्या है, क्योंकि आज वह वैश्विक समस्या बन रही है। कुसुम अंसल के साहित्य में समलैंगिकता के दुष्परिणामों का चित्रण हुआ है। उनके साहित्य में स्त्री और पुरुष दोनों के ही समलैंगिक संबंधों का चित्रण हुआ है।

समलैंगिकता का वर्णन प्राचीन साहित्य में भी हुआ है। परंपरागत रूप से भले ही उसे मान्यता न हो लेकिन समाज में ऐसे कई लोग हैं जिनकी यह आवश्यकता बन जाती है। सच तो यह है कि समलैंगिकता का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना कि मनुष्य का अस्तित्व। समलैंगिकता के वैश्विक परिदृश्य के संबंध में जी॰एल॰ शर्मा कहते हैं कि विश्व के 77 देशों ने समलैंगिक संबंधों को अप्राकृतिक मानते हुए इन्हें अपराध की श्रेणी में शामिल कर रखा है। यहाँ तक कि ईरान, सऊदी, अरब, यमन, सूडान, नाइजीरिया एवं सोमालिया जैसे देशों में समलैंगिक संबंधों के लिए मौत की सजा तक का प्रावधान है। यद्यपि विश्व के 144 देश समलैंगिक संबंधों को अपराध नहीं मनाते हैं। समलैंगिक संबंधों को सर्वप्रथम 1811 ई॰ में नीदरलैंड द्वरा मान्यता प्रदान की गई थी। ...नीदरलैंड ने 2001 में समलैंगिक विवाह (Homoseñyal Alliance) को मान्यता देकर नई पहल की। वर्तमान में 13 देशों में समलैंगिक जोड़ों को मान्यता मिली हुई है।'[1] इस प्रकार समलैंगिकता के वैश्विक परिदृश्य को समझा जा सकता है।

जहाँ तक भारतीय समाज का प्रश्न है, तो इसमें स्त्री-पुरुष के मध्य प्रजननमूलक यौन-क्रिया के अलावा कुछ अलग प्रकार के यौन-संबंध भी बनते रहे हैं, जिनमें समलैंगिकता भी एक है। यद्यपि हमारे समाज में ऐसे यौन-संबंधों को कभी खुलेतौर पर सामाजिक रूप से स्वीकार नहीं किया गया। ऐसा माना जाता है कि भारत में करीब 25 लाख लोग समलैंगिक हैं। इसमें 'दिल्ली की एड्स नियंत्रण सोसायटी द्वारा 2003 में कराए गए सर्वेक्षण के अनुसार दिल्ली में देह व्यापर में लगे पुरुष समलैंगिकों की संख्या इस सर्वेक्षण ने 7,532 आँकी है।'[2] इस बात से स्पष्ट होता है कि भारत के महानगरों में समलैंगिकों की यौनलिप्सा कितनी बढ़ रही है। समलैंगिक लोगों के अधिकारों की रक्षा करने और उन्हें वैधानिक मान्यता दिलाने के लिए एल॰जी॰बी॰टी॰ (LGBT& Lesbian Gay Bi&señual and Transgender) नामक समुदाय विश्वस्तर पर एक स्वैच्छिक संघटन के रूप में कार्य कर रहा है। 'नाज फाउंडेशन' भी इसी प्रकार का संघटन है, जो समलैंगिकों के अधिकारों के लिए कार्य का रहा है।

अब तक भारत में भी समलैंगिकता एक दंडनीय अपराध माना जाता था किंतु हाल ही में

 ISSN 0975-735X

सुप्रीम कोर्ट ने इसे वैधानिकता प्रदान की है। 6 सितंबर 2018 को सुप्रीम कोर्ट ने धारा 377 को समानता के अधिकार का हनन माना है। इसके संदर्भ में 7 सितंबर 2018 के 'जनसत्ता' समाचारपत्र के पहले पन्ने पर लिखा है कि 'सुप्रीम कोर्ट के पाँच सदस्यीय संविधान पीठ ने गुरुवार को एकमत से भारतीय दंड संहिता की 158 साल पुरानी धारा 377 के उस हिस्से को निरस्त कर दिया, जिसके तहत परस्पर सहमति से अप्राकृतिक यौन-संबंध बनाना अपराध था।'[3] इसके तहत भारत में भी समलैंगिकता को कानूनन इजाजत मिली है। लेकिन कुसुम अंसल ने अपने साहित्य के माध्यम से समलैंगिकता के कारण समाज पर होनेवाले विपरीत परिणामों को दर्शाने का प्रयास किया है।

कुसुम अंसल के कथासाहित्य में समलैंगिक संबंधों का चित्रण दिखाई देता है। लेखिका के 'तापसी' उपन्यास में समलैंगिक संबंध दिखाई देते हैं। इस उपन्यास में 'बरौता' नाम की एक विधवा है, जो कि विधवाओं की मुखिया है। वह आश्रम की अन्य विधवाओं पर समलैंगिक अत्याचार करती है। इस उपन्यास की नायिका 'तापसी' विधवा होकर वृंदावन के 'श्रीराधा-कृष्ण विधवा आश्रम' में दाखिल होती है। तब उस पर भी 'बरौता' समलैंगिक अत्याचार करती है। इसके विषय में लेखिका ने उपन्यास में लिखती हैं कि 'एक काली औरत उस पर झुकी थी। उसके कपड़े शरीर से दूर जा पड़े थे। निर्वस्त्र उस तगड़ी औरत का शरीर उस पर किसी काली प्रेतात्मा-सा तना था। वह चीखती रही, चिल्लाती रही, आसपास की औरतें तमाशा देखती रहीं काली औरत के दाँत, उसकी बदबूदार टपकती लार, उसके सारे शारीर पर कालिख-सी पोत गए थे। औरत ने औरत को इस स्थिति तक पहुँचा दिया जहाँ उसकी समूची शारीरिक शक्ति और उसका कमजोर विद्रोह उसे बेहोशी की स्थिति तक छोड़कर चला गया।'[4] इस कथन से नायिका पर होनेवाले समलैंगिक अत्याचार का पता चलता है। नायिका और बाकी की विधवाएँ मजबूरन उसका यह अत्याचार सहन करती थीं। वह जब चाहे जिसके साथ चाहे समलैंगिक संबंध प्रस्थापित करती थी। इस संबंध में लेखिका कहती हैं–'पता नहीं कब, रात के कौन से पहर में 'कोई' उसके शरीर पर हावी हो रहा था। उसका शरीर शरीर न होकर मिट्टी जैसा हो गया था, जिसे वह भयानक काली औरत रौंद रही थी, घसीट रही थी। तापसी चीखकर उठ बैठी। वैसा बलात्कार तो उसके बीमार पति ने भी नहीं किया था शायद?'[5] इस कथन से स्पष्ट होता है कि समलैंगिकता के कारण किस प्रकार एक औरत ही दूसरी औरत का शोषण करती है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका समलैंगिकता के दुष्परिणामों को पाठकों के सामने रखने का प्रयास करती है।

लेखिका की कहानी 'अंधी यात्रा' में इसी प्रकार के संबंधों का चित्रण हुआ है। इस कहानी में 'प्रवीण' और 'नीरज' दोनों में होमोसेक्सुअल्स (समलिंगी) संबंध दिखाई देते है। दोनों बहुत वर्षों से साथ में रहते थे। इतना ही नहीं दोनों का एक ही बेडरूम है। दोनों भी आपस में समलैंगिक संबंध प्रस्थापित करते थे। वे एक-दूसरे के बीच किसी को नहीं आने देते थे, लेकिन कुछ दिनों बाद उनके जीवन में 'सीमा' नाम की लड़की आती है। वह उनके बैडरूम अलग करती है। वह दोनों को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करती है, ताकि वे समलैंगिकता को छोड़ दें। इसमें 'प्रवीण' उसकी ओर खिंचा चला जाता है, लेकिन नीरज को यह अच्छा नहीं लगता, जिस कारण वह खुद को अकेला महसूस करता है। रात-भर इधर-उधर घूमता रहता है। वह अंदर से पूरी तरह टूट जाता है। नीरज एक दिन रात में एक टैक्सीवाले का खून कर देता है। वजह पूछने पर चिल्लाकर कहता है कि 'नामरद कहता था...रस्याला।'[6] इस कथन से समझा जा

सकता है कि जिस व्यक्ति को समलैंगिकता की आदत लगती है। वह साथी से दूरी बर्दाश्त नहीं कर सकता। जिस कारण वह ऐसे आपराधिक कृत्य करने लगता है।

'उस जैसा' कहानी में भी समलैंगिकता का चित्रण हुआ है। इस कहानी की नायिका 'अविनाश' नाम के एक युवक से प्रेम करती है। अविनाश का एक 'मनु' नाम का एक मित्र है। दोनों के बीच में समलैंगिक संबंध हैं। नायिका को इस बात का पता तब लगता है, जब वह अविनाश से मिलने उसके घर जाती है। तब नायिका वहाँ का दृश्य देखकर कहती है, 'मेरे पैरों के नीचे से धरती खिसक गई थी। मनु और अविनाश एक ही बिस्तर पर जैसे भी थे, मेरे कल्पना के परे की बात थी। मैं पसीने से लथपथ काँपती हुई दौड़ रही थी।'[7] इस कथन से अविनाश और मनु के समलैंगिक संबंधों की पुष्टि होती है।

'गुलाबी मुस्कान' कहानी में भी समलैंगिकता का चित्रण दिखाई देता है। इस कहानी में 'हेमू' नाम का एक पात्र है, जिसका खुद का एक डिपार्टमेंटल स्टोर है। उसकी शादी एक खूबसूरत लड़की से होती है। हेमू एक 'गे' व्यक्ति था, जिस कारण शादी के कुछ महिनों बाद उसकी पत्नी एक लड़के के साथ भाग जाती है। तब हेमू गाँव के किसी रिश्तेदार (मणिलाल) को काम के लिए लाता है। हेमू मणिलाल के साथ समलैंगिक संबंध रखने का प्रयास करता है। हेमू उसे हमेशा गुलाबी कमीज पहनने को मजबूर करता है। जब मणिलाल उससे तंग आकर घर जाने की बात करता है, तो हेमू कहता है, 'जाएगा कैसे साले...तेरे माँ-बाप को ढेर सारा रुपया दिया है...मजाक समझा है चला जाएगा?'[8] हेमू को समलैंगिकता की आदत लग जाती है। वह मणिलाल को हमेशा अपने साथ रखता है, जिस कारण मणिलाल पागल हो जाता है और उसे अस्पताल में भर्ती कराना पड़ता है।

इस प्रकार कुसुम अंसल ने अपने साहित्य के माध्यम से समलैंगिकता के दुष्परिणामों का चित्रण किया है। वह समाज को ऐसे संबंधों से दूर रहने की सलाह देती हैं। दरअसल, समलैंगिकता बहुपक्षीय एवं गंभीर विमर्श है, जिस पर खुले दिमाग से बहस एवं विमर्श की आवश्यकता है। जब हम इसके नैतिक एवं धार्मिक पक्ष को देखते हैं, तो यह हमारी सनातन संस्कृति एवं संस्कारों पर कुठाराघात लगता है। समलैंगिक प्रवृत्तियाँ विवाह, परिवार एवं रिश्तेदारी जैसी सामाजिक संस्थाओं को चुनौती देती नजर आ रही है। इस परिप्रेक्ष्य में लेखिका ने समलैंगिकता को प्रकृति के विरुद्ध पाशविक जीवनशैली का परिणाम माना है।

संदर्भ

1. सामाजिक मुद्दे, जी॰ एल॰ शर्मा, पृ॰ 442
2. स्त्री : मुक्ति का सपना, संपादक प्रो॰ कमलाप्रसाद, पृ॰ 85
3. जनसत्ता, समाचारपत्र, तिथि 06/09/2018, पृ॰ 01
4. तापसी, कुसुम अंसल, पृ॰ 22
5. वही, पृ॰ 25
6. इकतीस कहानियाँ (अंधी यात्रा), कुसुम अंसल, पृ॰ 136
7. कुसुम अंसल रचनावली, भाग-5, उस जैसा, संपादक अनिल कुमार, पृ॰ 179
8. संकलित कहानियाँ (गुलाबी मुस्कान), कुसुम अंसल, पृ॰ 138

डॉ॰ सौ॰ इं॰ भा॰ पाठक महिला कला महाविद्यालय, औरंगाबाद

मो॰ 09763992459

sgajanan13@gmail.co

विशिष्ट स्थान और गौरव का अधिकारी : पंडित श्रीनारायण शुक्ल कृत 'उर्मिलीयम्'

डॉ॰ ज्योति सिंह

अर्वाचीन संस्कृत महाकाव्यों में पंडित श्रीनारायण शुक्ल कृत महाकाव्य 'ऊर्मिलीयम्' एक विशिष्ट स्थान और गौरव का अधिकारी है। रामकथा के विविध पात्रों, प्रसंगों और घटनाओं का आधार लेकर अनेक ग्रंथों की रचना हुई, परंतु प्राचीन एवं अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में ऐसी कोई कृति दृष्टिगत नहीं होती, जिसमें उर्मिला के कारुणिक जीवनचरित को विषयवस्तु के रूप में ग्रहण किया गया हो। पंडित श्रीनारायण शुक्ल की लेखनी का प्रसाद 'उर्मिलयम्' संस्कृत में इसी अभाव की पूर्ति करने के कारण उसी विरुद और गौरव का पात्र है, हिंदी साहित्य में मैथिलीशरण गुप्त जी का 'साकेत' जिसके योग्य समझा गया।

भारतीय साहित्य का रेखांकन करते हुए कवींद्र रवींद्रनाथ टैगोर ने 'काव्येर-उपेक्षिता' शीर्षक से एक आलेख बहुत पहले लिखा था। शायद उसी से प्रेरणा ग्रहण कर हिंदीभाषा के परिमार्जक एवं परिष्कर्ता आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सन् 1908 में एक निबंध लिखा, जिसका शीर्षक था—'कवियों की उर्मिला विषयक् उदासीनता' आलेखानुमा यह निबंध उन्हीं के द्वारा संपादित होनेवाली 'सरस्वती' पत्रिका के जुलाई 1908 के अंक में प्रकाशित हुआ। उल्लेख्य है कि उस युग में अनेक कवि और लेखक द्विवेदीजी को अपना काव्यगुरु मानते थे और उनके काव्यानुशासन में रहकर रचना करते थे। चूँकि 'द्विवेदी जी ने अपने उक्त लेख में केवल उर्मिला के जीवन चरित्र-संबंधी उपेक्षा पर ही विशेष बल दिया और हिंदीकवियों से आग्रह किया कि वे इस ओर आकृष्ट होकर उर्मिला पर कुछ लिखें।'[1] इसके फलस्वरूप हरिऔध, नवीन और गुप्त जी ने उर्मिला को केंद्र में रखकर रचनाएँ लिखीं। गुप्त जी ने तो उर्मिला पर पूरा का पूरा एक महाकाव्य ही लिख डाला जिसका प्रारंभिक नाम 'उर्मिला' ही था, द्विवेदीजी ने 'पतंजलि की उक्ति के आलोक में गुप्तजी की कृति का नाम 'उर्मिला से 'साकेत' कर दिया'।[2] और वही 'साकेत' काव्य-प्रेमियों का कंठहार बन गया।

पं॰ महावीरप्रसाद द्विवेदी मूलत: संस्कृत के आचार्य थे। संस्कृत माध्यम से ही उनकी संपूर्ण शिक्षा-दीक्षा हुई थी। कालांतर में वे हिंदीसेवा में लीन होकर हिंदी के सुमेरू पुरुष बन गए। हिंदीभाषा के परिष्करण और परिमार्जन का समग्र श्रेय उन्हीं को जाता है। यदि ध्यान से देखें तो यह संपूर्ण कार्य उन्होंने देववाणी संस्कृत का आधार लेकर ही संपन्न किया। जिन दिनों द्विवेदीजी 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन करते थे; उन दिनों उसे भाषा और साहित्य का ज्ञानकोश माना जाता था। हिंदी ही नहीं, अपितु अनेक भारतीय भाषाओं के रचनाधर्मियों और पाठकों को सरस्वती ने आकृष्ट और प्रभावित किया। यह सर्वविदित है कि आचार्यप्रवर को जो सम्मान हिंदी जगत में प्राप्त है; संस्कृत के विद्वज्जनों में भी उन्हें श्रद्धेय और आदरेय माना जाता है। ऐसी स्थिति में, बहुत

संभव है कि पंडित श्रीनारायण शुक्ल ने अपनी इस रचना के लिए प्रेरणा और प्रभाव किसी-न-किसी रूप में द्विवेदीजी से ग्रहण किया हो। वैसे भी कोई भाव और प्रभाव किसी नद या नदी के प्रवाह की तरह शाश्वत न सही कालजयी अवश्य होता है।

'पंडित श्रीनारायण शुक्ल का जन्म सन् 1908 में रजोवली (देवरिया) में हुआ था। मूलत: उनके पिता और पूर्वज गोरखपुरिया ब्राह्मण थे। कर्जदारी से तंग आकर इनके पिता अपने बुजुर्गों की जर-जमीन को छोड़कर यहाँ आ गए; जहाँ उनकी ससुराल थी।'[3] आज भी आमतौर पर ससुराल में बसने को हेय समझा जाता है। उस जमाने में आस्थावान मानव की श्रद्धा और उसका विश्वास अब की तुलना में जब पंडित श्रीनारायण शुक्ल का जन्म हुआ, श्रुति परंपराओं के प्रति कई गुना ज्यादा था। ऐसे में आसानी से उनके पिता की माली हालत का अंदाजा लगाया जा सकता है। हिंदी के प्रसिद्ध कवि बाबा नागार्जुन के परिवार से साम्य-भाव दिखलाता हुआ एकदम खस्ता हाल। वहीं 'ननिहाल में नाना की देखरेख में शुक्ल जी ने प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण की। तदुपरांत संस्कृत पाठशालाओं में अध्ययनरत् रहते हुए आचार्य उपाधिग्रहण की।'[4] उच्चशिक्षा ग्रहण करते हुए वे अपने जिन गुरुप्रवर से सर्वाधिक प्रभावित हुए वे आचार्य मुनिवर मिश्र जी थे।

'अपने उर्मिलीयम् महाकाव्य में मंगलाचरण के उपरांत जिस श्रद्धा और आदरभाव से अपने गुरुप्रवर मुनिवर मिश्र का स्मरण किया है उससे मुनितुल्य मुनिवर की छवि मानस-पटल पर उभरती है।'[5] उच्चशिक्षा पूर्ण कर वे खोंडा के संस्कृत महाविद्यालय में उसी प्रकार आचार्य हो गए, जैसे आमतौर पर जीविकोपार्जन का कोई रास्ता न दिखने पर आदमी पढ़ाने का काम अपना लेता है। आज स्थिति बदल गई है श्रीनारायण शुक्ल के युग में तो कम-से-कम ऐसा ही माना जाता रहा होगा। बाद में इसी महाविद्यालय में उन्होंने प्राचार्य पद पर कार्यरत रहते हुए सन् 1968 में आलोच्य महाकाव्य 'उर्मिलीयम्' की रचना की।

'इस महाकाव्य में कुल 17 सर्ग हैं। सभी सर्गों के कथानक में एक अन्वति और संगठन दिखाई देता है। सभी सर्गों की कथा का ताना-बाना उर्मिला के त्याग और लक्ष्मण के प्रति उसके अनन्य प्रेम के तागों से बुना गया है। इसी अर्थ में 'उर्मिलीयम्' के नामकरण को लेकर 'सार्थवती वभूव का भाव मन मे उभरता है।'[6]

पं॰ शुक्ल ने अपनी इस प्रबंधात्मक कृति को महाकाव्योचित गरिमा देने का यथाशक्य प्रयत्न किया है। अस्तु, संस्कृत महाकाव्य के लिए विहित लक्षणों का निर्वाह यहाँ प्रयत्नपूर्वक किया गया है। मंगलाचरण के रूप में ईश-वंदना से कृति का प्रारंभ होता है। तदनंतर गुरु वंदना और फिर रघुकल के भूपों की अभ्यर्थना उसी रूप में की गई है, जैसी कालिदास के रघुवंश में दिखाई देती है। तत्पश्चात् उसके जन्म की उद्‌भावना के साथ जनक पुत्री उर्मिला से जुड़ा कथानक प्रारंभ होता है। राजाजनक को रघुवंशियों में चौबीसवाँ राजा कहा गया है।

दूसरे सर्ग में राजा जनक की राज्य-व्यवस्था और उनकी विद्वत्ता का संक्षेप में उल्लेख किया गया है। तृतीय, चतुर्थ और पंचम सर्ग में उर्मिला के सयाने होने और तद्‌नुकूल पिता को उसके विवाह को लेकर विचारमग्न दिखाया गया है। इसी कथन के आनुषंगिक शिक्षा-दीक्षा और गृहस्थ का गंभीर अध्याय भी उसे हृयंगम करने की यथोचित चिंता और चेष्टा दिखाई देती है।

छठे से नवें सर्ग तक की कहानी विवाह और राज्याभिषेक के घटनाचक्र से प्रवर्तित है। दसवें सर्ग में रामवनगमन का चित्रण है और इसी के साथ विरही उर्मिला के जीवन की त्रासदी

 ISSN 0975-735X

का प्रारंभ हो जाता है। पं॰ नारायण शुक्ल ने लक्ष्मण के जाने के उपरांत शिशु जन्म की जो मौलिक उद्भावना की है। उसे पढ़कर हर किसी की आँख गीली हो जाती है। ग्यारहवें से सोलहवें सर्ग तक के कथापट में सर्वाधिक अंश उर्मिला के आँसुओं का है। विरह-विगलित उर्मिला अपने को तो सँभालती ही है, वहीं पुत्र अंगद का लालन-पालन भी बड़े प्यार और दुलार से करती है। घर आए हुए अतिथियों और घर में रहनेवाले परिजनों से भी वह बड़ी मृदुता और ऋजुता से युक्त व्यवहार करती है। अपनी स्थिति के प्रति कहीं रोष और शोक उसमें दिखाई नहीं देता। पीड़ाओं और वेदनाओं का महासैलाब जब उसे त्रस्त करता है, तब भी वह संयम और संतुलन बनाए रखती है। उसका यह गुण आज के भौतिकवादी युग के चकाचौंध में चुँधियाए स्त्री-पुरुष किसी के लिए भी प्रेरणा और आस्था कर स्रोत हो सकता है।

'इस महाकाव्य का अंतिम सर्ग अर्थात् सत्रहवाँ सर्ग आशा और आस्था की प्रतिध्वनि जैसा है। जहाँ वनवास के उपरांत उर्मिला, अपने पति लक्ष्मण और पुत्र अंगद के साथ प्रेमपूर्वक रहने लगती है। उसके पुत्र अंगद को अंग राज्य का शासक बनाया गया है। इसी के साथ इस महाकाव्य की कथा का पर्यवसान हो जाता है।'[7]

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह महाकाव्य उर्मिला के आँसुओं से खाद, खुराक और साँस ले रहा है। किसी युगल के एकाकीपन की पीड़ा समझी जा सकती है। संन्यासी सरहपा ने तो इसी असहनीय पीड़ा से मुक्ति की आकांक्षा में लापा से अपने जीवन की डोर जोड़ ली थी। निराला की विक्षिप्तता के मूल में भी राहुल ने इसी एकाकीपन को कारण माना है। पुरुष को परुष माना जाता है या यूँ कहिए कठोर एवं सहनीय, लेकिन वासविक स्थिति को हम इससे उलट पाते हैं। इसी स्थिति की व्यंजना माँ भगवती के चरणों में समर्पित शंकराचार्य की इस पंक्ति से ध्वनित होती है–'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।'[8]

वास्तव में पुरुष अपनी स्वार्थपरता में फँसकर नीति, न्याय के पथ से च्युत हो जाता है; लेकिन नारी कभी नहीं होती। इसी तथ्य की प्रतिच्छाया इन काव्य पंक्तियों मे मिलती है–

नफरत-गुबार अहं का पुतला है आदमी,
उसको भी देवता-सा बनाती है बेटियाँ।[9]

नारी अपने अस्तित्व को मिटाकर भी अपने परिवार और समाज की रक्षा करती है। अपनेपन की भावना की प्रसार करती हुई इस संसार में आती है और संसार के द्वारा छले जाने पर भी मुस्कुराती रहती है। क्रोध और द्रोह का उत्तर तदैव न देकर सदैव प्रेम-प्रतीति के रूप में देती है। उसी से सृष्टि का विस्तार होता है और मनुष्य का सूना संसार रंगीन फिजाओं से युक्त बनता है। वह हमें भाग्यवान बनाती है, इसलिए वह भगवती है और साथ ही पूज्य भी। उर्मिला पर महाकाव्य लिखकर पं॰ श्रीनारायण शुक्ल ने मातृशक्ति के प्रति अपना श्रद्धाभाव व्यक्त किया है, जिसे 'वंदेमातरम्' का पर्याय और गौरव कहा जा सकता है। छोटी-मोटी वजहों से शीशे की तरह टूट रहे आधुनिक घर-परिवारों के युग में यह रचना ग्रार्हस्थ्य की मंगलभावना को मूर्त्त रूप देती प्रतीत होती है, जो निरापद रूप से प्रशंसनीय है और इस अर्थ में पं॰ नारायण शुक्ल का 'उर्मिलीयम्' महाकाव्य नि:संदेह संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान और गौरव का अधिकारी बन जाता है।

संदर्भ

1. हिंदी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, डॉ॰ द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, पृ॰ 98

2. अरूणद्यवनः साकेतम्, उपरिवत् पृ॰ 98
3. अध्येता ने इस विषय पर शोध कार्य करते हुए उल्लिखित तथ्यों का संग्रहण किया।
4. पं॰ नारायण शुक्ल : ऊर्मिलीयम्, स्वकुल परिचयः, सातवाँ श्लोक
पितम्बयामातुलगेहवासी, शिक्षामहं प्राथमिकी भवाव्य।
अनन्तविद्यभवनं प्रतिष्य, उपाधिमाचार्यमितो नु शाब्दे।।
5. उपरिवत्, प्रथमसर्ग; पाँचवा श्लोक,
विद्यावर्धिं तरितुमनसच्छात्रतृन्दान् सुवृन्ते, शीलैदन्तिः प्रणयमधुरैश् शास्त्र वैदुष्यतर्केः।
सांय प्रातः प्रतिनिशमहः प्रापितुर्ज्ञानिराशीन् श्रीमन्मिश्रा मुनिवरगुरो-र्लब्धविद्योयशस्वीः।
6. उपरिवत्, प्रथमसर्ग, आठवॉ और नौवाँ श्लोक
7. टिप्पणी–शोधार्थिनी ने पं॰ श्रीनारायण शुक्ल कृत उर्मिलीयम् पर शोध कार्य किया है; अस्तु प्रस्तुत शोधालेख में दिए गए तथ्य और कथ्य उसकी गहन अध्ययन-अनुशीलन की प्रतिपत्तियों पर आधृत हैं।
8. दुर्गासप्तशती, अथ देव्यपराधक्षमापन स्तोत्रम् पृ॰ 226
9. कुँवर डॉ॰ महाराणा प्रतापसिंह चौहान 'विद्रोही' : बेटियाँ शीर्षक गजल का शेर चेतना पत्रिका, वर्ष 2013

उपहार' रामेश्वर धाम कॉलोनी
लाल फाटक रोड, बरेली (उ॰प्र॰)
मो॰ 9457166471
ई-मेल- dr.kzyotisinghchauhanbareilly@gmail.com

आस्था और शुचिता के प्रतीक : जनकवि पंडित बंशीधर शुक्ल

कुँवर डॉ॰ महाराणाप्रताप सिंह चौहान 'विद्रोही', डी॰लिट्॰

आज के समय में जब राजनीति के मूल्य और मायने तेजी से बदल रहे हैं; पंडित बंशीधर शुक्ल की याद आना लाजिमी है। स्वतंत्रता-संग्राम के अमर सेनानी पंडित बंशीधर शुक्ल राजनेता से पहले कवि और उससे भी पहले एक महामानव हैं। आम-आदमी की पीड़ा और पुकार दोनों ही उनकी कविताओं में विद्यमान हैं। प्रजातांत्रिक मूल्यों में उनकी दृढ़ आस्था थी, दरिद्रनारायण उनके आराध्य थे और अर्हनिश उनकी सेवा में लगे रहना ही उनका अभीष्ट था। न तो उनकी कोई व्यक्तिगत आकांक्षा थी और न ही कोई अभिलाषा।

स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय भागीदारी करते हुए वे अनेक बार जेल गए, यातनाएँ सहीं और आजाद भारत में लगभग 13 वर्ष तक लखीमपुर खीरी के श्रीनगर विधानसभा क्षेत्र से विधायक रहे, कुछ समय के लिए उ॰प्र॰ सरकार में वनमंत्री भी बनाए गए; लेकिन पंडितजी ने इतने लंबे राजनीतिक जीवन में मौकापरस्ती की बुनियाद पर कभी कोई समझौता नहीं किया। जिस काँग्रेस के झंडे तले आजादी की जंग में अपना पूरा जीवन लगा दिया, वही पंडित जी देश आजाद होने पर काँग्रेस की रीतियों-नीतियों से खिन्न होकर उससे अलग हो गए और सोशलिस्ट पार्टी के टिकट पर चुनाव लड़कर विधायक बने; फिर उसे भी छोड़ दिया; इसके बावजूद भी जनता ने उन्हें दो बार निर्दलीय रूप से प्रतिनिधि चुनकर विधानसभा भेजा। 'उनके विधायक आवास पर पहुँचने एवं ठहरने वालों की संख्या सैकडों में हुआ करती थी। वे भी इन्हीं आगंतुकों के साथ फर्श पर बिछी पुआल पर लेटते और सत्तू, चना-चबेना खाने में स्तीभर संकोच नहीं करते थे, कभी-कभी उनके विस्तर पर उनके निर्वाचन क्षेत्र के लोग कब्जा कर लेते थे और वे फर्श पर लेटकर रात बिता दिया करते थे।'[1]

ऐसे त्यागी-उदारमना पंडित बंशीधर शुक्ल का जन्म लखीमपुर खीरी (उ॰प्र॰) के मन्योरा गाँव के एक ब्राह्मण परिवार में सन् 1904 में बसंत पंचमी को हुआ था। शायद यह इसी दिन का प्रभाव था कि इस दिन जन्मे शुक्ल जी आजीवन शब्द-साधक बने रहे। खेती किसानी के सहारे गुजर-बसर करनेवाले उनके पिता पं॰ छेदीलाल शुक्ल की माली-हालत बहुत अच्छी नहीं थी। लेकिन वे किसान के साथ एक अच्छे 'अल्हैत' (आल्हा गाने वाले) थे। उन दिनों 'अल्हैतों' को वैसा ही दर्जा प्राप्त था, जैसा सम्मान बाद में कथावाचकों को दिया गया। पिताजी का ओजस्वी गायन सुनते-सुनते पंडित जी के बालमन पर जो प्रभाव पड़ा, कालांतर में वही वीरकाव्य के रूप में सामने आया। खेती-किसानी करते हुए तपती धूप में जब वे ठेठ अवधी में गुनगुनाते; तो न जाने कितने हलवाहे अपना काम-धाम छोडकर उन्हें सुनने दौड़े चले आते। पढ़ाई-लिखाई के नाम पर शुक्ल जी दर्जा दो पास थे, ऐसे व्यक्ति को आज का डिग्रीधारी समाज शायद ही पढ़ा-लिखा माने, लेकिन यह सच है कि स्वाध्याय, चिंतन-मनन और अटन के सहारे उन्हांने 'बोध' के उस स्तर

को प्राप्त कर लिया था, जिसके सामने तथाकथित 'शोध' घुटने टेक देता है। उनकी काव्य रचनाएँ स्वयं में इसका सबूत हैं।

पंडित बंशीधर शुक्ल 'प्रताप' के यशस्वी संपादक गणेशशंकर विद्यार्थी की प्रेरणा से राजनीति में आए और भारत माता को परतंत्रता की कारा से मुक्त कराने के लिए प्राणपण से जुट गए। उनकी ओजस्वी कविताओं ने भारतीय-जनमानस को स्वतंत्रता की बलिवेदी पर होम होने के लिए प्रेरित किया। विद्यार्थी जी के आग्रह पर ही सन् 1928 में उन्होंने 'खूनी पर्चे' नामक कविता की रचना की; जिसे नेहरू जी ने 'खूनी पर्चा' नाम दिया। दस-बारह पैराग्राफ की इस रचना में अँग्रेजों द्वारा भारतीयों पर ढहाए गए जुल्मों-सितम की दास्तान सिलसिलेवार ढंग से प्रस्तुत की गई है। शुक्ल जी की यह वही रचना है; जिसे उस समय पोस्टर के रूप में पूरे देश में बाँटा गया था। अँग्रेजों का व्यापारी के रूप में भारत आना, उनकी फूट डालो-शासन करो की नीति, बंग-भंग से जुड़ा संपूर्ण घटनाचक्र, नंदराम बोस और खुदीराम बोस को फाँसी, डलहौजी की राज्य हड़प-नीति, नाना साहब की बेटी मैना को जिंदा जलवाया जाना, रणजीतसिंह के बच्चों का सिर कटवाना, बहादुरशाह जफर के बेटों का सिर काटकर उन्हें दिखाया जाना, लाला हरदयाल और पंजाब केसरी लाला लाजपत राय इत्यादि देश भक्तों पर हुई ज्यादतियाँ आदि से जुड़ा पूरा लेखा-जोखा इस कविता में प्रस्तुत किया गया है। इसी से जुड़ी यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि अँग्रेजों के भारत छोड़ने तक उन्हें इस कविता के रचनाकार का पता नहीं चल सका। कविता इस प्रकार शुरू होती है–

अमर भूमि से प्रकट हुआ हूँ, मर-मर अमर कहाऊँगा।
जब तक तुझ को मिटा न लूँगा, चैन न किंचित पाऊँगा।

अब तेरी फरेबबाजी से, रंच न दहशत खाऊँगा।
अमर भूमि से प्रकट हुआ हूँ, मर-मर अमर कहाऊँगा।[2]

अँग्रेजी सरकार को हिला देनेवाली कविता लिखने वाले बंशीधर शुक्ल ने पंडित नेहरू के प्रधानमंत्रित्वकाल में उनकी रीतियों-नीतियों का खुलकर विरोध ही नहीं किया, बल्कि नेहरू को चुनौती-भरे लहजे में संबोधित करते हुए उन्होंने लिखा–

ओ शासक नेहरू सावधान/पलटो नौकरशाही विधान।
अन्यथा पलट देगा तुमको/मजदूर, वीर, योद्धा, किसान।[3]

शुक्ल जी का गीत 'कदम-कदम बढ़ाए जा, खुशी के गीत गाए जा।' नेताजी सुभाषचंद्र बोस को इतना पसंद आया कि इसे उन्होंने आजाद हिंद फौज का मार्च गीत घोषित कर दिया और फिर यह गीत आजाद हिंद फौज के हर छोटे-बड़े आयोजन में गाया जाने लगा। बाद में जब 'समाधि' फिल्म बनी, तो इस गीत को वहाँ भी रखा गया। गाहे-वगाहे प्रभाती बेला में हम सबके होठों पर आ जाने वाला यह गीत भी उन्हीं का है–'उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ तू सोवत है।' एक समय ऐसा था जब काँग्रेस की प्रभातफेरियों और स्कूल-कॉलेजों की प्रार्थना सभाओं में इसे बड़े चाव से गाया जाता था।

ग्रामीणों के बीच रहकर खेती-किसानी करते हुए शुक्ल जी की दृष्टि गाँव से जुड़ी अवधारणाओं और मुद्दों को लेकर वहाँ तक गई, आमतौर पर जहाँ तक हरेक की नजर नहीं जाती है। उन्होंने ग्राम जीवन को केवल देखा ही नहीं था, अपितु उससे जुडी त्रासदी एवं विसंगतियों के

ISSN 0975-735X

अनकेश: भोक्ता भी बने थे। ग्राम्यजीवन को मार्मिकता के साथ उसकी संपूर्णता में अंकित करने के कारण वे अँग्रेजी के वाल्ट ह्विटमैन से दिखाई देते है; गाँव की प्रकृति और वनस्पतियों के चित्रण की दृष्टि से उन्हें निसंकोच अवधी का 'वर्ड्स-वर्थ' कहा जा सकता है। सामाजिक अवधारणाओं को लेकर उनकी सूझ के सामने समाजशास्त्रियों का ज्ञान 'उद्धव' का ब्रह्म-संदेश' जैसा लगता है और अर्थशास्त्रियों की सलाहियत फीकी और उबाऊ। इसीलिए ग्राम्यजीवन पर लिखी गई उनकी कविताएँ मन को अंदर तक छूती हैं, वहीं ग्राम्य-विकास से जुड़ी अवधारणा को एक नई दृष्टि और ऊँचाई प्रदान करती प्रतीत होती हैं। इस लिहाज से उनकी अपना गाँव, अपना दुवारू, हमार गाँव, बहिया, अगिलही, बेदखली, पाथर, सूखा आदि कविताएँ उल्लेखनीय हैं। 'किसान वंदना' कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ बानगी के रूप में प्रस्तुत हैं–

जेहि के आँसुन से मेघ बने/आहन ते रंगिगा आसमान,
अरमान जरे भे अंसुमान/देही निचोरि सागरू मोटान।[4]

आज जब 'दलित चेतना और दलित विमर्श के प्रवर्तन का श्रेय लेने की होड़ लगी है। सन् 1932 में लिखी गई उनकी 'अछूत की होरी' कविता हमें यह सोचने पर मजबूर कर देती है कि 'अयमनिजा परोवेति' जैसा भाव दूर-दूर तक उनके मन में नहीं था। इसी कविता में यह भी दिखाया गया है कि जब मनुष्य मनुष्य होकर भी एक दूसरे का साथ नहीं देता, तो प्रकृति किस प्रकार उसकी सहचरी बनती है। अपनी अहमन्यता, महत्त्वाकांक्षा, छल-छद्म के चलते मनुष्य ने जैसे अपनी 'सहजता' खो दी है; लेकिन अनिश्चित भविष्य, रिक्त हस्त और आकाशधर्मा होकर भी मानवेतर जीव-जंतु किस प्रकार सबके जीवन में खुशियों के रंग घोल रहे हैं; जहाँ परस्पर कोई भेद नहीं है; बस 'भावना में भावना के वरण' की मल्लिकाई ईप्सा है। ऐसी ही कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं–

हमरी सगी बिलैया, कुतिया रोजुइ घर मथि जाय।
साथी सगे चिरैया कौवा, जागि जगावैं आय।।
मौत सुधि लेइउ न आवइ।[5]

इस प्रकार की अनेक कविताएँ उनके द्वारा लिखी गई हैं।

वस्तुत: पंडित जी क्रांति और जागरण के कवि हैं; इसीलिए वे युवा-पीढ़ी को उद्बोधन देते हुए बार-बार याद दिलाते हैं कि आलस्य और प्रमाद छोड़कर वक्त के साथ चलना ही उनका धर्म है, ताकि वे कहीं पीछे न रह जाएँ। दूरदर्शी शुक्ल जी का यह आह्वान प्रकारांतर से राष्ट्र निर्माण की दिशा में दिया गया अमूल्य प्रबोधन है, क्यांकि अच्छे व्यक्तियाँ से ही अच्छे समाज और अच्छे राष्ट्र का निर्माण होता है। कर्त्तव्य से विमुख व्यक्ति किसी का भी भला नहीं कर सकता; न ही अपना और न ही किसी और का। ऐसे ही सुर को मुखर करते हुए उन्होंने लिखा है–

उठो, सोने वालो सवेरा हुआ है।
वतन के फकीरों का फेरा हुआ है।[6]

आज जब हर तरफ अवसरवादिता, चाटुकारिता, सुविधापरस्ती और धनलोलुपता का परचम फहरा रहा है। हर कोई अपने से दूसरे को छोटा एवं हेय सिद्ध करने में लगा हुआ है। ऐसे में पंडित बंशीधर शुक्ल का स्मरण हो आना अवश्यंभावी है। राजनीति में रहकर भी वे 'बेदाग' रहे और आजीवन 'त्याग' के पथ पर चलते रहे। ऐसी स्थिति में जब कि पंडित जी कोई धन्ना-सेठ नहीं

थे; अभावों में जिए और अभावों में ही चले गए। भौतिक सुख-सुविधाओं की कमी को उन्होंने कभी विपन्नता का पर्याय नहीं माना। 'संपत्तिशाली' बनने से 'संपाती' बनना उन्हें अधिक रुचा। उनकी दृष्टि में राजनीतिक पार्टी का कोई महत्त्व नहीं था, उनके लिए महत्त्व था–मूल्यानुप्राणित विचारधारा का। इसीलिए काँग्रेस पार्टी छोड़ देने के बावजूद, जब बापू की हत्या का समाचार उन्हें मिला, तो वे बिलख पड़े और इस सबको लेकर उन्होने एक गीत लिखा, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

हमरे देसवा की मँझरिया ह्वै गै सूनि,/अकेले गांधी बाबा के बिना।
सत्य-अहिंसा की उजेरिया ह्वै गै सूनि,/अकेले गांधी बाबा के बिना।[7]

वे आद्यांत गांधी बाबा के शिष्य थे इसीलिए निखालिस गांधीवादी थे। वे जिस स्थिति में रहे, ताउम्र गांधीवाद का सिरा उनसे कभी नहीं छूटा। उनके रहन-सहन से लेकर लिखने-पढ़ने, बोलने-बतियाने आदि तक सबमें गांधीवाद की झलक मिलती है, समग्रत: उनका जीवन दर्शन ही 'गांधीवाद' से अनुप्राणित था। वहीं शांति का यह पुजारी किसी प्रकार कायर नहीं था; इसीलिए जान हथेली पर रखकर वे स्वतंत्रता-संग्राम में हिस्सेदार बने, विप्लव और विद्रोह की कविताएँ लिखीं। आजादी के बाद भी उनके पग नहीं थमे और मृत्युपर्यंत देश-जाति की सेवा में लगे रहे। क्रांति के पुजारी, गांधी बाबा के शिष्य, गरीबों-शोषितों-मजबूरों के हिमायती और मसीहा पं॰ बंशीधर शुक्ल 24 अप्रैल 1980 को चिरनिद्रा में लीन हो गए। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर टिप्पणी करते हुए डॉ॰ ओ॰पी॰ मिश्र ने ठीक ही लिखा है–'श्री शुक्ल का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे एक परिश्रमशील कृषक, समर्पित स्वतंत्रता-संग्राम सेनानी, लोकप्रिय जनप्रतिनिधि और मनस्वी कवि थे।'[8]

संदर्भ

1. डॉ॰ ओ॰पी॰ मिश्र, तराई क्षेत्र के गौरव : अवधी सम्राट पं॰ बंशीधर शुक्ल : साहित्यधर्मिता संपादक-डॉ॰ हृदयनारायण सिंह, अगस्त 1993 छब्बीसवाँ अंक, पृ॰ 21
2. बंशीधर शुक्ल, खूनी पर्चे , नवप्रेरणा , सं॰ कृष्णानंद ब्रह्मचारी, सितंबर 1992, पृ॰ 24
3. डॉ॰ उर्मिलेश, विदेह जैसे थे पं॰ बंशीधर शुक्ल : हस्ताक्षर, लद्दाख हिंदीसेवी मंच, लेह, 1997, पृ॰ 8
4. डॉ॰ ओ॰पी॰ मिश्र, तराई क्षेत्र के गौरव : अवधी सम्राट पं॰ बंशीधर शुक्ल, साहित्यधर्मिता, छब्बीसवाँ अंक, अगस्त, 1993, पृ॰ 21
5. डॉ॰ उर्मिलेश,, विदेह जैसे थे पं॰ बंशीधर शुक्ल : हस्ताक्षर, लद्दाख हिंदीसेवी मंच, लेह, 1997, पृ॰ 8
6. वही
7. गंगाभक्तसिंह 'भक्त', मेरे प्रेरक-मेरे काव्यगुरु : पं॰ बंशीधर शुक्ल, नवप्रेरणा, संपादक-कृष्णानंद ब्रह्मचारी, जुलाई 1990, पृ॰ 18
8. डॉ॰ ओ॰पी॰ मिश्र, तराई क्षेत्र के गोरव : अवधी सम्राट पं॰ बंशीधर शुक्ल, साहित्यधर्मिता, छब्बीसवाँ अंक, अगस्त, 1993, पृ॰ 21

अध्यक्ष, शोध एवं स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
डॉ॰ राममनोहर लोहिया राजकीय महाविद्यालय
आँवला, बरेली (उ॰प्र॰) 243301
मो॰ 9411219095
dr.mhaaranapratapsingh@gmail.com

भारत में सम्मान के लिए स्त्रियों की हत्या : उनके मानवाधिकारों का क्रूर हनन

डॉ॰ नीना रंजन

भारत विश्व का दूसरा सर्वाधिक आबादी का देश है। जितनी महिलाएँ पूरे यूरोप, आस्ट्रेलिया तथा अमेरिका में नहीं रहती हैं उससे ज्यादा महिलाएँ अकेले भारत में वास करती है। भारत की सभ्यता एवं संस्कृति महिलाओं के प्रति सम्मान रखने वाली हुआ करती थी। 'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता' के सिद्धांत पर विश्वास रखनेवाली भारतीय संस्कृति में वैदिककाल या सिंधु घाटी सभ्यता के काल में ही महिलाओं को देवी का दर्जा प्राप्त था तथा सम्मान दिया जाता था। जब समाज एवं परिवार के महत्त्वपूर्ण निर्णयों में महिलाओं की भागीदारी हुआ करती थी। परंतु कालांतर में विदेशी आक्रमणों एवं इतिहास में आए उतार-चढ़ाव के साथ भारत में महिलाओं की आजादी एवं अधिकार में कमी आती गई, जिससे समाज पुरुष प्रधान हो गया तथा महिलाएँ परिवार के पुरुष सदस्यों पर पूर्णरूपेण निर्भर होती गईं। महिलाएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक अधिकारों से वंचित होती गईं, जिसके फलस्वरूप उनका स्तर घरेलू समान के जैसा हो गया।

आजादी के बाद भारतीय संविधान के द्वारा महिलाओं को पुरुषों के बराबर का दर्जा दिया गया तथा समानता के साथ हरेक अधिकार दिये गए। पिछले कुछ दशकों में महिलाओं के उत्थान एवं उनकी सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कई कानूनी एवं विधिक प्रयास किए गए हैं। परंतु इसके बावजूद महिलाओं के प्रति विभिन्न प्रकार की हिंसक घटनाएँ आज सामान्य घटना बन गई हैं। भारत में स्थिति और भी भयावह है। कन्या भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा, दहेज उत्पीड़न, छेड़-छाड़, तेजाब फेंकना, बलात्कार आदि ऐसी शर्मनाक हिंसक घटनाएँ हैं, जो आज के सभ्य समाज के लिए कलंक हैं। इसी कड़ी में भारत में हो रहे सम्मान की रक्षा के लिए बेटियों की हत्या की घटनाएँ सीधे तौर पर न सिर्फ वर्तमान में बदलते हुए सामाजिक एवं शैक्षणिक परिवेश में भी प्राचीन रूढ़िवादी सोच को थोपने का प्रयास है। बल्कि स्त्रियों के मानवाधिकारों का भी क्रूरतापूर्ण उल्लंघन है।

मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए दिए गए अधिकार मानवाधिकार कहलाते हैं। मानवधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948, सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966, आर्थिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966, तथा अन्य अनेक अंतर्राष्ट्रीय घोषणाओं एवं प्रसंविदाओं के माध्यम से विश्व के प्रत्येक मनुष्य को मानवाधिकार प्रदत्त किए गए हैं।'[1] ये वे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को केवल इस आधार पर मिलने चाहिए कि वह मनुष्य है। मानव अधिकार तथा मूल स्वतंत्रता व्यक्तियों के मानवीय गुणों के विकास तथा आध्यात्मिक एवं अन्य आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में सहायक होती है।[2]

ये मानवाधिकार प्रत्येक को प्रदत्त किए जाने के कारण स्त्रियाँ भी इन मानवाधिकारों की अधिकारिणी हैं परंतु स्त्रियों के मानवाधिकारों की स्वीकार्यता में भारत समेत तमाम देशों में काफी कमी है। जबकि मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के तहत भारत में भी 'राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग' नामक स्वतंत्र तथा वैधानिक संस्था की स्थापना इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए की गई है तथा हाल में ही 22 जुलाई 2019 को संसद द्वारा मानवाधिकार संरक्षण (संशोधन) विधेयक 2019 पारित कर इसे और भी शक्तिशाली एवं कारगर बनाने का प्रयास किया गया है।[3]

इक्कीसवीं शताब्दी के अभूतपूर्व परिवर्त्तनों के उपरांत भी संपूर्ण विश्व की प्रत्येक संस्कृति में स्त्रियों के प्रति भेद-भाव एवं हिंसा व्याप्त है। भारत भी इससे अछूता नहीं है। यद्यपि स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान ने स्त्रियों को समान स्तर पर लाने हेतु विशेष प्रयास किए गए हैं, जिस कारण आज स्त्रियों ने शिक्षा के माध्यम से अपने बुद्धिमत्ता एवं दक्षता को प्रमाणित कर दिखाया है तथा शिक्षा, व्यवसाय, राजनीति के क्षेत्र में अभुतपूर्व प्रगति की है तथापि आज भी स्त्रियाँ भेद-भाव एवं हिंसा की शिकार है। विशेष रूप पारंपरिक समुदाय में स्त्रियों के साथ आज भी पारंपरिक तरीके से ही भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है तथा उनके मानवाधिकारों एवं समानता के अधिकारों की उपेक्षा की जाती है। भारतीय समाज में आज भी स्त्रियों को दोयम दर्जे का नागरिक तथा पुरुषों से निम्न माना जाता है। लंबे समय से चली आ रही रूढ़ियाँ एवं परंपरा उन्हें पुरुषों के समान अधिकारों के योग्य नहीं मानती है। उनके प्रति भेद-भाव एवं हिंसा की घटनाएँ दिन प्रतिदिन समाचार पत्रों एवं दूरदर्शन आदि के माध्यम से सामने आ रही हैं। यद्यपि यह समस्त घटनाओं का एक चौथाई भी नहीं है। स्त्रियों के प्रति किए जानेवाले इन अपराधों में उनके शिक्षा, दक्षता, आर्थिक संपन्नता आदि कोई मायने नहीं रखती है।

भारत में लगभग सभी जाति, धर्म एवं समुदाय में बेटियों का जन्म सम्मान घटाने वाली घटना के रूप में माना जाता रहा है। यहाँ जन्म लेते ही बेटियों की हत्या किए जाने का प्रचलन रहा है, जो आज भी कन्या भ्रूण हत्या के रूप में विद्यमान है। बेटियों के जन्म को सम्मान घटाने वाली घटना मानना मूल रूप से उनके विवाह से जोड़ा जा सकता है। आज भी बेटियों के विवाह को परिवार एवं समाज के मान सम्मान से जोड़कर देखा जाता है। जहाँ समाज में एक ओर बेटी की शादी के लिए रिश्ता माँगने जाना छोटेपन का अहसास कराता है और वर पक्ष का स्थान कन्या पक्ष से हमेशा श्रेष्ठ माना जाता है, वहीं बेटी का विवाह अपने से नीची जाति या उपजाति में करना आज भी वर्जित माना जाता है। इन रूढ़िवादी विचारों के लिए आज भी भारत में खासकर पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, बिहार आदि राज्यों में सैंकड़ों बेटियों की प्रति वर्ष हत्याएँ हो रही हैं। जो एक बार पुन: समाज में स्त्रियों की स्थिति एवं उनके मानवाधिकारों के बारे में चिंतन करने पर मजबूर करती है। ह्यूमन राईटस् वॉच, न्यूयार्क ने भी अपने वर्ल्ड रिपोर्ट, 2012 में कहा है कि भारत सरकार ने 'सम्मान के नाम पर हुई हत्याओं, दहेज संबंधी मौतों, यौन हिंसा के व्यापक समस्याओं के समाधान के लिए बहुत कम काम किया है।[4]

सम्मान के लिए हत्याएँ (ऑनर किलिंग), जिन्हें रूढ़िवादी हत्याएँ भी कहा जाता है, से तात्पर्य परिवार के सम्मान की रक्षा के लिए परिवार के सदस्यों के द्वारा ही परिवार की कन्या सदस्य अथवा बेटी की हत्या करना है। सम्मान की रक्षा के लिए अपराध से तात्पर्य ऐसे हिंसक कृत्यों से है जो कुछ नैतिक मूल्यों को अधिरोपित करने के लिए किए जाते हैं। ऐसे नैतिक मूल्य

जिनका पालन करना सामाजिक रूप से आवश्यक बना दिया गया है तथा उनकी अवहेलना परिवार, समाज एवं जाति समुदाय द्वारा असहनीय होता है। हत्या एवं बलपूर्वक आत्महत्या करने के लिए दबाव, सम्मान के रक्षा के लिए हत्या के उदाहरण हैं।

सम्मान के रक्षा के लिए हत्या करनेवालों का मानना है कि दोषी स्त्री अपने परिवार, जाति एवं समुदाय के अपमान का कारण है। अत: उसकी हत्या करके ही अपनी जातीय समुदाय एवं प्रमुखत: अपने परिवार के सम्मान की रक्षा की जा सकती है। परिवार के सदस्यों के द्वारा स्त्री को इस हद तक प्रताड़ित किया जाता है कि वह या तो स्वयं ही आत्म हत्या कर लेती है या परिवार वाले उसकी हत्या कर देते हैं।

सम्मान की रक्षा के लिए सदैव पुत्री का ही बलिदान दिया जाता है, पुत्र का नहीं। ऑनर किलिंग में यदि किसी पुरुष की जान जाती है तो वह उस परिवार का दामाद होता है न कि पुत्र। पुत्र के द्वारा यदि वैसा ही मान सम्मान घटाने वाला कृत्य किया जाता है यानी अपने से निम्न जाति आदि में विवाह किया जाता है तो परिवार के द्वारा उसका बहिष्कार मात्र किया जाता है न कि हत्या। ऐसी घटनाओं में भी सारा दोष पुत्रवधु पर मढ़ दिया जाता है और यातना, प्रताड़ना का शिकार बनाया जाता है। समाज में ऐसा कोई उदाहरण नहीं देखा गया है जिसमें परिवार के पुत्र को परिवार, जाति, उपजाति, समाज या समुदाय के मान सम्मान या प्रतिष्ठा को कलंकित करने के लिए मृत्युदंड दिया गया हो। इस प्रकार सम्मान की रक्षा के लिए हत्या करने वाले सदैव स्त्रियों की समानता, स्वतंत्रता, गरिमापूर्ण जीवन तथा स्वेच्छा से जीवन साथी का चयन एवं विवाह के स्वतंत्रता के मानवाधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

सम्मान के रक्षा हेतु हत्या का संक्षिप्त इतिहास

सम्मान की रक्षा हेतु अपने ही परिवारिक सदस्य की हत्या करना कोई नवीन कृत्य नहीं है अपितु सदियों से यह कृत्य समाज में धर्म, जाति, समुदाय एवं परिवार के सम्मान के रक्षा के लिए किया जाता रहा है। हिंदु पौराणिक कथाओं में वर्णित शिव से विवाह करने के कारण दक्ष प्रजापति द्वारा अपनी बेटी सती को आत्महत्या के लिए बाध्य करना, ऑनर किलिंग का प्राचीनतम उदाहरण है। सदियों से लगभग सभी धर्मों में स्त्रियों को परिवार में सम्मान एवं प्रतिष्ठा का द्योतक माना जाता रहा है तथा उनसे अपेक्षा की जाती है कि विवाह से पूर्व वह अपने पिता व भाई की आज्ञा का पालन करें। उनके विवाह का पूर्ण दायित्व एवं विवाह के लिए निर्णय लेने का पूर्ण अधिकार उनके पिता एवं भाई अथवा परिवार के वरिष्ठ पुरुष का ही होता है। परिवार के पुरुषों की इच्छा के विरुद्ध कार्य अथवा विवाह का निर्णय परिवार के उपर कलंक समझा जाता है तथा समाज जाति एवं समुदाय आदि के समक्ष परिवार के अपमान का कारण बनता है। स्त्रियों के प्रति यह धारणा आज भी समाज में उतनी ही सुदृढ़ है जितनी प्राचीनकाल में थी। अत: कोई भी स्त्री अपने परिवार के निर्णय के विरुद्ध अपने विवाह का निर्णय लेती है अथवा विवाह करती है तो उसे परिवार व जाति का अपमान समझा जाता है। अत: दंड के रूप में उसे प्राण दंड देकर अपने सम्मान की रक्षा की जाती है।

सम्मान हेतु हत्या के कारण

भारत में सम्मान के रक्षा हेतु हत्या के निम्न कारण हैं–

1. परिवार, समुदाय एवं समाज द्वारा स्त्रियों की प्रतिष्ठा की वस्तु समझना।

2. परिवार एवं समाज द्वारा अंतर्जातीय (खासकर प्रतिलोम) विवाह की स्वीकृति या मान्यता का अभाव।

3. सगोत्रिय विवाह का सामाजिक निषेध एवं इस संबंध में जातीय पंचायतों (खाप पंचायतों) द्वारा पारित निर्णय एवं उनकी सामाजिक बाध्यता।

4. रूढ़िवादिता एवं परंपराओं को सर्वोपरि मान्यता तथा उनका उल्लंघन सर्वाधिक दंडनीय अपराध मानना।

5. अविवाहित माँ बनना, विवाह-पूर्व तथा विवोहतर संबंध।

भारत में ऑनर किलिंग के मामलों में वृद्धि का कारण

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान के द्वारा स्त्रियों को समान अधिकार प्रदत्त करना तथा विधि एवं संविधियों के माध्यम से स्त्रियों के पति समाज में व्याप्त कुरीतियों को समाप्त करने के सरकार के प्रयासों एवं नीतियों के कारण समाज में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में काफी सुधार हुआ है। रूढ़िवादी परंपराओं को त्याग कर स्त्रियों को शिक्षा के अवसर प्रदान किए जा रहें हैं, जिससे उनकी सामाजिक आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति में सुधार हुआ है। शिक्षा के कारण स्त्रियों में जातिवाद के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। आज का युवावर्ग जाति को आधार न मानकर आर्थिक सुदृढ़ता तथा शिक्षा को ज्यादा महत्त्व देता है। अत: विवाह के प्रति भी इस युवावर्ग का दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ है। आज का युवा वर्ग स्वयं की पसंद के अनुसार विवाह करने को वरीयता प्रदान करता है, जिसमें जाति, धर्म, गोत्र आदि का कोई स्थान नहीं होता। एक ओर समाज में स्त्रियों के प्रति रूढ़िवादी दृष्टिकोण में तो परिवर्तन आया है परंतु दूसरी ओर स्त्रियों को विवाह की स्वतंत्रता अथवा अपना जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता के संबंध में समाज के दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं आया है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति और भी दयनीय है। जिन परिवारों में अंतर्जातीय विवाह को स्वीकृति दी जाती है वहाँ भी केवल पुत्र को ही यह अधिकार दिया जाता है कि वह अपनी इच्छा से जीवनसाथी चुन सके। सामान्यत: पारिवारिक प्रताड़नाएँ स्त्रियों को अपना निर्णय बदलने पर मजबूर कर देती हैं और वे माता-पिता के इच्छानुसार विवाह के लिए तैयार हो जाती है। यदि वह अपने निर्णय पर अडिग रहती हैं तो उन्हें प्रताड़ित किया जाता है और अंतत: उनको हत्या के रूप में मृत्यु दंड दे दिया जाता है। इस प्रकार स्त्रियों का अपने अधिकारों के प्रति सचेत होना, उनकी माँग करना तथा अपनी जीवन को स्वतंत्र रूप से अपनी इच्छानुसार जीने की कामना करना ही, सम्मान के लिए हत्या के मामलों में वृद्धि का मुख्य कारण है।

सम्मान के लिए हत्याओं एवं प्रताड़नाओं के मामलों के वास्तविक आँकडे प्राप्त नहीं होते हैं क्योंकि अधिकतर मामले सामान्य दुर्घटना अथवा आत्महत्या के रूप में वर्गीकृत कर दिए जाते हैं। अधिकतर मामले दर्ज ही नहीं करवाए जाते अथवा दर्ज नहीं होने दिए जाते हैं।

विवाह करने का अधिकार

विवाह प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला होता है, परंतु स्वतंत्रतापूर्वक अपने विवाह का निर्णय लेना एवं विवाह करना प्रत्येक व्यक्ति का अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त मानवाधिकार है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948, मानवाधिकारों के संबंध में प्रथम अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेज है, जिसकी घोषणा मनुष्यों के प्रति किए जाने वाले अत्याचारों एवं भेदभावपूर्ण कार्यों के रोकथाम की आकांक्षा से की गई थी। यह घोषणा-पत्र सभी मनुष्यों 'स्त्री एवं पुरुषों' के गौरवमयी

 ISSN 0975-735X

स्वतंत्रता एवं समानता के अधिकार को मान्यता प्रदान करता है तथा लिंग के आधार पर भेद-भाव को वर्जित करता है तथा सभी वयस्क स्त्री-पुरुषों को बिना किसी जाति, धर्म या राष्ट्रीयता की रुकावटों के आपस में स्वतंत्र सहमति से विवाह करने तथा परिवार स्थापित करने का अधिकार प्रदान करता है।'[5] इस प्रकार वयस्क स्त्रियों को अपनी इच्छा से किसी भी व्यक्ति के साथ विवाह करने का मानवाधिकार प्राप्त है। मानवाधिकारों के संबंध में सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 भी प्रावधान करती है कि सभी वयस्क स्त्री एवं पुरुषों को स्वतंत्र सहमति से विवाह करने तथा परिवार स्थापित करने के अधिकार को मान्यता प्रदान की जाए।

भारतीय संविधान विवाह करने की स्वतंत्रता के अधिकार के संबंध में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं करता है परंतु स्त्री एवं पुरुषों को समानता का अधिकार प्रदान करता है। अत: पुरुषों को समानता का अधिकार प्रदान करता है। अत: पुरुषों के समान ही स्त्रियाँ भी अपने संबंध में स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार रखती हैं। भारत में हिंदू विवाह अधिनियम 1955, विशेष विवाह अधिनियम 1954, मुस्लिम विधि, ईसाई विवाह अधिनियम आदि विधियों स्त्री एवं पुरुषों को स्वतंत्र सहमति से विवाह करने का अधिकार प्रदान करता है।

खाप पंचायतों के निर्णय तथा उनकी वैधानिकता

भारत एक प्रजातांत्रिक देश है। भारत में संविधान सर्वोपरि है तथा विधायिका के द्वारा पारित प्रत्येक विधि का संवैधानिक उपबंधों के अनुकुल होना अनिवार्य है। संविधान विधि के शासन की स्थापना पर बल देता है तथा सरकार पर कर्त्तव्य अधिरोपित करता है वह अपने राज्य क्षेत्र में विधि के शासन को स्थापित करेगा, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा भयरहित वातावरण उपलब्ध हो जिसमें वह गरिमापूर्ण जीवन व्यतित कर सके तथा अपने अधिकारों का उपयोग कर सके। इस रूप में भारत में विधि के शासन की स्थापना शहरों तथा नगरों तक ही हो चुकी है, ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी कई ऐसे प्राचीन रूढ़ियाँ एवं रीति-रिवाज जो विधिसम्मत नहीं हैं, वे भी प्रचलित हैं। जातीय (खाप) पंचायतें तथा उनके निर्णय इसी का एक स्वरूप हैं। गाँव, जाति, उपजाति, गोत्र आदि के आधार पर बनी इन खाप पंचायतों की पकड़ आज भी हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, उत्तरप्रदेश आदि राज्यों के ग्रामीण समाज में बरकरार है। संविधान के द्वारा सभी प्रकार के विवादों का निपटारा करने का अधिकार न्यायपालिका को सौंपा गया है परंतु भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी जातीय पंचायतें जातीय समुदाय में होनेवाली घटनाओं का निपटारा करती हैं। समाज में इन्हें जातीय न्यायालयों का स्थान प्राप्त है। इन न्यायालयों के सदस्य स्वयंभू न्यायाधीश के रूप में आदेश पारित करते हैं तथा समाज के सदस्य स्वेच्छा से अथवा सामाजिक बहिष्कार या दंड के भय से उनके आदेशों का अनुपालन करते हैं अथवा करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। समाचारपत्रों में प्रकाशित अनेक मामलों में खाप पंचायतों ने सगोत्रिय विवाह तथा अंतर्जातीय विवाह के मामलों में अनेक विवाहित जोड़ों अथवा लड़कियों को मृत्युदंड दिया है। किसी भी असंवैधानिक व अविधिक निकाय को दंड अधिरोपित करने का कोई विधिक अधिकार नहीं है। विवाह एक संस्कार के साथ साथ दो व्यक्तियों का व्यक्तिगत मामला भी है। यदि दो वयस्क व्यक्ति आपस में विवाह करना चाहते हैं तो सम्मान के नाम पर उनकी बलि चढ़ा देना आज के मानवाधिकारों के इस युग में न्यायोचित नहीं है तथा दंडित व्यक्तियों के मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन है। सम्मान के लिए हत्या का विषय तब पूरे जोर शोर से पूरे भारत में चर्चा का विषय

बना गया जब बहुचर्चित मनोज बनवाल-बबली के सगोत्रिय विवाह करने पर, अदालत द्वारा पुलिस सुरक्षा दिए जाने पर भी उनका अपहरण तथा हत्या हो जाने पर करनाल, हरियाणा के जिला न्यायालय ने खाप पंचायत के मुखिया को उम्रकैद तथा पाँच लोगों को मृत्युदंड भी सजा सुनाई। यह बात भी पूरे देश की जनता के सामने आई कि किसी प्रकार से इन खाप पंचायतों एवं उनकी महापंचायतों ने हिंदू विवाह अधिनियम 1955 में संशोधन कर सगोत्रिय एवं अंतरजातीय विवाह को वर्जित करने की माँग रखी और कई राजनेता एवं राजनीतिक दल भी इन असंवैधानिक एवं अविधिक माँग के समर्थन में दिखे। परंतु वर्ष 2010 में जब सर्वोच्च न्यायालय ने एक गैरसरकारी संस्था शक्तिवाहिनी द्वारा दायर जनहित याचिका की सुनवाई के दौरान केंद्र सरकार तथा उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश सहित कई राज्यों को सम्मान के रक्षाहेतु हत्या के बढ़ते मामलों एवं उनके रोकथाम के लिए इन सरकारों द्वारा किए गए उपायों की जानकारी देने के लिए नोटिस जारी किया। इन राज्यों तथा केंद्र के हलफनामा तथा अन्य पक्षों की सुनवाई के उपरांत अप्रैल 2011 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इन खाप पंचायतों को अवैध करार देते हुए, एक गाइडलाईन भी जारी किया गया, जिनसे ऐसे मामलों को रोका जा सके।[8]

सम्मान के लिए हत्या को रोकने के कानूनी प्रावधान एवं पहल

ऑनर किलिंग के लिए भारतीय दंड संहिता में अलग से कोई जिक्र नहीं है न ही अलग से किसी दंड का प्रावधान है। चूँकि इसमें हत्या का कृत्य सम्मिलित है, इसलिए इन मामलों में भारतीय दंड संहिता के धारा 299, 300, 302 आदि के अंतर्गत ही मामले न्यायालय में सामने आते हैं। अलग-अलग मुकदमों में अलग-अलग निर्णय आए हैं। ऑनर किलिंग के चर्चित कांडों में से एक नितीश कटारा हत्याकांड के अदालती लड़ाई ने संपूर्ण देश के सामने एक नजीर पेश किया था। उत्तर प्रदेश के बाहुबली नेता डी॰पी॰ यादव की पुत्री भारती यादव से मित्रता रखने के कारण नितीश कटारा की हत्या 17 फरवरी 2002 को कर दी गई थी। अदालत में इस मामले की लंबी और कठिन लड़ाई नितीश कटारा की माँ नीलम कटारा ने लड़ी, जिसके फलस्वरूप निचली अदालत ने आरोपी विकास यादव (डी॰पी॰ यादव के पुत्र) तथा उसके चचेरे भाई विशाल यादव को उम्र कैद की सजा सुनाई। आरोपियों की अपील पर सुनवाई करते हुए हाईकोर्ट ने दोषियों को हत्या के लिए 25-25 वर्ष तथा सबूत नष्ट करने के लिए 5 वर्ष की सजा सुनाई और कहा कि यह लगातार चलता रहेगा। बाद में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि दोनों सजाएँ एक साथ चलेंगी, तीसरे सहयोगी सुखदेव पहलवान की सजा भी 25 वर्ष से घटाकर 20 वर्ष कर दी गई थी परंतु अदालत ने साफ लहजों में कहा कि ये सामान्य उम्र कैद नहीं हो सकती। हाल ही में 4 नवंबर 2019 को विकास यादव के चार ह3ते के पैरोल अर्जी को ठुकराते हुए चीफ जस्टिस ने कहा था कि अदालत से तुम्हें 25 साल की सजा दी गई है, इसे पूरा करो।[9]

उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट तौर पर कहा है कि इन हत्याओं में कुछ भी सम्मानजनक नहीं है बल्कि यह केवल क्रूर रूढ़िवादी एवं संप्रदायवादी मानसिकता वाले व्यक्तियों द्वारा किया गया क्रूरतापूर्ण, बर्बरतापूर्ण एवं शर्मनाक अपराध है जिसके लिए वे कठोरतम दंड के योग्य है। कठोरतम दंड के द्वारा ही इस प्रकार के जघन्य कृत्यों को रोका जा सकता है। इसके लिए दंड विधान के अनेक विधियों एवं संविधियों में संशोधनों के साथ-साथ सामाजिक दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन एवं दृढ़ राजनीतिक संकल्पशक्ति की आवश्यकता है।

 ISSN 0975-735X

संदर्भ

1. इंटरनेशनल ह्यूमन राइटस्, फिलीप अल्सटन और रयॉन गुडमैन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2013
2. मानव अधिकार, डॉ॰ अग्रवाल एच॰ओ॰, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, 2014
3. दैनिक जागरण, 23 जुलाई 2019
4. वर्ल्ड रिपोर्ट, ह्यूमन राइटस् वॉँच, 2012
5. युनिवर्सल ह्यूमन राइटस् इन थ्योरी एंड प्रैक्टिस, डौनेली, जैक, कॉर्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस 2013
6. टाइम्स ऑफ इंडिया, 31 मार्च, 2010
7. टाइम्स ऑफ इंडिया, 11 जून, 2010
8. द हिंदु, 20 अप्रैल, 2011
9. दैनिक भास्कर, 4 नवंबर, 2019

द्वारा मनोरजन सिंह
राधारानी सिन्हा रोड, आदमपुर
भागलपुर 812001 **(बिहार)**
nranjanbgp@gmail.com
मो॰ 9934702588

मीरा के काव्य में गीतितत्त्व

डॉ॰ ओमप्रकाश शर्मा
तिलका माँझी भागलपुर, विश्वविद्यालय भागलपुर

सदियों से शोषित और परतंत्र नारी ने जब कठोर पौरुष में प्रेम की निश्च्छल धारा की तलाश शरू की तो उसे मनमोहन के सिवा कोई प्रेमी पुरुष इस संसार में नहीं दिखा। युगों-युगों से आहत, दमित चाह को ईश्वर का आश्रय मिला और सुकोमल भावनाएँ प्रेमगीत के रूप में प्रस्फुटित होने लगीं। गीत मानव-मन के संवेगों का प्राचीनतम अभिव्यक्ति का भाषिक माध्यम है। गीत की अभिव्यक्ति में मानवीय संवेगों अर्थात् दु:ख-सुखात्मक अनुभूतियों का विशेष योगदान रहता है। इसलिए गीत को परिभाषित करते समय इन्हीं तत्त्वों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। महादेवी वर्मा का विचार है कि 'सुख-दु:ख की भावावेशमयी अवस्था का विशेष गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। गीत यदि दूसरे का इतिहास न कहकर वैयक्तिक सुख-दु:ख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है, इसमें संदेह नहीं।' अँग्रेजी कवि वड्र्सवर्थ की मान्यता है कि 'गीत हृदय की उद्दाम भावनाओं का सहज उच्छलन हुआ करता है।[1] कवि शेली कहता है कि 'हमारा मधुरतम गीत वह है जो गहन दु:खों को व्यक्त करे।'[2] इसी भाव से मिलता-जुलता कथन है महाकवि सुमित्रानंदन पंत का–

> वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
> निकलकर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।[3]

डॉ॰ चार्ल्स की मान्यता है, 'विशुद्ध काव्य जिसमें अनिवार्यत: काव्यात्मक गुण होते हैं गीत काव्य होता है। किसी रचना में जितना अधिक गीतात्मकता की वृद्धि होती है उतना ही काव्यात्मक हो जाती है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि वैयक्तिक सुख-दुखात्मक अनुभूतियों एवं विचारों की अनलंकृत या अनलंकृत कोमल एवं ललित पदों में संगीतमय सीमित आयाम की लयात्मक अभिव्यक्ति गीत है।'

उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक में मीरा का काव्य विशुद्ध रूप से गीतिकाव्य है। गीति काव्य-रचना की एक लंबी भारतीय परंपरा में मीरा के गीत अपना अनुपम स्थान रखते हैं। प्राचीन भारतीय वैदिक संहिताएँ गेय काव्य ही हैं। वेदों का उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि का ध्यान रखते हुए गायन किया जाता है। सामवेद तो प्रमुख रूप से गेयता पर आधारित ऋचाओं का संकलन है। वाल्मीकि द्वारा रामायण, कुशीलवों द्वारा गेय रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है। कालिदास का ऋतुसंहार, मेघदूत, अमरूक का अमरूक शतक, पालि भाषा में निबद्ध थेर-थेरी गाथा, जयदेव रचित गीत-गोविंद, सिद्धों के चर्यापद, विद्यापति पदावली, कबीरादि संतों के निर्गुण पद, सूरदास, नंददास आदि के कृष्णलीला के पद आदि मीरा के पूर्व रचे जा चुके थे। इस तरह मीरा के समक्ष गीति-काव्य की एक लंबी तथा सशक्त परंपरा थी। मीरा ने अपने प्रेम की उल्लासमयी पीड़ा को संगीतमय पदों में इस तरह ढाला कि व्यापक लोकसमाज उसके साथ स्वर मिलाकर गा उठा।

 ISSN 0975-735X

मीरा के गीत के स्वर भारत के अनेक प्रदेशों में अलग-अलग धुनों में, अलग-अलग भाषा में रूपांतरित होकर गूँजने लगे।

मीरा का कोमल नारी हृदय बचपन से ही कृष्ण के प्रति आकर्षित था। संसार की विषम परिस्थितियों एवं पारिवारिक मर्यादाओं के अनुपालन हेतु पड़ते दबावों तथा आघातों के बीच संघर्ष करती हुई मीरा की आंतरिक बेचैनी और पीड़ा बढ़ती गई। पीड़ा के अतिशय आवेग में यदि उसकी तरल अभिव्यक्ति नहीं होती तो मनुष्य के मस्तिष्क की नसें फट जाती हैं। आँसुओं का प्रवाह पीड़ा को गलाकर बहा देता है। मीरा के अधिकांश गीतों में प्रत्येक वर्ण आँसू का ही रूपांतरण है। जयशंकर प्रसाद ने 'आँसू' के आरंभ में लिखा है–

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बन वह आज बरसने आई।[4]

मीरा के मस्तिष्क में पति के असामयिक निधन की पीड़ा थी, राणा के द्वार अनेक प्रकार से सताए जाने की पीड़ा थी, साधुओं-संन्यासियों के बीच एक राजरानी की सुंदर स्त्री-काया के साथ भजन-कीर्तन करते हुए अपने सतीत्व की रक्षा की चुनौतियाँ थीं, बड़े-बड़े महंतों द्वारा स्त्री-भक्त होने का तिरस्कार भी था, सांसारिक यातनाओं का सिलसिला मस्तक में स्मृति बनने का अवसर ही कहाँ देता था। पीड़ा का आघात हृदय सरोवर को सदैव अशांत एवं विक्षुब्ध किए रहता था। अत: जीवन का अनुभव कविता का अनुभव बनकर गीत में ढलता रहता था। जिन घटनाओं का मीरा के जीवन पर अधिक मार्मिक प्रभाव था, उन्हें वह कभी विस्मृत नहीं कर पाती थीं अत: गीतों में उनकी पुनरावृत्ति होती रहती थी। मीरा को महाकवि कहलाने की चिंता नहीं थी, अत: वह अपने गीतों में पुनरूक्ति दोष से बचने का प्रयत्न नहीं करती हैं। राणा द्वारा विष भेजने तथा मीरा द्वारा उसका पान करने की घटना का उल्लेख कई पदों में हुआ है।

मीरा जिस भावलोक में विचरण कर रही थीं उनमें से अधिकांश उसके जीवन के आचरण का यथार्थ था। अत: उनमें अनुभूति की सच्चाई है। मीराँ के गीतों में आत्माभिव्यक्ति प्रधान है लेकिन उनकी आत्मानुभूति में नारी मात्र की पीड़ा का समावेश है। निजता के बावजूद उसका सहज साधारणीकरण संभव है। मीरा ने कृष्ण के जिस विग्रह को स्वीकार किया है, उसके जिस तरह के रूप-सौंदर्य पर सम्मोहित है। वह संपूर्ण मध्यकालीन जनमानस का चिर-परिचित नाम और रूप है। चित्रकला, मूर्तिकला के द्वारा भी उस कृष्ण को सजाया-सँवारा गया है, उसी सर्वमान्य चित्र को मीरा अपने गीतों में मूर्त करती हैं। जिसके प्रति भक्ति-भाव से युक्त गृहस्थ समर्पित है वह कृष्ण एक तरह से पौराणिक कथाओं, महाभारत तथा भक्ति-गीतों के द्वारा जनमानस में बहुत पहले से प्रतिष्ठित और विख्यात हैं। इतना अंतर अवश्य है कि वे अभी तक गोपी-कृष्ण या राधा-कृष्ण के प्रेम गीतों को सुनते आए हैं। अब मीरा-कृष्ण के गीतों को सुनने का अवसर मिला है। गोपी या राधा पौराणिक सच्चाई हैं किंतु मीरा ऐतिहासिक सच्चाई है, जो उनके समय में घटित प्रेम का यथार्थ है। अत: अधिक विश्वसनीय, ग्रहणीय और नूतन है।

मीरा के गीतों में संक्षिप्तता का विशिष्ट गुण है। वह जिस भाव को उठाती हैं, आदि से अंत तक उसी का निर्वाह करती हैं। नेत्रों ने जबसे कृष्ण को देखा है तबसे एक क्षण भी उन्हें भुलाया नहीं। मोहन मीरा के मन में बस गया है, वह अपने तन-मन की सुध भूल गई हैं। रूप रस से नेत्र तृप्त नहीं हुए, पाने की लालसा से वह डगर-डगर खोजकर शांत हो गई। वह कृष्ण के हाथ

बिक गईं। उससे जग एवं कुल की मर्यादा छूट गई। कृष्ण के रूप का प्रभाव, फिर उसको पाने की बेचैनी तन-मन से पूर्ण समर्पण फलस्वरूप कुल की मर्यादाओं का सहज त्याग। एक छोटे-से गीत में मुख्य भाव के साथ अन्य सहयोगी भावों की लड़ियाँ कितनी कुशलता से पिरोई गई हैं, कहते नहीं बनता। 'हाथ बिकने' का मुहावरा मीरा का प्रिय मुहावरा है। संपूर्ण पद इस प्रकार है—

आली री म्हारे णेणाँ बाण पड़ी।
चित्त चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत, हिबड़ा अणी गड़ी।
कब री ठाड़ी पंथ निहाराँ, अपने भवण खड़ी।
अटक्याँ प्राण साँवरों प्यारों, जीवन मूर जड़ी।
मीरा गिरधर हाथ बिकाणी, लोग कह्याँ बिगड़ी।[5]

मीरा के गीतों में वर्णनात्मकता कम आंतरिक भाव-व्यंजना अधिक है। वह भावाभिभक्ति के लिए आडंबरों का विधान नहीं करती है। अनुभावों का सहज-सरल संकेत से भावों का तीव्र प्रभाव अंकित हो जाता है। कृष्ण के मीठे वचन हृदय पर किस तरह असर डालते हैं, उसके लिए कायिक अनुभाव का संकेत ही पर्याप्त है

सबदाँ सुणताँ छतियाँ काँपाँ मीठो थारो वैण।[6]

मीरा अपने गीतों में अलग-अलग तरह के द्वंद्व तथा तनावों को रूपायित करती हैं। संसार के लोग मीरा को कटु वचन सुनाते हैं, निंदा करते हैं, मारने का उपक्रम करते हैं, नश्वर वस्तुओं के प्रति प्रलोभन देते हैं, अस्थायी संबंधों की दुहाई देते हैं, इन सबके विपरीत मीरा कृष्ण का मधुर वचन सुनती हैं, भक्तों की रक्षा के लिए कृतसंकल्प कृष्ण की आध्यात्मिक सांत्वना का विश्वास पाती हैं, अविनाशी एवं वास्तविक आनंददाता पति का सपने में वरण करती हैं, नश्वरता को त्यागकर शाश्वत सुख तथा संबंधों के प्रति आसक्त होती हैं। अन्य भक्तकवियों की तुलना में मीरा का द्वंद्व उनका भोगा हुआ यथार्थ है, देखा हुआ नहीं। अत: गीतों की मार्मिकता का रहस्य भी यही है। मीरा हरिगुण गाकर मस्त हैं और राणा विष का प्याला भेज रहा है जिसने नाम का प्याला पी लिया है उसकी देह में विष का क्या असर हो सकता है—

विष की प्यालो राणो जी भेज्यो, द्यो मेड़तणी णे पाय,
कर चरणामृत पी गई रे, गुण गोविंद रा गाय।
पिया पिलाया नाम का रे, और न रंग सोहाय।
मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर, काचो रंग उड़ाय।[7]

डॉ॰ विश्वनाथ त्रिपाठी का यह कथन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, 'मीरा का नाचना-गाना विषम स्थितियों की उपज था और उनके लिए विषम स्थितियाँ उत्पन्न करता था। इसीलिए यह नाच-गाना एक ओर सांसारिकता से लिप्त लोगों के नाच-गाने से भिन्न था और इसीलिए यह नाच-गाना रीतिकालीन नायिकाओं के नाच-गान से भिन्न था।'

प्रो॰ सी॰एल॰ प्रभात मीरा के गीतितत्त्व को कवि के व्यक्तित्व की प्रत्यक्ष व्यंजना मानते हुए लिखते हैं, 'मीरा में तो वैयक्तिकता और आत्मगतता बहुत अधिक है, पर उनका यह वैशिष्ट्य वैचित्र्य की सीमा की ओर कहीं नहीं बढ़ा। उनकी संवेदनशीलता सर्वत्र व्यापक मानवीय स्तर की है। उनकी अनुभूति के क्षणों में युग-युग के सत्य ध्वनित है। इसलिए जहाँ उनकी वैयक्तिकता उनके पदों को मार्मिकता प्रदान करती है, वहीं मूलभूत अनुभूतियाँ उन्हें लोक संवेद्य भी बना देती

 ISSN 0975-735X

हैं। वैयक्तिक अनुभवों का सामाजिक अनुभवों में रूपांतरण तथा कालगत सीमा का उल्लंघन करके कालातीत हो जाने के कारण मीरा के गीत अपने समय में लोकप्रिय हुए और धीरे-धीरे उनकी लोकप्रियता की समृद्धि ही हुई, ह्रास नहीं हुआ।

गीत में संगीत का सहज समावेश मीरा के पदों की विशिष्टता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का विचार है, 'अस्तु काव्य एवं संगीत दोनों के आस्वादन का माध्यम एक ही है। केवल अंतर इतना है कि एक का आधार नाद का स्वर-व्यंजनात्मक स्वरूप है, दूसरे का नाद का आरोह-अवरोह।' रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि 'नाद सौंदर्य से कविता की आयु बढ़ती है।' कर्णप्रिय तथा मधुर नाद संगीत का आधार माना गया है। संगीत में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का समावेश होता है। 'संगीत की नादात्मक ध्वनियाँ भावों को जागृत करके मन को आह्लादित करती हैं परंतु गीत की ध्वनियुक्त शब्दावलियाँ बुद्धि और कल्पना को भी जागृत करके मानसिक परितोष प्रदान करती हैं।'[8] निःसंदेह मीरा के पद अपने सांगीतिक सौंदर्य के कारण ही श्रोताओं तथा पाठकों को मुग्ध करते हैं। पद शैली का संगीत से गहरा संबंध है। इसमें अन्य छंदों की तुलना में प्रयोग एवं गायन की स्वतंत्रता रहती है। रागों के अनुसार मात्रा को घटाया-बढ़ाया जा सकता है। मीरा ने भाव-विह्वलता में पदों का गायन किया है, इसके बावजूद उनमें पंक्तियों तथा लय का सहज निबनंन दिखाई देता है। इतना अवश्य है कि पदों की पंक्तियों में असमानता है। मीरा के कुछ पदों में 'टेक' की आवृत्ति से अद्भुत ध्वनि-सौंदर्य आ जाता है। टेकवाले पदों में प्रथम पंक्ति छोटी होती है, उसकी आवृत्ति कई बार की जा सकती है, जैसे–

माई री म्हा लियाँ गोविन्दा मोल।
थें कह्याँ छाणे म्हाँ काँचोड़े लिया बजन्ता ढोल।[9]

मीरा 'लय' का उचित व्यवहार करती हैं। द्रुतलय के छोटे-छोटे चरणों की प्रयोग विधि का सौंदर्य द्रष्टव्य है–

रंग भरी राग भरी राग सूँ भरी री।[10]

खीझ एवं कसक की अभिव्यक्ति हेतु विलंबित लय का प्रयोग हुआ है। इस लय में स्वर की गति मंद होती है, जैसे–'होली पिया विण म्हाणेणा भावाँ घर आँगणाँ न सुहावाँ।'[11]

शांत एवं सौम्य भावों की व्यंजना के लिए मीरा मध्यम लय का व्यवहार करती हैं। मीरा का प्रसिद्ध पद इसी लय से लय से युक्त है–

म्हारा री गिरधर गोपाल दूसराँ णा कूयाँ।
दूसराँ णाँ कूयाँ साधाँ सकल लोक जूयाँ।[12]

मीरा के पदों में तुक या अंतयानुप्रास का मंजुल एवं प्रभावोत्पादक प्रयोग है। तुक के द्वारा लय पर नियंत्रण रखा जाता है और नादात्मक सौंदर्य संवर्द्धन करते हुए संगीत के अनुकूल बनाया जाता है। जैसे–

म्हाँ गिरधर आगाँ णाच्या री।
णाच णाच म्हाँ रसिक रिझावाँ, प्रीति पुरातण जाँच्या री।[13]

णाच्या, जाँच्या आदि तुक निर्वाह की दृष्टि से ही प्रयुक्त हैं।

मीरा के पदों को अनेक रागों की दृष्टि से गेय बनाया गया है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने पदावली में राग तिलंग, ललित, हमीर, कान्हरा, त्रिवेनी, गूजरी, नीलांबरी, कामोद, मुल्तानी,

मालकोस, झिंझोटी, पटमंजरी, गुनकली, माँड़, धानी ,पीलू बरवा, पूरिया कल्याण, खम्माच, अगना, पहाड़ी, पीलू, जौनपूरी, लोहानी, बिहागरा, बिलावल, सुख सोरठ, सोरठ श्याम कल्याण, रामकली, दरबारी, मलार, बिहाग, पूरिया, धनाश्री, जोगिया, होली, सावन, सावनी सारंग, सारंग, बागेश्वरी, आनंद भैरव, भैरवी, देश, टोड़ी, असावरी, देस, लावनी, अलैया, प्रभावती, प्रभाती, सिंध भैरवी, भमपलासी, कोसी, कलिंगड़ा, परज, सुहा, कनड़ी, छाया टोड़ी, काफी, कान्हरी, हंस नारायण, झँझोटी, मारू, शुद्ध सारंग, छाया, हमीर, रागश्री, दुर्गा, धमार आदि की पुष्टि की है।

संदर्भ

1. Words Williams MHD 05 Block- 01 Page -16
2. Selley percy, www.garinyquite.com
3. सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, www.hindi-kavita.com
4. जयशंकर प्रसाद, आँसू, www.hindi-kavita.com
5. रामकिशोर शर्मा, मीराँबाई की पदावली, राग कामोद, पद 14, पृ॰ 80
6. रामकिशोर शर्मा, मीराँबाई की पदावली, राग पेय, पद 02, पृ॰ 142
7. रामकिशोर शर्मा, मीराँबाई रजा जौनपुरी, पद 40, पृ॰ 99
8. मीरा काव्य का गीतात्मक विव्रचन, डॉ॰ माधुरीनाथ, पृ॰ 152)
8. रामकिशोर शर्मा, मीराँबाई की पदावली, राग माँद, पद 22, पृ॰ 86
9. रामकिशोर शर्मा, मीराँबाई की पदावली, राग मन्हार, पद 147, पृ॰ 172
10. रामकिशोर शर्मा, मीराँबाई की पदावली, राग झिंझोरी, पद 18, पृ॰ 82
11. रामकिशोर शर्मा, मीराँबाई की पदावली, राग कामोद, पद 14, पृ॰ 80
12. रामकिशोर शर्मा, मीराँबाई की पदावली, राग कामोद, पद 14, पृ॰ 80

ग्राम+पो॰ घोसतावाँ

थाना सिलाव, जिला नालंदा 803117

मो॰ 7631277859

ISSN 0975-735X

चित्रा मुद्गल के उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ॰ प्रविता लक्ष्मी के॰
अध्यापिका श्री नारायणा कॉलेज, मूवाट्टुड्डपुषा

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध है। जो कुछ समाज में घटित होता है उसका प्रभाव साहित्य पर पड़ता है। अत: विश्व परिदृश्य में जहाँ आज पल-प्रतिपल राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समीकरण बदल रहे हैं तो उनका प्रत्यक्ष प्रभाव साहित्य पर पड़ा रहा है जो परोक्षत: संस्कृति एवं आध्यात्म को प्रभावित करता है। आधुनिक हिंदी कथासाहित्य की बहुचर्चित लेखिका चित्रा मुद्गल 2018 के प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित की गईं। यह पुरस्कार उन्हें उनकी कृति 'पोस्ट बॉक्स नं-203 नाला सोपारा' के लिए मिला है।

समकालीन महिला लेखन में चित्रा मुद्गल उस धारा का प्रतिनिधित्व करती है जो समाज में स्त्रियों को उनके उत्तरदायित्वों के प्रति सजग कराती है। चित्रा जी के साहित्य का प्रमुख स्वर सामाजिक सरोकार है। उनकी नारी मुक्ति सामाजिक परिवेश में अपना अधिकार माँगते हुए पुरुषों के समकक्ष स्थान दिलाने के लिए है। उनकी रचनाओं में एक ओर स्त्री अपने अस्तित्व और अधिकार की रक्षा के लिए पुरुष प्रधान समाज से टकरा रही है तो दूसरी ओर अपने चारों ओर फैले अन्याय, शोषण, अत्याचार और अमानवीयता के विरुद्ध खुला प्रतिवाद करती है और अपने अधिकार के लिए लड़ती है।

चित्रा मुद्गल के उपन्यास तो बीते दो दशकों की श्रेष्ठतम उपलब्धि माने जा सकते हैं। उनके द्वारा रचित उपन्यास–'एक जमीन अपनी', 'आवाँ', 'गिलिगडु' और 'पोस्ट बॉक्स नं-203 नाला सोपारा' समाज की बहुआयामी स्थितियों को उभारने वाले हैं। इनमें चित्रित विषय मुख्य रूप से विज्ञापन दुनिया में स्त्री की स्थिति, उनका शोषण, श्रमिक आंदोलन, सांप्रदायिकता, वृद्धावस्था और किन्नरों की समस्याएँ हैं।

1. एक जमीन अपनी (अपनी जमीन की तलाश में स्त्री)

सन् 1990 में प्रकाशित चित्रा मुद्गल का प्रथम उपन्यास है–एक जमीन अपनी। विज्ञापन की दुनिया में अपना स्थान स्थिर रखने प्रयासरत प्रतिभासंपन्न नारी अंकिता के संघर्ष का चित्रण है। इसमें उन्होंने मध्यवर्गीय कामकाजी स्त्रियों की अस्मिता की तलाश और उनकी समस्याओं को प्रस्तुत किया है। इसकी नायिका अंकिता मॉडलिंग की दुनिया में काम करनेवाली है। प्रेम-विवाह करने के लिए वह घरवालों का विरोध करती है। लेकिन सुधांशु से प्रेम-विवाह करने के बाद उसे महसूस होता है कि पति के घर में वह एक नैकरानी बन गई है। उसे स्वयं लगता है कि 'मैं सिर्फ गृहिणी ही नहीं हूँ... एक स्त्री भी हूँ... आखिर सुबह से रात के बीच कोई एक क्षण ऐसा नहीं हो सकता जिसे मैं नितांत अपने लिए जी सकूँ...कागज-कलम लेकर बैठ सकूँ।'[1] लेकिन पति से उसे

निराशा ही मिलती है क्योंकि सुधांशु को लगता है, 'यह मेरा घर है...और यहाँ तख्ती वही लटकेगी जैसी मैं चाहूँगा...। सुधांशु ने उसकी कविताओं की कॉपी चिथड़े-चिथड़े कर कूड़ेदान में फेंक दी थी। वह फटी-फटी आँखों से उन चिथडों को घूरती रह गई थी... उसे लगा था, यह कविता की कॉपी के चिथड़े नहीं हैं, उसके 'स्व' को चिंदी चिंदीकर कूड़ेदान में फेंक दिया गया है...और अब वह अपने होने को और अधिक अनदेखा नहीं कर सकती।'[2] अंकिता, सुधांशु से रिश्ता तोड़कर अपने पैरों में खड़े होने का निर्णय कर लेती है और विज्ञापन-जगत में आ जाती है। यहाँ एक परिवार की टूटती हालत दिखाई देती है।

एक बार अंकिता रिश्ते में आई दरार के बारे में नीता से कहती है–'हरगिज अलग न होती, अगर मुझे कोल्हू का बैल समझकर, आँखों पर पट्टी बाँधे रहने पर मजबूर न किया जाता।...अंतिम सीमा तक मैं घर बचाने के लिए हाथ-पाँव मारती रही।'[3]

अंकिता, विज्ञापन फिल्मों की निर्देशकों की कामुकता, उनके द्वारा किए जानेवाले यौन-शोषण का प्रतिकार करती है। कला के नाम पर होनेवाले देहभोग का भी घोर विरोध करती है। नारी-स्वतंत्रता के नाम पर स्त्रियों के साथ अविवेकपूर्ण व्यवहार तथा पुरुषों द्वारा उनकी इस विवशता का जो शोषण होता है, इस उपन्यास में उसका बड़ा ही यथार्थ और प्रभावशाली चित्र दूसरी पात्र नीता के रूप में मिलता है।

उपन्यास की दूसरी प्रमुख पात्र नीता मुक्त व्यक्तित्व के विकास के नाम पर अपना शोषण करवा रही है। इस वैयक्तिक शोषण को भी वह पुरुष की दासता से मुक्ति, स्वच्छंद, निर्बाध और आत्मविकास का मार्ग मानती है। वह इस बात पर जरा भी ध्यान नहीं देती कि विज्ञापन-जगत में उसकी देह का ही नहीं उसके वजूद का भी सौदा हो रहा है। नीता का विचार है कि पति-पत्नी के शताब्दियों की दासता के जीवन से मुक्त होकर सहज स्त्री-पुरुष के रूप में रहा जा सकता है, बिना शोषित हुए या किए। इसलिए वह बीबी-बच्चों वाले सुधीर के साथ बिना शादी किए रहती है। लेकिन यह भी छलावा ही सिद्ध होता है। नीता के शब्दों में–'मैं 'पत्नी' नहीं 'सहचरी' बनना चाहती हूँ... 'पत्नी' शब्द से मुझे दासीत्व की बू आती है... इस शब्द ने हमारे समाज में अपनी गरिमा खो दी है... '[4]

उपन्यास के अंत में जब सुधांशु अंकिता को स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है तब अंकिता कहती है, 'सुधांशुजी, औरत बोनसाई का पौधा नहीं है.... जब जी चाहा, उसकी जड़ें काटकर उसे वापस गमले में रोप लिया! ...वह बौना बनाए रखने की इस साजिश को अस्वीकार भी तो कर सकती है!'[5] जब चाहा ठुकरा दिया, जब चाहा सहला दिया पुरुष की इस मनमानी को आज की नारी स्वीकार नहीं करती है।

मित्र होते हुए भी अंकिता और नीता के चरित्र में बहुत अंतर है। अंकिता संस्कार तथा मूल्य को महत्त्व देती है लेकिन नीता के लिए अर्थ तथा प्रतिष्ठा ही सब-कुछ है। अंकिता की अपेक्षा नीता अधिक व्यावहारिक है। वह अपनी बच्ची से प्यार तो करती है लेकिन उसे पालकर अपनी अस्मिता खोना नहीं चाहती। उसके अनुसार अंकिता की गोद में उसकी बेटी मानसी सुरक्षित है। वह ही उसे एक अच्छी औरत के रूप में पाल सकती है। इसलिए वह अपनी अंतिम खत में लिखती है–'अंकू, मानसी भविष्य की इस स्त्री को तुम्हें सौंप रहीं हूँ, कुम्हार के हाथों में कच्ची मिट्टी सी।'[6] इसी प्रकार जीवन के अंतिम क्षण तक माँ के कर्त्तव्यों का पालन करते हुए

अपनी बच्ची का संरक्षण करने में भी वह सफल बनती है।

2. **आवां (श्रमिक आंदोलन की गाथा)**

चित्रा मुद्‌गल के दूसरा उपन्यास 'आवां' श्रमिक आंदोलनों के अंतर्विरोधों को उजागर करता है और उपभोक्ता संस्कार की आड़ में स्त्रियों के दैहिक शोषण का पर्दाफाश भी करता है। इसकी मुख्य पात्र नमिता, धनाढ्य आभूषण व्यापारी संजय कनोई के संपर्क में आती है। संजय कनोई और उनकी पत्नी निर्मला कनोई के बीच भी पारिवारिक संबंध सही नहीं हैं। निर्मला कनोई हीरों का व्यापार करनेवाली एक पूँजीपती नारी है। उसे कोई संतान नहीं है। निर्मला पति या परिवार से ज्यादा व्यापार को महत्त्व देनेवाली स्त्री थी। इसलिए उनका पारिवारिक संबंध टूट गया। इसके बारे में संजय कहता है–'ब्याह का मतलब है मात्र सात फेरे? सात फेरे इतने ही महत्त्वपूर्ण होते तो मेरे और निर्मला के बीच परस्पर समझ का अभाव होता?...निर्मला का पति हूँ मैं–कानूनन! संबंध मेरे तुमसे है।'[7] वह विवाहित पर नि:संतान कनोई के प्रेमजाल में फँसती है और गर्भवती होती है। लेकिन जब उसका गर्भपात हो जाता है तब संजय कनोई आग बबूला हो जाता है। वह नमिता से केवल अपने संतान पाने का इच्छुक था। व्यापक अनुभव के आवें में पकाए जाने के कारण उपन्यास मजदूरों के अधिकारों के लिए किए जानेवाले आंदोलन तथा नारी-शोषण के वर्तमान संदर्भों का यथार्थ अभिलेख बन गया है।

आवां में लेखिका सुनंदा के जरिए बिनब्याही माँ की समस्या की ओर इशारा करती है। सुनंदा एक मुसलमान लड़के सुहैल से प्रेम करती और बिना शादी के उससे गर्भवती हो जाती है। उसकी माँ किशोरीबाई उसका बच्चा गिराना चाहती है लेकिन वह इनकार कर देती है। इसमें एक स्त्री के मातृत्व का चित्र देख सकते हैं। माँ बनना हर स्त्री का अधिकार है। वह कभी अपने बच्चे की मृत्यु नहीं चाहेगी। सुहैल तो उससे शादी करना चाहता है लेकिन इस्लाम बनकर नाम बदलने के बाद ही। सुनंदा को अपना धर्म बदलकर ब्याह करना मंजूर नहीं है। यहाँ तक कि अपना नाम बदलना भी स्वीकार नहीं। इसलिए सुनंदा को बिना शादी किए बच्ची को जन्म देना पड़ा। सुनंदा की कंपनी में अन्य माँ कर्मचारियों को जचकी की छुट्टियाँ मिलती थीं वह एक कुँआरी माँ होने के कारण उससे छीनी जाती है। उस समय सुनंदा एक माँ के अधिकार के लिए लड़ती है।

3. **गिलिगडु (जीवन संध्या में)**

चित्रा मुद्‌गल का तीसरा महत्त्वपूर्ण उपन्यास है–'गिलिगडु'। इसमें वार्धक्य की हालत में अपने ही घर में उपेक्षित वृद्धों की विवशता और वृद्ध जीवन की त्रासदी का यथार्थ चित्रण हुआ है। वैश्वीकरण के युग में विश्वभर में व्याप्त भोगे-फेंको संस्कृति ने मनुष्यों का गला घोंट लिया है। अकेलेपन और बुढ़ापे की त्रासदी उपन्यास की सबसे प्रमुख समस्या है। बाबू जसवंतसिंह और कर्नल स्वामी इसके प्रमुख पात्र हैं जो सैर के समय मिलते हैं और मित्र बन जाते हैं। बाबू जसवंतसिंह रिटायर्ड सिविल इंजिनीयर हैं। पत्नी और दोस्त के मृत्यु के बाद वह बेटे नरेंद्र के साथ दिल्ली आते हैं। अकेलेपन से बचने के लिए बाबू जसंवत सिंह अपने पोतों के साथ समय बिताना चाहते हैं लेकिन वे उनकी उपस्थिति पसंद नहीं करते। उनका मित्र कर्नल स्वामी भी पिछले आठ वर्षों से अकेलापन महसूस करते हैं। तीन बेटे-बहु और पोतों के होते हुए भी वे जीवन में अकेले रह जाते हैं।

बाबू जसवंतसिंह को अपने पारिवारिक माहौल में तिरस्कृत महसूस होने पर लगता है कि

'इस घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं–एक टॉमी, दूसरा अवकाश-प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवंतसिंह! टॉमी की स्थिति निस्संदेह उनकी बनिस्बत मजबूत है। उसकी इच्छा-अनिच्छा की परवाह में बिछा रहता है पूरा घर। उनके लिए किसी को पीछे रहना जरूरी नहीं लगता। टॉमी अच्छी नस्ल का कुत्ता है। सोसाइटी में उनके घर का रुतबा बढ़ाता है। उनके चलते उनका रुतबा कलंकित हुआ।'[8]

कर्नल विष्णुनारायण स्वामी रिटायर्ड कर्नल हैं। उनके परिवार होते हुए भी वे उनसे अलग रहते हैं। उनके जुड़वाँ पोतियों–कुमुदिनी और कात्यायनी को गिलिगडु कहते हैं। एक दिन जसवंतसिंह को पता चलता है कि कर्नल स्वामी की मृत्यु हो गई है। कर्नल स्वामी है जो हमेशा अपने बेटों, बहुओं और पोतियों के गुणगान करते रहते हैं। वास्तव में उनके बेटे तो दिल्ली का घर बेचने के लिए दबाव डालकर उनसे मारपीट करते हैं। कर्नल स्वामी के परिवार के बारे में पड़ोसी मिसेज श्रीवास्तव ने कहा है–'ऐसी कसाई औलादों से तो आदमी निपूता भला। हमें इस बात का कोई गम नहीं कि हमारी कोई अपनी औलाद नहीं।'[9] उनके परिवार से संबंधित उन्होंने जो भी कहा था सब काल्पनिक था। कर्नल स्वामी के दुखद अंत को देख जसवंतसिंह अपनी सारी संपत्ति नौकरानी के नाम दे देती है।

4. **पोस्ट बॉक्स नं॰ 203, नाला सोपारा (किन्नरों की दयनीय जिंदगी)**

चित्रा मुद्गल को 2018 के प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार उनकी कृति–'पोस्ट बॉक्स नं॰ 203-नाला सोपारा' के लिए मिला। यह उपन्यास हमारे समाज के उस खास 'किन्नर' तबके को आधार बनाकर लिखा गया है जिसकी ज्यादतियों और अजीबोगरीब हरकतों से हम अवगत हो सकते हैं, जिनकी जीवनशैली हमारे लिए रहस्य है। हमें यह जान लेना चाहिए कि किन्नर भी इंसान हैं, उनमें भी धड़कता दिल हैं, संवेदना हैं, अपना बचपन और असीम प्यार करने वाली माँ भी हैं । इन सभी को मानव अनदेखा करके जीना चाहते हैं।

इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने समाज का ध्यान किन्नर वर्ग के दुख-दर्द की ओर ले जाने का सफल प्रयास किया है। 'पोस्ट बॉक्स नं॰ 203-नाला सोपारा' नामक उपन्यास में लेखिका ने विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली के बहाने भारतीय समाज में चली आ रही उस मानसिकता का विरोध किया है, जो मनुष्य को मनुष्य समझने से बचती रहती है। शारीरिक कमी के कारण किसी इंसान को आसामाजिक बना देने की क्रूर विडंबना इस उपन्यास में देख सकते हैं। समाज के उपेक्षित एवं उपहास के पात्र किन्नर वर्ग के मनोभावों एवं जिंदगी का मार्मिक चित्रण यहाँ प्रस्तुत है। किन्नर भी समाज का एक अंग है, उन्हें अपने समाज से अलग नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार आम जनता को जीने और रहने का हक है उसी प्रकार उन्हें भी समाज का अंग बनकर अपनी इच्छानुसार रोजगार चुनने का अधिकार होना चाहिए। अपने ही घर से निकाल दिए गए विनोद की मर्मांतक पीड़ा उसके अपनी माँ को लिखे पत्रों में उजागर हुई है। हर एक पाठक यह सोचने को विवश हो जाता है कि किन्नर कहने से अवमानना समाप्त हो सकती है?

विनोद ने अपनी माँ को लिखे पत्र में अपना दु:ख प्रकट किया है–'जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अंधा कुआँ है जिसमें सिर्फ साँप-बिच्छू हैं। साँप-बिच्छू बनकर वह पैदा नहीं हुए होंगे। बस, इस कुएँ ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया। ...घर में सब लोग कैसे हैं?'[10]

इस उपन्यास में विनोद अपने ही परिवार द्वारा त्याग दिया जाता है लेकिन वह अपनी माँ से पत्राचार के माध्यम से जुड़ा रहता है। यह उपन्यास एक किन्नर बेटे के पत्र के रूप में चित्रित है जो अपनी माँ को लिखा गया है। बेटे के पत्र में ही माँ का पत्र समाहित है। हिजड़ों के बीच में रहने के बाद विनोद अपनी माँ को एकतरफा चिट्ठियाँ भेजते हैं। बिन्नी तो अपनी माँ की स्मृतियों में जी रहा है, वह कहता है–'तेरी स्मृतियाँ जो मेरी साँसों में घुली हुई हैं, बा! उन्हें अपने से अलग करूँ तो कैसे अलग करूँ।'[11] इन चिट्ठियों के जरिए वह अपनी समस्त पीड़ा को प्रस्तुत करते हैं। विनोद तो हिजड़े समाज की विसंगतियों और सीमित विकल्पों से पूर्ण रूप से अवगत होते हैं। इस उपन्यास में विनोद बताते हैं कि 'स्त्रैण लक्षण मुझमें कभी नहीं रहे। अब भी नहीं हैं और जो लक्षण मुझमें नहीं है, उन्हें सिर्फ इसलिए स्वीकारूँ कि मेरी बिरादरी के शेष सभी, उन हाव-भावों को अपना चुके हैं?'[12] वह तो हिजड़ों की दयनीय हालत में परिवर्तन लाना चाहता है। विनोद की हार्दिक इच्छा है कि जननांग दोषी लोग भी समाज के अन्य नागरिकों की तरह पढें-लिखें और समाज की मुख्यधारा में आ जाएँ। विनोद के अनुसार हिजड़ों को आरक्षित अथवा अनारक्षित श्रेणी के हिसाब में रखा जाए। लिंग-दोषी समुदाय का ताली पीट-पीटकर भीख माँगना उसे बिलकुल पसंद नहीं।

इसमें माँ-बेटा समाज, धर्म और राजनीति से डरकर छिप-छिपकर नाला सोपारा स्टेशन पर मिलते थे। जो राजनीति किन्नरों के आरक्षण और उद्धार का वादा किया था, अपने इशारे पर न चलने के कारण अंत में विनोद को खत्म करवाते हैं। इसमें आधुनिक राजनीति का ढोंग उजागर होता है। मानव को अब समाज, धर्म और राजनीति के मकड़जाल से बाहर निकलना है। इस उपन्यास के मुख्य पात्र की माँ वंदना बेन शाह अपने बेटे से घर वापसी की अपील करते हुए एक विस्तृत माफीनामा अखबारों में छपवाती है। ताकि यह माफीनामा केवल एक माँ का न होकर समूचे समाज का बन जाए।

इन चारों उपन्यासों में उन्होंने आज के आदमी और समाज कहलाए जानेवाले उनके विभिन्न वर्ग-समूहों को उन्हीं की यथास्थितियों में चित्रित किया है। सामान्य रूप से महिला उपन्यासकार पर स्त्रीवादी होने का ठप्पा लगा दिया जाता है लेकिन चित्रा मुद्‌गल के उपन्यास इसके अपवाद हैं। वह केवल स्त्री-चेतना की एकांगी सोच को लेकर नहीं चलते, साथ-ही-साथ पुरुषों, बच्चों, वृद्धजनों और समाज में परित्यक्त मानव के अधिकारों को भी मान्यता देते हुए चलते हैं।

चित्रा मुद्‌गल के उपन्यास भले ही किसी वाद या राजनीतिक प्रतिबद्धता का शोर नहीं करते, लेकिन वे मानवीय सरोकारों से गहराई से जुड़े हुए हैं। चित्रा जी जिस कुशलता से घर, परिवार संबंधों को कथानक सौंदर्य में बाँधती हैं, उसी कुशलता से घर के बाहर निकलकर विज्ञापन की चकाचौंध भरी दुनिया, दफ्तरों की जिंदगी, निम्नवर्ग की दबी-पिसी जिंदगी के आर्थिक दबावों और शारीरिक कमी के कारण मानव को असामाजिक बना देने की क्रूर विडंबना को भी सफलतापूर्वक रेखांकित करती हैं।

संदर्भ

1. चित्रा मुद्‌गल, एक जमीन अपनी, पृ॰ 24
2. वही, पृ॰ 24-25

3. वही, पृ॰ 215
4. वही, पृ॰ 212
5. वही, पृ॰ 235
6. वही, पृ॰ 272
7. चित्रा मुद्गल, आवां, पृ॰ 523
8. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, पृ॰ 96
9. वही, पृ॰ 138
10. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं॰ 203, नाला सोपारा, पृ॰ 11
11. वही, पृ॰ 15
12. वही, पृ॰ 101

जैनेंद्र के उपन्यास : मानव मन की सूक्ष्म पर्यवेक्षणशक्ति के परिचायक

डॉ॰ संजीवकुमार श्रीवास्तव, डी॰लिट्
एसोसिएट प्रोफेसर
परास्नातक हिंदी अध्ययन एवं शोध केंद्र
किशोरीरमण पी॰जी॰ कॉलेज, मथुरा (उ॰प्र॰)

प्रेमचंदोत्तर युग के हिंदी उपन्यास लेखन में जैनेंद्रकुमार ने जीवन की आंतरिक गहराइयों को अभिव्यक्ति दी। हिंदी दर्शन, अध्यात्म, भाव-निष्ठा को कला चेतना के साथ संपृक्त करने का श्रेय जैनेंद्र को प्राप्त है, उन्हें अंतद्वंद्वों का कथाकार माना गया है।

प्रेमचंदोत्तरयुग के हिंदी उपन्यासकारों में मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति के विकास के स्तर पर व्यक्ति की आत्मनिष्ठ अभिव्यक्ति प्रकट होती गई, जिसमें मध्यवर्गीय नैतिक चेतना को झकझोरा है और स्वच्छंद एवं मुक्त साहचर्य के नवीन मूल्यों को मुखरित किया है। जैनेंद्र इसी प्रवृत्ति के आत्मचैतन्य उपन्यासकार हैं। हिंदी उपन्यास में मनोविश्लेषणवाद के प्रवर्तक हैं और हिंदी के पहले मनोवैज्ञानिक और व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं। जैनेंद्र की मनोवैज्ञानिकता सहज है, उस पर मनोविश्लेषण की स्थापनाओं का बोझ नहीं है। जैनेंद्र के उपन्यासों में व्यक्ति के रहस्य में लिपटे अंतरंग धरातल का अत्यंत सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अंकन मिलता है। जैनेंद्र के उपन्यासों में मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन के चित्रण की प्रवृत्ति बाहर से भीतर की ओर मुड़ती है और अंतरस में उतर जाती है। जहाँ वैयक्तिक संवेदना, सत्य, दर्शन मिलता है। अंतर्मन की सूक्ष्म सेवाओं का अनुशीलन ही जैनेंद्र का ध्येय है। आधुनिक कथा के शिल्पी जैनेंद्र जी मानव जीवन का मूल्यांकन करते हुये अपने जीवन दर्शन का स्पष्टीकरण करते हैं। जैनेंद्र के उपन्यास युगपत चित्रित करने और जागृत करने का निकष है।

जैनेंद्र के उपन्यासों को 'रसात्मक वस्तु' न मानकर उसे वैयक्तिक चेतना और अंतर्मुखी उद्घाटन के रूप में स्वीकारा जाना समीचीन होगा। जैनेंद्र ने स्वयं स्वीकारा है कि 'बुद्धि भरमाती है वह द्वैत पर चलती है। साहित्य का परम ध्येय और श्रेय अखंड और अद्वैतवाद सत्य है। उसका व्यावहारिक रूप समस्त चराचर जगत के प्रति प्रेम और अनुकंपा है।' इसके परिणामस्वरूप जैनेंद्र के उपन्यासों में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण अपनाए जाने की प्रवृत्ति है। परिणामस्वरूप उनके उपन्यासों में जीवन-प्रवाह के इंद्रिय-संवेद्य वत्याचक्र बनकर रह गए हैं।

मानवमन के सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति के सिलसिलेवार मूल्यांकन-विवेचन में प्रत्येक उपन्यास में आत्मानुभव, अवचेतन मन की प्रक्रिया मिलकर एकात्म हो गई, जिसमें मनोवैज्ञानिक सूत्र, कल्पना, दर्शन के सम्मिश्रण के साथ आकांक्ष्य तत्त्व का सृजन करते हैं। परख (1929) में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व से संघर्षरत है। जहाँ बुद्धि और अंतस का अंतर्द्वंद्व है। केवल चार पात्रों को

लेकर इस उपन्यास में बुद्धि व हृदय की द्वंद्वात्मक चेतना के माध्यम से व्यक्ति और उसका सातंत्रय और उसके समाजविधान की क्रिया-प्रतिक्रिया का सजीव उद्घाटन है।

सुनीता (1936) में जैनेंद्र हिंदी में प्रेम की प्रक्रिया का मनोवैज्ञानिक विवेचन करनेवाले पहले उपन्यासकार बने। मानसिक स्तर पर प्रेम दो व्यक्तियों के मध्य जिस विस्फोट की सृष्टि करता है, उसे जैनेंद्र ने बड़ी सूक्ष्मता और सहजता से प्रस्तुत किया। 'सुनीता' में व्यक्ति मन का तनाव, उसकी ग्रंथियाँ और उसके अंतर्द्वंद्व और कुंठाओं के साथ उसकी त्रासदी को प्रदर्शित किया। 'सुनीता' में काम-विवाह का निर्वहन संस्था मानते हुए भी प्रेम को अधिक महत्त्व देते हैं। इसमें प्रेम बाँधकर भी खोलता है, पर विवाह निर्वाह करने का स्वीकारता है। इसमें घर और बाहर की समस्या को संतुलन की चेष्टा खोजने का प्रयत्न है, इसमें पत्नी 'सामाजिकता' तो प्रेयसी 'दियता' है। सीमित कैनवास (सिर्फ तीन पात्र—सुनीता, श्रीकांत, हरि प्रसन्न वे कुछ सहायक पात्र) के साथ 'सुनीता' जैनेंद्र की प्रौढ़ कृति हैं, जिसमें मानवमन की ग्रंथियों के विवेचन और उद्घाटन का सफल निहित है। 'त्यागपत्र (1937)' में व्यक्तिगत में समाज की क्रूर मान्यताओं से प्रपीड़ित नारी के चित्र को प्रदर्शित किया है जो विरोध दर्ज करती हुए विद्रोह करती है। 'त्यागपत्र' में मृणाल और प्रमोद के माध्यम से परंपरागत भारतीय मानसिकता चिंतना को इंगित कर समाज के 'पाप और पुण्य' विषयक मान्यताओं के साथ द्वंद्वात्मक विमर्श प्रस्तुत कर नारीगत मानवीय मूल्यों को नई दिशा, नई चेतना, नई उदात्तता को तीव्र संवेदना और सांकेतिकता के साथ प्रस्तुत किया। कल्याणी (1939) में व्यक्ति की आत्मपीड़ा को व्यक्तिवादी और मनोवैज्ञानिक भूमिका पर स्पष्ट किया। 'कल्याणी' की संपूर्ण कथा व्यक्ति के अंतर्द्वंद्वों से आक्रांत है। 'कल्याणी' में प्रमुख पात्र कल्याणी के भीतर के नारीत्व, मातृत्व, पतिपीड़ा, इंद्रियों के साथ अंत:संघर्ष है जिसमें तात्कालिक समाज के ढाँचे का सजीव अंकन है। 'कल्याणी' में मध्यवर्गीय नारी के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की सूक्ष्म पड़ताल है, जिसमें वह रिक्तता के साथ बिखर जाती है, जो मानवमन की अनुगूँज पैदा करती है। सुखदा (1952), विवर्त (1952), व्यतीत (1953), जयवर्धन (1956), मुक्तिबोध (1967), अनामस्वामी (1974), अनंतर (1968), दशार्क (1985) सभी में मानवमन का सूक्ष्म पर्यवेक्षण है। वस्तुत: जैनेंद्र ने गांधीवाद के व्यावहारिक और आध्यात्मिक पक्ष को ग्रहण करते हुए हिंदी उपन्यास को समष्टिकेंद्रित बिंदु से व्यष्टिकेंद्रित बिंदु तक ले जानेवाले वैयक्तिक पात्रों का सृजन करनेवाले उपन्यासों की पहल की। इस दृष्टि से जैनेंद्र का युगांतकारी महत्त्व है।

नई लोक और नई परंपरा विकसित करने के कारण समीक्षकों ने उनका प्रखर विरोध भी किया। किसी ने उन्हें जीवन और यथार्थ से दूर, किसी ने प्रामाणिकता से परे, किसी ने अवसर आने पर उनके पात्र नपुंसक बन जाते हैं तो किसी ने जलेबी मार्का उपन्यासकार, किसी ने उनकी रचनाओं को बोझिल दार्शनिकता से युक्त कहा। ये सारी मोर्चाबंदी जैनेंद्र के कद को छोटा करने का कुप्रयास थीं। विरोधों और मोर्चाबंदी के मध्य जैनेंद्र, जैनेंद्र ही बने रहे और आगे बढ़ते रहे।

जैनेंद्र चिंतक ही नहीं, जीवनद्रष्टा भी हैं। उनकी मान्यता है कि सबमें अखंड सत्ता व्याप्त है। उनकी कर्मफल में प्रबल आस्था है, उनके जीवनदर्शन में जीवन के प्रति गहरी एवं अतलस्पर्शी दृष्टि और उसकी अबूझ और रहस्यमत्यता पर बल और पीड़ा का स्पष्ट अंकन है। जैनेंद्र का उपन्यास-लेखन किसी उद्देश्य, स्वप्न तथा विशिष्ट प्रतिपाद्य को लेकर चला है। उपन्यासों में विचार प्रतिपादन की झलक यत्र-तत्र देखने को नहीं मिलती, वरन् उपन्यासों की संपूर्ण इत्यता

इसी पर केंद्रित है। जैनेंद्र-दर्शन के चार तत्त्व हैं—ब्रह्म तथा आस्तिकता, अहं, स्वपरकता को चुनौती, परस्परता तथा अहिंसा। इस प्रकार जैनेंद्र आत्मिक जगत में प्रवेश कर संपूर्ण जीवन-चक्र का अपनी वैचारिकी के साथ अन्वेषण कर मानवमन की अंतरंगता पर जीवनमूल्यों की स्थापना करते हैं।

उपन्यास मानव-जीवन का रसात्मक इतिवृत्त होता है। उसमें एक और जीवन सत्य की अनुभूति होती है तो दूसरी ओर मानवमूल्यों और मानवता के नये आदर्शों की प्रस्थापना होती है। जैनेंद्र के उपन्यासों में यथार्थ जीवन से जूझते हुये पात्रों के माध्यम से चिंतन-मनन का पाथेय जुटाया गया है। इनके उपन्यासों में किस्सागोई न होकर मनुष्य के भीतर के गहरे, धुँधले अंतर्मन में झाँकने का प्रयास है और उसमें निहित सत्य का अनुसंधान। जैनेंद्र के उपन्यासों में भाव, विचार तथा अनुभव और चिंतन की अंतर्नियोजित संश्लिष्टता है। यह मानसिक प्रक्रिया उन्हें मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार का अभिधान प्रदान करती है।

जैनेंद्र जी में कथाकार और चिंतक का मणिकांचन योग हुआ है। उनके चिंतन में कथा है और कथा में चिंतन। कथा और चिंतन के इस सम्मिश्रण को अपने पाठक तक पहुँचाने के लिए जैनेंद्र जी ने जिस भाषा का आविष्कार किया, उसमें से कथा-रस स्वयं प्रवाहित होता है। जैनेंद्र अत्यंत स्वल्प कथावस्तु के रूप में जो भी रचना करते हैं, वह इसी भाषा के बल पर कहानी या उपन्यास बन जाती है। जैनेंद्र के उपन्यासों में आधुनिकताबोध पर जो विषय उठाए गए, चाहे विवाह और प्रेम की समस्या हो, राजनीति हो, आर्थिक हो, व्यवस्था के प्रश्न हो, सभी में गहराई से उतरकर विचार-रत्न निकाल लाते हैं, वे निसंदेह अद्वितीय होते हैं। वस्तुत: जैनेंद्र ने गांधीवादी के व्यावहारिक और आध्यात्मिक पक्ष को ग्रहण किया है और उपन्यास को अभ्यांतरिकता की ओर प्रवृत्त किया। जैनेंद्र हिंदी उपन्यासों के समिट केंद्रित बिंदु से व्यक्ति केंद्रित बिंदु तक ले जाने वाले वैयक्तिक पात्रों का सृजन करने वाले उपन्यासकारों की पहल करते हैं, इस दृष्टि से जैनेंद्र का युगांतकारी महत्त्व है। वह लीक से छोड़कर आगे निकलकर चले और हिंदी उपन्यासों को नई दिशा की ओर अग्रसर किया। बौद्धिकता गहनता और नैतिक सूक्ष्मविश्लेषण करनेवाले जैनेंद्रकुमार निरूपमेय उपन्यासकार हैं।

जैनेंद्र के उपन्यास मध्यवर्ग की विवशता और दुर्बलताओं की अभिव्यक्ति है; आपके उपन्यासों में मध्यवर्गीय संस्कृति के अनिश्चय, पलायन मनोवृत्ति, आदर्शवाद के आवरण में यथार्थ जीवन के वैषम्य को छिपाने, बौद्धिकता की विवशता और उसके संघर्ष का दस्तावेज है।

संक्रांतिकालीन और ह्रासोन्मुखी संस्कृति का यह विराट क्षण जैनेंद्र के उपन्यासों में संफुटित है जो वर्तमानकालिक संस्थितियों के भीतर से व्यक्ति और समाज की दुर्बलताओं की ओर संकेत करता है। जैनेंद्र के उपन्यास एक ओर तो मध्यवर्ग की दुर्बलताओं को प्रदर्शित करते हैं तो दूसरी ओर मध्यवर्ग को प्रगतिशील समाजवादी विचारधारा की ओर ले जाते हैं। जैनेंद्र स्वयं कहते हैं कि 'मेरे ख्याल में उपन्यास में न व्यक्ति चाहिए, न टाइप, न नीति चाहिए, न राजनीति, न सुधार और न ही स्वराज। उससे तो प्रेम की सघन व्यथा की माँग हो सकती है और वह प्रेम इस या उसमें नहीं, बल्कि इस उसकी परस्परता में ही है।'

जैनेंद्र जी चिंतनशील लेखक हैं उनके उपन्यासों का उद्देश्य क्या है तो कहा जा सकता है कि 'तलाश' ही जैनेंद्र जी के उपन्यासों का मूल उत्स है और यह 'तलाश' समाज, धर्म, राजनीति,

जीवन, दर्शन में विचारों के साथ नैरंतर्य प्रवाह को बोध कर साकार कर देने का प्रयास है। जैनेंद्र के उपन्यास जीवन के बाध्य कर्म अंतर्मन की ग्रंथियों से संचालित होते हैं, उन्हीं के उद्घाटन का प्रकाशन या प्रयास है जो मानवमन की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति के परिचायक हैं।

संदर्भ

1. साहित्य का श्रेय और प्रेय, जैनेंद्र, पृ॰ 188
2. जैनेंद्र और उनके उपन्यास, रघुनाथसरन झलानी, पृ॰ 104-105
3. जैनेंद्र के उपन्यास, प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, पृ॰ 24-25
4. जैनेंद्र : उपन्यास और कला, डॉ॰ विजय कुलश्रेष्ठ
5. हिंदी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास, डॉ॰ धरराज मानधाने
6. जैनेंद्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, डॉ॰ देवराज उपाध्याय
7. जैनेंद्र के उपन्यास : मर्म की तलाश, चंद्रकांत वांदिवडेकर
8. उपन्यासकार जैनेंद्र : मूल्यांकन और मूल्यांकन, डॉ॰ मनमोहन सहगल
9. उपजीव्य उपन्यास (जैनेंद्र के 'परख' से 'दर्शाक' तक)

मो॰ 09412625035

srivsatavsaanjiv7@gmail.com

नई कहानी आंदोलन और धर्मवीर भारती का कहानी-साहित्य

सोनी कुमारी, शोधार्थी
स्नातकोत्तर हिंदी-विभाग
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर

सन् 1950 के बाद के हिंदी कहानी को नई कविता के तर्ज पर डॉ॰ नामवरसिंह ने 'नई कहानी' की संज्ञा दी। नई कहानी परिवर्तित दृष्टि एवं भावबोध की कहानी है। सन् पचास के तुरंत पहले की कहानियों में जहाँ-एक ओर मनोजागृतिक रहस्यों की छान-बीन करते हुए बाह्य यथार्थ से दूर जाने का खतरा बढ़ रहा था, वहीं दूसरी ओर प्रगतिशीलता की आड़ लेकर कलात्मकता से समझौता करने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। उन दोनों प्रवृत्तियों की कहानी के यथार्थवादी मार्ग से भटकाव की संज्ञा दी जा सकती हैं। 'नई कहानी' अपने को पूर्वाग्रहों से मुक्त कर एक नई भावभूमि पर खड़ी होती है। हिंदी साहित्य में यह कहनी आंदोलन एक निजी अनुभव लेकर आया। प्रमाणिक अनुभव का यह ताप ही नए कहानीकारों की विशिष्ट पहचान का कारण बन जाती है। 'नई कहानी' के रचनाकार पूर्व निर्धारित जीवन दर्शन द्वारा निर्दिष्ट सामाजिक दायित्व के निर्वाह के खतरे से सतर्क हैं। इसलिए निजी अनुभव के दायरे में जो सामाजिकता आ जाती है वे उसे ही चित्रित करते हैं। प्रेमचंद की या प्रगतिवादी कहानियों में पूर्व निर्धारित आस्था या विशेष जीवन दर्शन निर्दिष्ट सामाजिकता का बड़ा महत्त्व था। 'प्रगतिवादी कहानियों ने एक खास विचारधारा को निरूपित करने में जीवन अनुभव की जिस तरह उपेक्षा की उसे लेकर नए कहानीकार अतिरिक्त रूप से सावधान हैं। ये संवेदनाओं और अनुभूतियों के चित्रय में अपनी आस्था दिखाते थे, विचारधारा विशेष में नहीं। अनुभूतियों के चित्रण में भी इन्हें सफलता मिली है। व्यापक सामाजिक यथार्थ से दूरी के कारण इनकी कहानियाँ सामाजिक हित में अपनी किसी प्रतिज्ञा को दोहरा नहीं पाती।'[1]

नई कहानी आंदोलन और धर्मवीर भारती कहानियाँ

नई कहानी का प्रादुर्भाव 'नई कविता' के तर्ज पर सन् पचास के बाद होता है। वैसे नई कहानी का संकेत प्रेमचंद के कहानी 'कफन' में ही हो गया था, क्योंकि यह कहानी अपने युग की परंपरा से आगे की बात करती है। इसके बाद धीरे-धीरे कहानी नवीनता ग्रहण करती गई। राजनीतिक स्वंतत्रता के साथ-साथ वैचारिक स्वतंत्रता भी सामने आई। विज्ञान औद्योगीकरण एवं पश्चिमी सभ्यता के चलते जीवन-मूल्यों में एक तरह से विघटन की शुरुआत हुई। आदमी की नई सोच को पारंपरिक कहानी के माध्यम से कैसे रूपारित किया जाए, इस समस्या के समाधान के प्रयास ने नई कहानी को जन्म दिया। वस्तुत: नई कहानी का प्रादुर्भाव कब से माना जाए, यह प्रश्न विचारणीय है। प्रो॰ कमलेश ने इस संदर्भ में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है-'हिंदी में नई कहानी की वास्तविक चर्चा सन् 1965 के आस-पास प्रारंभ होती है-'कहानी' पत्रिका के

पुनर्प्रकाशन के बाद ही 'गदल' (रांगेयराघव) गुलकी बन्नो (धर्मवीर भारती), राजा निरबंसिया (कमलेश्वर), परिंदे (निर्मला वर्मा) आदि कहानियों से नई कहानी का सार्थक प्रारंभ माना जाता है।'[2]

नई कहानी पुरानी कहानी से किस तरह हटकर है, इस पर विचार करने के लिए हमें नई कहानी के वैशिष्ट्य पर विचार करना होगा। दरअसल, नई कहानी के पहले की कहानियों में आदर्श का चित्रण अपेक्षा से अधिक किया गया, जिससे उसके दामन से यथार्थ छूट सा गया, लेकिन नई कहानी का यथार्थबोध एक तरह से उसका मानदंड बन गया। इसके अतिरिक्त नई कहानियों के पूर्व की कहानी में जहाँ समष्टि को अधिक महत्त्व दिया गया है, वहीं नई कहानी में सत्य को विशेष अहमियत मिली। नई कहानी के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ देवीप्रसाद कुँवर का यह कथन काफी हद तक समीचीन लगता है–'नई कहानी जीवन के यथार्थ को संवेदनात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है। यह यथार्थ रचनाकार का भोगा हुआ अथवा उसके असहाय का संदर्भ हुआ करता है। जिसे नया कहानीकार खंडत: नहीं, अपितु समग्र रूप में ग्रहण करता है।'[3]

हिंदी की पहली नई कहानी किसे माना जाए, यह प्रश्न आज भी विवाद के घेरे में है। प्रेमचंद की 'कफन' के सूत्र मिलते हों, पर नई कहानी की कसौटी पर सन् 50 के बाद की ही कोई कहानी पहली नई कहानी का गौरव पा सकती है। कुछ समीक्षक निर्मल वर्मा की कहानी 'परिंदे' को प्रथम नई कहानी मानते हैं। कुछ हद तक यह तथ्य सच भी है। इसी तरह कतिपय विद्वान कमलेश्वर की कहानी 'राजा निरबंसिया' को हिंदी की पहली कहानी मानते हैं, लेकिन नई कहानी की समग्रता को अपने में यदि कोई कहानी समेटे हुए है, तो वह है धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो'। इस कहानी में यथार्थ, व्यक्ति सत्य एवं मन के अंतर्द्वंद्वों के चित्रण के सफल प्रयोग देखे जा सकते हैं। अत: मेरी अपनी धारणा है कि धर्मवीर भारती की इस कहानी को हिंदी की पहली नई कहानी का गौरव दिया जाए।

नई कहानी के परिप्रेक्ष्य में धर्मवीर भारती का मूल्यांकन नितांत अपेक्षित है। दरअसल, नई कहानी ही नहीं, बल्कि हिंदी की सभी नई विधाओं का वैशिष्ट्य उसका यथार्थबोध है और नई कहानी तो इस बोध से सबसे अधिक संपृक्त है। धर्मवीर भारती की सभी कहानियों में जीवन के यथार्थ को देखा जा सकता है। नई कहानी का व्यक्ति-सत्य मात्र, व्यक्ति-सत्य न होकर वह समष्टि-सत्य का भी प्रतिनिधित्व करता है। यह विशेषता धर्मवीर भारती की कहानियों में सबसे अधिक मात्रा में देखी जा सकती है। कहीं-कहीं तो उनकी कहानियाँ पात्रों के मानसिक अंतर्द्वंद्व को इस तरह चित्रित करती हैं कि वह व्यक्ति का अंतर्द्वंद्व न रहकर पूरे समाज का अंतर्द्वंद्व बन जाता है। अनुभूति की प्रमाणिकता नई कहानी का एक विशिष्ट तेवर है। इस दृष्टि से धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो', 'भूखा ईश्वर', 'कफन चारे', 'अगला अतवारं', 'बंद गली का आखिरी मकान', 'आश्रम' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भारती जी ने नई कहानी को एक नूतन दिशा दी। उनकी कहानियों में नई कहानी की सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं। इस तथ्य की पुष्टि प्रो॰ कमलेश के इन शब्दों से होती है–'पिछले तीन दशकों में हिंदी में 'नए' की जो लहर उठी' उसके संस्थापकों, उन्नायकों और कृती नए साहित्कार के रूप में उनका स्थान विशिष्ट है। नई कविता को जिन कुछ लेखकों ने गंभीर वैचारिक पीठिका प्रदान की है, उनमें भी उनका महत्त्वपूर्ण स्थान

ISSN 0975-735X

है।'[4]

नई कहानी के पुरोधा धर्मवीर भारती की कहानियों का रचना-संसार एक व्यापक फलक पर विस्तार पाया है। उनकी कहानियों का यदि वर्गीकरण किया जाए, तो वे तीन वर्गों में वर्गीकृत हो सकती हैं। पहले वर्ग की कहानियों में स्वस्थ यथार्थ अपने समग्र रूप में देखा जा सकता है। दूसरे वर्ग की कहानियाँ भावना प्रधान हैं और तीसरे वर्ग की कहानियों में समाज का यथार्थबोध परिलक्षित होता है।

हिंदी कहानियों में यथार्थ-चित्रण का अंकुरण प्रेमचंद की 'कफन' कहानी में हो ही गया था, जिसका विकास सन् पचास के बाद की नई कहानी में परिलक्षित होता है। भारती की कहानियों में यथार्थ ही नहीं, बल्कि कटु यथार्थ का चित्रण हुआ है। 'मुरदों का गाँव' कहानी-संग्रह की प्रायः सभी कहानियाँ यथार्थपरक हैं। सन् 1943 के बंगाल के अकाल से पीड़ित लोगों के जीवन को बड़ी ईमानदारी से भारती जी ने प्रस्तुत किया है। 'मुरदों का गाँव' शीर्षक कहानी में एक ऐसे गाँव की वेदना मुखर हुई है, जहाँ भूख से मरने वालों की लाशों का अंबार लगा हुआ है, जैसा कि इन शब्दों में स्पष्ट है-'भूख ने इस गाँव के चारों ओर मौत के बीज बोए थे और सड़ी लाशों की फसल लहलहा रही है। कुत्ते, गिद्ध, स्यार और कौवे उस फसल का पूरा फायदा उठा रहे थे।'[5]

यथार्थपरक कहानियों में 'एक बच्ची की कीमत' कहानी में भूख की ज्वाला में जलती ममता को दिखाया गया है। कहानी की पात्र बिंदो जब भूख को बर्दाश्त नहीं कर पाती, तो अपनी बच्ची को बेच देती है। इसी तरह भूख से तड़पती रामो तेरह फाँके के बाद मात्र एक अठन्नी में अपनी बच्ची को एक पंजाबी के हाथ बेचती है। इस कहानी में भारती जी ने अकाल के दिनों में मनुष्य की खोटी नीयत पर भी व्यंग्य किया है। राशन की दुकान पर जब रामा उस अठन्नी का चावल खरीदने जाती है, तो बनिया उसकी अठन्नी को न केवल अपने गल्ले में रख लेता है, बल्कि उसे खोटी अठन्नी देकर जलील भी करता है। अठन्नी उसमें रखी और दूसरी अठन्नी निकालकर बोला-'ठगने आई है बदमाश, खोटी अठन्नी बोहनी के वक्त। बेईमानी तो देखो।'[6]

इस तरह 'आदमी का गोश्त' कहानी में भुखमरी का चित्रण है। गरीब आदमी दाने-दाने के लिए किस तरह मोहताज है, और उसके लिए किस तरह 'भुखमरी से प्राण बचाना मुश्किल हो जाता है, इस कटु यथार्थ को प्रस्तुत कहानी में बड़ी ईमानदारी से चित्रित किया गया है। भारती जी ने 'कफन चोर' कहानी में एक बूढ़े गरीब आदमी की दयनीय एवं असहाय स्थिति का वर्णन किया है। वह अपनी बेटी को न तो भोजन दे पाता है और न ही तन ढकने के लिए अपेक्षित वस्त्र। फलतः अपनी बेटी की नग्नता को ढकने के लिए उसे कब्र खोदकर दफनाई गई लाश से कफन चुराने के लिए विवश होना पड़ता है-'फरिश्ता! फरिश्ता! मैं चोर हूँ बुड्ढे, कफन चुराने आया हूँ, मेरी बेटी बिना कपड़े की मर रही है। तू भी नंगा है, अच्छा आधा कफन तू भी ले लेना।'[7]

'हिंदू या मुसलमान' कहानी में भूख की भयावह स्थिति में भी सांप्रदायिकता आड़े आ जाती है। मदद करनेवाली संस्थाएँ और सार्वजनिक तंत्र इस निर्णय में अपनी कुत्सित मानसिकता का परिचय देते हैं कि भूख से पीड़ित व्यक्ति हिंदू है या मुसलमान। 'कमल और मुर्दे' कहानी देश की गुलाम मनोवृत्ति और भुखमरी को चित्रित करती है। कहानी की ये पंक्तियाँ तत्कालीन परिवेश को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती हैं-'जब तक भारत विदेशियों के बंधन में है तब तक वहाँ मुर्दा

और भूखी आत्माओं की कमी नहीं है–वहाँ रोज लोग मक्खियों की तरह मरते हैं।'[8]

'भूखा ईश्वर' कहानी यथार्थ को उजागर करने में पूर्ण सक्षम है। भारती ने गरीब को ईश्वर की संज्ञा दी है। जो स्वर्ग से वहिष्कृत है। वह भूखे नंगों को विद्रोह करने के लिए उकसाता है–'जागो! मैं विद्रोही, भूखा ईश्वर तुम्हें मानव बनकर जगाता हूँ।'[9]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'मुरदों का गाँव' संग्रह की कहानियाँ भुखमरी की भयावहता, आकालजन्य मनुष्य की विवशता, कुत्सित सांप्रदयिकता, आर्थिक विषमता एवं गुलामी की मनोवृत्ति का एक यथार्थ दस्तावेज है।

'स्वर्ग और पृथ्वी' संग्रह की सभी कहानियाँ भावना प्रधान हैं। इन कहानियों में भारती जी ने जीवनमूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया है। इसके लिए उन्हें आदर्श एवं कल्पना का भी सहारा लेना पड़ा है। 'पूजा', 'स्वप्न और श्री रेखा', 'स्वर्ग और भूख', 'नारी और निर्वाण' आदि कहानियाँ भावना के धरातल पर सृजित हैं। 'नारी और निर्वाण' भारती की एक श्रेष्ठ भावना प्रधान कहानी है जिसमें प्रेम और साधना के द्वंद्व को दर्शाया गया है। भारती ने साधना के मार्ग में प्रेम को बाधक नहीं सार्थकता के रूप में स्थापित किया है। अपने प्रति सुजाता के असीम स्नेह से अभिभूत होकर सिद्धार्थ कहते हैं–'नारी के प्रणयपाश को तोड़ा जा सकता है, पर स्नेह की इस अक्षय वात्सल्य-धारा में मनुष्य को तिनके-सा बहना ही पड़ता है।'[10]

'कवि और जिंदगी' शीर्षक कहानी में मनुष्य के विकास में राजतंत्र तथा विज्ञान, दोनों को बाधास्वरूप माना गया है। 'पिरामिड की हँसी' कहानी में युगीन सत्य का चित्रण करते हुए कला की प्रेरणा को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। कलाकार अपनी कला के सामने ऐश्वर्य को तुच्छ मानता है और उसे संकुचित दायरे से निकालकर एक विशद फलक प्रदान करता है। इस दृष्टि से कहानी की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं–'ठीक है राजकुमारी! पर कंधों पर, कला के कंधों पर, मानवता का उत्तरदायित्व है। किसी एक व्यक्तित्व की सीमाओं में बंद कर मैं कला की हत्या नहीं करना चाहता! विदा राजकुमारी मेरा कार्य समाप्त हो गया।'[11]

इसी तरह 'आधार और प्रेरणा' कहानी में साधना को जीवन से संपृक्त करके देखने की कोशिश की गई है। प्रत्यक्ष रूप से इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि स्त्री साधना के मार्ग में बाधक नहीं बल्कि प्रेरणा है। सबसे बड़ी बात तो यह है दु:खों के डर से पलायन करने वालों के लिए स्वर्ग का द्वार भी बंद मिलता है। इस तथ्य को कहानी की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है–'जब तुम दु:खों से हारकर स्वर्ग की कामना करते थे तो स्वर्ग तुम्हारी दुर्बलता पर हँसता था, आज जब स्वर्ग को ठुकराकर तुम चल पड़े हो प्रेम के मार्ग पर, तो स्वर्ग अपने भविष्य पर काँप उठा है।'[12]

समग्रत: कहा जा सकता है कि यथार्थ चित्रण, जीवनमूल्यों की स्थापना एवं आदर्शों के प्रति निष्ठा 'स्वर्ग और पृथ्वी' की कहानियों में भावुकता का पुट और वातावरण के चित्रण में कल्पना का भरपूर सहारा लिया गया है।

यथार्थ चाहे व्यक्तिगत हो या समष्टिगत पर वह समाज का ही यथार्थ होता है। 'मुरदों का गाँव' शीर्षक कहानी में जो यथार्थ प्रस्फुटित हुआ है, वह समाज के परे नहीं है। लेकिन इस सच्चाई के बावजूद भारती जी की कुछ कहानियाँ ऐसी हैं, जो सामाजिक चेतना एवं समाज के समग्र यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं। इस दृष्टि से उनकी 'हरिनाकुस और उसका बेटा', 'मरीज

नंबर-सात', 'धुँआ', 'युवराज', 'कुलटा', 'चाँद और टूटे हुए लोग' आदि कहानियों में समाज का यथार्थ खुलकर सामने आया है।

सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से 'गुलकी बन्नो' कहानी विशेष उल्लेखनीय है। इसमें चित्रित गुलकी बन्नों का दर्द पूरे समाज का दर्द है। पति द्वारा निष्काषित गुलकी अपने मायके में भी अपमानित होती है। गुलकी जैसी निरीह, असहाय स्त्रियों की समाज में जो दुर्दशा होती है, उसे इस कहानी में बड़ी सच्चाई के साथ दिखाया गया है। इस कहानी के भाव बोध पर प्रकाश डालते हुए विवेकीराय की ये पंक्तियाँ अत्यधिक प्रासंगिक हैं–'कहानी का नया भावबोध अथवा युगबोध एक मार्मिक कचोट से गुँथा हुआ है। शोषित और दलित व्यक्ति की नियति कुछ ऐसी अभिशप्त है कि चोट पर चोट खाकर और भूखे बिलबिलाकर भी वह अपने संस्कारित नरक में निवास करने के लिए विवश है।'[13]

'हरिनाकुस और उसका बेटा' कहानी में एक जल्लाद के जीवन का यथार्थ निम्नवर्ग के समाज का यथार्थ है। मनुष्य के जीवन में कब और कौन सा नया मोड़ आ जाए, इस विषय में कुछ कहना असंभव है। जल्लाद हरिनाकुस का हृदय उस समय दहल जाता है, जब उसका खुद का बेटा उसे बेईमान, कमीना और जल्लाद कहता है। फलत: उसने अपनी जल्लादी की नौकरी छोड़ने का तत्काल निर्णय ले लिया। क्योंकि उसे डर था कहीं उसका बेटा भी जल्लाद न बन जाए। वह अपने बेटे से कहता है–'जा जेलर से कह आ, कल से काका नौकरी नहीं करेगा-जा जल्दी।'[14]

'मरीज नंबर सात' कहानी में एक मरीज की मन:स्थिति का निरूपण हुआ है। 'मरीज नंबर सात' रात-दिन मरणासन्न बुढ़िया की मौत की कामना करता है ताकि उसका बैड खाली हो जाए और वह उसे मिल जाए, क्योंकि वह उमस और पसीने से बेहाल है। मरणासन्न औरत पूरे अस्पताल के लिए सिरदर्द बनी हुई थी, क्योंकि वह मौत के मुँह में जाकर भी लौट आ रही थी–'और यह सब केवल उस मरणासन्न अधेड़ औरत की वजह से है जो तीन दिन से बार-बार मौत के मुँह तक जा-जाकर लौट आती थी।'[15]

'धुँआ' कहानी में सराय में रहनेवाली औरतों के उपेक्षित जीवन और उनके प्रति समाज की घृणित मनोवृत्ति को वर्णित किया गया है। इस कहानी में व्यक्त किए गए तथ्य को नासिरा शर्मा के शब्दों में देखा जा सकता है–'धुँआ बदनफरोश औरतों की कहानी होकर भी शरीर या हबस की कहानी नहीं, बल्कि उस भूख की कहानी है, जो भारत का सच है।'[16] इसी प्रकार 'कुलटा' कहानी में प्रताड़ित स्त्री के मनोभाव और 'अगला अवतार' कहानी में ढोंगी संन्यासी के जीवन को रूपायित किया गया है।

'चाँद और टूटे हुए लोग' शीर्षक रचना में प्रेम के विविध रूपों का चित्रांकन हुआ है। लेखक प्रेम को सामाजिक मान्यता दिलाने की कोशिश करता दिखाई देता है। कहानी का पात्र राजेश की मंसा कितनी स्वस्थ्य है, इसे उसी के शब्दों में देख सकते हैं–'नारी और पुरुष के संबंधों में अस्वस्थ रूमानी अंश निकालकर अगर एक स्वस्थ मानवी हमदर्दी रहने दी जाए, जिसके सहारे एक स्वच्छ सामाजिक जीवन बन सके, तो बहुत समस्याएँ सुलझ जाएँ।'[17]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारती जी की इन कहानियों में मध्यवर्गीय एवं निम्न मध्यवर्गीय समाज के यथार्थ का निरूपण बड़ी संजीदगी के साथ किया गया है। इन कहानियों में

मानवीय संवेदना को उभारने की भरपूर कोशिश की गई है। नूतन जीवनमूल्यों की खोज, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के चलते सामाजिक विघटन, आस्था-अनास्था का द्वंद्व, निराशा मे आशा की किरणों की तलाश आदि तथ्यों का सामाजिक धरातल पर मूल्यांकित करना इस संग्रह का मूल स्वर है।

संदर्भ

1. कमलेश, धर्मवीर भारती और कमलेश्वर की कहानियाँ : एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ॰ 20-21
2. धर्मवीर भारती ग्रंथावली खंड : दो, संपादक-चंद्रकांत बांदिवडेकर, पृ॰ 89
3. धर्मवीर भारती की साहित्य साधना, संपादक-पुष्पा भारती पृ॰ 159
4. धर्मवीर भारती ग्रंथावली, खंड-दो, संपादक-चंद्रकांत बांदिवडेकर, पृ॰ 175
5. वही, पृ॰ 183
6. धर्मवीर भारती की साहित्य-साधना, संपादक-पुष्पा भारती, पृ॰ 105
7. धर्मवीर भारती ग्रंथावली, खंड : दो, चंद्रकांत बांदिवडेकर, पृ॰ 205
8. प्रेमचंद (आज के संदर्भ में), गंगाप्रसाद विमल, पृ॰ 91
9. हिंदी कहानी का मूल्यांकन (सन् 1950 से 1975), कांता (अरोड़ा) मेहदीरता, पृ॰ 18
10. An Inttoduction to Ethics-William lillie, Methon, London, 1957, P. 267
11. A Manual fo Ethics, John.S.Mackeæie, London, University Tutorial press, 1957
12. डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह, 'मुरदा सराय' (भूमिका); भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1966, पृ॰ 10
13. बंद गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, संस्करण-1969, पृ॰ 32
14. वही, पृ॰ 48
15. वही, पृ॰ 75
16. वही, पृ॰ 64
17. वही, पृ॰ 90

 ISSN 0975-735X

निर्मला पुतुल की कविताओं में यथार्थबोध

सुनीता, शोधार्थी
हिंदी विभाग
उच्चशिक्षा एवं शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा,
मद्रास, केंद्र हैदराबाद

निर्मला पुतुल ने अपनी कविताओं में आदिवासी स्त्री का जीवन, समाज में फैली विभिन्न समस्याओं, मातृशक्ति का वर्णन, संघर्ष दु:ख और उसकी पराजय–सब यहाँ बहुत ही विश्वसनीय रूप में आया है। इन कविताओं में विचार है या कहें वर्षों से चला आ रहा पूरा विमर्श है परंतु यह कहीं भी विमर्श की कविता नहीं लगती। तात्पर्य यह है कि निर्मला पुतुल की कविताओं में इन विचारों के साथ-साथ कवितापन में कहीं भी कमी नहीं है। चूँकि कवयित्री ने इन दु:खों को यो तो खुद जिया या फिर बहुत ही करीबी से देखा है।

यथार्थबोध दो शब्दों के योग से बना है, जैसे यथा+अर्थ। जिसका शाब्दिक अर्थ है–अर्थ के अनुसार अर्थात् जो वस्तु जैसी हो, उसे उसी रूप में ग्रहण करना। कहने का तात्पर्य है कि किसी भी वस्तुस्थिति को यथार्थ रूप में चित्रित करना ही यथार्थ कहलाता है। यथार्थ में किसी भी प्रकार की कल्पना ही यथार्थ कहलाती है। यथार्थ में किसी प्रकार की कल्पना या रहस्यवाद का समावेश नहीं होता। इसके विषय में मुक्तिबोध जी ने परिभाषित किया है–'आज का यथार्थ कोई रहस्यवादी नहीं है, जिसको समझने के लिए पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों का तीव्र करना जरूरी है। आज को यथार्थ जनता के जीवन का यथार्थ है जो हम स्वयं अपने जीवन में रोजमर्रा जीते हैं।'[1]

यथार्थवाद यथार्थ का ही रूप है, जिस अँग्रेजी में 'Realism' कहा जाता है, ज्ञान शब्दकोश में यथार्थवाद को परिभाषित करते हुए मुकुंदीलाल ने भी कहा है कि 'जो बात या वस्तु जिस रूप में हो, उसे उसी रूप में उसका वर्णन करना या ग्रहण करना।'[2]

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने यथार्थ की परिभाषा इस प्रकार दी है, 'यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक सत्ता समर्थक है। वह समष्टि की अपेक्षा व्यक्ति की ओर से अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थ का संबंध प्रत्यक्ष वस्तु जगत् से है।'[3]

21वीं सदी की महिला लेखिकाओं में निर्मला पुतुल का विशिष्ट स्थान है। इन्होंने आदिवासी समाज का अपनी लेखनी के माध्यम से यथार्थ वर्णन किया है। कवयित्री निर्मला पुतुल ने समाज की काफी चिंता एवं संवेदना को व्यक्त किया है कि आज के इस आपाधापी, भूमंडलीकरण बाजारवादीयुग में वनस्पति, पेड़-पौधे, राजनीति लोगों के विचार, शिक्षा की व्यवस्था, ग्रामीण परिवेश तथा आदिवासी स्त्री के जीवन में घटित अनेक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है।

निर्मला पुतुल ने माँ की ममता, उसकी ख्याति एवं उसके कार्य से महकते धान व उसकी

खुशबू का आनंद लेते हुए हम और प्रातःकाल की सुबह का यथार्थ वर्णन अपनी कविताओं में किया है। वे कहती है–

ऊहले सुबह जागकर
धान सिझाती माँ,
महकते धान की खुशबू से
भर जाती है मेरे अधजागे सुबह को,
दर्ज कराती अपनी जागने की उपस्थिति।
उसे जागने से ही,
गुहड़ते हुए जाग उठते हैं कबूतर,
सुबह होने का पुखता आश्वासन देते हुए।[4]

माँ जगत की सर्वोत्तम पूजनीय कृति है, उसका ऋण कभी चुकाया नहीं जा सकता। वह भरी दोपहरी में धान की कुटाई करके चावल निकालती है। फिर अपने बच्चों का पेट भरती है। वह अच्छे-बुरे वक्त में पिता का भी साथ देती है। पर ऐसा वक्त आता है कि वो सब रिश्ते ही बदल जाते हैं। यहाँ कवयित्री ने यथार्थ को दर्शाया है–

भरी दोपहिया में ढेंकी में धान कूटती
सूप से फटकती साफ करती
अपने कालखंड को जैसे
कई बार कूटती उसकाती है
अपने बुरे वक्त को,
जांता से दारती जैसे दाल,
घूमती बांधती है अपने
रिश्तों की डोर
कभी न टूटने बिछुड़ने के लिए,
जैसे खूँटे में बाँधती है,
पैसे-दो-पैसे कभी न खोलने के लिए,
पर पिता की बिमारी में,
जैसे खूंटे से सरकते हैं पैसे,
रिश्ते भी न जाने कब हवा परिंदा हो जाते हैं
माँ जान नहीं पाती।[5]

समाज में बहुत घृणात्मक कार्य होते हैं। यह घटना आदिवासी क्षेत्र की है कि एक 12 वर्ष की नाबालिग लड़की को एक औरत अधेड़ उम्र के व्यक्ति से सौदा कर रही है और सौदे में केवल एक बोतल शराब और मुर्गा वह कैसा कमाल वह उसे से सारी साँठ-गाँठ करके उसे बेच दिया जाता है। यहाँ पर कवयित्री निर्मला पुतुल ने 'सबसे डरावनी रात' कविता में वास्तविक आँखों देखी घटना का वर्णन किया है–

यह काली अँधेरी सबसे डरावनी रात
नशे में धुत लड़खड़ाती हुई,

तुमने जोरदार धक्के से,
खोला था मेरा दरवाजा
धड़ाम की आवाज के साथ,
ढिवरी की कांपती लौ और सन्नाटा
और तुमने मेरी तरफ इशारा करते हुए
क्या तो कहा था
और तुम्हारी उँगली उठी मेरी ओर
मैंने अपनी आँखें मूँद लीं,
मामला साफ था,
और सब कुछ तय हो चुका था,
सौदा किया था तुमने मेरा,
महज बोतल भर दारू और एक मुर्गे पर
यह तो अब पता चला है।[6]

रात काफी डरावनी थी जिसमें रात के बारह बजे हुए थे। चारों तरफ सन्नाटा-सा हो रहा था। किसी की आवाज सुनाई नहीं दे रही, परंतु दीवार पर लगी घड़ी टिक-टिक करती आगे बढ़ रही थी अर्थात् मेरे दिल की धड़कन की रफ्तार काफी तेज हो रही थी। जब वह अधेड़ व्यक्ति मेरे कमरे में आया और मेरी आँखें जड़ गई कि मेरे साथ यह क्या हो रहा है। जो माँ ने जन्म दिया वह आज मुझे व मेरी इज्जत को भेड़िए (अधेड़ व्यक्ति) के हाथों में सौंप रही है कैसी है माँ थोड़े से लालच में कैसे भूल सकती हूँ उस राक्षसी रात को। हे भारत की नारी आप ही नारी की शत्रु बन रही हो। कवयित्री ने इस कविता की पंक्तियों के माध्यम से आँखों देखी घटना का वर्णन किया और साथ में इसके प्रति संवेदना भी जताई–

यही रात का कोई बारह का घंटा होगा,
सारी दुनिया निढाल थी अपने सपनों में
कहीं कोई आवाजाही नहीं आदमी की,
कुत्ते जागे रहे थे पहरे पर,
और पहरेदार नशे में धुत थे शायद
और दीवाल घड़ी की टिक-टिक
मेरे दिल की धड़कन के साथ
ताल में ताल मिला रही थी।
कि कोई और नहीं
जन्म देने वाली माँ तुमने
जिसने मुझे नौ महीने अपनी कोख में पाला,
प्रसव पीड़ा सहा दुष्कर
और तुमने ही उस वहशी कुत्तों की रात में
मुझे एक भेड़िए के हवाले कर दिया।[7]

भारत मूलतः पितृसत्तात्मक देश है। पूर्वोत्तर की कुछ आदिवासी जनजातियों को छोड़कर

अधिकांश मैदानी जनजातियों पितृसत्तात्मक व्यवस्था का ही अनुसरण करती है। इस पुरुष वर्चस्व वाले घरों में स्त्रियाँ बाहर भी श्रम करती हैं और घर में भी। पुरुषों की सेवा में चूक होने पर उन्हें वही जिल्लत और अपमान झेलना होता है, जो आम पुरुष सत्तात्मक परिवारों की महिलाएँ झेलती हैं। आदिवासी स्त्रियों के हाथ में जब कलम आई तो उसने न सिर्फ औपनिवेशिक सत्ता और बाजार सत्ता को, बल्कि इस पुरुष सत्ता पर भी शब्दों के बाण की बौछार कर दी। अपनी जमीन तलाशती 'बेचैन रगी' कविता में निर्मला पुतुल लिखती है–

यह कैसी विडंबना है,
कि हम सहज अभ्यस्त हैं,
कि एक मानक पुरुष दृष्टि से देखने,
स्वयं की दुनिया
मैं स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखते
मुक्त होना चाहती हूँ अपनी जाति से,
क्या है मात्र एक स्वप्न के,
स्त्री के लिए घर-संतान और प्रेम?
क्या है?[8]

निर्मला पुतुल की एक कविता है। कुछ मत कहो सरोजनी किस्कू सरोजनी किस्कू एक आदिवासी महिला है, जो अपने समाज की पुरुष सत्ता का दमन झेल रही है। सरोजनी की स्थिति को कविता के माध्यम से उकेरने के लिए उसे सम्बोधित किया है–

छप्पर चू रहा है, तो चूने दो
छप्पर छाने मत चढ़ना,
जातीय टोटम के बहाने
पहाड़पुर की प्यारी हेम्ब्रम की तरह
तुम्हारा मरद भी करेगा तुमसे जानवाराना बलात्कार
और नाक-कान काट धकिया निकाल फेंकेगा घर से बाहर।[9]

निर्मला पुतुल की 'गजरा बेचने वाली स्त्री' कविता दिल्ली में गजरा बेच रही एक स्त्री पर केंद्रित है। वह स्त्री गजरा बेचकर दूसरी स्त्री की सुंदरता को बढ़ा रही है परंतु अपने मन में कोई भी ख्याल नहीं क्योंकि उसे कुछ नहीं पता केवल पेट की रोटी की चिंता, क्योंकि वह अपने ही हाथों से दूसरी स्त्री की सुंदरता को बेच रही है। अर्थात् उनका ख्याल कर रही है। इसमें निर्मला पुतुल जी लिखती है–

गजरा बेचने वाली स्त्री
गजरा बेच रही है,
वह खुद बदसूरत है,
लेकिन दूसरे को सुंदर बनाने के लिए
सुंदरता बेच रही है,
गजरा बेचने वाली स्त्री का दिल कोमल है,
लेकिन पैर में बिवाइयाँ फटी हैं

उसने गजरे में पिरो रखे हैं अरमान
वह खुद गजरा नहीं लगाती,
लेकिन दूसरे को गजरा लगाने की
विशेषताएँ बताती हैं।[10]

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि आदिवासी जीवन व्यतीत करनेवाली कवयित्री निर्मला पुतुल ने अपनी रचनाओं में समाज में घटित होने वाली यथार्थ जीवनशैली, समस्याओं का चित्रण करके समाज को एक जागरूकता का संदेश दिया है।

संदर्भ

1. मुक्तिबोध, नई कविता का संग्रह, पृ० 891
2. मुकुंदीलाल श्रीवास्तव, ज्ञान शब्दकोश, पृ० 664
3. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, पृ० 393
4. निर्मला पुतुल, बेघर सपने, काव्य-संग्रह, पृ० 9
5. वही, पृ० 10
6. वही, पृ० 13
7. वही, पृ० 14
8. निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ० 9
9. वही, पृ० 24
10. निर्मला पुतुल, 'बेघर सपने' काव्य संग्रह, पृ० 33

डॉ॰ परशुराम शुक्ल की बालकहानियों का परिचयात्मक अध्ययन

वनिता एल॰ पांडेय

हर किसी को अपना बचपन याद आता होगा, सबने अपना बचपन जिया होगा। बचपन में दादी-नानी की अनमोल कथा-कहानियों का वह मनोरम दृश्य आज भी कहीं-न-कहीं हमारे हृदय के कोने में सुनहरी यादों के रूप में रचा-बसा है। कहानी भले ही याद न हो, पर वह शुरुआत एक था राजा, एक थी रानी तथा बहुत समय की बात है किसी राज्य में एक राजा राज किया करता था। इनकी यादों से ही मन खुश हो जाया करता है। वह युग आज भले ही चला गया हो लेकिन कहानी आज भी बालमन में जीवंत है।

'कहानी साहित्य की एक विधा है, जिसमें गद्य का उपयोग किया जाता है। वैसे तो कहानी का शाब्दिक अर्थ कथा होता है, परंतु आकार में जो छोटी कथा होती है, उसे ही हिंदी साहित्य में कहानी कहा जाता है। चूँकि यह अँग्रेजी में पहले से ही प्रचलित 'शार्ट स्टोरी' की विधा से पहले बंगला में गल्प के रूप में और बाद में हिंदी में कहानी के रूप में आया, इसलिए इसे 'लघुकथा' जो शार्ट स्टोरी का हिंदी अनुवाद के अर्थ में ही आया, यही कहना उपयुक्त माना जाता है। अर्थात् कहानी एक लघुकथा है यदि इसका आकार बड़ा हो जाए तो वह लघुकथा न रहकर कथा या स्टोरी हो जाएगी तथा कहानी या शार्ट स्टोरी नहीं रह जाएगी। हिंदी कथासाहित्य के अन्य बड़े रूप है उपन्यास या उपन्यासिका। संक्षेप में कहानी साहित्य का एक छोटा, अत्यंत सुसंघठित और अपने आप में परिपूर्ण कथारूप है।'[1]

अमेरिका के कवि आलोचक कथाकार 'एडगर एलिन पो के अनुसार कहानी की परिभाषा इस प्रकार है, 'कहानी वह छोटा आख्यानात्मक रचना है, जिसे एक बैठक में पढ़ा जा सके, जो पाठक पर एक समन्वित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए लिखी गई हो, जिसमें उस प्रभाव को उत्पन्न करने में सहायक तत्त्व के अतिरिक्त और कुछ भी हो और जो अपने आप में पूर्ण हो।'[2]

हिंदी कहानी को सर्वश्रेष्ठ रूप देनेवाले 'प्रेमचंद' ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार से दी है, 'कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूर्ण कर देता है, जितना रातभर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।'[3]

जहाँ तक बाल कहानियों की बात आती है, कहा जा सकता है कि बाल कहानी का प्राणतत्त्व है मनोरंजन। बाल कहानियों में भरपूर मनोरंजन होना चाहिए, जिससे बच्चे रुचि लेकर पढ़ सकें। इसके साथ ही इसमें अप्रत्यक्ष रूप से नैतिक शिक्षा का भी समावेश किया जा सकता है। बाल कहानी की भाषा, सहज और प्रवाहपूर्ण होनी चाहिए। इसका कथानक काल्पनिक भी हो

 ISSN 0975-735X

सकता है और वास्तविक भी।

कहानियों के उद्‌भव और विकास पर प्रकाश डालते हुए बच्चों की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'नंदन' के यशस्वी संपादक जयप्रकाश भारती ने लिखा है, 'मानव ने जबसे भाषा द्वारा अपने भाव व्यक्त करने की क्षमता विकसित की, तभी से वह कहानी कहने और सुनने लगा। कोई मनुष्य जंगल में चला जा रहा होगा। अचानक किसी जंगली जानवर ने उसपर आक्रमण कर दिया। आदिमयुग के उस मानव ने आत्मरक्षा के लिए संघर्ष किया। उस जंगली पशु का वध कर साँझ को निवास पर लौटकर उसने इस घटना का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया। भय, कुतूहल, अतिरंजना और मनोरंजन जैसे तत्त्वों के कारण यह छोटी सी घटना कहानी बन गई। एक ने दूसरे से, और उसने तीसरे को, चौथे को यह सुनाई इसी तरह मौखिक रूप से कहानी की शुरूआत हुई।'[4]

इस कथन से स्पष्ट है कि हिंदी बाल कहानी को एक समृद्ध पृष्ठभूमि मिली है और यही कारण है कि उसका आयाम अत्यंत विस्तृत है। हिंदी बाल कहानियों का अभ्युदय भारतेंदुयुग से माना जाता है, पर इस काल की अधिकतर बाल कहानियाँ संस्कृत से अनूदित हैं। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने अवश्य कुछ मौलिक कहानियाँ लिखीं जिनमें 'राजा भोजराज का सपना', 'बच्चों का इनाम तथा लड़कों की कहानी' का नाम लिया जा सकता है। प्रेमचंद की 'ईदगाह', 'मंत्र', 'बड़े भाई साहब' तथा 'रानी सारंधा' आदि कहानियाँ यद्यपि बड़ों के लिए लिखी गई हैं पर बच्चों व किशोरों को भी समान रूप से मोहती है। सुदर्शन की 'हार की जीत' भी इसी कोटि की कहानी है जो बच्चों-बड़ों के मन तक एक साथ पहुँचती है।

हरिकृष्ण देवसरे जी ने अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हिंदी बालकहानियों को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया है–

1. उपदेशात्मक कहानियाँ, 2. पशु-पक्षी संबंधी कहानियाँ, 3. ऐतिहासिक कहानियाँ, 4. साहसिक कहानियाँ, 5. वैज्ञानिक कहानियाँ, 6. मनोवैज्ञानिक कहानियाँ, 7. मुहावरों की कहानियाँ, 8. गीतकथाएँ, 9. परी कथाएँ।[5]

प्राय: देखा जाए तो परंपरावादी जो कहानियाँ है ये लोककथाओं से ली गई हैं, जिसका मुख्य स्रोत पंचतंत्र, हितोपदेश तथा जातक कथाएँ हैं। पशु-पक्षियों से संबंधित अनेक बाल कहानी लिखी गई हैं। साथ ही पौराणिक तथा ऐतिहासिक, उपदेशात्मक कहानियाँ, साहसिक कथाएँ, परी कथाएँ, जासूसी कथाएँ, सामंती कहानियाँ भी बाल कहानियों में लिखी गई थीं। प्रारंभिक दौर में लिखी जानेवाली कहानियाँ बच्चों के मनोरंजन को ध्यान में रखकर साथ ही जीवन-संबंधी नैतिक शिक्षापरक दृष्टि से भी लिखी जाती थीं, किंतु आधुनिक शिक्षा तथा मनोवैज्ञानिक अर्थों में उसकी उपयोगिता सिद्ध कर दी है।

बाल कहानी लिखना एक कला है। निष्पक्ष रूप से देखा जाए तो कहा जा सकता है कि सामान्य कहानी की तुलना में बाल कहानी लिखना बहुत कठिन कार्य है। बाल कहानी लिखने के लिए लेखक को बाल मनोविज्ञान की जानकारी लेनी चाहिए। इसके साथ ही बाल कहानी लिखते समय उसे बच्चों के धरातल पर उतरना पड़ता है। वह अपने को बच्चा समझता है और अपनी सोच बच्चों के समान बनाता है। यह कल्पना आसान नहीं है यही कारण है कि सामान्य साहित्यकार बाल कहानियाँ नहीं लिख पाते। वास्तव में बाल कहानी साहित्यकार के लेखन की परिपक्वता का मानदंड है।

रोचकता, प्रभाव तथा वक्ता एवं श्रोता या कहानीकार एवं पाठक के बीच यथोचित संबंद्धता बनाए रखने के लिए सभी प्रकार की कहानियों में निम्नलिखित तत्त्व महत्त्वपूर्ण माने गए हैं–कथावस्तु, पात्र अथवा चरित्र चित्रण, कथोपकथन अथवा संवाद, देशकाल अथवा वातावरण,भाषा शैली तथा उद्देश्य। कहानी के ढाँचे को कथानक अथवा कथावस्तु कहा जाता है। प्रत्येक कहानी के लिए कथावस्तु का होना अनिवार्य है क्योंकि इसके अभाव में कहानी की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कथानक के चार अंग माने जाते हैं–आरंभ, आरोह, चरम, स्थिति एवं अवरोह। कहानी का संचालन उसके पात्रों के द्वारा ही होता है। चरित्र चित्रण से विभिन्न चरित्रों में स्वाभाविकता उत्पन्न की जाती है। संवाद कहानी का प्रमुख अंग होते हैं। इनके द्वारा पात्रों के मानसिक अंतर्द्वंद्व एवं अन्य मनोभाव को प्रकट किया जाता है। कहानी में वास्तविकता का पुट देने के लिए देशकाल अथवा वातावरण का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुतीकरण के ढंग में कलात्मकता लाने के लिए उसको अलग-अलग भाषा व शैली से सजाया जाता है। कहानी में केवल मनोरंजन ही नहीं होता अपितु उसका एक निश्चित उद्देश्य भी होता है।'[6] उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि कहानी बच्चों का मनोरंजन तो करती ही है उनका बौद्धिक विकास कर मानवमूल्यों की सुरक्षा करती है।

श्री शुक्ल ने बाल कहानियों का महत्त्व समझाते हुए एक सौ पचास से अधिक कहानियाँ लिखी हैं। उनकी बाल कहानियाँ विविधतापूर्ण रही हैं। इनमें परिकथाएँ, राजा-रानी की कथाएँ, ऐतिहासिक बालकथाएँ, नीतिपरक बालकथाएँ, मनोरंजन बालकथाएँ, शिक्षाप्रद बालकथाएँ, जीव-जगत से संबंधित बालकथाएँ, साहसिक बालकथाएँ तथा वैज्ञानिक बालकथाएँ लिखी हैं। उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में जासूसी कहानियाँ, हास्य कहानियाँ, साहस कथाएँ आदि लिखी हैं।

बालमन बड़ा सरल होता है और उसके परिचय का दायरा भी बहुत सीमित होता है। बच्चे कहानियों में रुचि लेते हैं तथा आरंभ से ही उनमें कहानियों के प्रति अनुराग होता है। श्री शुक्ल एक कुशल बाल मनोवैज्ञानिक हैं जो बच्चों की इस रुचि को भलीभाँति समझते हैं। बच्चों की इसी रुचि को देखते हुए बहुत सी बाल-पत्रिकाओं में समय-समय पर परी कथाएँ विशेषांक, विज्ञान कथा विशेषांक आदि का प्रकाशन किया है। डॉ॰ परशुराम शुक्ल ने विभिन्न विषयों पर लगभग डेढ़ सौ बाल कहानियाँ लिखी हैं। ये सभी बाल कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अथवा बाल कहानी संकलनों में प्रकाशित हो चुकी हैं। पुस्तक रूप में अभी तक 52 बाल कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से 12 पुस्तकों को उनके बालसाहित्य समग्र के रूप में समझा जा सकता है। इनका प्रकाशन विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर द्वारा वर्ष 2016-17 में 'परशुराम शुक्ल बाल कथा साहित्य समग्र' शीर्षक से किया गया है। यहाँ पर बालसाहित्य समग्र के प्रत्येक खंड का परिचय दिया जा रहा है।

1. जंगल की बाल कहानियाँ

सन 2015 में विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर द्वारा प्रकाशित 'परशुराम शुक्ल बाल कथासाहित्य समग्र' का पहला खंड है–जंगल की बाल कहानियाँ। इस खंड में 17 बाल कहानियाँ हैं–चेतनगाइड, कहानी एक रिंगमास्टर की, ओल्गा के शेर, कहानी मटकू की, याको कामा, काजीरंगा का खूंखार गैंडा, तेंदुए से भिडंत, जयपारा का नरभक्षी तेंदुआ, भयानक टक्कर, अनोखा शिकारी, गढ़चिरौली का जंगली सुअर, कानपुर का नरभक्षी मगर, आदमखोर बाघ का अंत, काक

 ISSN 0975-735X

बुद्धि, पंचमढ़ी का जंगली रीछ, खितौनी वन का कद्दावर बाघ, और रामपुर का खूंखार गुलबाघ।

इस खंड में दो प्रकार की जंगल की कहानियाँ हैं। पहली वे कहानियाँ हैं, जिनमें वन्यजीवों का परिचय दिया गया है। कुछ कहानियों में वन्यजीवों का वैज्ञानिक परिचय दिया गया है। चेतन गाइड, कहानी, मटकू और याकोहामा आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। दूसरे प्रकार की कहानियाँ शिकार से संबंधित हैं। पेशेवर शिकारियों द्वारा भारत में बहुत बड़ी संख्या में वन्यजीवों का शिकार किया जाता है। इनमें बाघ, सिंह, तेंदुआ, गैंडा तथा विभिन्न प्रकार के हिरन प्रमुख हैं। काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान तो शिकारियों का स्वर्ग है। यहाँ गैंडे का शिकार अधिक किया जाता है। एक बार शिकारी स्वयं शिकार बन गया। 'काजीरंगा का खूंखार गैंडा' इसी घटना पर आधारित कहानी है।

'गैंडा क्रोध से पागल हो रहा था। उसके पैर तो जकड़े हुए थे, अत: उसने अपने सींग से तपन घोष को इतनी तेज टक्कर दी कि वह सँभल नहीं सका और वहीं घायल होकर गिर पड़ा। तपन घोष गैंडों का पुराना शिकारी था। उसने घायल होने के बाद भी घिसटते हुए गैंडे के पीछे आने का प्रयास किया, लेकिन तभी गैंडे ने अपने सींग की दूसरी टक्कर दी जिसमें तपन घोष का सिर फट गया। इसके बाद गैंडे ने उसके लहूलुहान शरीर पर अनगिनत वार किए।'[7] जंगल की यह बालकहानियाँ शिकार से संबंधित वन्यजीवों का शिकार करनेवाले शिकारियों की हैं। भारत में अपने शौक के लिए, भोजन के लिए बड़ी संख्या में वन्यजीवों को मारा गया। कभी-कभी बाघ, तेंदुआ, मगर आदि के मानव भक्षी हो जाने के कारण इन्हें मारा गया। इनकी कहानियाँ लिखने के पूर्व ऋषि श्रीशुक्ल शिकारियों से भी मिले। उन्होंने बड़ी ईमानदारी के साथ इस प्रकार की कहानियाँ शिकारियों की आत्मकथात्मक शैली में लिखी हैं, पुस्तक की चार कहानियाँ शिकारियों की आत्मकथात्मक शैली में हैं। 'ऐसा मैंने वास्तविकता के चित्रण और भावनाओं की अभिव्यक्ति को सफल बनाने के लिए किया है। इन कहानियों की आत्मा शिकारियों की है, मैंने तो शब्दों का शरीर तैयार किया है।'[8]

2. प्राचीन ग्रंथों की बाल कहानियाँ

परशुराम शुक्ल के बाल कथासाहित्य समग्र-2 में रामायण और महाभारत के पात्रों की कहानियाँ हैं। इसके अतिरिक्त कुछ कहानियाँ अन्य प्राचीन भारतीय ग्रंथों से ली गई हैं। इस समग्र खंड-2 में कुल 28 बाल कहानियाँ हैं—क्रोध का कीड़ा, बड़ा कौन, सूर्य का सारथी, विष्णु का वाहन, दधाचि का त्याग, नृसिंहावतार, सागर पान, सागर मंथन, भस्मासुर वध, माता का वध, तारक वध, अंधक वध, कर्मयोगी, सहस्रवाहु वध, रामभक्त हनुमान, सोने का हिरन, नरकासुर वध, बालि वध, अंगद का पैर, महाबली कुंभकर्ण, मांडव ऋषि का शाप, देश की मुक्ति, लाख का महल, बकासुर वध, जटासुर वध, महाबली घटोत्कच, सर्पयज्ञ, और उपहास का फल।

भारत के पौराणिक ग्रंथ रामायण, महाभारत भारतीय संस्कृति की अनमोल धरोहर हैं। इन ग्रंथों के पात्रों से बच्चों में मानवीय मूल्य एवं जीवन-दर्शन के विभिन्न स्वरूपों का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। पौराणिक साहित्य में राजा-रानी, ऋषि-मुनि, देव-दानव, राक्षस आदि के साथ ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि चमत्कारी जानकारियाँ दी गई हैं। इस साहित्य में सूर्य, चंद्र, पृथ्वी सभी को मानव रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। ये सभी कहानियाँ बच्चों में कौतुहल उत्पन्न करने में सक्षम हैं। श्रीशुक्ल की इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य बालकों का मनोरंजन के

साथ-साथ भारतीय संस्कृति से परिचय कराना है। जिससे नैतिकता का विकास हो।

'तारक वध'[9] कहानी बज्रांग के पुत्र तारक की है, जो ब्रह्माजी की तपस्या करके तीनों लोक में सर्वाधिक शक्तिशाली बन गया था। इस शक्ति ने उसके भीतर घमंड को जन्म दिया। जिसके कारण वह मारा गया। यह कहानी बच्चों को संयमित व्यवहार करने की और घमंड न करने की शिक्षा देती है।

'माता का वध'[10] कहानी जमदग्नि और रेणुका के सबसे छोटे पुत्र भगवान ऋषि परशुराम की है। इस कहानी में मातृ एवं पितृभक्ति का चित्रण किया गया है। परशुराम की माता रेणुका राजा चित्ररथ पर मोहित हो गई थी जिसके कारण उनके पिता ने माता का वध करने का आदेश दिया। परशुराम ने पिता की आज्ञा का पालन किया और माता रेणुका के लिए जीवनदान भी प्राप्त कर लिया।

'नरकासुर वध'[11] कहानी भगवान विष्णु और पृथ्वीपुत्र महाशक्तिशाली राक्षस नरकासुर की है। भगवान विष्णु के प्रयास से वह नागाज्योतिपुर का राजा बन गया। इसी मध्य नरकासुर की मित्रता वाणासुर से हो गई उसकी संगति ने नरकासुर को और क्रूर राक्षस बना दिया। अंत में श्रीकृष्ण द्वारा नरकासुर का वध कर दिया। इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि बुरे लोगों की संगति से दूर रहना चाहिए।

'महाबली घटोत्कच'[12]–घटोत्कच महाबली भीम और राक्षसी हिडिंबा का पुत्र था। महाभारत युद्ध में घटोत्कच ने पांडवों की तरफ से कौरव सेना से युद्ध किया और कर्ण द्वारा मारा गया। इस कहानी में महाबली घटोत्कच के जन्म से लेकर मरण तक का वर्णन किया गया है।

'बकासुर वध'[13]–बकासुर नामक एक दुष्ट राक्षस था, जिससे नगरवासी बहुत ही परेशान थे। वह रोजाना एक गाड़ी अनाज और दो भैंसे खा जाता था। इसके साथ जो व्यक्ति उसके लिए भोजन लेकर जाता, वह उसे भी अपना शिकार बना लेता था। महाबली भीम ने इस राक्षस का वध किया था। यह कहानी बालकों का मनोरंजन करनेवाली है।

'उपहास का फल'[14] कहानी भगवान श्रीकृष्ण की मृत्यु और यदुवंशियों के विनाश की कहानी है। महाभारत के युद्ध की समाप्ति के बाद यदुवंशी शक्ति की सत्ता के नशे में चूर हो गए थे। उन्होंने ऋषि दुर्वासा और उनके साथी ऋषियों का उपहास उड़ाया। इसी उपहास के कारण श्रीकृष्ण सहित सभी यदुवंशियों का अंत हो गया। यह कहानी बच्चों को अहंकार से दूर रहने की शिक्षा देती है।

उपर्युक्त इन सभी कहानियों का अध्ययन करने के उपरांत यह कहा जा सकता है कि परशुराम शुक्ल बाल कथासाहित्य समग्र खंड-2 की सभी कहानियाँ बच्चों में नैतिक शिक्षा के साथ पौराणिक भारतीय संस्कृति से अवगत कराती है।

3. शिक्षाप्रद बाल कहानियाँ

परशुराम शुक्ल बाल कथासाहित्य समग्र खंड-3 में कुल 20 कहानियाँ हैं–सफलता का रहस्य, रोबोट का करिश्मा, दुगने का चक्कर, सच्चे सपूत, अकाट्य तर्क, कहानी कालूराम की, मेहनत का फल, पिता की सीख, ये दिन न रहेंगे, अनोखा ढंग, साहस का फल, होली का रंग, नारायणपंडित और हरिया, विद्यावती बदल गई, धमाका, ममता की जीत, नन्हा क्रांतिकारी, तूफान के बाद, वफादार कुत्ता, और अनोखी प्रतियोगिता।

 ISSN 0975-735X

इस बाल कथासाहित्य समग्र के तीसरे खंड की कहानियाँ भी पूर्ववर्तीबाल कहानियों की तरह बहुत ही रोचक, मनोरंजन, प्रेरणादायक एवं ज्ञानवर्धक है। इनकी भाषा सहज एवं प्रवाहमय है जिससे बच्चे को इन्हें सरलता से समझ सकते हैं।

'कहानी कालूराम की'[15] ये कहानी विपरीत परिस्थितियों में चोर बने कालूराम की कहानी है जिसका अंत में हृदय परिवर्तन हो जाता है। 'मेहनत का फल'[16] यह कहानी चंदन नामक एक कामचोर युवक की कहानी है जिसमें साधू ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से चंदन को मेहनत का महत्त्व समझाया है, परिणामस्वरूप चंदन के जीवन में बदलाव आ जाता है। 'पिता की सीख'[17] परिवार संस्था के अलगाववाद के कारण आज के बिखरते संयुक्त परिवार के दुष्परिणाम पर आधारित यह कहानी पारिवारिक एकता बनाए रखने की शिक्षा देती है। 'ये दिन न रहेंगे'[18]अकबर बीरबल के चुटकुलों पर आधारित यह कहानी मनोरंजन के साथ शिक्षाप्रद है। 'अनोखा ढंग'[19] यह ऐसे ठगी व्यक्ति की कहानी है, भारत को ठगनेवाले देशों को अनोखे ढंग से ठगता है। 'साहस का फल'[20] यह विमला नामक युवती की कहानी है, जो रूढ़िवादी परंपराओं को तोड़कर अपना जीवन सुखी और संपन्न बनाने में कामयाब हो जाती है। 'होली का रंग'[21] कहानी एक थानेदार और भोले-भाले बच्चे पर केंद्रित है। 'नारायण पंडित और हरिया'[22] यह कहानी समाज में हो रहे छुआछूत और ऊँच-नीच जैसे कुप्रथाओं पर आधारित है। यह कहानी जाति एवं वर्ण व्यवस्था पर प्रहार करती है। 'सफलता का रहस्य'[23] कहानी में अभिभावकों को यह बताने का प्रयास किया गया है कि बच्चे मारपीट अथवा भय के द्वारा योग्य नहीं बनते, अपितु उन्हें योग्य बनाने के लिए स्नेह प्रोत्साहन और पुरस्कार आवश्यक है। 'दुगने का चक्कर'[24] कहानी में लालची व्यक्ति के बर्बादी का चित्रण है। 'सच्चे सपूत'[25] कहानी का उद्देश्य अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण के महत्त्व को स्पष्ट कराना है। 'अकाट्य तर्क'[26] कहानी वर्तमान प्रतिभावान बच्चों की बुद्धि और तर्कशक्ति पर केंद्रित है। कहानी 'विद्यावती बदल गई'[27] अंधविश्वासी स्त्री की कहानी है। 'धमाका'[28] कहानी की नायिका एक युवा कलेक्टर है, जिसकी कर्त्तव्यपरायणता बच्चों को कर्त्तव्य का महत्त्व सिखाती है। 'ममता की जीत'[29] शिक्षाप्रद कहानी है। यह उन अभिभावकों के लिए है जो अपने बच्चों को डाँट-मार से नहीं, प्यार की भाषा से समझाते हैं। 'नन्हे क्रांतिकारी' [30] राष्ट्रभक्ति के प्रति जागरूकता की कहानी है। 'तूफान के बाद'[31] यह एक निर्धन स्त्री पर केंद्रित कहानी है जिसकी नायिका अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा से क्रूर स्वामी का हृदय-परिवर्तन करने में सफल हो जाती है। 'वफादार कुत्ता'[32] कहानी में बड़े मार्मिक ढंग से यह बताने का प्रयास किया गया है कि कभी-कभी मानव पशुता का व्यवहार करने लगता है, किंतु पशु मानव का उपकार जीवनपर्यंत नहीं भूलता और अपने प्राण देकर भी उस पर किए गए उपकार का बदला चुकाता है।

उपर्युक्त विवरण यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि 'परशुराम शुक्ल बाल कथासाहित्य समग्र-3 की सभी कहानियाँ बच्चों एवं अभिभावकों के लिए रोचक एवं मनोरंजक हैं। बच्चों का मनोरंजन करने के साथ ही ये कहानियाँ उनका मानसिक विकास करने में सक्षम हैं।

4. **परियों की बाल कहानियाँ**

डॉ॰ परशुराम शुक्ल बाल कथासाहित्य समग्र खंड-4 में 10 परी कथाएँ हैं–1. सुनहरी परी और राजकुमार, 2. दानवी का प्यार, 3. लाल परी का उपहार, 4. पराक्रमी दैत्य, 5. चमत्कारी तारस्त्र, 6. ब्रह्माजी का वरदान, 7. दानवी का बदला, 8. साधु का शाप, 9. युवा राक्षस और

चमत्कारी साधू, 10. गई सो जान दे रयी से राख।

इस खंड की सबसे अच्छी परीकथा 'गई सो जान दे' है। इस कहानी में पवन नामक एक लड़का अपनी बुद्धिमानी से परीलोक पहुँच जाता है–

'पवन खुश हो गया। उसने तुरंत सोनपरी के पंख लाकर उसे दे दिए। सोनपरी ने पंख लगाए और पवन को साथ लेकर परीलोक की ओर चल पड़ी। कुछ ही क्षणों में पवन सोनपरी के साथ अंतरिक्ष में था। वह बड़ी तेज गति से ग्रहों और नक्षत्रों को पार करता हुआ परीलोक की तरफ बढ़ रहा था। रास्ते में उसे चंद्रमा भी मिला। चंद्रमा की जमीन पृथ्वी के समान थी, किंतु यहाँ कोई मानव अथवा जीवजंतु नहीं था। अन्य ग्रह बड़े विचित्र थे। कोई छोटा, कोई बड़ा। कोई रंग-बिरंगा तो कोई पूरी तरह काला। उन ग्रहों पर जीवन था या नहीं इसकी जानकारी सोनपरी को नहीं थी।'

प्रात:काल पवन परीलोक आ पहुँचा। परीलोक स्वर्ग से भी सुंदर था। चारों तरफ हरियाली और फलवाले वृक्ष। परियों के मकान भी खिलौनों के समान सुंदर और रंग-बिरंगे थे।[34]

इस तरह पवन परीलोक में रहने लगता है। कुछ दिनों बाद अपने घर-परिवार के लोगों की याद आती है। और सोनपरी उसे पुन: लेकर धरती पर आती है, एक शर्त के साथ कि वह निश्चित समय पर उनसे मिलकर वापस लौट आएगा। अपने घर आने पर पवन इस तरह परिवार में खो जाता है कि वह सोनपरी को दिया वचन भूल जाता है। एक निश्चित समय पर जब पवन नहीं लौटता तो सोनपरी अकेली परीलोक लौट जाती है। समय का ध्यान न रहने के कारण पवन के पास पश्चाताप के अलावा कुछ नहीं बचता।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि परशुराम शुक्ल की सभी परियों की बाल कहानियाँ रोचक और बाल मनोरंजक है।

5. **लोककथाओं पर आधारित बाल कहानियाँ**

'परशुराम शुक्ल बाल कथासाहित्य समग्र खंड-5' में लोककथाओं पर आधारित 20 बाल कहानियाँ हैं–1. स्वर्ग के महारथी, 2. देवी का विश्वास, 3. हुलुग, तांत्रिक और भैरवी, 4. दुष्ट साधू का अंत, 5. इच्छाधारी नाग, 6. धोखेबाज, 7. मूर्ख साधू और ढोंगी तांत्रिक, 8. वासी का सपना, 9. शंकर-पार्वती का न्याय, 10. नागदेवता का क्रोध, 11. भैरवी और तांत्रिक की टक्कर और 12. ब्रह्मदत्त का हृदय परिवर्तन।

'लोककथाएँ समाज की अमूल्य धरोहर होती हैं। प्रत्येक लोककथा में उस समय की रूढ़ियों, प्रथाओं, जनरीतियों, परंपराओं, सामाजिक मूल्यों, आदर्शों, विचारों आदि की झलक होती है, जिनमें इनका जन्म होता है। इस प्रकार लोककथाओं को संस्कृति का संरक्षक कहा जा सकता है। एक समाज की संस्कृति दूसरे समाज की संस्कृति से भिन्न होती है। यहीं कारण है कि एक समाज की लोककथाएँ दूसरे समाज की लोककथाओं से भिन्न होती हैं। लोककथाओं की सहायता से किसी समाज की संस्कृति को सरलता से समझा जा सकता है।'[35]

इस खंड की कथा 'वासी का सपना' एक आदिवासी युवती की कहानी है। वासी तीनों लोकों के सबसे सुंदर व्यक्ति को अपने पति के रूप में पाना चाहती है जिसका वह स्वप्न देखती हैं, 'सर्दियों का मौसम समाप्त हो रहा था और वसंत उत्सव की तैयारियाँ आरंभ हो गई थीं। अचानक एक रात वासी को सपने में वहीं साधू दिखाई दिया। वासी ने इतने लंबे समय बाद भी साधू को पहचान लिया। साधू के चेहरे पर अलौकिक तेज था। उसके दिव्य तेज से वासी का घर

भर गया। वासी ने साधू को प्रणाम किया और उसे बताया कि वह उसकी आशा के अनुसार वन देवता को नियमित जल चढ़ा रही है।

साधू ने वासी की बात बड़े ध्यान से सुनी और उसकी ओर मुस्कराकर देखा। साधू ने उसे बताया कि उसे सब मालूम है। उसे यह भी मालूम है कि वह नियमित रूप से बड़े पवित्र भाव से वन देवता को जल चढ़ा रही है। इतनी बात कहने के बाद साधू कुछ पल के लिए रुका और फिर उसने बताया कि अब उसकी साधना पूरी हुई। इस बार वह वसंत उत्सव में बड़ी हँसी-खुशी से भाग ले। इसी वसंत उत्सव पर उसे तीनों लोकों का सबसे सुंदर युवक मिलेगा।'[36]

इस कथा में डॉ॰ शुक्ल ने विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया है। उन्होंने इन कथाओं का सृजन अपनी कल्पनाओं के आधार पर किया है जो कि बच्चों के लिए ज्ञानवर्धक एवं मनोरंजन करने वाली हैं।

6. राजा-रानी की बाल कहानियाँ

डॉ॰ परशुराम शुक्ल बाल कथासाहित्य समग्र खंड-6 में कुल 12 बाल कहानियाँ हैं—1. चमत्कारी वृक्ष, 2. बाँसुरी का जादू, 3. राज पुरोहित का चुनाव, 4. शिवभक्त राजा, 5. दुष्ट राजकुमार का अंत, 6. शैतान का खेल, 7. चमत्कारी औषधि, 8. दुष्ट राजा का अंत, 9. जादूगर, रानी और राजकुमार, 10. कुलगुरु का चमत्कार, 11. किन्नर राजा और विषकन्या तथा 12. जिद्दी राजकुमारी का अंत।

डॉ॰ परशुराम शुक्ल ने अपने इस कहानी-संग्रह की सभी कहानियों में फंतासी का प्रयोग बड़े ही शानदार तरीके से किया। फंतासी चाहे राजा परी कथाओं जैसी प्राचीन हो या स्पाइडरमैन जैसी आधुनिक, बच्चों को बहुत ही लुभाती है। श्रीशुक्ल की सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक 'भारत के राजकीय प्राकृतिक प्रतीक' में राजकीय वृक्षों और पुष्पों की उत्पत्ति से संबंधित अनेकों कहानियाँ गढ़ी थीं। इन सभी कहानियों का अध्ययन करने से प्रतीत होता है जैसे कोई लोककथा पढ़ रहे हों। वे भलीभाँति जानते थे कि भविष्य में इन सभी कहानियों का उपयोग बाल कहानियों के समान होगा। अत: कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी कहानियों को रोचक बनाने के लिए फंतासी का सहारा लिया।

इस संग्रह की कहानी 'कुलगुरु का चमत्कार' में कंधन' की उत्पत्ति को दिखाया गया है—

'इन दो मौतों से दोनों पक्षों के लोगों की समझ में आ गया था कि राजकुमारी विषकन्या बन चुकी है। वे दुष्ट राजा की दृष्टता से पहले से परिचित थे। वे यह अच्छी तरह समझ गए कि दुष्ट राजा ने नए राजा के राज्य को हड़पने के लिए षड्यंत्र रचा है।

इधर राजकुमारी का क्रोध सातवें आसमान पर जा पहुँचा था। उसने मुस्कुराते हुए, कुलगुरु की ओर देखा और उनकी ओर झपटी। अचानक फिर एक चमत्कार हुआ और राजकुमारी झाड़ी जैसे एक छोटे से पौधे में बदल गई। इस पौधे पर सुंदर फूल खिले हुए थे। दृष्ट राजा और उसके साथियों ने राजकुमारी की यह हालत देखी तो उन्होंने रौद्र रूप धारण करके कुलगुरु पर आक्रमण कर दिया। कुलगुरु अभी भी शांत खड़े मुस्कुरा रहे थे। उन्होंने अपनी दिव्य शक्ति से दृष्ट राजा और उसके साथियों को काँटेदार बबूल जैसे वृक्ष झाड़ियों में बदल दिया।'[37]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि राजा रानी की बाल-कहानियों में प्रत्येक समाज की

सांस्कृतिक झलक दिखाई देती है। साहित्यकार की रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितियाँ, रीति-रिवाज, परंपराएँ, प्रथाएँ, मान्यताएँ, रूढ़ियाँ एवं आदर्श दिखाई पड़ते है। श्रीशुक्ल के राजा रानी की बाल कहानियों में भारतीय संस्कृति के दृश्य परिलक्षित होते है, जो बच्चों का मनोरंजन करने के साथ ही उद्देश्यपूर्ण भी है।

7. **नैतिक बाल कहानियाँ**

परशुराम शुक्ल बाल कथासाहित्य समग्र खंड-7 में पच्चीस बाल कहानियाँ हैं–1. शेर और बकरा, 2. चालाक सियार, 3. गिलहरी की पूँछ, 4. मुनमुन और मोनू, 5. अनोखा न्याय, 6. सागर और हंस, 7. ठेला और पत्ता, 8. मोती का सच, 9. अनोखा चुटकुला, 10. चुगलखोर का अंत, 11. अनोखा बदला, 12. उल्लू की सीख, 13. चालाक चीकू और दुष्ट भेड़िया, 14. सरस्वती का शाप, 15. सुई की हिफाजत, 16. मम्मी-पापा, 17. श्रद्धा का मूल्य, 18. नन्हा जासूस, 19. हवाई महल, 20. श्रम का महत्त्व, 21. घमंड का फल, 22. सबक, 23. बूँद का साहस, 24. गीता की बुद्धिमानी और 25. बुद्धिमान आलोक।

इस संग्रह की कहानी 'मोती की सच्चाई' हास्यपूर्ण है, जिसका एक उदाहरण इस प्रकार है–'महाराज क्या हुआ? मंत्री ने बड़े विनम्र स्वर में सर झुकाकर प्रश्न किया। मंत्री जी! मोती मर गया। उसी के शोक में हमने अपने बाल मुँडवाए हैं। आप सेनापति तथा सभी दरबारी भी इस शोक में शामिल होने के लिए अपने सर के बाल साफ करवा लें।' राजा ने बड़े दुखी स्वर में आदेश दिया।

'हुजूर यह मोती कौन है?' मंत्री ने प्रश्न किया।

'मोती हमारे नगर सेठ का पुत्र है।' राजा ने उत्तर दिया।

'लेकिन हुजूर। हमारे नगर सेठ के तो कोई पुत्र नहीं है।' मंत्री आश्चर्य से बोला 'कल हमारे पास नगर सेठ आया था। उसका सर मुढ़ा हुआ था तथा उसी ने बताया कि मोती मर गया है।' राजा बोले। मंत्री समझ गया कि राजा ने बिना सोच-विचारे और पूरी बात मालूम किए ही सर के बाल साफ करा लिए हैं। उसे राजा की बुद्धि पर बड़ा तरस आया।'[38]

इस कहानी के माध्यम से हमें यह शिक्षा मिलती है कि बिना सोचे-समझे, विचार किए किसी भी कार्य को नहीं करना चाहिए। आज समाज के नैतिक मूल्य टूटकर बिखर चुके हैं। मनुष्य भौतिक सफलता प्राप्ति के लिए गिरता जा रहा है और झूठी सफलता को पाकर सार्थकता का अनुभव कर रहा है। ऐसे समय में शुक्ल जी की कहानियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती हैं।

8. **प्रेरणादायक बाल कहानियाँ**

परशुराम शुक्ल कथासाहित्य समग्र खंड-8 में पंद्रह बाल कहानियाँ हैं–1. खजाने की खोज में, 2. मासूम अपराधी, 3. ओल्गा और रुस्लान, 4. स्पीलियोनॉट, 5. हृदय परिवर्तन एक जासूस का, 6. सम्मोहन का चमत्कार, 7. कहानी एक रिंग मास्टर की, 8. भेड़िया, मानव 9. पैर की उँगली बनी हाथा का अँगूठा, 10. केन के हाथ, 11. नेत्रहीन चालक, 12. अनोखा कलाकार, 13. मन के जीते जीत, 14. मौत एक मसीहा की और 15. नसों का जादूगर।

आए-दिन विश्व के विभिन्न भागों में कई ऐसी घटनाएँ घटित होती रहती हैं, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती हैं। इन खबरों के माध्यम से हमें प्रेरणादायक शिक्षा मिलती है। इस प्रकार की घटित घटनाएँ केवल समाचारपत्रों अथवा टेलीविजन चैनलों की केवल न्यूज मात्र बनकर रह जाती हैं। श्री शुक्ल ने ऐसी घटना को कहानी 'केन के हाथ' द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

 ISSN 0975-735X

'डॉ॰ कनिंगघम हम ऑपरेशन को पूरी तरह सफल बनाना चाहते थे, अत: उन्होंने एक बार पुन: अपने मित्रों को बुलाकर उनसे विचार-विमर्श किया और अंत में एक छोटा-सा ऑपरेशन करके केन के कटे हुए हाथ और नए लगाए हुए कृत्रिम हाथ को जोड़कर दो तरफ से छह नट बोल्टों की सहायता से एक प्लेट कस दी। इस प्लेट के लग जाने से केन के हाथों में काफी शक्ति आ गई और एक माह में वह अपने हाथ से एक किलोग्राम तक वजन उठाने के योग्य हो गया।

पहले ऑपरेशन के ठीक पैंतालीस दिन बाद डॉ॰ कनिंगघम ने केन के कटे हुए दाहिने हाथ में भी मायक्रोइलेक्ट्रॉनिक पंजा लगा दिया तथा हाथों पर मुलायम रबर के खोल चढ़ा दिए। इस समय यदि केन को पूरी बाँह की शर्ट, स्वेटर या कोट पहना दिया जाए तो कोई भी उसे विकलांग नहीं कह सकता था।'[39] उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि श्रीशुक्ल ने समाचारपत्रों एवं टी॰वी॰ चैनलों द्वारा देश-विदेश में घटनेवाली काल्पनिक एवं वास्तविक कई अविस्मरणीय घटनाओं को अपनी कहानियों का माध्यम बनाया है। अत: ये बाल कहानियाँ बच्चों के लिए प्रेरणादायी सिद्ध होती हैं।

9. **ऐतिहासिक बाल कहानियाँ**

'परशुराम शुक्ल बाल कथासाहित्य समग्र खंड-9 में 22 बाल कहानियाँ हैं—1. सैनिक का रहस्य, 2. विजय की मुस्कान, 3. अनोखी पोशाक, 4. बुद्धिमती रानी, 5. जिंजीगढ़ फतह, 6. राजकुमारी का निर्णय, 7. प्राणोत्सर्ग, 8. राष्ट्रधर्म की वेदी पर, 9. कृष्णा का विषयान, 10. विषकन्या, 11. विजयपर्व, 12. अद्‌भुत वीरांगनाएँ, 13. अनोखी शर्त, 14. साध्वी शासक, 15. एक लुटेरे का हृदय परिवर्तन, 16. अंतिम विकल्प, 17. आपस की फूट, 18. पद्मिनी का जौहर, 19. विश्वासघात का परिणाम, 20. चमत्कारी पत्थर, 21. चंपा का बलिदान और 22. साहस की विजय। रानी दुर्गावती का एक उदाहरण—

'मुगलों की सेना बहुत विशाल और शक्तिशाली थी। फिर भी रानी दुर्गावती ने अपनी हार नहीं मानी और अपनी सेनाओं को बिछिया घाटी के मैदान में एकत्रित किया। बिछिया घाटी के मैदान में आसफ खाँ और दुर्गावती की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में रानी दुर्गावती और उसके सैनिक बड़ी बहादुरी से लड़ रहे थे। एक बार तो ऐसा समय भी आ गया, जब आसफ खाँ की सेनाओं के पैर उखड़ गए और उन्हें पीछे हटना पड़ा। किंतु अचानक एक घातक तीर रानी दुर्गावती की कनपटी पर और दूसरा गले के पास लगा। इससे रानी बुरी तरह घायल होकर गिर पड़ीं।

आसफ खाँ ने रानी दुर्गावती को जीवित पकड़ने की कसम खाई थी, अत: उसके गिरते ही मुगल सैनिक कुत्तों की तरह रानी पर झपटे, किंतु तभी रानी दुर्गावती ने अपने महावत की कटार लेकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर लीं। इस तरह रानी दुर्गावती अपने देश की आन-बान-शान पर मिटकर अमर हो गई। आज भी गोंडवाने के लोग रानी दुर्गावती की वीरता के गीत गाते हैं और उसे देवी के समान पूजते है।'[40] निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि डॉ॰ परशुराम बाल कथासाहित्य समग्र खंड-9 में भारतीय वीरांगनाओं के साहसिक जीवन से संबंधित अनेकों ऐतिहासिक तथा मार्मिक एवं रोमांचक प्रसंगों को लेकर बाल कहानियाँ लिखी हैं, जो बालकों का मनोरंजन करने के साथ-साथ उन्हें साहस और वीरता की प्रेरणा प्रदान करती हैं।

10. **क्रांतिकारियों की बाल कहानियाँ :**

परशुराम शुक्ल बाल कथा साहित्य समग्र खंड-10 में 20 बाल कहानियाँ है, 1. आपसी कलह का परिणाम, 2. आग की लपटों में, 3. कित्तूर की रानी, 4. अंतिम साँस तक, 5. महिला

तोपची, 6. एक वीरांगना का आत्मोसर्ग, 7. वीर बाला नारायणी, 8. विदेशों में तिरंगा, 9. रहस्यमय मौत, 10. निशाना चूक गया, 11. भारत माता की जय, 12. यूरोपियन क्लब पर आक्रमण, 13. तिरंगे की शान, 14. क्रांतिकारियों के प्रेरणा पुरुष, 15. राष्ट्रभक्ति की भावना, 16. मैं क्रांतिकारी बनूँगा, 17. तीसरी गोली, 18. दलितों के मसीहा, 19. क्रांतिकारी विचारक, 20. दूरदर्शी इंदिरा। क्रांतिकारियों के प्रेरणा पुरुष से एक उदाहरण देखिए–

'क्याकिंग्सफर्ड बच गया? अचानक खुदीराम के मुँह से निकल गया। उनके पास ही दो सिपाही खड़े थे। उन्हें खुदीराम की बात से शक हो गया और वे उन पर टूट पड़े।

खुदीराम और प्रफुल्ल चाकी के बमों से किंग्सफोर्ड बच गया था और घोड़ा गाड़ी में बैठी हुई माँ–बेटी केनेडी और मिस केनेडी की मौत हो गई थी। मिस केनेडी की मौत घटना–स्थल पर ही हो गई थी और कुछ समय बाद उन्होंने भी दम तोड़ दिया था।

खुदीराम बोस पर नाटकीय ढंग से दफा 302 के अंतर्गत मुकदमा चला और उन्हें फाँसी की सजा सुनाई गई। उनके वकील काली बाबू ने जोरदार बहस की, किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। उन्होंने हाईकोर्ट में अपील की किंतु वहाँ भी न्याय नहीं मिला और फाँसी की सजा बरकरार रही।'[41]

श्री शुक्ल की इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य बच्चों को विभिन्न क्षेत्रों के क्रांतिकारियों से परिचय कराना है।

11. पंचतंत्र, हितोपदेश और जातक की बाल कहानियाँ

परशुराम शुक्ल बाल कथासाहित्य समग्र खंड–11 में पंचतंत्र की 10, हितोपदेश 10, और जातक की 10 बाल कहानियाँ हैं–1. मक्खी, कठफोड़वा और मेंढक, 2. पेड़ की गवाही, 3. बुद्धिमान खरगोश, 4. एक की शक्ति, 5. स्वामिभक्त नेवला, 6. लालच का फल, 7. चार मित्र, 8. घमंडी मूर्खों का अंत, 9. वानर राज की दूरदर्शिता और 10. लोभचक्र का रहस्य। (पंचतंत्र)–1. खरगोश कीबुद्धिमानी, 2. मूर्ख लकड़हारा, 3. बुद्धिमान हंस और घमंडी कौआ, 4. नन्ही चींटी का सुझाव, 5. वृद्ध गिद्ध और दुष्ट बिल्ला, 6. मंदिर की घंटी, 7. परोपकारी हाथी, 8. सोने का कड़ा, 9. लालची कौआ और कबूतर तथा 10. मूर्ख कछुए का अंत। (हितोपदेश)–1. लालची कौआ, 2. दैत्याकार केकड़ा, 3. दुष्ट सियार का अंत, 4. उल्लू का राज्याभिषेक, 5. कौआ नाक ले गया, 6. सुनहरा हिरन, 7. सोने का पंख, 8. कर्मफल, 9. संगीत का प्रभाव और 10. घमंड का फल (जातक)। पंचतंत्र की एक कहानी देखिए–

'राजा ने घोड़े की स्थिति देखी और तुरंत बंदर पकड़ने वाले लोगों को बुलाया तथा महल के आस–पास रहनेवाले बंदरों को पकड़ने की आज्ञा दी।

राजा का आदेश पाते ही बंदर पकड़ने वाले घुड़साल से बाहर आए और उन्होंने बंदरों को पकड़ना आरंभ कर दिया।

बदंर पकड़ने वाला एक रस्सी का फंदा बनाकर एक डंडे की सहायता से बंदर पकड़ रहे थे। वे बंदर पकड़ते और उसे पास खड़े जल्लाद को सौंप देते।

बेचारे बंदर वृक्षों पर इधर–उधर भाग रहे थे और चीख रहे थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब क्या करें?

सभी बंदरों को अपने सरदार की बात न मानने का पछतावा हो रहा था। यदि उन्होंने अपने सरदार की बात मान ली होती तो आज यह स्थिति न होती, किंतु अब बहुत देर हो चुकी थी।'[42]

निष्कर्षत: कहा सकता है कि श्री शुक्ल ने बाल मनोविज्ञान या बाल मानसिकता को ध्यान में रखते हुए पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक कथाएँ इन प्राचीन कहानियों को आधार बनाकर नैतिक और शिक्षाप्रद कहानियाँ लिखी हैं।

12. **वैज्ञानिक बाल कहानियाँ**

परशुराम शुक्ल बाल कथासाहित्य समग्र के अंतिम खंड-12 में बारह बाल कहानियाँ हैं—1. अनंत यात्रा का अंतरिक्षयान, 2. एक अधूरा प्रयोग, 3. रक्त दानव का अंत, 4. बगीचे का प्रेत, 5. कंप्यूटर मानव, 6. बर्फ और तूफानी हवाओं की धरती, 7. माईक्रोसर्जरी का चमत्कार, 8. अनोखा उपहार, 9. अदृश्य मानवी, 10. उड़ता मकान, 11. सैनिक रोबो और 12. फादर ऑफ मिलियन्स।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। बच्चों को प्रारंभ से ही विज्ञान की जानकारियाँ देना उपयोगी होता जा रहा है। वर्तमान समय में जहाँ 'साइंस फिक्शन' यानी वैज्ञानिक कथाओं का अभाव सा है वहीं डॉ॰ परशुराम शुक्ल ने कई ऐसी वैज्ञानिक कहानियाँ लिखी हैं जिनमें बच्चों के लिए देश-विदेश के वैज्ञानिकों की रोचक एवं प्रेरक जानकारियाँ दी गई है, जिसका मुख्य उद्देश्य बालपाठकों की कल्पनाशक्ति का विकास करना तथा उनकी उत्सुकता को जागृत करना है।

इसके अतिरिक्त सन 2017 में एक पुस्तक प्रकाशित हुई है—चुनी हुई बाल कहानियाँ। जिसमें कुल 5 कहानियाँ हैं। परशुराम शुक्ल के समग्र 12 खंडों का अध्ययन करने के उपरांत यह कहा जा सकता है कि उनकी सभी कहानियाँ एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। श्री शुक्ल की बाल कहानियों में जहाँ परीकथाएँ, लोककथाएँ, राजा-रानी की कथाएँ, ऐतिहासिक, क्रांतिकारी एवं साहसी कथाएँ हैं तो वहीं समसामायिक जीवन से समृद्ध उच्चकोटि की सामाजिक वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक कहानियाँ भी हैं। श्री शुक्ल की ये बालकहानियाँ बच्चों का मनोरंजन करती हैं उन्हें नैतिक शिक्षा देती हैं, मानवमूल्यों की सुरक्षा करती हैं तथा भारतीय संस्कृति से परिचय कराती हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि परशुराम शुक्ल बाल कथासाहित्य समग्र का यह संग्रह हिंदी बाल कहानी का एक प्रतिनिधि संकलन होकर, हिंदी बाल कहानी की विकास-यात्रा में महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकेगा।

संदर्भ

1. htpp:\\hi.m.wikipedia.org>wikh
2. भारत कोश ज्ञान का हिंदी महासागर from bharatdiscovery.org>India
3. भारत कोश ज्ञान का हिंदी महासागर from bharatdiscovery.org>India
4. हिंदी बाल पत्रकारिता का उद्भव और विकास, सुरेंद्र विक्रम, साहित्यवाणी इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष 1992
5. हिंदी बालसाहित्य एक अध्ययन, डॉ॰ हरिकृष्ण देवसरे, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 1996
6. https:\\www.wikiwand.com
7. जंगल की बाल कहानियाँ, डॉ॰ परशुराम शुक्ल, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर 2015, पृ॰ 73
8. वही, पृ॰ 6-7
9. प्राचीन ग्रंथों की बाल कहानियाँ, डॉ॰ परशुराम शुक्ल, पृ॰ 57
10. वही, पृ॰ 76

11. वही, पृ॰ 89
12. वही, पृ॰ 127
13. वही, पृ॰ 119
14. वही, पृ॰ 138
15. शिक्षाप्रद बाल कहानियाँ, डॉ॰ परशुराम शुक्ल, पृ॰ 41
16. वही, पृ॰ 49
17. वही, पृ॰ 58
18. वही, पृ॰ 64
19. वही, पृ॰ 74
20. वही, पृ॰ 80
21. वही, पृ॰ 86
22. वही, पृ॰ 92
23. वही, पृ॰ 11
24. वही, पृ॰ 21
25. वही, पृ॰ 28
26. वही, पृ॰ 34
27. वही, पृ॰ 101
28. वही, पृ॰ 106
29. वही, पृ॰ 112
30. वही, पृ॰ 118
31. वही, पृ॰ 124
32. वही, पृ॰ 129
34. परियों की बाल कहानियाँ, डॉ॰ परशुराम शुक्ल, पृ॰ 142
35. लोककथा पर आधारित बाल कहानियाँ, डॉ॰ परशुराम शुक्ल, पृ॰ 6
36. वही, पृ॰ 96
37. राजा रानी की बाल कहानियाँ, डॉ॰ परशुराम शुक्ल, पृ॰ 117-118
38. नैतिक बाल कहानियाँ, डॉ॰ परशुराम शुक्ल, पृ॰ 45-46
39. प्रेरणादायक बाल कहानियाँ, डॉ॰ परशुराम शुक्ल, पृ॰ 89-91
40. ऐतिहासिक बाल कहानियाँ, डॉ॰ परशुराम शुक्ल, पृ॰ 109
41. क्रांतिकारी बाल कहानियाँ, डॉ॰ परशुराम शुक्ल, पृ॰ 105-106
42. पंचतंत्र, हितोपदेश और जातक की बाल कहानियाँ, डॉ॰ परशुराम शुक्ल, पृ॰ 63-64

शोधार्थी, हिंदी विभाग
मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई 400098
मो॰ 9029783007, 816904349

 ISSN 0975-735X

'चंदा अमरित बरसाइस' में आंचलिकता

योगेशकुमार साहू (शोधार्थी)
डॉ॰ गौरी अग्रवाल (निर्देशक)
डा॰ राधाबाई शा॰ नवीन कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
रायपुर (छ॰ग॰)

अंचल शब्द का सीधा और स्पष्ट अर्थ है जनपद या प्रदेश विशेष। अंचल से निर्मित 'आंचलिक' विशेषण और 'आंचलिकता' भाववाचक संज्ञा है जो अँगरेजी के 'रीजनल' शब्द का हिंदी रूपांतर है। अर्थात् देश का वह भाग जो उस भौगोलिक खंड की इकाई की ओर संकेत करता है, जिसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति, भाषा और लोक परंपराएँ हो। आंचलिक शब्द का प्रयोग वर्तमान में सर्वप्रथम फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने सन् 1954 में प्रकाशित अपने उपन्यास का नामकरण इसी संदर्भ में किया है।

एक ओर आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने आंचलिक उपन्यासों के लिए अपरिचित भूमिकाओं, अज्ञात जातियों के जीवन की वैविध्यपूर्ण चित्रण को स्वीकार करते हैं तो दूसरी ओर डॉ॰ देवराज उपाध्याय आंचलिक उपन्यासों की उपयोगिता को पाठकीय दृष्टिकोण से विचार करते हुए कहते हैं–'आंचलिक उपन्यास में उपन्यासकार अपने देश के एक विशेष हिस्से के जीवन पर केंद्रित करता है और उस जीवन की विशिष्ट गुणों, असामान्य जीवन पद्धति तथा रीति-रिवाजों के संबंध में पाठकों की चेतना को जागृत करता है।'[2] रामदरश मिश्र एक अलग तरह इसे परिभाषित करते हुए कहते है–'आंचलिक उपन्यास तो अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है। इसका संबंध तो जनपद से होता है।'[3] इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने आंचलिक उपन्यास को उसकी विशिष्टताओं के आधार पर परिभाषित करने का प्रयास किया हैं। अंचल या क्षेत्र-विशेष न केवल भौगोलिक और प्राकृतिक दृष्टि से अपने आस-पास के विस्तृत क्षेत्र से भिन्न एवं सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक परिवेश, आर्थिक समस्याएँ एवं मानसिक संरचना में भिन्न होता है।

इसी संदर्भ में छत्तीसगढ़ी भाषा के साहित्याकार लखनलाल गुप्त द्वारा रचित 'चंदा अमरित बरसाइस' आंचलिक उपन्यास उल्लेखनीय है। इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1965 में हुआ था। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने छत्तीसगढ़ अंचल के जनजीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। इतना ही नहीं यह उपन्यास जनपद के जीवन का एक प्रामाणिक दस्तावेज है।

भौगोलिक परिवेश के अंतर्गत उपन्यासकार ने इस अंचल के प्राकृतिक दृश्यों तथा पर्वतों में बिखरे सौंदर्य का जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। यथा–'चारो डहर वोहर पहाड़ी ले अइसे घिरे हवय जाना कोनो वोला पहाड़ी ला गूंथ के माला पहिरा दिये होय।'(1/19) प्रकृति का उद्दीपन रूप, मानवीकरण आदि भी भू-खंड और लोकजीवन की अभिव्यक्ति के साथ जुड़कर मुखरित हुआ। रतनपुर स्थान की रमणियता चित्रित करते हुए तालाबों का चित्रण किया है जहाँ अनेक घाट बने हुए हैं। तलाब के चारों ओर फूलों से परिपूर्ण पौधों की सुंदरता का मनमोहक दृश्य इस प्रकार

है–'बस्ती के चारों खूँट ताल-तरैया फैइले हैं...जाना माला मा हीरा मोती जड़ दिये होय।...रंग बिरंग के फूल ला देख के वोखर सुवास ले मन अउ परान दूनों जुड़ा जाथे।'(1/19)

छत्तीसगढ़ प्रदेश को 'धान का कटोरा' कहा जाता है यहाँ का मुख्य उपज धान है। प्रदेश का अधिकांश जनसमुदाय कृषि कार्य करते हैं। प्रदेश की खुशहाली में इनका अमूल्य योगदान है। इस उपन्यास में लेखक ने मुरारी के माध्यम से इसे मूर्तरूप में चित्रित किया है। मुरारी को अपनी कठिन परिश्रम पर विश्वास है, तभी वह सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त होते तक वह अपने खेतों में कार्य करता है–'कइसे मुरारी अउ कतके बेरा आवत कमाबे! दिन घलो तो बूड़ गै।'(1/62) अंचल के किसान ईश्वर पर अगाध श्रद्धा व धरती माता के प्रति अटूट विश्वास रखते हैं–

भारत के जमों किसान भाई, खेत में अड़बड़ अन्न उपजावा।
भारत के फौज सिपाही खतिर, माटी मं सोना उपजावा। (1/65)

आंचलिक वेशभूषा किसी भी देश, प्रदेश व क्षेत्र की पहचान होती है। छत्तीसगढ़ी नारियाँ शृंगारप्रिय हैं। इसे जीवन का अंग और प्रतिष्ठा रंग मानती हैं। उपन्यासकार ने स्थानीय आभूषणों का वर्णन किया है–'कोनो बॉह मं बहुटी पहिने हे तो कोनों दुन्नो नाक मं फुल्ली, कोनो गोड़ मं तोड़ा। तो कोनो गर में गरसुली अउ पुतरी।'(1/41) आभूषणों के धारण करने से जो सुंदर रूप दिखाई दे रही है, उसको इस पंक्ति के माध्यम से प्रदर्शित किया है–'कांन मं पहिने ढार अउ झुमका तो अइसन लागत हे के खेत के सोनहा बाली लटकत होय।'(1/19) इस क्षेत्र में रतनपुरीया अँगूठी प्रसिद्ध है–'रतनपुरिहा मुंदरी के मै का बखान करौं अइसन सुघ्घर वो लागथय के के जाना खोखमा के फूल फूले होय।'(1/19) उपन्यासकार ने अंचल की वेशभूषा का भी चित्रण सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है–' रंग-रंग के कपड़ा ओढ़ना पहिने...लइका बाला दिखत हे। उनकर सिंगार घलो देखे लाइक हय।'(1/20)

संस्कृति मानव समाज के जीवन की सबसे बड़ी वास्ताविकता है। भारतीय संस्कृति में रीति-परंपराओं का एक नियम या विधान बना हुआ है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति इस नियमों का अनुसरण करता है। इन प्रथाओं में सामाजिक संस्कारों तथा धार्मिक रूप प्रचलित हैं। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने संस्कृति का सुंदर चित्रण किया है और अंचल की लोकगीतों को उपन्यास में स्थान दिया हैं। अंचल में विवाह संस्कार के समय विविध रस्मों का निर्वाह किया जाता है, जैसे– लगिन, चुलमाटी, हल्दी चढ़ाना, बारात स्वागत, मंडप पूजा, विदाई आदि। इन सभी रम्मों के समय लोकगीत का गायन किया जाता है। मंडप पूजा के समय के समय गाये जानेवाले लोकगीत हैं–

हरियर बॉस के मड़वा छवायेब
गजमोतियन चउंक पुरायेव।(1/34)

इसी तरह से विवाह के समय हल्दी का लेप लगाने पर अंचल में गाये जानेवाले गीत उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है–

कोन तोर दुलरू हो हरदी मलोवयं, कोन तोर खरिचय दाम।
बाबा हो हमरे हरदी मलोवयं, भइया हमारे खरिचंय दाम।(1/37)

बारात स्वागत का एक अन्य लोक दृश्य प्रस्तुत है–

सुपरिया टोरन-बर गए हो जसोदा बहू,
घपटी लिये अँधियारे। के हो झूल-घपटी लिये अँधियारे।(1/37)

त्यौहार-पर्व के अंतर्गत छत्तीसगढ़ी में मनाए जानेवाला हरेली त्यौहार इस अंचल का प्रमुख पर्व है। जिसका चित्रण उपन्यासकार ने बड़े सुंदर रूप से किया है–'राम पहाड़ी मं जाके चारो डहर देखव तो अइसे लगथे के जाना धरती माता हरियर लुगरा पहिर लिये है।'(1/81) छत्तीसगढ़ की संस्कृति में राउत नाचा का विशेष महत्त्व है, इसकी लोकप्रियता इतनी अधिक है कि उपन्यासकार ने भी इसको अपने उपन्यास में स्थान दिया है–

मालिक जोहारे आयेंन, पायेंन सुपारी कोर।
मलिक बइठे रंग-महल मं, राम-राम लय मोर। (1/111)

उपन्यासकार ने अंचल के आदर्श, लोकविश्वास, धर्म, पर्व, लोकनुष्ठान में जातीय विभेद से परे प्राचीन प्रणाली और जीवन मूल्यों को स्थपित किया है। ग्रामीण समाज में परिवार के मध्य विचारों में समानता दिखाई देती है। परिवार प्रेम की अटूट डोर से बँधा हुआ होता है तथा आंतरिक भेद वहाँ बहुत कम होते हैं। जीवन में सुख-समृद्धि, संपन्नता पति-पत्नी के पारस्परिक सहयोग से भरे दांपत्य जीवन का चित्रण मुरारी की अर्धांगिनी लीला के माध्यम से अभिव्यक्त किया है–'मय एक ठिन गोठ कहत हौ बंसी...आज जउन रूपिया तहर भइया ला ईनाम मिले हय।...दाई के मन हवय के ओखर खेत खरीदे जाय ओ खेत के नाव बन्सीहा खेत रखी।'(1/75) लीला अपने देवर बंसी को सभी मुसीबत से बचाने के लिए निरंतर प्रयत्न करती है। यथा–'जावा झट के तूहार दाई झन सुने पावंय नई तो दुख करही...थाना ले दू घंटा में लहुटिस।'(1/85) केवल मुरारी और लीला ही थे जो बंसी का साथ सभी परिस्थितियों में देते हैं। बंसी को कुपथ पर जाने से रोकने के लिए निरंतर प्रयास करते हैं। वर्तमान समय में संबंधों के बीच पारस्परिक प्रेम और अपनेपन का अभाव पाया जाता है। भाई-भाई में लड़ाई होती है परंतु मुरारी व लीला बंसी पर पुत्रवत स्नेह प्रदान करते हैं और उसके बिगड़ते हुए घर को फिर से सँवारते हैं। इस संदर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है–'भौजी तुहार सरीख संतवतीन अउ मोर सरीख पापी दुष्ट सायदे कोनो हो हंय।'(1/85) समाज उन्नति की पराकाष्ठा में पहुँचने के बाद भी रूढ़िवादिता और अंधविश्वास आज भी हमारे समाज में व्याप्त है–'ओखर बड़े-बड़े छटकट आँखी के कारन पहिली ले लोगन ओला टोनही हवय कहिके बदनाम करतेच्च रहय।'(1/101) मुरारी व लीला बंसी का विवाह एक गुणवती कन्या बीना से करती है और एक अच्छा जीवन जीने का सलाह देती है–लीला कहिस बाबू! रूपिया तो तुम्हार भइया देबेच्च करहीं हमन सलाह कर डारे हन हमार पुस्तैनी जमीन ये। फेर नांव तुहरे रहही।'(1/110)

स्थानीय शासन-व्यवस्था में ग्राम पंचायत की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, जिसके स्वरूप में समय के साथ बदलाव भी देखने को मिलता है लेकिन निसंदेह ग्रामीण विकास में इसका अहम योगदान रहा है। इसी महत्त्व को उपन्यासकार ने सरपंच दयाराम के माध्यम से चित्रित किया है–'ग्राम पंचायत सभा के सरपंच दयाराम घलो गरनही खेत के धान ला देखे खातिर पहुंचिस।'(1/71) गाँव में किसी भी वाद-विवाद के विषय पर न्यायिक विचार-विमर्श सरपंच व पंचों के माध्यम से होता है–'मंय फर सब पंचन से माफी माँगत हौ। आप मन जउन फैसला देहा मोला सिरोधार हे, काहे के पंच परमेश्वर होथंय।'(1/88) पंचायत में जहाँ तक हो सके आपस में समझौता करने का प्रयास किया जाता है–'सरपंच के फैसला सब पंचमन दुहराईन अउ हामी भारिन फेर पंचायती उठ गय।'(1/89)

आंचलिक उपन्यास को लोकप्रिय एवं प्रभावी होने के लिए उसकी भाषा सरल, प्रांजल, भावों की अभिव्यंजना पूर्णतया समर्थ बोधगम्य होनी चाहिए। शैली जितनी ही मनोरम सुरुचिपूर्ण एवं आकर्षक होगी उपन्यास उतना ही प्रभावी होगा। भाषा को सहज, सरल बनाए रखने के लिए उपन्यासकार ने कहीं-कहीं अंलकार, लोकोक्ति तथा मुहावरों का प्रयोग किया है। यह प्रयोग इतने सहज ढंग से किया है कि लेखक की भाषा का एक अंग बन गया है–

संरग मं चंदा मुसकाथय।
के जब घर क चंदा गाथय।(1/20)

उपन्यास की भाषा भावानुकूल है। भाषा का सुंदर सामंजस्य दिखाई देता है–'भगवान कि भजन करी। वही परभू बनाहय अउ पानी बरसा के गरीब किसानन के रच्छा करही।'(1/65) लेखक की शैली में पर्याप्त विविधता है। अंचल विशेष की स्थानीय रंग को उतारने के लिए उपन्यासकार ने जिन लोकतत्त्वों का प्रयोग किया है, उसमें लोकभाषा की बोलियों और उपबोलियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है–'हवन के साथे-साथ चढ़ोतरी घलो चढ़िहय।'(1/41)

यहाँ लोकभाषा की जीवतंता दिखाई देती है। गुप्तजी ने स्थानीय भाषा को सहज एवं सरल रूप में प्रस्तुत किया है। छत्तीसगढ़ी बोली की मिठास की झाँकी इस कृति में देखने को मिलती है। आंचलिक उपन्यास में अंचल का समग्र जीवन ही है, इसलिए इसमें न कोई पात्र नायक होता है और न कोई खलनायक। पात्रों की संख्या अधिक होती है तथा विभिन्न पात्रों की अलग-अलग चरित्रगत विशेषताएँ मिलकर अंचल के सामूहिक चित्र को प्रदर्शित करती हैं।

निष्कर्षत: उपन्यास के माध्यम से लखनलाल गुप्त छत्तीसगढ़ प्रदेश के जनजीवन का एक प्रमाणिक और सजीव चित्र खींचने में सफल रहे हैं। उन्होंने इसमें एक किसान का जीवन उसके पूरे परिवेश के साथ अंकित किया है, किसान जीवन के विविध चित्रों के माध्यम से उन्होंने कथा का संघटन किया है। कथा का प्रारंभ और अंत सुखांत दोनों बड़े मनोमय बन पड़े हैं। यह आंचलिक उपन्यास छत्तीसगढ़ी बोली की मिठास, पात्र कथोपकथन आदि सभी दृष्टियों से सफल है।

संदर्भ

1. लखनलाल गुप्त, चंदा अमरित बरसाइस, छत्तीसगढ़ी भाषा साहित्य, रायपुर, 2001
2. डॉ॰ कृष्णा चटर्जी, छत्तीसगढ़ के प्रकाशित आंचलिक उपन्यासों का अनुशीलन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृ॰ 21
3. ज्ञानचंद गुप्त, आंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प, पृ॰ 15
4. गंगाप्रसाद गुप्त, छत्तीसगढ़ी का साहित्य इतिहास, वैभव प्रकाशन, रायपुर, 2005

हिंदी गजल में प्रकृति और प्रेम

डॉ॰ जियाउर रहमान जाफरी

हिंदी में गजल की परंपरा चाहे जहाँ से शुरू हुई हो, प्रेम उसके रगों में मौजूद रहा है। असल में गजल एक प्रेमकाव्य है। गजल का अर्थ अगर स्त्रियों से बातें करना है, तो यह स्त्री वो महबूबा है, जिससे शायर मोहब्बत की बातें करता है। इसलिए हिंदी-उर्दू दोनों गजलों में प्रेम शिद्दत के साथ मौजूद रहा है। यह अलग बात है कि धीरे-धीरे गजल ने अन्य सामाजिक मुद्दों को भी अपने में समाहित कर लिया। लेकिन तब भी प्रेम अपनी जगह महफूज रहा है। गजल वो विधा है जो इशारों से बातें करती है लेकिन यह संकेत इतने दुरूह नहीं होते कि समझ में न आएँ। यहाँ जो प्रकृति है, वो भी खुले रूप में शायर का साथ निभाती है। जब कवि या शायर खुश होता है, प्रकृति हँसने लगती है और उसके उदास होते ही प्रकृति की आँखें शबनम की बूँदों की तरह भीग जाती हैं। यह प्रकृति सचमुच मानव की सहचरी है। मानव सभ्यता का विकास इसी प्रकृति की गोद में हुआ। इसे ही शकुंतला अपनी सखियाँ मानती थी और यक्ष इसी के माध्यम से अपनी तकलीफें प्रिया तक पहुँचा देते थे।

हिंदी साहित्य में प्रकृति वर्णन की अनेक शैलियाँ प्रचलित हैं, जैसे आलंबन रूप में, उद्दीपन रूप में, प्रतीकात्मक रूप में, अलंकार विद्यान के रूप में, पृष्ठभूमि के रूप में, बिंब-प्रतिबिंब रूप में, दूती रूप में, उपदेशिका रूप में, रहस्यात्मक रूप में, या संवेदना के रूप में। हिंदी गजल में भी प्रकृति कभी उद्दीपन के रूप में हमारे सामने आती है, तो कभी अलंबन के रूप में। प्रेम से गजल के तो पैदाइशी रिश्ते रहे हैं। जैसा कि कभी गालिब ने भी कहा था–

हर चंद हो मुशाहदए-हक की गुफतगू
बनती नहीं है बादओ सागर कहे बगैर।

रतिलाल शाहीन ने भी अपने आलेख में लिखा है–हिंदी मे अमीर खुसरो, कबीर, बहादुरशाह जफर, भारतेंदु, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', गयाप्रसाद शुक्ल स्नेही, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के अलावा शमशेर बहादुरसिंह ने भी गजलें लिखी हैं। मगर उनका कथ्य प्रेम,श्रृंगार के इर्द-गिर्द ही रहा है।[1] यह अलग बात है कि दुष्यंत ने गजलों को आम लोगों की तकलीफों से जोड़ने की चेष्टा की, और उसमें वो कामयाब भी हुए, लेकिन उनकी गजलों में भी प्रेम के तत्त्व मौजूद हैं–

अगर खुदा न करे सच से ख्वाब हो जाए
मेरी सुबह हो तेरा आफताब हो जाए
तुमको पुकारता हूँ सुबह से ऋतंबरा
अब शाम हो गई है मगर दिल नहीं भरा।

लालसा लाल तरंग की बातों में सच्चाई भी है कि हिंदी गजल आधुनिक संबंध से जोड़कर रूमानियत की आदिम गुफाओं से खींचकर आम आदमी के निकट पहुँचाने का सुदृढ़ एवं पावन कार्य दुष्यंतकुमार ने किया।[2]

गजल एक तरीके का काव्य है। वो चाहे प्रेम का शेर हो, या उसमें कोई अन्य समस्याएँ उठाई गई हों, अगर वो पाठकों को प्रभावित नहीं करतीं तो वो काव्य की कोई विधा हो कम-से-कम गजल तो नहीं होगी। रामप्रसाद शर्मा महर्षि इसे स्वीकारते हुए कहते हैं कि 'सबसे विशेष गुण जो शेरों में होना चाहिए वह है अद्‌भुत वर्णन शैली।'[3]

गजल लेखन की कला वास्तव में उपयाओं प्रतीकों और संकेतों की कला है। उर्दू में गजल जब लोकप्रिय हुई तो धीरे-धीरे अन्य भाषाओं ने भी उसे अपनाया भारत में गजल सर्वप्रथम दक्षिण के कवियों ने शुरू की। राजधानी दिल्ली के आसपास उस समय जो गजल लिखी जा रही थी, उसमें लगभग सभी फारसी भाषा के प्रतीक और उपमाओं-शमां, परवाना, लैला, मजनूं, गुल-बुलबुल आदि का इस्तेमाल हो रहा था। फिर भी गजल अपनी शैली के कारण लोकप्रिय होती चली गई। इसके एक शेर में एक मुकम्मल बात कह देना लोगों को पसंद आने लगा। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ने भी गजल पर विचार करते हुए इस बात की तस्दीक की है कि बड़ी से बड़ी बात को कम शब्दों में कहना गजल की पहली विशेषता होनी चाहिए।[4]

इसी बात को डॉ॰ नरेश और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि किसी भी शेर को अर्थ तक पहुँचाने के लिए उसके आगे या पीछे के शेर की सहायता अपेक्षित नहीं है।[5]

सुविधा के लिए हिंदी गजल में प्रकृति और प्रेम का निरूपण हम इस प्रकार भी कर सकते हैं-

प्रारंभिक युग की गजलों में प्रकृति और प्रेम

हिंदी गजल का आरंभ अमीर खुसरो से माना जाता है। उनकी हिंदी में लिखी गई ये गजल 'जो हाले मिस्की मकुन तगाफुल दुराए नैना बनाए बतियाँ' काफी प्रसिद्ध है, जिसमें प्रेम और प्रकृति का सुंदर निरूपण किया गया है। उनके बाद कबीर की कुछ गजलों को भी रेखांकित किया जाता है। कबीर की ये गजल हिंदी जगत में काफी प्रसिद्ध है–

हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या
रहे आजाद इस जग में, हमन दुनिया को यारी क्या।

भारतेंदुयुग की गजलों में प्रेम और प्रकृति

भारतेंदु ने प्राय: हिंदी गद्य और पद्य की तमाम विद्याओं को अपनाया। उन्होंने रसा उपनाम से गजलें भी लिखीं। ज्ञानप्रकाश विवेक ने उनकी गजलों का अध्ययन करते हुए लिखा है कि भारतेंदु की गजलें बेशक प्रेमपरक हैं। उनके शेरों में शेरीयत, लोच और नाद सौंदर्य उत्तम है। उदाहरण के लिए भारतेंदु के ये शेर देखें जा सकते हैं–

दिल मेरा ले गया दगा करके
बेवफा हो गया वफा करके।

हाव-भाव के निरूपण में बिहारी अपने दोहे में बेजोड़ हैं। भारतेंदु में यही बिहारी वाली नफासत पाई जाती है। उनके एक शेर में प्रेम के साथ प्रकृति भी साकार हो गई है–

अजब जोबन है गुल पर आमदे फसले बहारी है
शिताब आ साकिया गुलरू की तेरी यादगारी है।

भारतेंदु के समकालीन गोपाललाल गुल की गजलों का संग्रह गुलबहार नाम से प्रकाशित है, जिनकी अधिकांश गजलें प्रकृति और प्रेम पर हैं। देखें एक शेर–

इश्क की मंजिल कड़ी है नाम सुन काँपे हैं लोग
इसलिए उसकी गुबाँ पर फिक्र लाना है बुरा।

भारतेंदुयुग में गजल की दृष्टि से बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन का नाम अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। शुक्ल ने कहा था कि प्रेमधन के पास कवि हृदय था। प्रेमधन ने अपने समय में प्रचलित हर महत्त्वपूर्ण विषय को अपनी कविता का उपजीव्य बनाया है, जिसमें प्रेम और प्रकृति की मौजूदगी भी रही है। उनका एक शेर है–

अपने आशिक पर सितमगर रहम करना चाहिए
देखकर एकबारगी उससे न फिरना चाहिए।

द्विवेदीयुग में प्रकृति और प्रेम का रूपः द्विवेदीयुग हिंदी भाषा और हिंदी सहित्य की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण है। इस काल ने हिंदी साहित्य को गंभीर निबंधकार, समालोचक तो दिए ही भाषा की दृष्टि से भी हिंदी समृद्ध बनी। द्विवेदी कृत सरस्वती पत्रिका ने काव्य की अन्य विधाओं के साथ गजल को भी स्थान प्रदान किया। इस समय के लाला भगवानदीन, और गयाप्रसाद शुक्ल सनेही महत्त्वपूर्ण गजलकार साबित हुए। लाला भगवानदीन हिंदी-उूर्द और ब्रजभाषा तीनों में पाबंदी से लिखते थे। उनकी गजलों के बारे में डॉ॰ इंद्रनारायण सिंह ने लिखा है–'दीन जी की हिंदी गजलों में देश की स्थिति, पारिवारिक और सामाजिक संबंध के साथ प्रेम और सौंदर्य की भावनाओं की भी अभिव्यक्ति हुई है।'[7] दीन का ये मशहूर शेर तो सबकी जुबान पर है–

तूने पाँवों में लगाई मेहँदी
मेरी आँखों में समाई मेहँदी।

इस समय के हिंदी गजलकारों में सनेही जी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। आप त्रिशूल नाम से भी गजलें लिखते थे। इसी दौर में पं॰ रामनरेश त्रिपाठी, और सत्यनारायण कविरत्न की भी गजलें पढ़ने को मिलती हैं।

छायावाद में गजल और प्रकृति का वर्णन

डॉ॰ सरदार मुजावर के अनुसार–'हिंदी की छायावादी गजलों का विषयगत परिप्रेक्ष्य विविधतापूर्ण रहा है। ये विविधताएँ छायावादी गजल को एक विशिष्टता प्रदान करती है।'[8]

छायावादी कवि निराला ने अपनी गजलों में प्रेम औरश्रृंगार को एक प्रमुख विषय के रूप में चुना है। उनके कुछ शेर देखे जा सकते हैं–

तुम्हें देखा तुम्हारे स्नेह के नयन देखे
देखी सलिला नलिनी के सलिल शयन देखे।[9]

भेद कुल खुल जाए वो सूरत हमारे दिल में है
देश को मिल जाए वो पूँजी तुम्हारे मिल में है।[10]

ठीक उसी प्रकार जयशंकर प्रसाद ने भी संध्यारूपी युवती के माध्यम से प्रकृति के उद्दीपन के साथ प्रणय भाव की व्यंजना की है–

अस्ताचल पर युवती संध्या की खुली अलक घुँघराली है
लो मणिक मदिरा की धारा अब बहने लगी निराली है।

अपने एक अन्य शेर में प्रसाद ईश्वर से प्रेम-रस का प्याला पिलाने का आग्रह करते हैं–

अपने असु प्रेम अरस अका प्याला पिला दो मोहन
तेरे को अपने को हम जिसमें भुला दे मोहन।[11]

शमशेर और दुष्यंत की गजलों में प्रेम और प्रकृति का रूप

शमशेर बहादुरसिंह (1911.1993) हिंदी के ऐसे शायर हैं, जिन्होंने उर्दू गजल का बारीकी से अध्ययन किया है इसलिए उनकी गजलों में उर्दू बाला लबो लहजा पाया जाता है। जैसा कि डॉ॰ विश्वनाथ त्रिपाठी ने भी कहा है–'शमशेर उर्दू में बाजाब्ता गजल कहते थे...शमशेर जब उर्दू में रचना करते हैं तब अधूरा वाक्य नहीं लिखते।[12]

शमशेर की शायरी को ज्ञानप्रकाश विवेक ने तलाश की शायरी माना है। उनमें एक बेचैनी है, यह बेचैनी अपने लिए भी है, और समाज के लिए भी इस संदर्भ में शमशेर के कुछ शेर देखे जा सकते हैं–

वही उम्र का एक पल कोई लाए
तड़पती हुई सी गजल कोई लाए
फिर निगाहों ने तेरे दिल में कहीं चुटकी ली
फिर मेरे दर्द ने पैमान वफा का बाँधा
दिल जिनमें ढूँढता था कभी अपनी दास्तां
वो सुर्खियाँ कहाँ हैं मोहब्बत के बाब में।

हिंदी गजल सम्राट दुष्यंत ने अपना साहित्यिक जीवन बारह वर्ष की अवस्था में ही प्रारंभ कर दिया था। उनकी लेखनी की शुरुआत नई कविता के एक बेहद संभावनाशील कवि के रूप में हुई थी। फिर दुष्यंत जब गजल लिखने लगे तो मानो उनकी कविता, कहानीकार और नवगीत का रूप दबकर रह गया। फिर एक समय में तो हिंदी गजल का मतलब ही दुष्यंत समझा जाने लगा। दुष्यंत की गजलों में जहाँ आम आदमी की विवशता, संघर्ष, घुटन, कुंठा, क्रांति तथा बेचैनी का रूप है। वहीं प्रेम और प्रकृति का खुशरंग भी पूरी शिद्दत के साथ मौजूद है कुछ शेर मुलाहिजा हों–

हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
तेरी सी गजल तेरे से काफिए कहाँ
एक अधूरा मतला गुनगुनाएँ हम
रह-रह आंखों में चुभती है पथ की निर्जन दोपहरी
आगे और बढ़ें तो शायद दृष्य सुहाने आएँगे।[13]
चाँदनी छत पे चल रही होगी
अब अकेली टहल रही होगी।

दुष्यंत के संबंध में डॉ॰ विनीता गुप्ता लिखती हैं, 'दुष्यंत की गजलों में जहाँ प्रेम की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। वहाँ उसका उदात्त भावनात्मक पक्ष उभरकर सामने आता है।'[14]

समकालीन हिंदी गजलकारों में प्रेम और प्रकृति का अंकन

हिंदी का मौजूदा वक्त गजल के लिहाज से अपने स्वर्णिमकाल में है। हिंदी कविता की साहित्यिक विद्या के रूप में गजल ने अब पूरी पहचान बना ली है। आज की हिंदी गजल जीवन के विविध पक्षों का चित्रण करती है। जनसामान्य के संघर्ष, उसकी पीड़ा, घात-प्रतिघात को हिंदी

गजल ने मजबूती के साथ उठाया है। समकालीन हिंदी गजलों में जो प्रेम का रूप है उसमें पूरी नफासत और नजाकत है। वास्तव में प्रेम एक शाश्वत सत्य है, और प्रकृति उसकी सहचरी है, जो उसके हर दुख-सुख में शामिल रहती है। इस संदर्भ में समकालीन हिंदी गजलकारों के कुछ शेर देखे जा सकते हैं–

चाँद देखा था भँवर से उगता हुआ
तेरा चेहरा न था मुझको धोखा हुआ।

–गिरिराजशरण अग्रवाल

पास आकर हमें दूर जाना पड़ा
प्यार में ये चलन भी निभाना पड़ा।

–उर्मिलेश

दो दिलों के बीच में दीवार सा अंतर न फेंक
गीत गाती बुलबुलों पर इस तरह पत्थर न फेंक।

–कुँअर बेचैन

किस्से नहीं हैं ये किसी राँझे की हीर के
ये शेर हैं अँधेरे से लड़ते जहीर के।

–जहीर कुरेशी

हम तेरे प्यार में ऐ यार वहाँ तक पहुँचे
जहाँ ये भूल गए हम कि कहाँ तक पहुँचे।

–नीरज

आज उसकी मेज पे गुलदान है
ये चमन जिनके लिए दूकान है।

–शिवओम अंबर

हथेली पर रखी है क्यों निगाहों में नहीं आती
ये कैसी जिंदगी है जो ख्यालों में नहीं आती।[15]

–विनय मिश्र

झुलसती धूप थकते पांव मीलों तक नहीं पानी
बताओ तो अवहां धोऊँ की ये परेशानी।[16]

–हरेराम समीप

हो गया गुम मेरी वफा लेकर
कल मिला था कोई अदा लेकर।[17]

–वर्षासिंह

गिरिराजशरण अग्रवाल हिंदी के समृद्ध गजलकार हैं। 'सन्नाटे में गूँज' उनकी गजल की चर्चित कृति है। प्रेम और प्रकृति का रंग उनकी गजलों में भी है। उनके एक-दो शेर मुलाहिजा हों–

इस वसंती रुत जरूरी है हर इक पतझड़ के बाद
फूल क्यों खिलते हैं फसलों पर घटा छाती है क्यों।

–गिरिराजशरण अग्रवाल

हर नया मौसम नई संभावना ले आएगा
जो भी झोंका आएगा ताजा हवा ले आएगा।

–गिरिराजशरण अग्रवाल

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज की हिंदी गजल वास्तविक जीवन से संबंधित है। इसलिए उसमें प्रेम और प्रकृति भी इसी लोक की भूमि है। यहाँ जो स्त्री है वो कोई परी नहीं है वह घर-बार देखती है, काम-काज करती है, जीवन के लिए संघर्ष करती है और उसी हल्दी वाले हाथों से प्रेम की खुशबू भी महसूस करती है। प्रेम की इसी संरचना, कथ्य और रूप के बारे में अनिरूद्ध सिन्हा कहते हैं–'परिस्थितियों से विक्षुब्ध रहने के बाद भी गजल अपनी मनोहारिणी वृत्तियों और नवरस मादकता से लबालब है।[18]

कहना न होगा कि गजल तमाम विषयों को अपने अंदर समेटते हुए भी अपनी प्रणय-भावना से खुद को विमुक्त नहीं करती।

संदर्भ

1. आरोह-गजल अंक, पृ॰ 28
2. नवोदित स्वर अंक-02, वर्ष 1985
3. गजल और गजल की तकनीक, रामप्रसाद शर्मा महिर्ष, जवाहर पब्लिशर्स, 2009, पृ॰ 27
4. हिंदी की सर्वश्रेष्ठ गजलें, गिरिराजशरण अग्रवाल, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 1982, पृ॰ 07
5. हिंदी गजल : दशा और दिशा, डॉ॰ नरेश, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2004
6. हिंदी गजल की विकास यात्रा, ज्ञानप्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, 2006, पृ॰ 46
7. हिंदी गजल : शिल्प एवं कला, डॉ॰ इंद्रनारायण सिंह, रोहतास हिंदी साहित्य सम्मेलन, सासाराम, 2007, पृ॰ 67
8. हिंदी की छायावादी गजल, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, 2007, पृ॰ 15
9. बेला, निराला, पृ॰ 36
10. वही, पृ॰ 75
11. कानन कुसुम, प्रसाद, पृ॰ 84,85
12. आजकल शमशेर अंक, सितंबर, 1993, पृ॰ 5
13. साये में धूप, दुष्यंतकुमार, पृ॰ 35
14. हिंदी गजल की विकास-यात्रा, विनीता गुप्ता, मनीषा प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ॰ 151
15. सच और है, विनय मिश्र, मेधा बुक्स, पृ॰ 110
16. अलाव गजल अंक, मई अगस्त 2015 पृ॰ 455
17. गजल दुष्यंत के बाद, दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
18. हिंदी गजल का सौंदर्यात्मक विश्लेषण, अनिरुद्ध सिन्हा, जवाहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2009

उच्च विद्यालय माफी 2 **वाया आस्थावां**
जिला नालंदा, बिहार 803107
मो॰ 9934847941
zeurrhamanjafri786@gmail.com

ISSN 0975-735X

कथाकार शिवप्रसाद सिंह एवं उनके जीवन आदर्श

दुर्गाप्रसाद पटेल, शोधार्थी
हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

शिवप्रसाद सिंह की पहचान श्रेष्ठ ग्रामीण परिवेश के कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में होती है। इन्होंने कुल आठ उपन्यासों (अलग-अलग वैतरणी, गली आगे मुड़ती है, नीला चाँद, शैलूष, मंजुशिमा, औरत, दिल्ली दूर है, वैश्वानर) और आठ कहानी-संग्रहों में (आर-पार की माला, कर्मनाशा की हार, इन्हें भी इंतजार है, मुरदा सराय, अँधेरा हँसता है, भेड़िए, मेरी प्रिय कहानियाँ, सुनो परीक्षित सुनो।) लगभग 85 कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। इनके संपूर्ण साहित्य में ग्रामीण परिवेश की महक आती है। हिंदी में प्रेमचंद ग्रामीण जीवन के बड़े रचनाकार माने जाते हैं। इनके पश्चात ग्रामीण जीवन पर हिंदी साहित्य में रचनाक्रम कुछ ठहरा हुआ प्रतीत होता है। हिंदी साहित्य में ग्रामीण जीवन को लेकर पुन: रक्त का संचार करने का कार्य शिवप्रसाद सिंह करते हैं।

प्रख्यात कथाकार डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह का जन्म 19 अगस्त 1928 ई॰ को वाराणसी जिले के जलालपुर (जमनिया) ग्राम के मध्यवर्गीय कृषक परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री चंद्रिकाप्रसाद सिंह एवं माता का नाम श्रीमती कुमारी देवी था। शिवप्रसाद सिंह जमींदार परिवार से ताल्लुक रखते थे फिर भी आर्थिक दृष्टि से इनके परिवार का बुरा हाल था, जिसका कारण परिवारिक सदस्यों का आपसी मनमुटाव था। खेती-बाड़ी भी कोई नहीं करना चाहता था, दिन-भर घर में बैठकर समय व्यतीत करने की आदत-सी लग गई थी। अधिकांश लोग ऐय्याशी के आदी हो गए थे। धीरे-धीरे परिवार पतन के रास्ते पर अग्रसर होता गया, जिससे शिवप्रसाद सिंह की पढ़ाई में बाधा आना लाजिमी था।

शिवप्रसाद सिंह की शिक्षा का प्रारंभ जलालपुर पोस्ट जमनियां जिला गाजीपुर की प्राइमरी पाठशाला से हुआ। छठी कक्षा के लिए जमनियां के मिडिल स्कूल में प्रवेश लिया, पर आर्थिक विपन्नता के कारण स्कूल छोडना पड़ा। कुछ समय बाद 'मिडिल स्कूल बरहनी' में प्रवेश लिया और उत्तीर्ण हुए। शिवप्रसाद की अध्ययन में विशेष रुचि रही, परिणामस्वरूप उन्होंने हाईस्कूल एवं इंटरमीडिएट की परीक्षा प्रथम श्रेणी में विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण की। तत्पश्चात काशी हिंदू विश्वविद्यालय से बी॰ए॰ द्वितीय श्रेणी में पास किया और विश्वविद्यालय की योग्यता क्रम सूची में पाँचवाँ स्थान प्राप्त किया। 'होनहार विरवान के होत चिकने पात' वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए एम॰ए॰ की परीक्षा प्रथम श्रेणी एवं योग्यता क्रम में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

शिवप्रसाद सिंह एम॰ए॰ की परीक्षा के दौरान एक लघु शोधप्रबंध लिखा, जिसका शीर्षक 'कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा' था। जिसमे उन्होंने कीर्तिलता की भाषा का विश्लेषण करके उसका परवर्ती अपभ्रंश के क्षेत्र में महत्त्व सिद्ध किया है। जिसको साहित्य जगत में खूब सराहना मिली। इसके पश्चात शिवप्रसाद सिंह ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निर्देशन में शोधकार्य प्रारंभ किया। इनके शोध का विषय था–'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका

साहित्य'। इस शोधकार्य में उन्होंने बड़ी ईमानदारी एवं लगन के साथ राजस्थान के विभिन्न स्थानों से हस्तलिखित सामग्री प्राप्त की। ये सामग्री टुकड़ों-टुकड़ों में बिखरी पड़ी थी, जिसकी शृंखला को क्रमबद्ध तरीके से जोड़ने का कार्य शिवप्रसाद सिंह ने बड़ी सूझबूझ के साथ किया है।

अरविंद, हजारीप्रसाद दिवेदी, शरदचंद्र, राममनोहर लोहिया ऐसे ही व्यक्ति थे जिनसे प्रभावित होकर शिवप्रसाद सिंह के व्यक्तित्व और रचनाक्रम की दिशा बदलती है। शिवप्रसाद सिंह पर शरदचंद्र और हजारीप्रसाद के प्रभाव को रेखांकित करते हुए अरुणेश नीरन लिखते हैं, 'कहानियों की गढ़न और पात्रों की तराश पर शरतचंद्र और हजारीप्रसाद दिवेदी के प्रभाव को आसानी से पकड़ा जा सकता है, लेकिन शिवप्रसाद सिंह की इन कहानियों की शक्ति और प्रभाव क्षमता का रहस्य यही है कि उन्होंने न सिर्फ अछूते क्षेत्रों और पात्रों के लिए ही इन कहानियों की रचना की और न ही दूसरे बड़े लेखकों का प्रभाव, उस पर इतना घनीभूत और आतंककारी है कि उनके स्वतंत्र विकास की संभावनाओं को ही नष्ट कर दे।'[1] शरदचंद्र के रचना के केंद्र में ग्रामीण जीवन और उसकी समस्याएँ रही हैं। उनके अधिकांश उपन्यासों जिनमें पंडितजी, पल्ली समाज अरक्षणीय, ब्राह्मण की बेटी आदि में ग्रामीण संवेदना को देखा जा सकता है, ठीक उसी प्रकार शिवप्रसाद सिंह के साहित्य में भी ऐसी ही ग्रामीण संवेदना देखने को मिलती है। 'गली आगे मुड़ती है', 'शैलूष', 'औरत', 'अलग-अलग वैतरणी' आदि सभी उपन्यास ग्रामीण संवेदना के विभिन्न आयामों को रूपायित करते हैं।

शिवप्रसाद सिंह समय-समय पर अनेक विचारकों से प्रभावित रहे हैं। उनका संपूर्ण साहित्य इस बात की गवाही देता है। उनका झुकाव कभी लेनिन, मार्क्स जैसे क्रांतिकारियों की तरफ दिखाई देता है, तो कभी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, अरविंद की ओर रहा है। वे अरविंद से प्रभावित होकर लिखते हैं, 'अरविंद का दर्शन किसी एक देशकाल की समस्याओं से बँधा हुआ चिंतन तत्त्व नहीं है, वह चिंतन करने वालों और उसे प्रयोग में लाने वालों की आंतरिकता को ही अपने अध्ययन का क्षेत्र मानता है और स्पष्ट रूप से मनुष्य को महत मनुष्य बनने के लिए प्रेरित करता है। भले ही कोई इस प्रयोग में पूर्ण सफल न हो, वह पहले से बेहतर मनुष्य तो अवश्य ही हो जाएगा।'[2] शिवप्रसाद सिंह अरविंद के समान 'सत्य' को जीवन के अनिवार्य अंग के रूप में देखते हैं। इसी सत्य की राह पर चलकर मनुष्य सफलता की पूर्णता को प्राप्त कर सकता है।

शिवप्रसाद सिंह अरविंद-दर्शन को मानवमात्र के लिए श्वाँस की तरह अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण मानते हैं। वे इसे भविष्य के लिए दूरगामी एवं सार्थक परिणाम के रूप में देखते हैं। उनका मानना है कि अरविंद-दर्शन को अपनाकर प्राणी अपने जीवन को सफल बना सकता है। वे लिखते हैं, 'उनके व्यक्तित्व और चिंतन का यह रहस्य सिर्फ बींसवी शताब्दी की मानवता के लिए ही सीमित नहीं है, संभवत: यही एकमात्र चिंतनधारा है जो अपने प्रयोगों का फल सुदूर भविष्य में निहित मानकर नि:स्वार्थ भाव से कार्यरत है।'[3]

शिवप्रसाद सिंह विवेकीराय को दिए गए अपने साक्षात्कार में अरविंद-दर्शन को सभी समस्याओं के समाधान के रूप में स्वीकार करते हैं और उसे राजनीतिक, सांस्कृतिक रूपों के लिए भी महत्त्वपूर्ण मानते हैं। वे बताते हैं, 'अरविंद का जो राजनीतिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक रूप है उसको मैं आज की स्थिति में काफी उपयोगी मानता हूँ। इस दृष्टि से कि उससे इस भ्रष्ट राजनीतिक वातावरण को नई प्रेरणा मिल सकती है। अरविंद किसी हद तक अराजकतावादी हैं, पर

 ISSN 0975-735X

बोहमियन नहीं हैं। उसके साहित्य को पढ़ने से एक आत्मिक अनुशासन की प्राप्ति मुझे हुई है। मैं उसके इस कथन से बहुत प्रभावित हूँ कि बड़े-से-बड़े दार्शनिक की विचारधारा अपने समय की उपज होती है और समय के साथ ही नष्ट हो जाती है।'[4] संक्षेप में कहें तो शिवप्रसाद सिंह पर अरविंद-दर्शन का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। वे अरविंद-दर्शन को मानवमात्र की सफलता के लिए अनिवार्य मानते हैं।

लोहिया आधुनिक भारत के सर्वाधिक प्रिय राजनेता थे, जिनके व्यक्तित्व में राजनीति के साथ-साथ मानवतावादी एवं आध्यात्मिक संस्कृति का समन्वय था। उनके राजनीतिक केंद्र में आदिम जातियों, भूले हुए कबीलों, प्रताड़ित नारी और आज की शूद्र कही जानेवाली अनेक जातियों के लिए प्रतिबद्धता थी। प्रतिज्ञा पतकी शिवप्रसाद सिंह के लोहिया संबंधित विचारों को व्यक्त करते हुई लिखती हैं, 'मैंने लोहिया को ही जीवन में सही माना है तो उन्हीं की बात कहूँगा। मुझे समझने के लिए लोग लोहिया को पढ़ें।'[5] लोहिया की पहचान एक समाजवादी विचारक के रूप में होती है। सामाजिक समानता, बंधुत्व की भावना, अँग्रेजी हटाओ आदि लोहिया के समाजवाद के आधारभूत सिद्धांत रहे हैं। इन्हीं तत्त्वों के आधार पर लोहिया ने समाजवाद की नींव खड़ी की है। लोहिया का स्वप्न सत्ता के विकेंद्रीकरण का था। उनका विचार था कि सामाजिक समानता और न्याय के लिए सत्ता ग्राम, तहसील, जिला और राज्य जैसी चार आधारभूत स्तंभों पर टिकी होनी चाहिए। वे एक नई सभ्यता एवं संस्कृति के द्रष्टा और निर्माता थे। अपनी प्रखरता, मौलिकता एवं व्यापक गुणों के कारण अधिकांश लोगों की समझ से परे थे। इसका कारण यह था कि अधिकांशत: लोगों ने उनके विचारों को गहराई से आत्मसात नहीं किया, अपितु सतही अध्ययन करके उन्हें छोड़ दिया।

शिवप्रसाद सिंह लोहिया से पूरी तरह प्रभावित थे। वे सत्यदेव त्रिपाठी को दिए एक इंटरव्यू में कहते हैं–'लोहियावादी तो क्या मानूँ। मैं उनसे प्रभावित हुआ हूँ। बहुत हुआ हूँ। वैसे लोग कहते हैं मुझे लोहियावादी जैसे 'अलग-अलग वैतरणी' पढ़कर मेरे घनिष्ट मित्र विजयदेव नारायण शाही ने लिखा था कि मैंने अपने चौबीस घंटे 'अलग-अलग वैतरणी को दे दिए। इसलिए नहीं कि तुम भी मेरी तरह लोहियावादी हो बल्कि 'इसलिए कि इस कोटि का उपन्यास हिंदी में लिखा ही नहीं गया।'[6] अलग-अलग वैतरणी में 'जग्गन मिसिर' राम मनोहर लोहिया के प्रतीक के रूप में सामने आते हैं। इस उपन्यास में जमींदार और भूमिहीन वर्ग के बीच संघर्ष की आर्थिक पृष्ठभूमि स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। 'गली आगे मुड़ती है' उपन्यास भी लोहिया के जाति-शोषण, अर्थ-शोषण, भाषा-शोषण की विचारधारा को ही व्यक्त करता है। मंजुशिमा उपन्यास में भाषा के शोषण का उल्लेख मिलता है। इस तरह इनके संपूर्ण साहित्य पर लोहिया के विचारों की छाप दिखाई देती है।

अरविंद, लोहिया, शरतचंद्र की तरह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी शिवप्रसाद सिंह के जीवन आदर्श रहे हैं। द्विवेदी जी मूलत: ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को केंद्र में रखकर लिखना अधिक पसंद करते थे, ठीक उसी प्रकार शिवप्रसाद सिंह का लेखन-क्षेत्र भी समकालीन बोध एवं इतिहास बोध में प्रमुखता से रहा है। इस संबंध में अरुणेश नीरन कहते हैं, 'आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों की कुछ छाया इसमें जरूर दिखाई देती है। डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह उनके शिष्य भी हैं, सांस्कृतिक द्वंद्व और मानवीय चेतना आदि के स्तर पर उसी परंपरा को विकसित करते हैं। आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारुचंद्रलेख',

'अनामदास का पोथा' आदि में भारतीय जीवन में सांस्कृतिक गरिमा की तलाश का अद्भुत आकर्षण दिखाई देता है। कुछ इसी ढंग की खोज या चरित्र नीला चाँद में मिलते हैं। लोकधारा को जो यहाँ स्थान मिला है द्विवेदी जी की संवेदना लोकसंवेदना के साथ खड़ी है। इस उपन्यास में भी ऐसे चरित्र दिखाई दे रहे हैं; पर द्विवेदी जी में इतना फैलाव नहीं है, जितना फैलाव 'नीला चाँद' लेकर चलता है। इसलिए चरित्रों की भरमार है। यहाँ व्यापक रूप से अस्तित्व लेती समाज की तमाम शक्तियाँ गतिमान हैं। मध्ययुगीन काशी, वहाँ के जीवन में समाए पाखंड, अंधविश्वास, घटनाएँ, चरित्र, रूढ़ि, जातिगत संकीर्णता आदि नाना द्वंद्वों का बारीक चित्र खींचा गया है।

शिवप्रसाद की तरह द्विवेदीजी भी स्त्री, हरिजन, शूद्र, किसान आदि के शोषण का खुलकर विरोध किया करते थे। द्विवेदीजी अपने जन्मभूमि की सोंधी महक को हमेशा महसूस किया करते थे। वे गाँव की प्राकृतिक छटा को बखूबी अपनी रचनाओं में स्थान दिया करते थे। द्विवेदी जी का मानना है कि हमें जीवन जीने की प्रेरणा गाँव के लोगों से लेनी चाहिए, जो बड़ी-से-बड़ी विपत्ति में भी अपना धैर्य नहीं खोते और डटकर उसका मुकाबला करते हैं। वहीं शिवप्रसाद को भी गाँव का वातावरण रहन-सहन, रीति-रिवाज बड़ा ही आकर्षित करते हैं जिसे वह छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहते हैं। पर वर्तमान समय में शिवप्रसाद सिंह गाँव की स्थिति पर निराशा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि अब गाँव की स्थिति पहले जैसी नहीं रह गई, लोग एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते रहते हैं। गाँव का दृश्य देखकर मुझे हैरानी होती है कि गलियाँ सिकुड़ गई हैं। गाँव के इर्द-गिर्द जलकुंभी वाली तलैया पटती जा रही हैं। सार्वजनिक भूमि खलिहान को लोग, गाय-बैल बाँधकर, झोपड़ी रखकर कब्जा किए जा रहे हैं।

स्पष्ट है कि द्विवेदीजी की विचारधाराओं से शिवप्रसाद सिंह बहुत कुछ सीखते हुए दिखाई देते हैं। अत: निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि कथाकार शिवप्रसाद सिंह अपने जीवन में शरदचंद्र, अरविंद, लोहिया, आचार्य द्विवेदीजी से विशेष रूप से प्रभावित रहे। जो मनुष्य के जीवन में कुंठा, हताशा, निराशा, एवं दिशाहीनता से लड़ने एवं एक सफल रास्ता तलाशने में रचनाकार को सही दृष्टि प्रदान करता है। शिवप्रसाद सिंह की अधिकांश रचनाओं एवं वैचारिक समानता में इन सबका प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है।

संदर्भ

1. संपादक अरुणेश नीरन, शिवप्रसाद सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1994, पृ॰ 145
2. शिवप्रसाद सिंह, उत्तर योगी, श्री अरविंद, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013, पृ॰ 22
3. वही, पृ॰ 23
4. शिवप्रसाद सिंह, मेरे साक्षात्कार, किताबघर, नई दिल्ली, 1995 पृ॰ 15
5. प्रतिज्ञा पतकी, डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह का कथासाहित्य, शुभी पब्लिकेशन, कानपुर, 2014, पृ॰ 20
6. संपादक प्रेमचंद जैन, बीहड़ पथ के यात्री, सत्यदेव त्रिपाठी, साक्षात्कार : 2, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1996, पृ॰ 377
7. संपादक अरुणेश नीरन, शिवप्रसाद सिंह नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1994, पृ॰ 158

द्वारा पिंकी देवी 1581 **कपड़ाघर वाली गली, दोदपुर,**
निकट सिटी हास्पिटल, अलीगढ़ 202001
मो॰ 07008259073

परशुराम शुक्ल की बालकहानियों में नैतिकता और विज्ञान

मंजुश्री राव, शोधार्थी
डॉ॰ बाबासाहेब अंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय,
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

हिंदी बालसाहित्य में बाल कहानी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बाल-कहानियों का इतिहास बहुत पुराना है। यह बालसाहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। बच्चे छोटे हों या बड़े, कहानी सुनना पसंद करते हैं। विश्व का शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ बाल कहानियों का प्रचलन न हो। हमारे भारत देश में तो कहानी सुनना-सुनाना सबसे ज्यादा पसंद किया जाता है। भारत में कहानियों का इतिहास काफी पुराना है, जिसमें आचार्य विष्णु शर्मा ने 'पंचतंत्र' की रचना की। ये कहानियाँ अत्यंत लोकप्रिय भी हुईं। बाल कहानियों का आरंभिक रूप लोककथाओं का था जिसमें राजा-रानी, राजकुमार-राजकुमारी, राक्षस, दानव, सेवक, पशु-पक्षी आदि को पात्र बनाकर मुख्य रूप से नैतिक मूल्यों को विकसित करने पर बल दिया जाता था। इन कहानियों में नैतिकता के साथ-साथ मनोरंजन भी खूब होता रहा। समय बदलता गया और नई-नई कहानियाँ अपने दौर का प्रतिनिधित्व करती रहीं।

बच्चों से कहानी कहना या उन्हें कहानी बताना एक तरह से उन्हें वे सब बातें बताने के लिए होता है जो हम साधारण बोलचाल की भाषा में नहीं कह पाते हैं। कहानियाँ अत्यंत ही प्रभावशाली होती हैं। कहानियों में शिक्षा, मनोरंजन, नैतिक मूल्यों का विकास, वैज्ञानिक जानकारियाँ जैसी कई बातें होती हैं। इन बाल कहानियों को पढ़ व सुनकर बच्चों का व्यक्तित्व विकसित होता है। इन विषयों या इसी तरह के कई विषयों को लेकर कई साहित्यकारों ने अपनी लेखनी का जादू बिखेरा है।

ऐसे ही बाल साहित्यकारों में एक नाम है—डॉ॰ परशुराम शुक्ल। शुक्ल जी ने बालसाहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक जैसी सभी विधाओं में कार्य किया है। परशुराम शुक्ल ने बच्चों के समग्र विकास को ध्यान में रखते हुए बालसाहित्य समग्र के तेरह खंडों का सृजन किया है। इन तेरह खंडों के विषय हैं—1. जंगल की बाल कहानियाँ, 2. प्राचीन ग्रंथों की बाल कहानियाँ, 3. शिक्षाप्रद बाल कहानियाँ, 4. परियों की बाल कहानियाँ, 5. लोककथाओं पर आधारित बाल कहानियाँ, 6. राजा-रानी की बाल कहानियाँ, 7. नैतिक बाल कहानियाँ, 8. प्रेरणादायक बाल कहानियाँ, 9. पंचतंत्र हितोपदेश और जातक की बाल कहानियाँ, 10. ऐतिहासिक बाल कहानियाँ, 11. क्रांतिकारियों की बाल कहानियाँ, 12. वैज्ञानिक बाल कहानियाँ, 13. मनोरंजक एवं ज्ञानवर्धक बाल कहानियाँ।

इन सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर परशुराम जी ने बाल कहानियों का सृजन किया है और बालसाहित्य को समृद्ध बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। परशुराम जी की कहानियों में नैतिकता और विज्ञान को लेकर अच्छा-खासा काम हुआ है। इन्हीं दोनों विषयों पर विस्तार से

जानने के लिए उनके साहित्य संग्रह पर प्रकाश डालना होगा।

परशुराम जी का मानना है कि 'केवल मनोरंजन के द्वारा बच्चों की रचनात्मक क्षमता का विकास संभव नहीं इसके लिए नैतिक शिक्षा आवश्यक है। बच्चे नैतिक शिक्षा पसंद नहीं करते। यह कार्य नैतिक शिक्षा मुक्त मनोरंजन बाल कहानियों के माध्यम से किया जा सकता है। इस प्रकार की कहानियों की तुलना 'शुगर कोटेड टेबलेट्स' से की जा सकती है।'[1]

परशुराम शुक्ल की कहानियों में नैतिकता

परशुराम शुक्ल के कहानी-संग्रह 'नैतिक बाल कहानियाँ' में उन्होंने बच्चों जैसे नाम वाले जीवों की कहानियाँ रखी हैं। इस प्रकार के जीव-जंतु, पशु-पक्षी आदि मानव की भाषा में बातें करते हैं। इससे इनके प्रति बच्चों में कौतूहल उत्पन्न होता है। कहानी-संग्रह की एक कहानी 'चालाक सियार' का नायक चीनू सियार एक ऐसा ही पात्र है। चीनू अत्यंत ही होशियार है। उसे इस बात की जानकारी थी कि अपना काम निकालने के लिए किससे किस तरह से बात करनी है। वह यह भी जानता था कि बुद्धिबल से किसी को भी आसानी से हराया जा सकता है, तभी तो वह बब्बन शेर जो चीनू से अत्यंत शक्तिशाली था, से कहता हैं–'आइए महाराज! आप जंगल के राजा हैं। यह शिकार आपके लिए ही है। इसे स्वीकार कीजिए।'[2] चीनू यह जानता था कि शेर किसी का मारा हुआ शिकार नहीं खाता इसलिए उसने बब्बन शेर से खाने का आग्रह किया ताकि शेर को यह शक न हो जाए की चीनू उससे चालाकी कर रहा है और चीनू की युक्ति काम आ गई शेर ने मरे हुए हाथी का मांस खाने से इंकार कर दिया। शेर ने कहा, 'धन्यवाद चीनू! तुम्हारे विनम्रतापूर्ण व्यवहार से मैं बहुत प्रभावित हूँ, किंतु मैं शेर हूँ। दूसरों का मारा शिकार नहीं खाता।'[3]

इसी प्रकार चीनू ने जब कुक्कू तेंदुए को देखा तो उसे यह पहले ही पता था कि कुक्कू तेंदुआ अत्यंत धूर्त और शक्तिशाली है इसलिए चीनू ने कुक्कू से कुटिलतापर्ण आवाज में कहा, 'आइए...आइए श्रीमान जी! देखिए हमारे महाराज बब्बन शेर ने क्या शानदार शिकार मारा है। वह नदी में स्नान करने गए हैं तथा इसकी सुरक्षा का दायित्व मुझे सौंप गए हैं।'[4]

चीनू जानता था कि बब्बन शेर उस जंगल में सबसे ज्यादा शक्तिशाली है। कुक्कू को डराने के लिए चीनू का उपाय कारगार साबित हुआ। अपने से अधिक बल वालों से बुद्धिबल से जीतना चाहिए और बराबर वालों पर शारीरिक बल का प्रयोग करना सही होता है यह चीनू जान चुका था। इस प्रकार अंततः चीनू टीपू सियार से जीत गया।

संग्रह की अगली कहानी 'मुनमुन और मोनू' है जिसमें मुनमुन बया थी और मोनू जुगनू। मुनमुन एक अत्यंत ही मेहनती और कुशल कारीगर चिड़िया थी। उसने बहुत मेहनत से अपना घोंसला बनाया था। उस घोंसले में प्रकाश की कमी थी वह चाहती थी कि उसमें प्रकाश भी हो। एक दिन जब वह अपनी छोटी-सी बच्ची चीनी के लिए दाना लेने गई तो उसे आने में देर हो गई। रात का समय बारिश भी हो रही थी और मुनमुन अपने घोंसले तक पहुँचने का रास्ता भी भूल चुकी थी। तभी उसकी मुलाकात मोनू से होती है। मोनू से मदद माँगते हुए मुनमुन ने कहा, 'मुझे मेरे घोसलें तक पहुँचने में मदद करो!' मोनू सोच में पड़ गया मैं इतनी छोटा हूँ इसकी मदद कैसे कर सकता हूँ, पर उसने हिम्मत नहीं छोड़ी और मुनमुन की मदद करने का निश्चय किया तथा अपनी रोशनी के सहारे मुनमुन को घोंसले तक पहुँचा ही दिया। मुनमन बहुत खुश हुई और विनम्र भाव से उसने मोनू का धन्यवाद देते हुए अपने घोंसले में रहने का आग्रह किया। मोनू भी भीगा

 ISSN 0975-735X

हुआ था अतः उसने आग्रह स्वीकार कर लिया। दोनों की आवश्यकता पूरी हुई। मुनमुन भी घोंसले में प्रकाश चाहती थी और मोनू को रहने की जगह। इस प्रकार दोनों ने एक-दूसरे की मदद की और दोनों का भला हुआ।

इस कहानी में मुनमुन की मेहनत और अच्छाई की वजह से मोनू ने उसकी मदद की। मोनू छोटा होते हुए भी उसने सहायता करने का निश्चय किया। अतः अच्छे गुणों के सहारे और एक-दूसरे की सहायता करते हुए आगे बढ़ने की बहुत ही अच्छी सीख कहानी के माध्यम से प्राप्त होती है।

संग्रह की एक और कहानी 'सागर और हंस' जिसमें सागर और हंस अच्छे मित्र थे। हंसों का जोड़ा सागर के किनारे ही रहता था। सागर और हंस सुख-दुख के साथी थे। दोनों में निस्वार्थ मित्रता, निश्छल प्रेम और प्रगाट स्नेह था। एक दिन सागर के मन में पनपे विचार की वजह से दोनों की मित्रता टूट गई। सागर ने कहा में बड़ा और महान हूँ इसी प्रकार हंस ने भी अपने आपको बड़ा और महान कहने में कोई कसर नहीं छोड़ी। दोनों अपनी बात मनवाना चाह रहे थे। दोनों अपने गुण और विशेषताओं के उदाहरण प्रस्तुत कर एक-दूसरे को नीचा दिखा रहे थे। दोनों की मूर्खतापूर्ण बातों को सुनकर हंसनी को बड़ा दुख हुआ वह चाहती थी कि इन दोनों में दुश्मनी न हो इसलिए उसने हंस से कहा, हम कहीं और चले जाते हैं। जब दोनों एक-दूसरे से दूर हुए तब दोनों (सागर और हंस) को एक-दूसरे की कमी महसूस हुई। दोनों एक-दूसरे से बिछड़कर अधूरे लगने लगे। उन्हें समझ में आने लगा कि उनसे गलती हो गई है। परंतु फिर एक साथ रह पाने का कोई उपाय न मिल पा रहा था। एक दिन भीमा और लक्ष्मण नाम के दो न्याय प्रिय पंचों के माध्यम से दोनों में पुनः मित्रता हुई। दोनों को अपनी गलती का अहसास हुआ। आगे कभी भी घमंड न करने की ठानी। उन्हें यह समझ आ गया कि दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं। सागर ने पश्चाताप करते हुए कहा, 'पंचों! हम दोनों ही अपने-अपने व्यवहार पर शर्मिंदा है और प्रतिज्ञा करते हैं कि अब हम आपस में कभी भी झगड़ा नहीं करेंगे।'[6]

परशुराम शुक्ल जी की एक और कहानी जो इस संग्रह का हिस्सा है वह है 'श्रम का महत्त्व'। इस कहानी में दयानिधि नाम का राजा जो अपनी प्रजा का खूब ध्यान रखता था। वह अपनी प्रजा की सुख सुविधा के लिए हर तरह से प्रयास करता था और अपने खजाने भी लुटाने से पीछे नहीं हटता था। वह चाहता था कि उसके राज में कोई भी दुखी न रहे। सबको समान सुख-सुविधाएँ मिले, सब आगे बढ़ते रहे। प्रजा को सुख सुविधा देकर वह अत्यंत प्रसन्न होता। प्रजा को कोई दुख नहीं था वे अत्यंत प्रसन्न थे। पर अचानक तीन वर्षों तक अकाल पड़ा जिससे दयानिधि ने सारा कोश प्रजा हित के लिए खोल दिया। प्रजा तो सुखी हुई पर राजकीय कोश समाप्त हो गया। ईश्वरीय शक्ति से दयानिधि की अच्छाई से धन तो मिल गया, परंतु जनता आलसी हो गई। तब दयानिधि को समझा आ गया कि बिना मेहनत किए खुश रहना व सुखी रहना अत्यंत कठिन है। पहले तो दयानिधि ने देवदूत से कहा कि, 'हे देव, इस धरती पर धन की महिमा अपरंपार है। धन सर्वोपरि है। धन से व्यक्ति सब कुछ प्राप्त कर सकता है। यदि आप मुझसे प्रसन्न है तो मुझे वरदान दें कि मेरा राजकोष कभी भी खाली न हो।'[7] और जब दयानिधि को समझ आ गया धन सब कुछ नहीं है तब उसने देवदूत से कहा, 'हे देव, मैं अज्ञानी हूँ। मैंने धन को ही सब कुछ समझा। मुझे क्षमा कर दीजिए और अपना वरदान वापस ले लीजिए। यदि आपको कुछ देना

ही है तो मेरी प्रजा को श्रम शक्ति और सद्बुद्धि का वरदान दीजिए।'[8]

इस प्रकार श्रम के महत्त्व से जुड़ी यह अत्यंत रोचक कहानी नैतिकता से पूर्ण है। इसी प्रकार अन्य कहानियाँ जैसे शेर और बकरा, गिलहरी की पूँछ, अनोखा न्याय, ढेला और पत्ता, मोती का सच, अनोखा चुटकुला, चुगलखोर का अंत, अनोखा बदला, उल्लू की सीख, चालाक चीकू और दुष्ट भेड़िया, सरस्वती का शाप, सुई की हिफाजत, मम्मी-पापा, श्रद्धा का मूल्य, नन्हा जासूस, हवाई महल, घमंड का फल, सबक, बूँद का साहस, गीता की बुद्धिमानी, बुद्धिमान आलोक भी नैतिकतापरक कहानी है। परशुराम शुक्ल ने 'नैतिक बाल कहानियाँ' संग्रह में बच्चों के लिए जो कहानियाँ लिखी हैं वे वास्तव में बच्चों के अंदर नैतिक मूल्यों का विकास करने में अत्यंत सहायक सिद्ध होगी। इस संग्रह की सभी कहानियाँ बालोपयोगी हैं। ये सभी कहानियाँ बाल रुचि की हैं। सभी बच्चों तक इन कहानियों को पहुँचाने की जिम्मेदारी अभिभावकों व शिक्षकों की होनी चाहिए। यह बच्चों में नैतिक मूल्यों को विकसित करने का एक सशक्त माध्यम है। अभिभावक इस ओर ध्यान दें और बच्चों में नैतिक मूल्यों को विकसित करने के लिए उन तक इन कहानियों को अवश्य पहुँचाएँ।

परशुराम शुक्ल की कहानियों में विज्ञान

'साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में होनेवाले परिवर्तनों का साहित्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है। वर्तमान युग विज्ञान और प्रौद्योगिकी का युग है। प्रतिदिन नए-नए आविष्कार हो रहे हैं, मानव चंद्रमा तक पहुँच विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया है तथा विज्ञान के क्षेत्र में ऐसा बहुत कुछ हो रहा है जिसकी आज से पचास वर्ष पहले किसी ने कल्पना भी नहीं की थीं। विज्ञान और तकनीकि के क्षेत्र में होनेवाले परिवर्तनों का समाज पर सीधा प्रभाव पड़ा है इससे मानव की जीवनशैली बदल गई है। इन्हीं परिवर्तनों में विज्ञान बालकथाओं को जन्म दिया है।'[9]

परशुराम शुक्ल ने 'वैज्ञानिक बाल कहानियाँ' में जिन कहानियों को रखा है उनसे बच्चों का स्वस्थ मनोरंजन तो होता ही है साथ ही उनके व्यक्तित्व का संतुलित विकास भी होता है। शुक्ल ने इन कहानियों की रचना इस उद्देश्य से की है ताकि बच्चों को उपयोगी जानकारियाँ मिल सकें तथा आगे सकारात्मक कल्पना शक्ति का विकास हो। वैज्ञानिक बाल कहानियों में अतिकल्पना होती है परंतु सभी घटनाएँ विज्ञान के किसी-न-किसी नियम के अनुसार घटित होती हैं।

कहानी-संग्रह की एक कहानी 'माइक्रो सर्जरी का चमत्कार' इसमें सिर से जुड़े हुए दो बच्चों को अलग-अलग किया जाता है। ऑपरेशन सफल होता है किंतु केवल एक बच्चा सुरक्षित बचता है दूसरे बच्चे की मृत्यु हो जाती है। इस बच्चे का शरीर स्वस्थ था। उसी समय उस अस्पताल में एक अन्य बच्चे की मृत्यु हो जाती है। इस बच्चे का धड़ स्वस्थ था। माइक्रो सर्जरी एक नया प्रयोग करते हैं। वे दोनों बच्चों के सिर उनके धड़ से अलग कर देते हैं तथा स्वस्थ धड़ से जोड़ देते हैं। यह ऑपरेशन पूरी तरह सफल रहता है यह विज्ञान कहानी 10 अप्रैल, 2015 को दैनिक भास्कर में प्रकाशित एक समाचार पर आधारित है, जिसमें इटली के एक न्यूरो सर्जन डॉक्टर सेर्जियों कनाबेरो ने भविष्य में एक ऐसा ऑपरेशन करने की घोषणा की है, जिसमें एक व्यक्ति का सिर दूसरे व्यक्ति के धड़ से जोड़ा जाएगा। इस आलेख में ऑपरेशन की विधि का भी संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इसी प्रकार का एक ऑपरेशन कुछ वर्ष पहले चीन में किया गया था, जिसमें एक बंदर का सिर दूसरे बंदर के धड़ से जोड़ा गया था। ऑपरेशन के बाद वह आठ

दिन तक जीवित भी रहा। कहानी के माध्यम से परशुराम ने बच्चों को वैज्ञानिक सच से परिचित भी कराया है और बच्चों के मन की जिज्ञासा को भी शांत किया।

संग्रह की एक अन्य कहानी 'बर्फ और तूफानी हवाओं की धरती' में शिक्षिका के द्वारा बच्चों को अंटार्कटिका की जानकारी दी गई है। बच्चों में जिज्ञासा को समझकर उन्हें उचित जानकारी देना एक शिक्षक का परम कर्त्तव्य होना चाहिए और शिक्षिका ने ऐसा ही किया। उन्होंने बच्चों के आग्रह को सहज भाव से स्वीकार किया। 'दीदी! हम लोग अंटार्कटिका के विषय में जानना चाहते हैं।'[10] बच्चों को अंटार्कटिका के विषय में जानकर जिस आनंद की अनुभूति हुई वही आनंद शिक्षिका को भी प्राप्त हुआ उन्हें जानकारी देकर। बच्चों ने कहानी के माध्यम से यह जान लिया कि अंटार्कटिका अर्थात् बर्फ का प्रदेश। औसतन एक हजार छः सौ मीटर मोटी बर्फ की चट्टानों से ढका 140 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल का विशाल निर्जन भू-भाग विश्व के सातवें महाद्वीप के रूप में जाना जाता है। बच्चों में यह जानकारी मानों अपार खुशी का संचार कर रही हो ऐसा आभास होता है। कहानी में विस्तार से छोटी-से-छोटी जानकारी को बड़े सुंदर ढंग से प्रस्तुत कर लेखक परशुराम शुक्ल जी ने यह बता दिया है कि कहानी सूचनापरक है। बच्चों को यह जानकर अच्छा लगता है कि इस महाद्वीप पर पहुँचने से ऐसा लगता है मानो व्यक्ति किसी नए ग्रह में आ गया हो। यहाँ की जमीन पूरे वर्ष भर बर्फ से ढकी रहती है तथा तेज बर्फीली हवाएँ चलती रहती हैं। 140 किलोमिटर में फैले इस महाद्वीप में किसी समय मानव का पहुँचना असंभव समझा जाता था, किंतु इस समय संयुक्त राज्य अमरिका, भारत, रूस व चीन सहित विश्व के 31 देशों ने यहाँ 78 अनुंसधान केंद्र बना लिए हैं। इनमें इन देशों के लगभग 700 वैज्ञानिक विभिन्न विषयों पर शोधकार्य कर रहे हैं। संयुक्त राज्य अमरीका ने तो यहाँ पर एक न्यूक्लियर रिएक्टर भी लगाया है तथा यहाँ से 'मैकमर्डो टाइम्स' नामक एक समाचारपत्र का प्रकाशन भी होता है।

कहानी-संग्रह की एक ओर कहानी 'फादर ऑफ मिलियन्स'। इस कहानी में डॉक्टर गगन मंडल के संदर्भ में बहुत सुंदर और ज्ञानवर्धक जानकारी दी गई है। किस प्रकार कठिन परिश्रम करके पढ़ाई की तथा उच्च स्थान तक पहुँच सके। कहानी में यह एक अत्यंत अच्छी बात है कि इसमें यह बताया गया है कि बच्चों में नैतिक विकास के लिए घर में बड़े बुजुर्गों का होना कितना आवश्यक है। डॉक्टर गगन के बेटे ईशान को नैतिक शिक्षा उसके दादा-दादी से तथा विज्ञान की शिक्षा अपने माता-पिता से प्राप्त हुई। ईशान की बुद्धि और विवेक का कोई तोड़ नहीं था। उसे अपने पिता डॉ॰ गगन के कार्यों में काफी रुचि थी और उसे भी अंतरिक्ष की सैर पर जाना था। चंद्रयान-1, चंद्रयान-2 के विषय में उसे जानकारी भी प्राप्त होती रही। मंगलयान की सफलता व भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिकों का उत्साह ये सभी बातें कहानी में रोचकता को बढ़ा देती हैं। इस कहानी में अंतरिक्ष से जुड़ी अनेक बातों को बहुत सुंदर तरीके से बच्चों की समझ को ध्यान में रखते हुए लिखा गया है। वर्तमानयुग में बच्चे अंतरिक्ष व उससे जुड़ी बातों को जानने में खासा रुचि रखते हैं। यह कहानी बच्चों को बहुत भाएगी। उनके मन में उठे कई प्रश्नों के हल उन्हें मिलेंगे। ईशान की ही तरह कई बच्चों की अंतरिक्ष पर जाने का मन जरूर करता है वे इस कहानी के माध्यम से उसी प्रकार के अनुभव से गुजरेंगे, जो अनुभव ईशान को हुआ।

कहानी-संग्रह की अन्य कहानियाँ एक अधूरा प्रयोग, रक्त दानव का अंत, बगीचे का प्रेत, कंप्यूटर मानव, अनंत यात्रा का अंतरिक्ष यान, अनोखा उपहार, अदृश्य मानवी, उड़ता मकान,

सैनिक रोबो भी विज्ञान कहानियाँ हैं।

ये सभी वैज्ञानिक बाल कहानियाँ बच्चों को स्वस्थ मनोरंजन करने और उनके व्यक्तित्व को संतुलित विकास करने में सक्षम है। इनमें बच्चों को विभिन्न प्रकार की उपयोगी जानकारियाँ मिलेंगी तथा आगे सकारात्मक कल्पना शक्ति का विकास होगा। इन वैज्ञानिक बाल कहानियों में मात्र कोरी कल्पना नहीं, बल्कि वैज्ञानिक विषयों और सिद्धांतों पर आधारित कल्पना है। परशुराम शुक्ल जी की इस कहानी-संग्रह की सभी बारह कहानियाँ बच्चों को बहुत अच्छी लगेगी। रोचकता के साथ-साथ ज्ञान का विकास भी करेंगी।

परशुराम शुक्ल की कहानियों में नैतिकता व विज्ञान को बहुत ही सुंदर तरीके से प्रस्तुत किया गया है। बच्चों को सीखने व सिखाने हेतु इन किताबों से अच्छा और कोई तोहफा नहीं हो सकता। इन्हें बच्चों तक इनका पहुँचना बहुत जरूरी है, जिससे बच्चे नैतिक मूल्यों के साथ-साथ विज्ञान से भी घनिष्ठता से जुड़ सकेंगे। शुक्ल जी का यह प्रयास अत्यंत सराहनीय है।

संदर्भ

1. नैतिक बाल कहानियाँ, परशुराम शुक्ल, पृ॰ 6
2. वही, पृ॰ 15
3. वही, पृ॰ 15
4. वही, पृ॰ 16
5. मुनमुन और मोनू, परशुराम शुक्ल, पृ॰ 26
6. सागर और हंस, परशुराम शुक्ल, पृ॰ 35
7. श्रम का महत्त्व, परशुराम शुक्ल, पृ॰ 94
8. वही, पृ॰ 95
9. वैज्ञानिक बाल कहानियाँ, परशुराम शुक्ल, पृ॰ 6
10. बर्फ और तूफानी हवाओं की धरती, परशुराम शुक्ल, पृ॰ 81

मो॰ 7008259073

रीतिमुक्त कवि आलम का रामलीला वर्णन

अशेष उपाध्याय
पूर्व छात्र, बरेली कॉलेज, बरेली (उ०प्र०)

भारतीय सामाजिक जीवन के धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में परम आराध्यदेव श्रीराम की लीला का महत्त्व सर्वविदित है। पौराणिककाल से ही इसका लोकव्यापी रूप महर्षि वाल्मीकि की रामायण और आध्यात्मक रामायण आदि से उद्‌भूत होकर आध्यात्मिक भक्ति-प्रवाह का पावन इतिवृत्त 'क्वचिद्न्यतोपि' के साथ गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस तथा आचार्य केशवदास की रामचंद्रिका इत्यादि के माध्यम से आज भी अपने व्यापक आस्थाशील रूप में प्रतिष्ठित है। 'लीला' के लोकप्रचलित शाब्दिक अर्थ हैं- मनोरंजन कार्य, क्रीड़ा, बिहार, प्रेम-विनोद, प्रेम-कौटिक, चरित्र-स्मरण, मनोरंजन पूर्ण भक्ति-भावना के साथ आराध्यावतारों का वाणी-वेशभूषा तथा हाव-भाव प्रदर्शन द्वारा अनुकरणात्मक वृत्ति से प्रस्तुतीकरण। रामलीला तथा राम-कथा के रचयिताओं ने इन सबका अपनी रुचि के अनुसार उपयोग करके प्रशंसा प्राप्त की है। जनजीवन में रामभक्ति से परिपूर्ण धार्मिक संकल्प का प्रचार इसका मुख्य उद्देश्य है। भक्तिकाल के अवसान के उपरांत भी रामलीला की परंपरा यथावत विद्यमान रही। रीतिमुक्त कवि आलम द्वारा रचित 'आलमकेलि' में श्रीराम और उनकी लीला के मार्मिकता पूर्ण कवित्त संग्रहीत हुए हैं। आलम और शेख के विवाह एवं संयुक्त काव्य-रचना की जनश्रुति भी हिंदी काव्य-जगत में प्रसिद्ध है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार, 'इस जनश्रुति में इतना ही सत्य हो सकता है कि आलम पहले ब्राह्मण थे और किसी कारण आगे चलकर किसी 'यवनी नवनीत कोमलांगी' के फेर में शेख आलम हो गए। रचना में वे 'आलम' और 'शेख' दोनों छापों का व्यवहार करते थे। किसी रंगरेजिन का नाम शेख नहीं हो सकता, रंगरेज अलबत हो सकता है। एक ही कवि दो-दो छापों से रचना करने वाले हुए हैं किसी को दो नामों के कारण रचना में दो का कर्तृव्य मानने की कल्पना सूझी और उसने उसकी विधि बैठा ली।'[1] 'स्यामसनेही' में आलम ने विष्णु के त्रेतायुग में अवतार रामलीला के महानायक राजा दशरथ के बड़े पुत्र श्रीराम की संक्षिप्त चर्चा में लिखा है-

पिता वचन वनवासी भए। बिछुरत प्रान पिता के गए।
सीय हरन तहाँ रावन कीन्हा। रामचंद कहुँ बहु दुखदीन्हा।
बिरह उसास राम असि डारी। तिहि हनबंत लै लंका जारी।
बानर कटक राम लै साथा। रावन के खांडे दस माथा।
रावन मारि लंका दई सीता लई छुड़ाइ।
लक्षिमन संग अजुध्या राज बैठ तहां आइ।[2]

पुत्र वियोग और पति की मृत्यु के कारण कौशल्या का विलाप, राजा दशरथ की मृत्यु, केवट संवाद, सीता-स्वयंवर में शिव-धनुष-भंजन, परशुराम-क्रोध निवारण, हनुमान का लंका दहन, अंगद का रावण को परामर्श, सीता का श्रीराम को संदेश तथा भाई के वियोग में भरत की

पीड़ा का वर्णन कवि ने 'रामलीला' के कवित्तों में किया है। कोमल-कुमार-सुकुमार राम और लक्ष्मण के वनवासी जीवन की अनुमानित स्थिति से व्याकुल माता कौशल्या की व्यथा का वात्सल्यजनित रूप इनके कुस-काँस पर शयन और वनफल फोड़कर वृक्षों की छाल छीलकर खाने की चिंता आदि से हृदय-द्रावकता की पराकाष्ठा परिलक्षित होती है–

पसुन में बैठनु परोसी भये पच्छिनि के,
झाख के डार घर-बार करि रहि हैं।
'सेख' भूमि डासिहैं कि बिस-बेलि बासिहैँ कि,
कुस हैं कि काँसि है कौसल्या काहि कहि हैं।
वन गिरि बेरनि करेरे दुख कैसे करि,
कोंवरे कुमार सुकमार मेरे सहि हैं।
मैले तन कर ए कसैले छाल रूखनि के,
बनफल फोरि छोलि छाल खाई रहि हैं।[3]

रघुवंश के राज-परिवार में महाराज दशरथ की मृत्यु के उपरांत राज-महिषी की मर्यादा से प्रतिबद्ध होते हुए भी सौंदर्यगर्विता कैकेयी की स्वार्थनीतिपूर्ण सुखानुभूति का दुखदायक मानसिक प्रदाह, पुष्प के समान चरणयुक्त कोमलांगी सीता के वन के कठोर कंटकादि पूर्ण मार्ग पर विचरण की पीड़ा और दुर्गम वन-प्रदेश की यातनाएँ इत्यादि की स्मृतियों ने उनके जीवन के प्रत्येक उच्छ्वास को विषाक्त बना दिया है। हृदय के भीतर प्रज्वलित अपने आत्मीयजनों की वियोगाग्नि के कारण वे नख-शिख से स्वस्थ दिखाई देते हुए भी जीवन और मृत्यु के संकट में व्यथित जीवन की बाध्यता से ग्रस्त हो गई हैं–

राजा को मरनु बिछुरन रघुबंसिन की,
कैकई को सुख तिहि दुख दहियतु हौं।
सिया की सुरति सूल फूल से चरन धरें,
फुलका परत ह्वै हैं तातें दुखी अति हौं।
'सेख' भनि न्यारे होत घर के उज्यारे दिया,
सुधि आये सांस लेट विष सो पियत हौं।
अन्तर मैं जरी नखसिख परजरी नहीं,
टातें अधजरी हों मैं मरी न जियत हौं।[4]

कौशल्या की पीड़ा की मार्मिक अभिव्यंजना के साथ ही दशरथ की पुत्र-वात्सल्य में वियोग-जन्य पीड़ा के कारण मर्मस्पर्शी मृत्यु-दशा का करुण स्वरूप भी आलम ने व्यथा की अकथनीयता के साथ वर्णित किया है। राजा दशरथ के मौन मुख, बेसुध शरीर से युक्त 'दसई दसा' अर्थात् मृत्यु तथा अयोध्यावासियों की शोकपूर्ण उदासी वातावरण की अशब्दता के संकुल में कठोर हृदय 'कैकेई' का 'राजा-राजा' की पुकार के साथ करुण विलाप भी लोक-पीड़ा की दृष्टि से अवलोकनीय है–

जरि उठयौ पोन गौन थाक्यौ मौन पंखी भये,
मानस की कौन कहै बिधा जु अकथ की।
'सेख' प्यारे राम के वियोग तात प्राप्त ही ते,

 ISSN 0975-735X

ह्वै मौन मुख सुधि गई ज्ञान गथ की।
टेकई न प्रान पल केकई पुकारे ठाढ़ी,
राजा राजा करत भुलानी पानी पथ की।
दरसत दुसह उदासी देस तजि गये,
देखी जिन दसई दसा जु दसरथ की।[5]

श्रीराम-लक्ष्मण और सीता द्वारा वनवास के प्रारंभ में गंगा पार करने के लिए केवट से नौका लाने का आदेश और इसके संदर्भ में केवट द्वारा दिया गया उत्तर 'केवट संवाद' के रूप में हास्य के श्रेष्ठ प्रकरण के रूप में लोक विख्यात है। इसमें उसकी निश्छल राम-भक्ति में उनके चरण-प्रक्षालन की तत्कालीन राज-परंपरा का भी परिचय मिलता है। प्रभु श्रीराम के चरण-स्पर्श से पाषाणी अहिल्या के स्त्री रूप में परिवर्तन की कथा का आश्रय लेकर केवट अपने संपूर्ण परिवार के भरण-पोषण का एकमात्र आधार काष्ठ की नौका के सरलता से स्त्री रूप में परिवर्तित होने की संभावना को स्पष्ट करके उनके 'चरणामृत' पान द्वारा अपने आत्मोद्वार की कामना को मन में छिपाते हुए हाथ उठाकर भयभीत होने के नाट्य-प्रदर्शन द्वारा इस प्रकार कहता है–

ऊँचे चढ़ि देखि तुम नीचेई चलत अब,
चले किन जादु जु चले हो पार चाउसों।
जाके पग परस पखान ही को पाँख भयो,
पानी ही को डोंगा सु उड़त लागे बाउसों।
'आलम' कहत रघुनाथ साथ ऊभे हाथ,
केवट कहत टेरि हेरि भय भाउ सों।
नीरे न लै आइहौं जू फेरो करि जाउ अब,
मेरे सब कुटुंम जियत याही नाउ सों।[6]

श्रीराम के चरण-प्रक्षालन के उपरांत केवट की नौका से गंगा के पार उतरने के उपरांत सीता को वन के कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलने के कारण क्लांति के साथ ही माता कौशल्या, रघुवंश के राजमहल के परिजन तथा सखियों का स्मरण इत्यादि अत्यंत कष्टप्रद प्रतीत होता है। अपने प्रति श्रीराम के प्रेम की प्रगाढ़ता से परिचित होने के कारण वे अपने अश्रुपूरित नेत्रों से भूमि की ओर दृष्टिपात करके अश्रुओं को नेत्र-कोरकों में संगोपन करते हुए सुंदर सघन बट वृक्षों के समूह को अपने विश्राम हेतु उपयुक्त स्थल मानकर उनसे आगे की यात्रा के संबंध में अपनी असमर्थता प्रदर्शित करती हैं–

कोसिला सासु सखी रघुबंसिनि केटक दूरि सबै संग पैबो।
हौं अब हारी हौं हारी कहयौ सुनि के हरि नैन हिये जल लैवो।
आलम नीरे के गोय रही किये जानकी भूमि की ओर कबैवो।
घूँघर के वन वे वर रूख तहाँ हू ते और कहाँ लगि जैबो।[7]

'सीता स्वयंवर' में श्रीराम के शौर्य का अद्‌भुत प्रदर्शन शिवधनुष भंजन के प्रकरण में हुआ है। इसमें महाशक्तिशाली राजागणों की महाभीड़ में जब कोई शूरवीर शिवधनुष उठाने में समर्थ नहीं हुआ। तब श्रीराम ने राजा जनक की प्रतिज्ञा की मर्यादा बचाने के लिए इस धनुष को क्षणमात्र कृत्य से राजा जनक द्वारा क्षतियों पर दुख पूर्वक लगाए गए वीर विहीनता के आक्षेप का निराकरण

हो गया और धनुष टूटने की भयंकर ध्वनि से साधु-संतों की साधना विचलित हो गई। देवराज इंद्र ने चक्कर खाकर अपने नेत्र बंद कर लिए तथा परशुराम जी की समाधि भी अव्यवस्थित हो गई–

जुरे जहाँ महावीर राजन की महाभीर,
महाराज वीर रघुवीर पैज अति की।
आलम जनक जानकी की मरजाद राखी,
दीनी पति कीनी छत्र छत्रिन की छति की।
कर जु करेरे पर उठी है धनुष धुनि,
बारद सुनत सुधि भूली जंत्र जति की।
कूँद के कराक मूँदे लोचन तराक इंद्र,
गुन के तराक छूटी तारी भृगुपति की।[8]

इसी प्रकार का महत्त्व वर्णन कवि ने जनकपुर-वासी स्त्रियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि जनक के द्वार पर भग्नावस्था में विद्यमान धनुष की 'किरचें' ही चंद्रमा में कलंके के रूप में दृष्टिगोचर होती है। बरछी इत्यादि शास्त्रों के प्रहारों की उपेक्षा में समर्थ रावण भी इस धनुष को उठाने में अपनी असमर्थता मानकर लज्जावनत हो गया था। उसके समान शक्तिशाली अन्य राजा भी अपने स्थान पर थक कर बैठ गए थे किंतु श्रीराम के द्वारा धनुष की प्रत्यंचा को 'टकोरते' ही उसकी 'किरचें' हो गई थीं–

तै न सुन्यो जनकादि के द्वार दिनांक परयी जु सबै किरचौं।
कवि 'आलम' थान थपे उथपे की रहै बलु के नर बैन रचौं।
सार के साल उसालि धरे बुझि रावन देखि यहै परचौ।
चिगुटी गुन वाहि टाकरेत ही कर लै रघुवीर करी किरचौं।[9]

श्रीराम द्वारा किए गए शिवधनुष भंजन की तीव्र ध्वनि से समाधि में संलग्न परशुराम जी की ध्यानावस्था में अवरोध उत्पन्न हो गया। इसका कारण ज्ञात होते ही वे क्रोधित होकर राजा जनक की राजसभा में उन्हें दोषी मानकर दंडित करने के लिए उपस्थित हो गए। इनका क्रोध निवारण करने के लिए विष्णु के अवतार श्रीराम इन्हें समझाते हैं कि पुरानी प्रत्यंचा होने के कारण शिवधनुष उनके हाथों में पानी के ढलने के समान बड़ी सरलता से स्पर्श करते ही छिटककर खंडित रूप में नीचे गिर गया। धनुष प्रत्यंचा चढ़ाने योग्य नहीं था इसलिए टूट गया। इस कार्य में उनका कोई अपराध सिद्ध नहीं होता फिर वे इस तुच्छ अपराध के लिए क्षमाप्रार्थी हैं। 'कठिन कुठार' कंधे पर धारण करके क्रोधावेश में ब्राह्मणों के गुरुल के विपरीत आचरण और क्षमाशीलता की अवहेलना अनुचित है। वैसे भी जो चरण-स्पर्श करने के लिए विज्ञापित हैं, वे कभी भी युद्ध करने योग्य नहीं हैं। वैसे भी 'मंगल भवन अमंगलहारी' जिन भगवान श्रीराम का निरंतर जाप परशुराम के आराध्य त्रिपुरारि शिव उमा सहित करते रहते हैं उनसे उन्हें स्वयं क्षमा प्राप्ति की अभिलाषा करनी चाहिए–

पनच पुरानी ढरि पानी सो धनुष आयो,
छुअत छटूक भयो टासों कहा करिये।
'आलम' अलय अपराध साध जीय जानि,
छिमा छीन करि कट क्रोध-भार भरिये।

द्विज कर सूझियत बूढिबो न जूझि वर,
कठिन कुठार आनि कंठ पर धरिये।
गुरु मति लोपियु न पूजा पाय कोपिये न,
टासों पाउ रोपियै न जाके पाँ परिये।[10]

'लंकादहन' में हनुमान का भयानक रूप पूँछ में प्रज्वलित अग्नि से रावण की स्वर्ण-निर्मित लंका को भस्म करने के कारण अत्यंत अविस्मरणीय दृश्य के रूप ग्रहण किया जाता है। भवनों के कंगूरों में घुमड़ती हुई चक्रवातपूर्ण वायु के कारण अग्नि के प्रकोप से रावण की सभा में उत्पन्न भयावह स्थिति में प्राण रक्षा के लिए भाग दौड़ प्रारंभ हो गई। लाक्षारस से बने पदार्थों के समान लंका के भव्य राजमहल इत्यादि क्षण-मात्र में भस्म हो गए। यह रावण का दुर्भाग्य ही था कि उसकी सोने की लंका उसके शरीर में प्रज्वलित प्रतिशोध की अग्नि के समान क्षार में परिवर्तित हो गई–

लायो चिनगी जगाई लपति लंगूरा लाई,
उठी है बधूरा की कंगूरा ही सों जागी है।
भरके भवन लहराने भट भारे-भारे,
भीति भरे हैं भूप दीप सभा भूलि भागी है।
'आलम' बिलखि लखि लाख ही ज्यों लंका जरै,
बूझि देख लंकापति देह लगि दागी है।
लोने लोने भौन नये छिनक में छार भये,
होनहार ऐसो कहूँ सोने आगि लागी है।[11]

श्रीराम के वियोग में सीता का शरीर प्रज्वलित अंगार के समान हो गया है। यह भाग्य की बात है कि वक्षस्थल में असहनीय पीड़ा होते हुए भी यह दो खंडों में विदीर्ण नहीं हुआ है। सीता हनुमान से कहती हैं कि यदि उनके द्वारा और कुछ बताया जाएगा तो स्त्री-जनोचित लज्जा का अतिक्रमण एवं निर्लज्जता होगी। अत: वे और कुछ कहने में असमर्थ होकर अपने दुर्दशापूर्ण वेश का वर्णन ही संदेश के रूप में बताना उचित समझती है। विरह विदग्धा पतिव्रता सीता का राज-मर्यादा पूर्ण संकोच युक्त यह कथन निम्न कवित्त में अवलोकनीय है उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि भयभीत स्थिति में अब बातें बनाने का समय व्यतीत हो चुका है। अत: रावण का बध ही इसका समाधान है–

जीत गई प्राननि अनीत भई भीति वसि,
बीति गयो औसर बनावै कौन बतिया।
ऊक भई देह बरि चूक है न खेह भई,
हूक बढ़ी पै न बिबि टूक भई छतिया।
'सेख' कहि सांस रहिबे की सकुचनि कपि
कहा कहौं लाजनि कहौगे निलज तिया।
और न कलेस मेरो नाथ रघुनाथ आगें,
भेसु यहै भाखियो संदेस यह पतिया।[12]

रावण की राजसभा में अंगद का श्रीराम का दूत बनकर उसे राम की शरण में जाकर प्राण रक्षा का परामर्श 'अंगद-रावण संवाद' के रूप में रामलीला के धार्मिक आधार का प्रदर्शन है। रावण को श्रीराम के अलौकिक कार्यों का स्मरण करके उनसे शत्रुता करना उचित नहीं है। उनके

अल्प क्रोध के कारण समुद्र में पत्थरों का नौवत के रूप में संतरण के आश्चर्यपूर्ण कार्य को संज्ञान में लेकर उसे यह अनुमान सरलता से लगा लेना चाहिए कि जब वे पूर्णतया क्रोधित होंगे तब उसके द्वारा संचित स्वर्ण-वैभव तथा स्थापत्य सौंदर्य की श्रेष्ठ रचना लंका के राजभवन तत्काल उनकी क्रोधाग्नि से भस्म हो जाएँगे। अतः शरणागत-भाव से सीता को उन्हें समर्पित करके उसे श्रीराम से क्षमा-याचना करके अपना उद्धार सुनिश्चित करना चाहिए–

बार-बार बालिसुत बोलै अरे लंकापति,
गौन गति मति तोंहि दीन्ही बिधि बावरे।
अजौं जीव जानि के रे जानकी लै जाय मिलि,
बैर बकसाइ गहि राधो जू के पाव रे।
'आलम' अल्प कोप किये ही ते पेखहुगे,
पानी मैं तरीहै सठ पाहन की नाव रे।
कंचन जो संच्चो है सुबचिहै न रंच एक,
रचना के भौन सब रख ह्वै है रावरे।[13]

रावण का अंगद द्वारा दिया गया अपना परिचय संवादोचित्त वाग्विदग्धता की दृष्टि से पर्याप्त प्रभावशाली प्रतीत होता है। वह महाशक्तिशाली बानरराज बालि का सुपुत्र और श्रीराम का 'साथी' अर्थात् सहयोगी है। उसका 'अभंग भुजाबल' कुमंत्रणा का विनाशक एवं सुमंत्रणा का सहायक और दानव नरेशों के द्वारों पर तत्पर दारुण हाथियों को परास्त करने में पूर्णतया सक्षम है। वह अटल प्रतिज्ञाशील सुमेरू पर्वत तथा ताड़का, सुबाहु, खर-दूषण इत्यादि के विनाशक श्रीराम का दूत है–

टेक को मेरू अनेगन टारिहौं दानव द्वार को दारून हाथी।
'आलम' कूल के मल कुदारि हौं मेटि कुमंट सुमंत को साथी।
राघवराई को दूत बली जिहि दूषन खंडि के तारिका नाथी।
अंगद नाम अभंग भुजाबल बालि को बालक राम को साथी।[4]

अंगद ने रावण को यह भी समझाया कि श्रीराम भ्रमर जैसी चंचल प्रवृत्ति से युक्त दुराचारी राजाओ को दंडित करने की सामर्थ्य से अभिमंडित सशक्त भुजाओं से अनीति कारक स्वेच्छाचारी राजाओं की दुष्टता समाप्त करने के लिए यमराज बन चुके हैं। अतः उसका कल्याण इसी में है कि अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए ताड़का और खर-दूषण का संहार करनेवाले श्रीराम का स्वामित्व ग्रहण करें–

मंडित पान प्रचंड अखंडित संधि सिलीमुख दंडि कुदंडन।
'आलम' लै अवनी केवुनी चल्यौ आवतु राम अडंडन डंडन।
हे दसनाथ सनाथ अजौं करि माथ पुनीत ह्वै के वर मंडन।
तारिका तेज उतारक बारक तारि कहै खरदूषन खंडन।[15]

ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम के वनवास के कारण भरत अत्यंत दुखित हैं। उन्होंने अयोध्या तथा इसके राजभवनों का परित्याग कर दिया है। श्रीराम से विदा लेते समय जटाओं में डाली गई राख अब भी वैसी ही है। वे वन में निवास कर रहे हैं और वृक्षों के पीले पत्तों को खाने के कारण उनका शरीर पीला पड़ गया है। उनकी यह दशा पूर्णतया तपस्वियों के समान है। अयोध्या राज्य की व्यवस्था तथा सभी प्रकार के सुख-सुविधापूर्ण कार्यों के प्रति उनके द्वारा ग्रहण की गई

 ISSN 0975-735X

उदासीनता आदि से परिपूर्ण उनका करुण स्वरूप भ्रातृ-वियोग का चरम बन गया है–

बीरन वियोग बर छोरि छारि डारी ही सु
झारी नहीं जटनु अजहुँ तक तैसी है।
'आलम' घरीक घर पैठे नहीं तब ही ते,
बैठे बन तन तपसी की गति तैसी है।
पीरे पीरे पाट खाट पात ही से पीरेभेय,
पीर रघुवीर जू तिहारी कछु ऐसी है।
राजु कैसो राज और स्वास्थ्य को आजु लगि,
भरथ न देखो अजोध्या फिरि कैसी है।[16]

दुसह दुखदायक सभी प्रकार के नियमों से विलक्षण प्रेम पथ पर चलने वालों को मर्मांतक पीड़ा का अनुभव होता है। प्रिय श्रीराम के वियोग की पीड़ा से ग्रस्त राजमाता कौशल्या और भरत की दशा अत्यंत करुणापूर्ण हो गई है। उनसे संबंधित स्मृतियों से युक्त वार्तालाप रक्तरंजित घावों से परिपूर्ण शरीर से तप्त लोहे से लड़ने के समान हैं। शरीर में कंपन उत्पन्न करने वाले शीतल उच्छ्वासों से उत्पन्न वियोगाग्नि के समक्ष प्रबल कालाग्नि भी प्रभाव-विहीन हो गई है। विरह के द्वारा इन वियोगियों को अपराधी शत्रु के समान आरे से विखंडित करने की असहनीय पीड़ा से ग्रस्त बना दिया गया है–

दुसह दुखारो सब नेमनि ते न्यारो जिहि,
पेम पथ आये सीस पग ह्वै टरतु है।
राते किये बातें सुनि तातें सहि जात नहीं,
लोहू भरे घाई, ताते लेहि सों लरतु है।
कंपै जासों कालज्वाल झंपै तैसो कठिन है,
कंपत वियोगी जु उसासनि भरतु है।
ऐसो काहू करै तकसीर करवट लीवो,
बैरी बैर बिरही सों बिरह करतु है।[17]

जीवन के प्रति नैतिक दायित्व और श्रीराम के वियोग में भ्रातृ-प्रेम की वशवर्त्ती मनोवृत्ति ने भरत के जीवन-आदर्श को सतोगुणमयी वैराग्यशीलता और चारित्रिक निर्मलता का मानदंड बना दिया है। आराध्य रूप में ग्रहण किए गए भ्राता श्रीराम के मिलन की चातक-वृत्ति से अभिभूत भरत की प्रवृत्ति का वर्णन करुणा की अजेय भावराशि का उत्तम संवाहक प्रतीत होता है। उनकी वियुक्त भाव से परिपूर्ण एकांत प्रेम-निष्ठा के फलस्वरूप आँसुओं के साथ रक्तस्राव, पीला मुख, दुर्बल शीतल शरीर में अग्नि की निर्धूम दाहकता ने उन्हें पर्णकुटी की भीतरी दीवार से टिकने के लिए विवरण करके 'भित्ति चित्र' जैसी संभावना में स्थापित कर दिया है–

नैना नीर धोई हार्यौ लोहू सब रोइ रातें,
झूरी ह्वै के झूरो अब लोहू न लहतु है।
'आलम' न आवै बात पीरे मुख सीरे गात,
तातो हियो रातो करि सूलहि सहतु है।
भीतर की भीत कहूँ लग्यो है पछीत थकि,

रीति यही नेही की बिदेही निवहतु है।
एक टक हेरत हिराई रह्यौ चित्त बिनु,
मित्र को बियोगी मानों चित्र ह्वै रहतु है।[18]

'रामलीला' की विस्तृत कथावस्तु में दृश्य शृंखला-निबद्ध कथात्मक स्वरूपों में हृदयस्पर्शी सुंदर, मार्मिक, चमत्कार पूर्व प्रभावोत्पादक प्रसंगों के समयोजन की लोकप्रियता सर्वविदित है। 'आलम' ने अपनी रीतिमुक्त रुचि के अनुकूल इसमें निहित घटनाओं का चयन करके श्रोताओं के हृदय में रसात्मक भावराशि प्रवाहित करके का सद्-असद् विवेकमूलक उल्लेखनीय प्रयास किया है। इनमें निहित संदर्भों का सटीक बिंबात्मक चित्र उनके मौलिक प्रयोग वैचित्य की दृष्टि से वक्रोक्तिपूर्ण अभिव्यंजना तथा अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्पेक्षा, उदाहरण आदि अलंकारों से युक्त रमणीय भाषा में श्रीराम के महत्त्व का धार्मिक संदेश प्रस्तुत करने में यथासंभव साफल्योपार्जक प्रतीत होता है। रामलीला मंच की दृश्य-काव्य परंपरा की परिस्थिति में सहृदय-समाज को रसानुभूति से परिप्लावित करने में समर्थ उनकी उच्चकोटि की काव्य-कुशलता प्रशंसनीय है।

संदर्भ

1. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिंदी साहित्य का अतीत दूसरा भाग, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, पृ॰ 321
2. आलम ग्रंथावली, संपादक-विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ॰ 202, 203,
3. वही, पृ॰ 92, 93
4. वही, पृ॰ 93,
5. वही, पृ॰ 93,
6. वही, पृ॰ 260,
7. वही, पृ॰ 111,
8. वही, पृ॰ 94,
9. वही, पृ॰ 111,
10. वही, पृ॰ 94,
11. वही, पृ॰ 94,
12. वही, पृ॰ 95,
13. वही, पृ॰ 95,
14. वही, पृ॰ 111,
15. वही, पृ॰ 111,
16. वही, पृ॰ 95,
17. वही, पृ॰ 95,
18. वही, पृ॰ 95, 96,

द्वारा श्रीमती रजनी उपाध्याय
197/199, **डॉक्टर्स कॉलोनी,**
सिविल लाइंस, बरेली (उ॰प्र॰)

किसान से मजदूर बनने की व्यथा-कथा : पूस की रात

डॉ॰ दत्ता कोल्हारे

यह बात सर्वश्रुत है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ की लगभग 75 प्रतिशत आबादी कृषि कर्म पर आश्रित है। विचारणीय बात यह है कि जमीन का सीना चीरकर अन्न उत्पन्न करनेवाले 'अन्नदाता' की अवस्था आज अत्यंत दयनीय हो गई है। खेती में वह जो अन्न उपजाता है उस अन्न पर उसका अधिकार नहीं है। आधुनिक कहें जानेवाले इस समाज में ऐसी अनेक व्यवस्थाएँ हैं जो किसानों का शोषण कर रही हैं; जिनमें राज-व्यवस्था, व्यापारी तथा आधुनिकयुग के साहुकार आदि प्रमुख हैं। देश के इस सबसे बड़ी आबादी वाले किसानों, जिनकी संख्या कुल जनसंख्या के 70-75 प्रतिशत है वे आज विभिन्न मार्गों से हो रहे दोहन-शोषण से दु:खी तथा व्यथापूर्ण जीवन जीने को मजबूर हैं। देश की बाकी बची 25-30 प्रतिशत आबादी जिनमें उच्च-मध्यवर्गीय तबका प्रमुख रूप से आता है वह चैन से अपना जीवनयापन करते हुए इन गरीब किसानों का शोषण कर रहा है। चारों ओर से पीड़ित-शोषित देश का 'अन्नदाता' आज भी भूखा है। तन ढकने के लिए उसके पास ठीक तरह से कपड़ा तक नहीं है। ऐसे भूखे, नंगे, शोषित, पीड़ित तथा दु:ख को ही अपना 'भाग्य' मानकर चलने वाले किसानों के जीवन का प्रतिबिंब प्राचीनकाल से ही साहित्य में चित्रित हुआ है। तुलसी अपने 'राम-राज्य' में 'खेती न किसान को' वाली बात कहकर किसानों की दयनीय दशा को व्यक्त करते हुए दिखाई देते हैं। 'राम-राज्य' के समय से या उसके पूर्व से चली आ रही किसानों की शोषण की 'कथा' 21वीं सदी में भी ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होंगी कि 21वीं सदी में किसानों की हालत इतनी अधिक बिगड़ गई है कि वे 'आत्महत्या' तक कर रहे हैं। जो किसान 'आत्महत्या' करने से घबराते हैं वे आज किसानी छोड़ने पर मजबूर हो रहे हैं। किसानी करने के बजाय वे मजदूर बनकर एक वक्त की रोटी ही सही, पर सुखपूर्वक खाने की अभिलाषा रखते हैं। यह बात 'कृषि संस्कृति' कहे जानेवाले देश के लिए विचारणीय है जहाँ–'उत्तम कृषि, मध्यम बान। अधम चाकरी, भीख निदान।' जैसे आदर्शों को लेकर जीवन जीने के सिद्धांत गढ़े जाते रहे हैं।

2010-11 की कृषि जनगणना के आँकड़ों के आधार पर महाराष्ट्र में 1 करोड़ 36 लाख लोग खेती कर रहे थे। ताजा जनगणना में यह संख्या 1 करोड़ 35 लाख हो गई है। अर्थात् पिछले पाँच वर्षों में महाराष्ट्र में एक लाख किसान खेती छोड़ चुके हैं। विगत दस सालों के आँकड़ों के आधार पर खेती-बाड़ी छोड़नेवाले ये दो लाख किसान सरकारी कर्मचारी नहीं बने होंगे, ना ही इन लोगों ने कोई नया उद्योग शुरू किया होगा। महाराष्ट्र में ये किसान खेती त्यागकर या तो खेत-मजदूर बने होंगे या फिर मजदूर। प्रतिनिधिक रूप से महाराष्ट्र के किसानों की यह 'व्यथा-कथा' संपूर्ण देश का हाल बयान करती है। खेती से किसानों के पलायन करने के और भी कई कारण हो सकते है। जैसे–जमीन का बँटवारा, कृषि-योग्य भूमि का कम हो जाना, विभिन्न योजनाओं के

लिए भूमि अधिग्रहण तथा सबसे महत्त्वपूर्ण कारण लगातार बढ़ता कर्ज आदि। खेती करने के लिए मेहनत के साथ-साथ धन भी महत्त्वपूर्ण एक 'वस्तु' है। धन के अभाव में खेती करना असंभव है। किसानों को बीज खरीदने से लेकर, फसल काटने तक धन की आवश्यता होती है। इस धन की पूर्ति हेतु उन्हें कर्ज लेना पड़ता है। इस कर्ज से उत्पन्न ब्याज को चुकाते-चुकाते उसकी जिंदगी खत्म हो जाती है, परंतु लिया हुआ कर्ज खत्म नहीं होता। कर्ज के इस 'चक्रव्यूह' से छुटकारा पाने हेतु आज के किसानों के पास दो ही रास्ते बचे हैं—एक, आत्म-हत्या और दूसरा, खेती से पलायन। किसानों के मन-मस्तिष्क में विराजमान इसी सोच को प्रेमचंद ने अपनी कहानी 'पूस की रात' में यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है।

हिंदी कथासाहित्य में प्रेमचंद किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। उपन्यास क्षेत्र में वे जितने महान हैं, उससे भी कई अधिक मात्रा में कहानी क्षेत्र में उनका महत्त्व अबाधित है। आदर्शोंमुखी यथार्थवादी परंपरा के प्रतिष्ठापक प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में दबे-कुचले एवं निम्नस्तर के समाज का चित्रण अत्यंत मर्मस्पर्शी ढंग से किया है। इसी निम्नस्तर में जीवन जीनेवाला एक प्रमुख वर्ग है, जिसे हम सब 'किसान' के नाम से जानते हैं। इस किसान वर्ग की दशा, उसकी समस्याएँ आदि विषयों को लेकर प्रेमचंद ने कहानी एवं उपन्यास विधा के माध्यम से बखूबी ढंग से लिखा है। किसान जीवन का महाकाव्य कहा जानेवाला 'गोदान' उपन्यास किसानों के जीवनचर्या पर प्रकाश डालता है। 'गोदान' उपन्यास की तरह प्रेमचंद ने अनेक कहानियों का लेखन किया, जिनमें किसानों के जीवन का चित्र अंकित है। किसान जीवन की 'कथा' सुनानेवाली प्रेमचंद की एक कहानी है—'पूस की रात'। यह कहानी 20वीं सदी के प्रारंभ में लिखी गई थी।

कहानी की शुरुआत पारंपरिक कथा-शैली अर्थात् कथा-सुनानेवाली शैली के निर्वाहन किए बगैर ही एक 'सूचना' के माध्यम से होती है। इसे प्रेमचंद द्वारा कहानी आरंभ का एक नया प्रयोग माना गया है—'हल्कू ने आकर स्त्री से कहा—सहना आया है, लाओ, जो रुपए रखे हैं, उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे।' इतनी-सी सूचना 'पूस की रात' कहानी की बुनियाद है। इसी एक 'सूचना' पर प्रस्तुत कहानी की इमारत खड़ी कर पाने में प्रेमचंद सफल हुए हैं। 'पूस की रात' कहानी को दो भागों में विभाजित कर देखा जाए तो कथानायक 'हल्कू' जो एक किसान है वह अपनी पत्नी मुन्नी के साथ अत्यंत गरीबी में जीवन जीता है। कहानी के पहले भाग में प्रेमचंद जी ने हल्कू की आर्थिक दशा को चित्रित किया है। किसानी से उसका गुजारा नहीं होता तो दोनों पति-पत्नी दूसरों की खेतों पर मजदूरी का काम करते हुए पाई-पाई इकट्ठा करके तीन रुपए जमा करते हैं। यह तीन रुपए उनकी जीवनभर की पूँजी है। इन तीन रुपयों से वे एक कंबल खरीदना चाहते हैं, जिससे आनेवाले पूस माह की ठंड से बचा जा सके। हल्कू की इतनी छोटी-सी अभिलाषा भी पूरी नहीं हो पाती। क्योंकि सहना द्वारा लिए गए कर्ज की किश्त चुकाने में तीन रुपए खर्च हो जाते हैं। इस घटना से यह पता चलता है कि आज हमने भले ही धरती से चाँद तक की यात्रा पूरी कर ली हो या अंतरिक्ष में दूसरी 'पृथ्वी' खोज निकाली हो, परंतु देश का 'अन्नदाता' जो सारी दुनिया का पेट भरता है, वह आज भी गरीबी और तंगहाली में जीवन जी रहा है। उसकी किसी को भी फिक्र नहीं है। हल्कू ठंड से बचने के लिए वह एक कंबल तक का इंतजाम नहीं कर पाता है। अपनी इस दीन-हीन, असहाय अवस्था को देखकर मुन्नी हल्कू को किसानी छोड़ने की सलाह देती है। मुन्नी द्वारा हल्कू को इस तरह की सलाह देने के लिए कई स्थितियाँ

कारणीभूत हैं। खेती करने से इतना भी उपार्जन नहीं होता कि सुख से एक वक्त भी भरपेट रोटी खा सकें। खेती से उपजी फसल का सारा पैसा कर्ज चुकाने में चला जाता है, तो ऐसी खेती करने से क्या लाभ? आज भी किसानों के सामने ऐसी कई परिस्थितियाँ हैं जो उन्हें खेती छोड़ने पर मजबूर करती हैं।

'पूस की रात' कहानी को लिखे हुए आज सौ सालों से भी ज्यादा समय गुजर चुका है। प्रेमचंद जब यह कहानी लिख रहे थे उस समय देश पर अँग्रेजों का शासन था। उसके साथ-साथ कई प्रांतीय शासक भी थे जो देश की जनता पर 'राज' कर रहे थे। ऐसी द्वैत शासन-प्रणाली में देश की गरीब जनता दुःख झेल रही थी। बिहारी की काव्य-पंक्तियाँ इस दशा को सटीक ढंग से व्यक्त करती हैं–'दुसह दुराज प्रजानु कौ क्यों न बढ़े देख दुंद/अधिक अँधेरो जग करै मिलि मावस रवि चंद।'

अँग्रेजी राज के दौरान भारतीय किसानों की हालत उक्त पंक्तियों के माध्यम से स्पष्ट हो जाती है। देश पर शासन भले ही अँग्रेजों का था, परंतु किसानों पर हुकूमत करनेवाले थे–जमींदार और उनके सेवक। इसी सच्चाई के दर्शन 'पूस की रात' कहानी में प्रेमचंद ने करवाए हैं। कहानी का पात्र सहना इसी द्वैत शासन-प्रणाली का एक हिस्सा है। उसके 'भय' के कारण मुन्नी-हल्कू कंबल के लिए जमा किए गए पैसे सहना का देकर अपना गला छुड़ा लेते हैं। इस तरह किसानों की आर्थिक दशा तथा शासन तंत्र द्वारा उनके हो रहे शोषण का चित्रण कहानी के प्रथम भाग में हुआ है।

कहानी के दूसरे हिस्से में पूस के माह का चित्रण हुआ है। पहले हिस्से में जहाँ कहानी की पृष्ठभूमि रची गई है वहीं दूसरे हिस्से में कहानी की केंद्रीय कथा, जो कि शीर्षक को सार्थक सिद्ध करती है, प्रस्तुत की गई है। पूस की अँधेरी रात में ठंड के प्रकोप को चित्रित करने के लिए लेखक ने प्राकृतिक उपादानों का मानवीकरण किया है। जैसे–'आकाश के तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। मानो तारे भी कोई इंसान या जंतु हो।' ऐसी भयानक खून जमा देनेवाली ठंड में हल्कू, जो देश के गरीब किसानों का प्रतिनिधित्व करता है, जबरा नामक कुत्ते के साथ कड़ी ठंड में अपनी पकी हुई फसल की जंगली जानवरों से रक्षा कर रहा है। पशुओं का कृषि संस्कृति में रागात्मक तथा अपनत्व का रिश्ता होता है। मनुष्य और पशुओं के पारस्परिक प्रेमपूर्ण संबंध को लेखक ने हल्कू और जबरा के माध्यम से चित्रित किया है। हल्कू को इस ठंड में अपने साथ-साथ जबरा की भी चिंता है। जबरा के साथ हल्कू अपने मन की व्यथा को व्यक्त करता है। हल्कू और जबरा के इस संवाद के माध्यम से लेखक ने सामाजिक वैषम्य, अमीर-गरीब भेद, किसानों की दुरावस्था तथा शोषणमूलक संरचना पर व्यंग्य किया है। मेहनत-मजदूरी कर करोड़ों लोगों का पेट भरनेवाले किसान ठंड में सिकुड़ रहे हैं तो दूसरी ओर किसानों की मेहनत की 'मलाई' खाकर धनवान बना पूँजीपति समाज मोटे-मोटे गद्दे-कंबल ओढ़कर चैन की नींद सो रहा है। हल्कू इसे 'तकदीर की खूबी' मानते हुए व्यंग्य करता है कि 'मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें।' हल्कू के माध्यम से प्रेमचंद द्वारा उठाया गया यह प्रश्न सच में 'भाग्य का खेल' है? या आज का हमारा किसान इस शोषणमूलक व्यवस्था का शिकार है? पाठकों को विचार करने पर मजबूर करता है। इसी शोषणमूलक व्यवस्था के चलते हल्कू में खेती से बेगानेपन का रिश्ता बनने लगता है। इसका अर्थ यह नहीं की हल्कू 'घीसू-माधव' की तरह श्रम करने से बचना चाहता है। हल्कू एक

श्रमशील किसान है, परंतु इस व्यवस्था ने उसके श्रम को उचित 'मूल्य' न दे पाने के कारण तथा 'श्रम करे कोई और मजा लूटें दूसरे' इस उक्ति के चलते हल्कू के मन में खेती से बेगानेपन की भावना उत्पन्न होने लगती है। इसी भावना को मूर्त रूप देकर हल्कू किसान से मजदूर बनने का निर्णय करता है। अपने इस निर्णय पर वह अंतिम मोहर तब लगाता है, जब रात में जंगली पशु उसकी फसल नष्ट कर रहे होते हैं। यह देखकर भी वह पशुओं को भगाने नहीं जाता। लेखक के शब्दों में, 'अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारों तरफ से जकड़ रखा था।' अब यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि हल्कू की अकर्मण्यता का कारण क्या सिर्फ ठंड थी? 'ठंड' सिर्फ बाहरी कारण था, जो गौण है। असली कारण तो आंतरिक था, जिसमें हल्कू को अपनी खेती का लाभ नहीं मिलने वाला था। खेती में उपजी फसल कर्ज चुकाने में ही जानेवाली थी। इस प्रसंग में अर्थशास्त्र का सिद्धांत कार्य करता है। सिद्धांत कहता है, अगर किसी व्यक्ति को उसके काम का उचित मूल्य नहीं मिलता तो उस काम के प्रति व्यक्ति के मन में बेगानेपन का भाव उत्पन्न होता है। हल्कू के 'अकर्मण्यता' के पीछे भी यही कारण है।

कथासम्राट प्रेमचंद की 20वीं सदी में लिखी 'पूस की रात' कहानी की प्रासंगिकता आज 21वीं सदी में भी बरकरार है। इन सौ वर्षों के समय में इंसान ने मोबाइल और इंटरनेट के जरिए दुनिया को अपनी मुट्ठी में कर लिया है। आज सारा विश्व एक 'ग्लोबल गाँव' बन गया है। इस ग्लोबल गाँव में रहनेवाले व्यक्ति इतना निकट आए हैं कि एक-दूसरे से कुछ ही पल में संवाद स्थापित कर पाते हैं परंतु तरक्की की इस होड़ में इंसान दुनिया के साथ नहीं उससे आगे निकल जाना चाहता है। इस कारण वह यह भूल गया है कि दुनिया के किसी कोने में एक वर्ग ऐसा भी है जो सारी दुनिया का पेट भरता है परंतु खुद तंगहाली में जीवन जी रहा है। आज का 'हल्कू' सेठ, साहूकारों के साथ-साथ बैंकों से कर्जा लेता है, मौसम द्वारा सताया जाता है। कभी सूखा तो कभी ओला आदि की मार सहते हुए खेती करता है। 21वीं सदी का 'हल्कू' जंगली जानवरों से अपनी फसल की रक्षा के लिए पारंपरिक साधनों जैसे डिब्बा बजाना, मचान पर चढ़कर पशु-पक्षियों को भगाना आदि प्रयोग करता है तथा रात में 'जबरा' के साथ अपने खेती की रक्षा करता है। हमने विज्ञान की सहायता से चाँद पर कदम रखे, हाइड्रोजन बम तथा अनेक मिसाइलें बनाईं, परंतु खेती को जंगली जानवरों से बचाने का सस्ता उपाय नहीं ढूँढ पाए। बिजली के बाड़ लगवाने की 'स्थिति' आज के 'हल्कू' में नहीं है। उसे आज भी रात को फसलों की पहरेदारी करने जाना ही पड़ता है। इतनी सारी विपदाओं से संघर्ष करता हुआ किसान अंत में अपनी ही फसल पर अपना ही अधिकार भी नहीं रख पाता। उसकी फसल का बड़ा हिस्सा सेठ-साहूकार ले जाते हैं या बैंकों के किश्त चुकाने में चला जाता है। आखिर में किसान के 'भाग्य' में बचता है, दारिद्रय। इसी दारिद्रय, कष्टों से छुटकारा पाने के लिए, दो वक्त की रोटी सुख से खाने की अभिलाषा से प्रेमचंद के हल्कू के साथ-साथ आज का किसान भी खेती छोड़ मजदूरी करने पर विवश है। प्रेमचंद के हल्कू की व्यथा-कथा आज देश के अधिकतर किसानों की कर्म-कथा बन चुकी है।

ए 4, संजयनगर (जिन्सी)
औरंगाबाद 431001, **(महाराष्ट्र)**
dattafan@gmail.com

ISSN 0975-735X

प्रवासी जीवन की संवेदनाओं को अभिव्यक्त करती हिंदी गजल

सुनीलकुमार
शोधछात्र हिंदी
महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड
विश्वविद्यालय, बरेली (उ॰प्र॰)

साहित्य विचार, चेतना और संवेदनात्मक अनुभूतियों की परस्पर आबद्ध अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम रहा है। चेतना की अनुपस्थिति में विवेक का अस्तित्व समाप्त हो जाता है तथा चिंतन सही-गलत का निर्णय करने की स्थिति में नहीं रह पाता। इस दृष्टि से साहित्य के लिए चेतना सम्पन्न दृष्टि नितांत अपरिहार्य है। चेतना-चिंतन के मिश्रण से ऐसे विचारों की उत्पत्ति हो पाती है जिनकी अभिव्यक्ति साहित्य की विभिन्न विधाओं एवं रचनाओं के रूप में हमारे सामने आती है। चेतना विस्तार को किसी सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता है वे सीमाएँ चाहे फिर किसी सम्प्रदाय, वर्ग, जाति, धर्म आदि की हो अथवा देश की। देश की सीमाओं के पार से आ रही इन्हीं संवेदनात्मक चेतना एवं चिंतन की साहित्यिक अभिव्यक्तियों को आजकल 'प्रवासी साहित्य' की संज्ञा से अभिहीत किया जाने लगा है।

प्रवासी साहित्य के स्वरूप एवं उसके विविध संवेदनात्मक आयामों को हिंदी गजल के माध्यम से विश्लेषित करने से पूर्व एक संक्षिप्त दृष्टिपात 'प्रवासी साहित्य' पर कर लेना भी उचित ही जान पड़ता है, जिससे उसकी संवेदनात्मक पृ॰भूमि को समझ पाना सहज रहेगा। 'प्रवासी' शब्द 'प्रवास' शब्द का विशेषण है "जो 'वस' धातु में 'प्र' उपसर्ग लगने से बनता है। 'वस' धातु का प्रयोग का अर्थ 'रहने से' है। 'प्र' उपसर्ग लग जाने से इसका अर्थ बदल जाता है। 'प्रवास' शब्द का अर्थ है: विदेश गमन, विदेश यात्रा, घर पर न रहना। किसी दूसरे देश या बेगानी धरती पर वास करने वाला व्यक्ति प्रवासी है।"

'प्रवासी शब्द भी अपनी एक सुदीर्घ यात्रा तय करता आया है इसके अर्थ एवं स्वरूप को लेकर विभिन्न समय व देशकाल में परिवर्तन होता आया है। सामान्य रूप से किसी भी कारण से अपना देश छोड़कर प्रदेश में वास करनेवाले व्यक्ति के लिए 'प्रवासी' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यहाँ प्रवासी के साथ-साथ प्रचलित 'अप्रवासी' 'आप्रवासी' शब्दों को भी समझ लेना उचित जान पड़ता है। डॉ॰ कृष्णकुमार इस संदर्भ में लिखते हैं–'प्रवास एवं इसके विभिन्न स्वरूपों के साथ अनेकानेक भ्रांतियाँ फैल चुकी है, यहाँ तक की इसके सही और व्यापक अर्थ को सीमित कर अब केवल 'विदेश में रहनेवालों को ही' प्रवासी समझा जाने लगा है। कुछ साहित्यकार बन्धुओं के अनुसार गलत होते हुए भी प्रवासी शब्द का यह अर्थ अब रूढ़ हो गया है। दुख व डर दोनों है कि किस प्रकार गलत चीजों को सही मानकर लोग चलने लगते है। 'प्रवास' के स्थान पर अप्रवास या प्रवासी के स्थान पर अप्रवासी शब्द का प्रयोग। इनका कोई अस्तित्व है ही नहीं, न शब्द कोशो में ही पाए जाते है।'

'प्रवासी के साथ-साथ प्रचलित इन 'अप्रवासी' व 'आप्रवासी' शब्दों के भ्रम को समझ लेना भी आवश्यक है। हिंदी में 'प्र' उपसर्ग का प्रयोग विशेषता का द्योतक है। जैसे प्रबल-विशेष बल, प्रदान-विशेष दान इसी क्रम में 'वास' का अर्थ हुआ रहना तथा 'प्र' उपसर्ग लगाने से बने 'प्रवासी' का अर्थ हुआ विशेष प्रकार का वासी। 'अप्रवासी' शब्द भ्रांतिपूर्ण है, क्योंकि हिंदी में 'अ' उपसर्ग का प्रयोग नकारात्मक या विलोम अर्थ को ध्वनित करता है जैसे सफल से असफल, संतोष से असंतोष आदि। इस दृष्टि से अप्रवासी का अर्थ तो हुआ जो प्रवास में न हो। वस्तुतः यहाँ उचित शब्द अप्रवासी है ही नहीं, यह शब्द 'आप्रवासी' है। 'आप्रवासी' शब्द नकारात्मक नहीं है। यह आ प्रत्यय तो 'से', 'तक' यह पूर्णता के भाव को अभिव्यक्त करता है। जैसे 'आजन्म' में 'से' का भाव, आमरण में 'तक' का भाव। अर्थात आप्रवासी यानी पूर्ण रूप से प्रवासी।...जो कुछ समय के लिए विदेश जाते है वह तो प्रवासी हुए, पर जो सदा के लिए वही रह गए, वे आप्रवासी हुए। पर जनसामान्य प्रत्यय और उपसर्ग आदि झंझटों में कहाँ पड़ता है उसे प्रवासी अच्छा लगा तो सरकार को भी प्रवासी दिवस घोषित करना पड़ता है।'

भाषिक दृष्टि से देखे तो 'आप्रवासी' शब्द सही अर्थ को ध्वनित करता है, किंतु जनसामान्य में भाषा प्रयोग सरलता की ओर आकृष्ट रहता है तदनुरूप 'प्रवासी शब्द ही अधिक प्रचलन में रहा है। वस्तुतः भारतीय प्रवासियों की स्थितियों एवं उनके प्रवासी होने के स्वरूप में पर्याप्त विभिन्नताएँ है। भारतीयों का प्रवास भी कई चरणों एवं रूपों में हुआ है, जिसे मुख्य रूप से चार रूपों में समझा जा सकता है। प्रथम चरण के प्रवास की शुरुआत ब्रिटिश उपनिवेश के समय 1830 ई॰ के लगभग हुई, जब भारतीयों को गिरमिटिया मजदूर के रूप में फिजी, मारीशस, त्रिडिनाड, गुआना, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में ले जाया गया। इनमें अधिकतर पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार व बंगाल के निवासी थे। ये गरीब अशिक्षित थे किंतु वे अपने साथ भारतीय संस्कृति, मूल्यों, अपनी भाषा को भी ले गए और उसे कई पीढ़ी बीत जाने पर भी आज तक सँजोए हुए हैं। 'दूसरे चरण का प्रवास बीसवीं शताब्दी के मध्य से माना जाता है, जब भारतीयों ने विकसित देशों जैसे ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैंड की ओर प्रवास किया। इस चरण में प्रवास करनेवाले भारतीय शहरी मध्य वर्ग से थे और अच्छे-पढ़े-लिखे पेशवर थे। तीसरे चरण का प्रवास 1970 ई॰ के आस-पास प्रारंभ हुआ। इस चरण में मुख्यतः सऊदी अरब, कुवैत, यूनाइटेड अरब अमीरात, बहरीन, कतर तथा लीबिया आदि देशों में हुआ।' चौथे चरण का प्रवास भूमंडलीकरण के फलस्वरूप भारत के उच्च शैक्षणिक संस्थानों आई॰आई॰टी॰ और आई॰आई॰एम॰ से पढ़े-लिखे, उच्च शिक्षित लोगों का दुनिया के विभिन्न विकसित विकासशील देशों की ओर हुआ। प्रशासनिक दृष्टि से प्रवासी भारतीयों को तीन मुख्य श्रेणियों में रखा गया है–'प्रथम श्रेणी एन॰आर॰आई॰ (Non Resident Indian) या अनिवासी भारतीय की है, जिनके पास भारतीय नागरिकता है तथा उसी के पासपोर्ट पर वे व्यवसाय, रोजगार एवं व्यापार के लिए भारतभूमि से दूर 182 दिनों से अधिक समय से किसी विदेशी भूमि पर अपना निवास-स्थान बनाए हुए हैं अथवा अन्य परिस्थितियों के चलते विदेशों में अनिश्चित अवधी तक निवास कर रहे है। दूसरी श्रेणी में पी॰आई॰ओ (Person fo Indian Origin) अर्थात् जिन्हें भारतीय मूल के व्यक्ति की संज्ञा प्रदान की गई है। इसमें वे व्यक्ति आते हैं, जो पहले भारतीय पासपोर्ट पर विदेश गए और फिर वहाँ की नागरिकता ग्रहण कर ली। इसके अंतर्गत वे भारतीय भी सम्मिलित किए जाते हैं, जिनके

ISSN 0975-735X

माता-पिता दादा-दादी या इनमें से कोई भी पहले भारतीय नागरिक रहा हो। तीसरे श्रेणी ओ॰सी॰आई॰ (Oversies Citizen fo India) की है, जिसमें उन भारतीयों को सम्मिलित किया जाता है, जिन्हें 26 जनवरी 1950 को भारतीय नागरिकता प्राप्त थी और वे विदेशों में जाकर बस गए। यह योजना 2 दिसंबर 2005 को लागू की गई थी। इन भारतीयों को पासपोर्ट के साथ अपना ओ॰सी॰आई॰ कार्ड रखना होता है, जिसके तहत विदेशी नागरिकता प्राप्त करने पर भी उसे भारत में आने के लिए वीजा लेने की आवश्यकता नहीं रहती।

अस्तु प्रवासी साहित्य के स्वरूप एवं संवेदना को समझने के पूर्व उसकी पृष्ठभूमि का एक विहंगम अवलोकन अपरिहार्य-सा प्रतीत होता है, क्योंकि इसी के आलोक में हम उसे भली-भाँति विश्लेषित करने का प्रयास कर सकते है। 'प्रवासी साहित्य' को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ विशाला शर्मा लिखती है–'प्रवासी साहित्य हिंदी साहित्य की एक धारा है और नवयुग का साहित्यिक विमर्श है और इसकी खास विशेषता है विदेशी भूमि पर बैठकर लिखने के बाद भी इसमें देशीपन है और इस बात का द्योतक है कि परायी संस्कृति और समाज के बीच रहकर हम अपनी मातृभूमि को नहीं भूलते।'

प्रसिद्ध कथाकार, आलोचक, चिंतक डॉ॰ रामदरश मिश्र ने अक्षरम् संगोष्ठी में प्रवासी साहित्य के संदर्भ में कहा था कि प्रवासी साहित्य ने हिंदी को नयी जमीन दी है और हमारे साहित्य का दायरा दलित-विमर्श और स्त्री-विमर्श की तरह ही विस्तृत किया है। इस रूप में उत्तर आधुनिकता के फलस्वरूप अस्तित्व में आए विभिन्न विमर्शमूलक साहित्यिक धाराओं–स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, वृद्ध-विमर्श, पर्यावरण-विमर्श, किसान-विमर्श, आदिवासी-विमर्श आदि में प्रवासी विमर्श भी चर्चा परिचर्चा, संगोष्ठियों का विषय बना हुआ है। कई बार कुछ विद्वान व प्रवासी साहित्यकार इस पृथक् पहचान व धारा पर आपत्ति भी उठाते हैं। उनका आग्रह रहता है कि साहित्य तो साहित्य है, उसे विभिन्न वर्गों में बाँटकर नहीं देखा जाना चाहिए। इसका उत्तर देते हुए प्रो॰ कृष्ण किशोर गोस्वामी लिखते है–'लेकिन यह पूरी तरह ठीक नहीं है। प्रवासी साहित्य और भारतीय साहित्य में बुनियादी फर्क यह है कि भारतीय साहित्य विदेशों को कल्पना के आधार पर देखता है और प्रवासी साहित्य यथार्थ के धरातल पर विवेचना करता है। भारतीयों के संघर्ष और उनके मनोविज्ञान को जितनी प्रमाणिकता के साथ प्रवासी साहित्य प्रस्तुत करता है, उतनी प्रमाणिकता के साथ भारतीय साहित्य प्रस्तुत नहीं कर सकता। साहित्य अनुभूति की कोख से जन्म लेता है और प्रवासी साहित्य में अनुभूतियों तथा भोगा हुआ यथार्थ दृष्टव्य भी होता है।'

प्रवासी साहित्य इन्हीं अनुभूतियों और भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति दशकों से करता आ रहा है किंतु सूचना व संचार तकनीकी की क्रांति के फलस्वरूप आज उसके संचरण, प्रचार-प्रसार को व्यापक गति प्राप्त हुई है। प्रवासी साहित्य की अभिव्यक्ति काव्य, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, नाटक, यात्रावृतांत आदि विभिन्न विधाओं में प्रचुर मात्रा में हुई है किंतु गजल के रूप में उसकी संवेदनाओं का प्रस्फुटन भूमंडलीकरण उदारीकरण के विस्तार के चलते पिछले दो-तीन दशकों में ही उभरकर आना प्रारंभ हुआ है। वस्तुत: देश-विदेशों में हिंदी कविता, गीत, गजल एवं कवि सम्मेलनों-मुशायरों के आयोजनों के चलते प्रवासी साहित्यकारों का ध्यान भी हिंदी गजल के माध्यम से अपनी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति की ओर आकृष्ट हुआ। गजल काव्य की एक छंदबद्ध एवं अनुशासित विधा है, जिसे उसके उसी स्वरूप में अपनाने की चुनौती एक साहित्यकार के

सम्मुख सदैव बनी रहती है। मुक्तक काव्य की विधा होने के चलते मात्र दो पंक्ति के शेर में अपनी बात इस अंदाज से कहना कि सामने वाला अचंभित-सा विमुग्ध खड़ा रह जाए, गजलकार के लिए एक लंबी मानसिक सृजनात्मक प्रक्रिया से गुजरना आवश्यक बना देता है। 'रघुपति सहाय फिराक की दृष्टि में गजल 'असंबद्ध कविता है' इस बात पर कुछ लोगों को आपत्ति भी है कि असंबद्ध शे'रो को एक ही कविता में क्यों रखा जाए, लेकिन अर्थ की दृष्टि से असंबद्ध शे'र भी एक ही काफिए-रदीफ में बँधे होने और एक छंद में कहे जाने के कारण एक ध्वन्यात्मक वातावरण की सृष्टि कर देते हैं। जिसमें विभिन्न शेरों का अर्थ अच्छी तरह उभरकर आता है।'

इस दृष्टि से प्रवासी साहित्य में हिंदी गजल भी अब अभिव्यक्ति का एक महत्त्वपूर्ण रूप बनकर उभर रही है। प्रवासी काव्यप्रेमी साहित्यकारों की एक पीढ़ी धीरे-धीरे हिंदी गजल को भी अपनी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने के प्रति आकृष्ट हुए है। देवी नागरानी, भारतेंदु विमल, सोहन राही, प्राण शर्मा, महावीर शर्मा, डॉ॰ अंजना संधीर आदि बहुत से प्रवासी हिंदी गजलकारों की एक पूरी जमात है, जो गजल के अंदाज-ए-बयाँ को अपनाकर अपने जीवन के अनुभवों, संवेदनाओं को शेरों में ढालकर कहने में सृजनरत है। उनके विषय में ज्यादा कुछ कहने से बेहतर होगा कि हम मूल विषय 'प्रवासी हिंदी गजल में अभिव्यक्त संवेदनाओं के विविध आयामों' पर अपना ध्यान केंद्रित करें। प्रवासी साहित्य के विषय में प्रो॰ कृष्णकिशोर गोस्वामी द्वारा अपने लेख 'प्रवासी हिंदी साहित्य : अस्मिता की चुनौतियाँ' में कहा गया कथन सत्य प्रतीत होता है कि 'यह साहित्य में इन देशों की माटी की गंध, वहाँ की जीवन-शैली के साथ-साथ दो संस्कृतियों के संस्करीकरण एवं आत्मसातीकरण, सांस्कृतिक अलगाव, सामाजिक विच्छेदन, अतीत की स्मृतियों और उत्तर-उपनिवेशिक गाथा का सम्मिश्रण भी दिखाई देता है। इस साहित्य में कही न कहीं इन देशों में बसे प्रवासियों की दुविधा और ऊहापोह की झलक भी मिलती है... लेकिन इस साहित्य की यह विशेषता बताना आवश्यक है इसके लेखक कल्पनालोक में विचरण नहीं करते बल्कि यथार्थ और वास्तविकता का चित्रण करते हैं।'

यद्यपि गजल एक भावात्मक एवं प्रतीकात्मक विधा रही है किंतु प्रो॰ कृष्णकिशोर गोस्वामी का यह कथन प्रवासी हिंदी गजल के संदर्भ में भी सत्य प्रतीत होता है। प्रवासी गजलकारों ने जहाँ अपनी गजलों में अपने प्रेमजनित भावों एवं उनके विभिन्न रूपों को अभिव्यक्त किया है, वहीं अपने समय व समाज की तल्ख सच्चाइयों को भी अपने अशआरों में ढालकर उजागर किया है। महावीर शर्मा परदेश में प्रवासियों के संघर्ष व सपनों को कुछ यूँ बयाँ करते हैं—

सोचा था बयाबान में इक आशियाँ बनाएँ हम
पीछा ना छोड़ा आ गई, ये अपनी ही परछाइयाँ
गुलशन से की थी दोस्ती पर खार दामन में मिले
हर कदम पर अनगिनत मिलती रही रुसवाइयाँ।

ये पंक्तियाँ प्रवासी जीवन में कदम-कदम पर मिलनेवाले संघर्ष तथा चुनौतियाँ के साथ ही वहाँ पर होनेवाले भेदभाव को भी उजागर करती हैं। प्राय: व्यक्ति जब विदेश को प्रस्थान करता है तो उसकी आँखों में वहाँ के बड़े रंगीन सपने समाएँ होते हैं किंतु वहाँ जाकर वह जब कठोर यथार्थ की भूमि पर कदम रखता है तो एक अलग ही दुनिया से दो-चार होना पड़ता है। भारतेंदु विमल प्रवासियों के इस इम्तहाँ को कुछ इस तरह बयाँ करते हैं—

आज मेरी जिंदगी का है ये केसा इम्तिहाँ
मेरी मंजिल पूछती है तेरी मंजिल है कहाँ
रात भर जागा सुबह से हो रही है गुप्तगूँ
अब परिंदे भी समझने लग गए मेरी जबाँ
गर सितारे तोड़कर लाने की होती शर्त तो
मान भी लेते मगर वो माँगते है कहकशाँ।

निश्चय ही परदेश में जिंदगी कदम-कदम पर व्यक्ति की परीक्षा लेती है। वहाँ की रात भर जागने की जीवन-शैली और उस पर कहकशाँ लगाने की शर्त को शायर ने सितारे तोड़कर लाने से भी दुष्कर बात माना है। प्रवास में मिलने वाले तिरस्कार एवं भेदभाव का पीड़ा को भी खामोशी से सहना पड़ता है। देवी नागरानी प्रवासियों की इस पीड़ा को कुछ यूँ अपने शेरों में ढालती हैं–

न जाने रोज कितनी बेबसी बर्दाश्त करते हैं।
अगर सच पूछिए तो जिंदगी बर्दाश्त करते हैं।
बड़े बेबस परिंदे हैं कि उनके पर कतरने पर
सितमरानी भी ये सैयाद की बर्दाश्त करते हैं।

प्रवासी साहित्य में प्रवास के संघर्ष के साथ-साथ जिस बिंदु को मुख्य रूप से चित्रित किया जाता है, वह है अपने छूटे हुए देश, संबंधों, घर, परिवार के प्रति स्मृतिबोध। डॉ॰ विशाला शर्मा इस संदर्भ में अपने लेख 'प्रवासी विमर्श और सुषुम वेदी का उपन्यास' में लिखती हैं–'पराए देश में जाकर उनकी सभ्यता और संस्कृति के साथ तालमेल बैठाना सरल नहीं होता। ऐसे में प्रवास कर विदेश गया व्यक्ति नास्टेल्जिया का शिकार हो जाता है अर्थात् अपने घर, राष्ट्र या राष्ट्र के प्रति एक मोहाविष्ट स्थिति।'

प्रवासी हिंदी गजलकार भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। प्राय: सभी गजलकारों में इस स्मृतिदंश की पीड़ा और मोह की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। न केवल कुछ शेरों में बल्कि कई जगह तो पूरी-पूरी गजल ही इस मोहाविष्ट स्थिति को लिए है। सोहन राही कहते हैं–

समुंदर पार कर के अब परिंदे घर नहीं आते
अगर वापस भी आते हैं तो लेकर पर नहीं आते
सुनहरी धूप की चादर वो पूरे चाँद की रातें
हम उनमें कैद रहते हैं कभी बाहर नहीं आते।

महावीर शर्मा की एक पूरी गजल ही इस पीड़ा को व्यक्त करती है–

जब वतन छोड़ा सभी अपने पराए हो गए
आँधी कुछ ऐसी चली नक्शे-कदम भी खो गए।
खो गई वो सौंधी-सौंधी देश की मिट्टी कहाँ?
वो शबे-महताब दरिया के किनारे खो गए।
दोस्त लड़ते थे कभी तो फिर मनाते प्यार से
आज क्यों उनके बिना ये चश्म पुरनम हो गए।
हर तरफ ही शोर है, ये महफिले-शेरो-सुखन
अजनबी इस भीड़ में फिर भी अकेले हो गए।

प्रसिद्ध प्रवासी गजलकार प्राण शर्मा भी इस स्मृतिदंश को कुछ यूँ बयाँ करते हैं–

हरी धरती खुले-नीले गगन को छोड़ आया हूँ।
कि कुछ सिक्कों की खातिर मैं वतन को छोड़ आया
हूँ।
विदेशी भूमि पर माना लिए फिरता हूँ तन लेकिन
वतन की सौंधी मिट्टी में मैं मन को छोड़ आया हूँ।
पराये घर में कब मिलता है अपने घर के जैसा सुख
मगर मैं हूँ कि घर के चैन-धन को छोड़ आया हूँ।
कोई हमदर्द था अपना कोई था चाहने वाला
हृदय के पास बसते हमवतन को छोड़ आया हूँ।

डॉ॰ अंजना संधीर की गजलों में भी इसकी एक बानगी देखिए–

निकले गुलशन से तो गुलशन को बहुत याद किया,
धूप को, छाँव को, आँगन को बहुत याद किया।
जिक्र छेड़ा कभी सखियों ने जो झूलों का यहाँ,
हमने परदेस में सावन को बहुत याद किया।
उसके साये में मुझे चैन से नींद आती थी,
मैंने ऐ माँ तेरे दामन को बहुत याद किया।

कदाचित प्रवासी साहित्य वह चाहे गद्यात्मक हो अथवा काव्यात्मक, अपनी मातृभूमि के इस जुड़ाव व उसकी माटी की गंध को पूरी सिद्दत के साथ महसूस करता और अभिव्यक्ति प्रदान करता है। राजेंद्र यादव ने प्रवासी साहित्य को 'संस्कृतियों के संगम की खूबसूरत कथाएँ' कहा है हालाँकि यह साहित्य संस्कृतियों का संगम-मात्र ही नहीं है, बल्कि कई अर्थों में उनकी मुठभेड़ और उससे निकलकर आनेवाले मूल्यों उनकी प्रतिष्ठा का भी साहित्य है। प्रवासी हिंदी गजलकारों ने भी जहाँ एक ओर भारतीय संस्कृति के मूल्यों, परंपराओं त्योहारों को सँजोया है, वहीं अपने प्रवास की धरती की संस्कृति के तत्त्वों का भी सूक्ष्म अन्वेषण किया है। डॉ॰ अंजना संधीर भारतीय संस्कृति व मूल्यों का चित्रण करती हुई कहती हैं–

सच बात गर कहूँ तो बुरा मानते हैं लोग
गाँवों में पनघट की वो जीनत नहीं रही
अब कोई बैठता नहीं पीपल की छाँव में
पीपल की जैसे अब कोई कीमत नहीं रही।

पनघट, पीपल यहाँ भारतीय ग्रामीण संस्कृति की अभिव्यक्ति है, जिसके क्षरण को लेकर शायरा प्रदेश में बैठकर भी अपनी संवेदनाशीलता व्यक्त करती है। देवी नागरानी भारतीय परिवारों में बधाई एवं बसंत के आने का चित्रण कुछ इस प्रकार करती हैं–

बादे-बहार आई, खुशबू-खुमार लाई
खुशियों का है ये मौसम, परिवार को बधाई
भवँरों की गुनगुनाहट कोयल की कूक प्यारी
मदहोश होके जैसे फस्ल-ए-बहार आई।

 ISSN 0975-735X

प्रवासी गजलकारों न केवल भारतीय संस्कृति के मूल्यों, परंपराओं, दृश्यों को अभिव्यक्ति प्रदान की है, अपितु प्रवासी संस्कृति के पर्वों मूल्यों को भी अपने कहन की विषयवस्तु बनाया है। महावीर शर्मा पाश्चात्य संस्कृति के वेलेन्टाइन डे को अपने अशआर में कुछ यूँ बयाँ करते हैं–

ये खास दिन है प्रेमियों का प्यार की बातें करो
कुछ तुम कहो कुछ वो कहे इजहार की बातें करो
ये कीमती-सा हार जो लाये हो वो रख दो कहीं
बाहें गले में डालकर, इस हार की बातें करो।

महावीर शर्मा एक ओर जहाँ पाश्चात्य संस्कृति की बात उठाते हैं, वही भारतीय संस्कृति में अनुभवशील एवं आदर की प्रतीक बुजुर्ग पीढ़ी के महत्त्व को भी रेखांकित करते हैं–

जवाँ जब वक्त की दहलीज पर आसूँ बहाता है
बुढ़ापा जिंदगी को थामकर जीना सिखाता है
कदम जब भी किसी के बहक जाते हैं जवानी में
बुझी-सी जिंदगी में इक नई आशा दिलाता है।

महावीर शर्मा जहाँ वेलेन्टाइन डे के प्रेमपूर्ण खुले वातावरण का चित्रण करते हैं, वहीं प्राण शर्मा इस खुलेपन के प्रति मोहभंग की स्थिति को व्यक्त करते हुए प्रेम के प्रति परंपरागत भारतीय लाज-शर्म की बात उठाते हैं–

आँखों में कुछ तो लाज हो प्यारे
कुछ तो ऐसा समाज हो प्यारे
मन को अच्छा लगे सुधा जैसा
चाहे कोई रिवाज हो प्यारे।

प्रवासी गजलकार जहाँ एक ओर भारतीय मूल्यों व संस्कृति के प्रति आस्था प्रकट करते हैं, वही पाश्चात्य उपभोक्तावादी संस्कृति में आपसी संबंधों में छिजती ऊष्मा, वहाँ के खोखलेपन तथा अति भौतिकवादिता की चकाचौंध के भ्रम को भी अनावृत्त करके रख देते हैं। देवी नागरानी वहाँ के अजनबीपन को कुछ यूँ बयाँ करती हैं–

राज दिल में छिपाए है वो किस कदर
सारी खामोशियों की हदें पार कर
कितने रौशन सभी के है चेहरे यहाँ
मन में उनके बसा है अंधेरा मगर।

भौतिकवादिता के खोखलेपन की एक बानगी और देखिए–

यू तो रौनक हर तरफ है फिर भी दिल लगता नहीं
क्या बताएँ हम किसी को क्या कमी महफिल में है
पूछो उससे बोझ हसरत का लिए फिरता है जो
क्या मजा उस जिंदगी में गुजरी जो किल-किल में है।

प्रवासी गजलकारों ने केवल भावुकतापूर्ण प्रेम-टूटन की ही गजलें नहीं कहीं, अपितु उनकी दृष्टि भारत व देश दुनिया में होनेवाले विभिन्न घटनाक्रमों, मुद्दों पर भी निरंतर बनी रही है। वे एक ओर जहाँ भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था रखते हैं, वहीं दूसरी यहाँ के समाज की

खामियों को उजागर कर देश को आगे बढ़ाने की चिंताओं को भी उजागर करते है। प्राण शर्मा भारतीयों को संबोधित करते हुए कहते हैं–

क्यों कर रहे हो आज तुम उल्टे तमाम काम
तुम बोओगे बबूल तो होंगे कहाँ से आम
जो कौमें एक देश की आपस में लड़ती हैं
वे कौमें घास-फूस की मानिंद सड़ती हैं
ये प्रण करो कि खाओगे रिश्वत कभी नहीं
गिरवी रखोगे देश की किस्मत कभी नहीं।

अस्तु प्रवासी हिंदी गजल में प्रवासी जीवन व उसकी विविध संवेदनाओं के आयामों की मुखर अभिव्यक्ति हुई है। प्रवासी गजलकारों का अनुभव संसार बड़ा विस्तृत तथा बहुआयामी है, जो जीवन की तल्ख सच्चाई को, संपूर्णता के साथ बड़ी सिद्दत से बयाँ करते हैं।

कमलेश्वर ने प्रवासी साहित्य पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि रचना अपने मानदंड खुद तय करती है, इसलिए उसके मानदंड बनाए नहीं जाएँगे। यह बात प्रवासी हिंदी गजल के संदर्भ में भी सत्य प्रतीत होती है। वह गजल किसी बने-बनाए मानदंडों को लेकर नहीं चलती, अपितु इसकी जद में संपूर्ण मानवीय संवेदनाओं के विविध आयाम समाहित हैं, जिन्हें वह विविध रूपों में अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

संदर्भ

1. (सं॰) जाहिदुल दीवान, प्रवासी साहित्य और भारतीय संस्कृति, एकेडमिक पब्लिशिंग नेटवर्क, मंडावली, दिल्ली, पृ॰ 9
2. विश्वंभरा, विश्व हिंदीभाषा लेखक संघ में दिए लेख, 'प्रवासी हिंदी और प्रवासी साहित्य के अंतर्संबंध' 12 दिसंबर, 2012
3. अनिल जोशी, प्रवासी लेखन नयी जमीन नया आसमान, वाणी प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली, पृ॰ 37-38
4. (सं॰) जाहिदुल दीवान, प्रवासी साहित्य और भारतीय संस्कृति, एकेडमिक पब्लिशिंग नेटवर्क, मंडावली, दिल्ली, 92, पृ॰ 16
5. डॉ॰ विशाला शर्मा, त्रैमासिक ई-पत्रिका, अपनी माटी, वर्ष 3, अंक-24, मार्च, 2017
6. गिरीश पंकज, शोध हिंदी वर्ड प्रेस कॉम के लेख 'प्रवासी साहित्य और मानवाधिकार', 23 जनवरी, 2017
7. सरदार मुजावर, हिंदी गजल की नई दिशाएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, पृ॰ 94
8. प्रो॰ कृष्णकिशोर गोस्वामी, 'गर्भनाल' प्रवासी भारतीयों की ई-पत्रिका, 1 नवंबर, 2019
9. महावीर शर्मा, कविता कोश से उद्धृत।
10. भारतेंदु विमल, पुरवाई डोट् कोम इंटरनेट से उद्धृत।
11. देवी नागरानी, दिल से दिल तक, कविता कोश से उद्धृत
12. डॉ॰ विशाला शर्मा, त्रैमासिक ई-पत्रिका, 'अपनी माटी', वर्ष 3, अंक-24, मार्च, 2017
13. सोहन राही, रेख्ता डोट् ओ॰आर॰जी॰ से उद्धृत
14. महावीर शर्मा, कविता कोश से उद्धृत।
15. प्राण शर्मा, कविता कोश से उद्धृत।

16. डॉ॰ अंजना संधीर, संगम, पार्श्व पब्लिशिंग हाउस, पृ॰ 46
17. वही, पृ॰ 339
18. देवी नागरानी, दिल से दिल तक, कविता कोशसे उद्धृत
19. महावीर शर्मा, कविता कोश से उद्धृत।
20. महावीर शर्मा, कविता कोश से उद्धृत।
21. प्राण शर्मा, कविता कोश से उद्धृत।
22. देवी नागरानी, चरागे दिल, सरला प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 68
23. वही, पृ॰ 128
24. प्राण शर्मा, कविता कोश से उद्धृत।

आत्मकथा 'जूठन' के परिप्रेक्ष्य में दलित साहित्य

डॉ॰ लवलीन कौर
सहायक आचार्या, हिंदी विभाग
आर्य कॉलेज, लुधियाना (पंजाब)

सातवें-आठवें दशक की हिंदी आत्मकथाओं में कथ्यगत संवेदना रूपबद्ध और दृष्टि को लेकर गुणात्मक परिवर्तन परिलक्षित होता है। आज की आत्मकथा समग्र परिवेश में फैलकर देश और काल की प्रामाणिक चेतना से पाठकीय संवेदना को झकझोर देती है। समय और समाज की समस्याओं, प्रश्नाकुलताओं, चुनौतियों, अंतविरोधों, विसंगतियों, विदूपताओं और आधुनिक समाज की जटिलताओं, यंत्रणाओं को व्यक्त करने के लिए आत्मकथा एक सर्वाधिक उपयुक्त और समर्थ विधा है। एक लंबे समय तक सभी विधाओं पर कविता अपना वर्चस्व स्थापित किए रही, लेकिन आजादी के बाद कविता धीरे-धीरे अपनी केंद्रीय स्थिति खोती गई और अन्य सभी विधाओं को दाएँ-बाएँ कोने के खिसकाकर कथासाहित्य केंद्र में आ गया। जीवन के मोहभंग और जटिलता को व्यापक संदर्भों में प्रतिबिंबित करने का बड़ा हौसला आज आत्मकथा में ही ठीक से दृष्टिगत होता है। जब लेखकों को यह महसूस होने लगा कि जो कुछ भी वह साहित्य में कहना चाहते हैं, उसकी अभिव्यक्ति कविता, नाटक, कहानी इत्यादि की अपेक्षा आत्मकथा के माध्यम से सुचारु ढंग से हो सकती है, तब साहित्य में नवीन विधाओं का सृजन होने लगा।

'दलित' शब्द की व्युत्पति संस्कृत धातु के 'दल' शब्द से हुई है, जिसका सामान्य अर्थ है, जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, मर्दित, हतोत्साहित, वंचित आदि।

डॉ॰ कुसुमलता मेघवाल ने 'दलित' शब्द की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'दलित का शाब्दिक अर्थ है—कुचला हुआ। अत: दलितवर्ग का सामाजिक संदर्भों में अर्थ होगा—वह जाति समुदाय, जो अन्यायपूर्वक सवर्णों या उच्च जातियों द्वारा दमित किया गया हो, रौंदा गया हो। दलित शब्द व्यापक रूप में पीड़ित के अर्थ में आता है, पर दलितवर्ग का प्रयोग, हिंदू समाज व्यवस्था के अंतर्गत, परंपरागत रूप में शूद्र माने जानेवाले वर्णों के लिए रूढ़ हो गया है। दलितवर्ग में वे सभी जातियाँ सम्मिलित हैं, जो जातिगत सोपान क्रम में निम्न स्तर पर हैं और जिन्हें सदियों से दबाकर रखा गया है।'[1]

भारतीय समाज में दलित के लिए अनेक शब्द प्रयोग किए जाते रहे हैं, जिनमें 'शूद्र' अधिक प्रचलित है। हिंदू धर्मशास्त्रों में 'शूद्र' शब्द ही अधिक प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त 'अछूता', 'अंत्यज', 'हरिजन', 'अस्पृष्य', आदि शब्दों का भी प्रयोग होता रहा है, जो हिंदूसमाज की मानसिकता के परिचायक हैं।

दलित साहित्य समाज-सापेक्ष साहित्य है। इसके मूल में व्यक्ति की संवेदना, स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की भावना ही सर्वोपरि है। यह समाज में अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते

 ISSN 0975-735X

हुए समता, बंधुत्व और मैत्री की स्थापना करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। दलित साहित्य को स्पष्ट करते हुए मोहनदास नैमिषराय का मत है–'दलित साहित्य यानि बहुजन समाज के सभी मानवीय अधिकारों और मूल्यों की प्राप्ति के उद्देश्यों से लिखा गया साहित्य है, जो संघर्ष से उपजा है, जिसमें समता और बंधुत्व का भाव है और वर्ण-व्यवस्था से उपजे जातिभेद का विरोध है।'[2]

हिंदी साहित्य के महत्त्वपूर्ण सरोकारों में दलित को आधुनिकयुग में विशेष महत्त्व दिया गया है। दलित चेतना के अंतर्गत साहित्यकार एक विशेष सांस्कृतिक विरासत को आक्रोश से भरकर देखता है, जिसका मोह अब तक साहित्य में तिलस्म बनकर छाया हुआ था।

दलित-साहित्य वस्तुत: दलित की वह चेतना है, जो दलित के मानवीय अधिकारों के प्रति उसको जागरूक करती है, साहित्य में उसकी अस्मिता को ढूँढती है तथा वर्णसंघर्ष (वर्ण व्यवस्था) के जद्दोजहद को विराट फलक पर देखती है। हजारों वर्षों की सामाजिक प्रताड़नाओं, शोषण, दमन, बहिष्कार तथा दबे-कुचले मनुष्यों का साहित्य दलित-साहित्य का तथ्य और कथ्य है।

साहित्य में आत्मकथा-लेखन बहुत पुरानी विधा है। इसी तरह, दलित-साहित्य का इतिहास भी अत्यंत पुराना है। दलितों एवं पीड़ित जनों की जीवन कहानी उतनी ही पुरानी है, जितनी भारतीय हिंदू संस्कृति है। सैकड़ों वर्षों से दलितवर्ग गुलामी-भरा जीवन व्यतीत कर रहा था, जिनका जीवन पशुओं से भी गया-गुजरा था। ऐसे दलितों ने जब आपबीती को आत्मकथा के रूप में उजागर किया, तब समाज को उनकी सच्चाई का बोध हुआ। यहाँ दलित आत्मकथा में दलित-संवेदना की पड़ताल की गई है। दलित साहित्य की मुख्य विधा आत्मकथा ही रही, जो भोगे हुए अनुभव पर आधारित होती है। दलित आत्मकथा में दलित-संवेदना, दलित आत्मकथाओं में दलित समुदाय के शोषण, अपमान, अवहेलना, तिरस्कार लिखकर पूरे समाज को यह बता दिया कि हमारा जीवन जानने के लिए किसी रची हुई कहानी या आख्यान की नहीं, स्वयं हमारे जीवन को देखना जरूरी है, जो प्रमुख आत्मकथाएँ हिंदी दलित साहित्य में है, उनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', मोहनदास नैमिषराय की 'अपने-अपने पिंजरे', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत', माताप्रसाद की 'झोंपड़ी से राजभवन', कौशल्या बेसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' आदि मुख्य हैं। ये आत्मकथाएँ वंदना के गर्भ से जन्मी और पारंपरिक, सामाजिक संरचनाओं को अस्वीकार करती हैं। इन आत्मकथाओं के माध्यम से लेखकों ने सामाजिक व्यवस्थाओं को झकझोर कर रख दिया है। आत्मकथाएँ दलित लेखकों के अदम्य जीवन-संघर्ष के साथ आगे बढ़ने का संदेश देती हैं, क्योंकि दलित आत्मकथाकार बताना चाहते हैं कि जो नारकीय और दासतापूर्ण जीवन हमें मिला, उसमें व्यक्ति-विशेष का अपराध नहीं है। इन आत्मकथाओं में लेखक ने स्वयं भोगे हुए परिवेश का यथार्थ अंकन किया है। आत्मकथाओं में निहित मूल संवेदनाओं का पक्ष इतना प्रबल है कि दलितवर्ग के जीवन की वास्तविकता आइने के समान साफ हो जाती है। दलित लेखकों द्वारा लिखी गई आत्मकथाएँ दलित-समाज की जिंदगी और उनकी समस्याओं के माध्यम से ऐसे समाज से परिचय कराती हैं, जिनसे हम अभी तक अनभिज्ञ रहे हैं। ब्राह्मणवादी वर्ण-व्यवस्था का गहरा प्रभाव एवं शोषण का भयावह रूप समाज पर दिखाई देता है।

हिंदी के प्रतिष्ठित दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'जूठन' आत्मकथा में बरला गाँव के दलितवर्ग के व्यक्तियों पर त्यागियों, जमींदारों से होनेवाले अत्याचार का यथार्थ

अंकन किया है। लेखक एवं उसकी माँ त्यागियों के घर पर काम करते हैं फिर भी उनके द्वारा प्रताड़ित किए जाते हैं। दलितों की इस स्थिति एवं रहन-सहन पर विचार करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी आत्मकथा 'जूठन' में लिखा है–'जोहड़ी के किनारे पर चूहड़ों के मकान थे, बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ भी खुले में फरागत के लिए बैठ जाती थीं। चारों तरफ गंदगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गंध कि मिनट में साँस घुट जाए। तंग गलियों में घूमते सूअर, बच्चे, कुत्ते, रोजमर्रा के झगड़े-बस, यह था वह वातावरण जिसमें बचपन बीता। इस माहौल में यदि वर्ण-व्यवस्था को आदर्श व्यवस्था कहने वालों को दो-चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी।'[3]

वर्ण-व्यवस्था ने दलितों के अमानवीय बंधनों ने सदियों से उनके भीतर हीनता के भाव को ही पैदा किया है। धर्म और संस्कृति के बहाने साहित्य ने भी दलितों की हीन भावना की नींव को पुख्ता किया है। इसलिए दलित-साहित्य अपनी सोच और स्थापनाओं में भी विरोधी तथा समाज के अंतर्संबंधों को तोड़नेवाला साहित्य सिद्ध हुआ है। दलितों की सामाजिक व्यवस्था पर विचार करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी आत्मकथा जूठन में लिखा है, 'अस्पृष्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते-बिल्ली, गाय-भैंस को छूना बुरा नहीं था, लेकिन यदि चूहड़ों का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इंसानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। इस्तेमाल करो, दूर, दूर फेंको।'[4]

दलितों के जीवन को सामाजिक उत्पीड़न, षोषण और अत्याचार के साथ-साथ धर्म के नाम पर उन पर लादी गई मान्यताएँ और बंधनों ने नर्क बनाया है। विशेष रूप से आर्थिक विवषताओं और विसंगतिपूर्ण स्थितियों ने दलितों को घोर विपन्नता के गर्त में डाल दिया है। बेगारी प्रथा उनके लिए अभिषाप बन गई है। प्रजातंत्र के युग में आज भी गांव-कसबों में सामंती व्यवस्था का खुला नृत्य होता है।

बेगारी प्रथा पर वाल्मीकि जी ने अपनी आत्मकथा 'जूठन' में लिखा है, 'घर में सभी कोई न कोई काम करते थे फिर भी दो जन की रोटी ठीक ढंग से नहीं चल पाती थी। जमींदारों के घरों में साफ-सफाई से लेकर खेती-बाड़ी, मेहनत-मजदूरी सभी काम होते थे।ऊपर से रात बेरात करनी पड़ती। बेगार के बदले में कोई पैसा या अनाज नहीं मिलता था। बेगार के लिए ना कहने की हिम्मत किसी में नहीं थी। गाली-गलौच, प्रताड़ना अलग नाम लेकर पुकारने की किसी को आदत नहीं थी। उम्र में बड़ा हो तो 'ओ चूहड़े' बराबर या उम्र में छोटा हो तो 'अबे चूहड़े के' यही तरीका या संबोधन था।'[5]

दलित समाज में दलितों की मूल समस्या आर्थिक रही है। धार्मिक रूप से संपन्न न होने से इन्हें शोषण, अत्याचार, सामाजिक तथा धार्मिक प्रतिष्ठा के खोने जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा है। हिंदूधर्म के नियम, अंधविश्वास और रूढ़ियों का प्रभाव दलित-समाज पर अधिक पड़ा है। जिसके चलते दलित समाज में अनेक प्रकार की बुराइयों का प्रचलन हो गया जैसे जूठन खाना, जूठन उठाना, खोता-प्रथा, सलाम प्रथा आदि को हम देख सकते है। इन सभी विसंगतियों का सीधा संबंध दलित जातियों के स्वाभिमान को कुचलनें के लिए थोपी गयी थी जो धीरे-धीरे इनके संस्कारों में षामिल हो गई।

इन्हीं प्रथाओं और रूढ़ियों को बया करती ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' का एक अंश है–शादी ब्याह के मौकों पर, जब मेहमान या बराती खाना खा रहे होते थे तो चूहड़े

दरवाजों के बाहर बड़े-बड़े टोकरे लेकर बैठे रहते थे। बारात के खाना खा चुकने पर जूठी पत्तलें उन टोकरों में डाल दी जाती थी, जिन्हे, घर ले जाकर जूठन इकट्ठी कर लेते थे। पूरी के बचे-खुचे टुकडे, एक आधा मिठाई का टुकडा या थोड़ी बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बाछें खिल जाती थीं। जूठन चटखारे लेकर खाई जाती थी। जिस बारात की पत्तलों से जूठन कम उतरती थी, कहा जाता था कि भुक्खड़ लोग आ गए है। बारात में जिनहें कभी खाने को कुछ नहीं मिला। सारा चट कर गए। अक्सर ऐसे मौकों पर बड़े-बूढ़े ऐसी बारातों का जिक्र बहुत ही रोमांचक लहजे में सुनाया करते थे कि उस बारात से इतनी जूठन आइी थी कि महीनों तक खाते रहे थे। उन्हें धूप में सुखा लिया जाता था। चारपाई पर कोई कपड़ा डालकर उन्हें फैला दिया जाता था, मुझे चारपाई पर पहरे पर बैठाया जाता था। क्योकि सूखने वाली पूडियों पर कव्वे, मुर्गियाँ, कुत्ते अकसर टूट पड़ते थे। जरा सी आँख बची कि पूरियाँ साफ, इसलिए डंडा लेकर चारपाई के पास बैठना पड़ता था।'[6] ये सूखी पूरिया बरसात के कठिन दिनों में बहुत काम आती थी। इन्हें पानी में भिगोकर उबाल लिया जाता था। उबली हुई पूरियों पर बारीक मिर्च और नमक डालकर खाने में मजा आता था। कभी-कभी गुड़ डालकर लुगढी जैसा बना लिया जाता था, जिसे सभी बहुत चाव से खाते थे।

छुआ-छूत और जाति-पाति की बातें करें तो दलित समाज के प्रति सवर्णों का व्यवहार कुछ अलग होता है। इन तमाम सामाजिक व्यवस्था को दलितों ने भोगा और सहा है। इसी की व्याख्या करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि जी लिखते हैं, 'तमाम शिक्षक त्यागी थे। छात्रों में भी संख्या त्यागियों की ही अधिक थी। उनके खिलाफ बोलने की स्थिति में कोई नहीं था। परीक्षा के दिनों में प्यास लगने पर गिलास से पानी नहीं पी सकते थ। हथेलियों को जोड़कर ओक से पानी पीना पड़ता था। पिलानें वाला चपरासी भी बहुत ऊपर से पानी डालता था। कहीं गिलास हाथ से न छू जाएँ।'[7]

दलित समाज के अस्तिव का सबसे बड़ा प्रश्न उसकी शिक्षा है। सामाजिक अंतर्विरोधों से उत्पन्न विसंगतियों ने दलितों के मन में अधिक नैराश्य पैदा किया है जो हिंदूसमाज की सामाजिक सरंचना है। उसके परिणाम बेहद अमानवीय और नारकीय सिद्ध हुए है। दलितों के सामाजिक जीवन की जो पीड़ा है, उसका निर्माता वर्ण-व्यवस्था ही है। वर्ण-व्यवस्था में दलितों की षिक्षा, अर्थव्यवस्था, अस्मिता और सामाजिकता को षर्मसार किया है। इस वर्ण-व्यवस्था ने दलितों की अस्मिता को खतरे में डाला है। दलितों की हजारों वर्षों 'शिक्षा निषेध' होने के कारण उनका जीवन अधिक प्रभावित हुआ है। दोहरे सांस्कृतिक मूल्यों का जीवन जीने के लिए मजबूर किया है। कहने को तो भारत एक लोकतांत्रिक देश है, लेकिन दलितों के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है। यदि दलित-समाज का कोई व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करने के लिए संस्थाओं विद्यालयों में जाता है जो उच्चवर्गीय समाज के लोग उसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' की कुछ पंक्तियां उसका चित्रण करती है, 'एक रोज हेडमास्टर कालीराम ने अपने कमरे में बुलाकर पूछा 'क्या नाम है बे तेरा' 'ओमप्रकाश' मैंने डरते-डरते धीमे स्वर में अपना नाम बताया। हेडमास्टर को देखते ही बच्चे सहम जाते थे। पूरे स्कूल में उनकी दहशत थी। 'चूहड़े का है?' हेडमास्टर का दूसरा स्वाल उछला। 'जी' 'ठीक है'। वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनिया तोड़ के झाडू बणा ले। पत्तोंवाली झाडू बणाना और पूरे स्कूल को ऐसा चमका दे जैसा सीसा। तेरा तो ये खानदानी काम है। जा फटाफट लग जा काम

पे।'[8]

एक दलित-छात्र को स्कूल में उसका खानदानी पेशा याद दिलाया जाता है और काम करने से मना करने पर उसके साथ कैसा व्यवहार होता है, यह इन पंक्तियों में व्यक्त है–'तीसरे दिन मैं कक्षा में जाकर चुपचाप बैठ गया। थोड़ी देर में उनकी दहाड़ सुनाई पड़ी, अबे, ओ चूहडे के...कहाँ घुस गया...अपनी माँ...।'[9] उनकी दहाड़ सुनकर मैं थर-थर काँपने लगा था। एक त्यागी लड़के ने चिल्लाकर कहा, 'मास्टरसाहब, वो बैट्ठा है कोणे में।'[10] हेडमास्टर ने लपककर मेरी गर्दन दबोच ली थी। उनकी उँगलिया का दबाब मेरी गर्दन पर बढ़ रहा था। जैसे कोई भेड़िया बकरी के बच्चे को दबोचकर उठा लेता है। कक्षा से बाहर खींचकर उसने मुझे बरामदे में ला पटका।'[10]

धर्मांतरण भी दलित-जीवन का एक विशेष सरोकार है। धर्म के विषय में डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर ने अपना विचार कुछ इस तरह से व्यक्त किया है, 'मेरे तत्त्वज्ञान में स्वतंत्रता और समता को स्थान है परंतु असीम स्वतंत्रता से समता का नाष होता है और पूरी समानता, स्वतंत्रता की गुंजाइश नहीं रखती। मेरे तत्त्वज्ञान में बंधुता का ऊँचा स्थान है। स्वतंत्रता और समता की रक्षा बंधुभाव के कारण होगी। बंधुत्व यानि कि मानवता और मानवता ही धर्म का दूसरा नाम है।'[11]

प्राचीनकाल में दलितवर्ग को निम्न श्रेणी के कार्य करने को दिए जाते थे, वही उनका व्यवसाय भी माना जाता था। सवर्ण ऐसे व्यवसाय करते थे, जो सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होते थे। वर्तमान समय में भी शिक्षा एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार के बाबजूद भारत के प्रत्येक स्थान पर अभी भी ऐसा समाज हैं, जो दलितजाति को उनके हीन व्यवसाय से जोड़ता है। 'जूठन' आत्मकथा में इस प्रकार की स्थिति स्पष्टत: देखने को मिलती है।

दलित-साहित्य की प्रेरणा अंबेडकरवादी विचारधारा है, क्योंकि दलित रचनाकार इन्हीं के विचारों और आंदोलन से स्वाभिमान प्राप्त करता है। उनका मानना है कि यदि बाबा साहब न होते तो हम न होते। दलितों द्वारा 'जय भीम' का अभिवादन इस बात का द्योतक है कि बाबा साहब अंबेडकर ही हमारी सच्ची प्रेरणा है। डॉ॰ अंबेडकर का साहित्य के संदर्भ में कहना है कि 'अपनी साहित्य की रचनाओं में उदात्त जीवनमूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों को परिष्कृत कीजिए। अपना लक्ष्य सीमित मत रखिए। अपनी कलम की रोशनी को इस तरह से परिवर्तित कीजिए कि देश में दलितों और उपेक्षितों की दुनिया बहुत बड़ी है। उनकी पीड़ा और व्यथा को भली-भाँति जान लीजिए और अपने साहित्य द्वारा उनके जीवन को उन्नत करने का प्रयास कीजिए। इसमें सच्ची मानवता निहित है।'[12]

यदि दलित-साहित्य के भविष्य की बात करें तो अब हिंदी के लगभग सभी विद्वान और विचारकों की दृष्टि में दलित-साहित्य के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त हैं, क्योंकि दलित-साहित्य अपनी पहचान के संकट से गुजरकर एक सच्चाई के रूप में स्थापित हो चुका है। अब दलित साहित्य के लिए भाषा का भी संकट नहीं है, क्योंकि भारत की सभी भाषाओं में दलित-साहित्य का सृजन हो रहा है। इसी संदर्भ में मार्क्सवादी आलोचक डॉ॰ नामवरसिंह ने कहा है–'आज इसे स्वीकार करने के अलावा कोई चारा नहीं है। दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य मात्रा और उज्ज्वल है।'[13]

दलित साहित्य के उज्जवल भविष्य पर टिप्पनी करते हुए कथाकार कमलेष्वर की मान्यता

है कि 'भविष्य तय है। तय इसलिए क्योंकि दलित-साहित्य अब तक ठीक दिशा की ओर चला है। दलित साहित्य और साहित्यकार ने भूमंडलीकरण और अन्य सवालों का सामना किया। दलितों की लोकधर्मिता, संस्कृति ही इन सवालों का जबाब हो सकती है। उन्हीं की संस्कृति अब बड़े रूप में हमारे सामने आएगी।'[14]

श्रीमती रमणिका गुप्ता, जो दलित-साहित्य आंदोलन के साथ बहुत पहले से जुड़ी रही है, उनकी मान्यता है–'दलित-साहित्य का ही भविष्य उज्ज्वल है, बाकी सब कुंठाग्रस्त है। जो अभिजात साहित्य है, अपनी-अपनी कुंठाएँ लिखता है। दलित और आदिवासी पूरे समाज की बात लिखते है। परिवर्तन की बात करते हैं। यह गैर-दलित साहित्य और अहम् को तोड़ता है। यह देवता और भगवान नहीं, मनुष्य की बात करता है।'[15]

आत्मकथाकार ने यह दर्शाने का भी प्रयत्न किया है कि समाज भले ही कितना भी सभ्य, षिक्षित एवं क्रांतिकारी क्यों न हो जाए, दलितवर्ग सदैवसे शोषित होता रहा है और आगे भी होता रहेगा क्योंकि लोगों की मानसिकता अभी तक बदल नहीं पाई है। दलितों की निरंतर आर्थिक संघर्ष से गुजरना पड़ा। 'जूठन' आत्मकथा आर्थिक कष्टों का अत्यंत सजीव चित्रण है। आर्थिक मजबूरी ही दलितों को गुलाम बनाती रही। दलित आत्मकथाएँ दलित-संघर्ष की सार्थकता को रेखांकित करती है। लेखकों द्वारा भोगी गई पीड़ा का सत्य इतना कटु होता है कि पाठक निरंतर सोच में पड़ जाता है। लेखक का व्यक्तित्व अपने संदर्भ में अपने अदांज, अपनी शैली, अपनी भाषा में पूरे समाज को पाठक वर्ग के सामने रू-ब-रू खड़ा कर देता है, जिसमें पूरी व्यवस्था और उसका इतिहास भी झांकता है और आज के परिवेश में भविष्य की आकांक्षा भी जन्म लेती है। पाठक निरंतर सोच में पड़ जाता है वह बार-बार सोचता है कि समाज ऐसा क्यों है? तभी आत्मकथाएँ सार्थकता को पार कर जाती है। डॉ॰ अंबेडकर ने समाज में शिक्षा की लहर पैदा की शिक्षित बनो, संघर्ष करो तथा संगठित होकर नारे से सभी दलित वर्ग के लोग जागरूक हो रहे थे और अंबेडकर के सपने को साकार बनाने का प्रयत्न कर रहे थे।

कह सकते हैं कि ये आत्मकथाएँ दलितों के लिए मात्र सीमित नहीं हैं, अपितु पिछड़ी हुई जितनी भी जातियाँ हैं, उनके लिए लड़ने का साहस भी देती हैं। साथ-साथ अपने जीवन को सुंदर बनाने का संदेश भी देती हैं। इसलिए ये आत्मकथाएँ भारतीय इतिहास का दस्तावेज भी हैं। मानवीय एवं सामाजिक संबंधों के असंतुलन के कारण जटिल मानवीय रिश्तों को जन्म देती हैं। मानवीय संबंधों की इस जटिलता को यथार्थ रूप में आत्मकथा ही पेश करने के समर्थ है।

संदर्भ

1. डॉ॰ कुसुमलता मेघवाल, हिंदी उपन्यासों में दलितवर्ग, संघी प्रकाशन, जयपुर, 1998, पृ॰ 01
2. मोहनदास नैमिषराय, हिंदी दलित कविता : नये संदर्भ, कल्चर पब्लिशर्स, लखनऊ, 1996, पृ॰ 14
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, दसवाँ संस्करण, 2015, पृ॰ 11
4. वही, पृ॰ 12
5. वही, पृ॰ 19
6. वही, पृ॰ 19-20
7. वही, पृ॰ 27
8. वही, पृ॰ 29

9. वही, पृ॰ 14-15
10. वही, पृ॰ 35
11. डॉ॰ शरणकुमार लिंबाले (अनुवादक), दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, वाणी प्रकाषन, नई दिल्ली, सं. 1999, पृ॰ 58
12. वही, पृ॰ 65
13. डॉ॰ नामवरसिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृ॰ 79
14. कमलेश्वर, दलित साहित्य के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ॰ 79
15. रमणिका गुप्ता, दलित साहित्य : एक विश्लेषण, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ॰ 82

सुपुत्री (स्वर्गीय) श्री सतनाम सिंह
वी॰पी॰ओ॰ इकोलाहा, खन्ना 141401
लुधियाना (पंजाब)
मो॰ 8725800025
Lavsandhu1@gmail.com

 ISSN 0975-735X

21वीं सदी के कहानी-संग्रह 'रास्ता छोड़ो डार्लिंग' में स्त्री-जीवन व उसकी समस्याएँ

पूनम चौहान, शोध छात्रा
कु॰ मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर

ममता की मंजूषा, स्नेह का सदन, पीयूष की स्रोत, दया का उद्‌गम, क्षमामय सुमेरू, विधाता की कलापूर्ण सृष्टि का शृंगार, पृथ्वी की कविता, देश के निर्माण की आधारशिला, उमा, रमा, सरस्वती के सदृश नारी का इस भारत वसुंधरा पर सदा-सर्वदा से आदरणीय स्थान रहा है। भारत में नारीशक्ति की आराधना की परंपरा नई नहीं, प्रत्युत भारत के प्रथम हिंदू धर्मग्रंथ ऋग्वेद में ही नारियों को देवी का मूर्त रूप कहा गया है। भारतीय संस्कृति में नारी को आदिशक्ति के रूप में माना और पूजा जाता है। देवोपासना के अवसर पर 'या देवि सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः' का मंत्रोच्चार किया जाता है।

वैदिककाल में नारी मंत्र-द्रष्टा रही है। उसने अपने गहन ज्ञान, अनुभव और तपस्या से अखिल समाज को आश्चर्यचकित किया है। हिंदू स्त्रियों की आध्यात्मिक परंपरा में विश्ववतारा, शाश्वति, अपाला, घोषा, अदिति जैसी अनेक ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ हुई हैं। नारी ऋग्वैदिक काल से ही ज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी थी, उसकी शिक्षा-दीक्षा उच्चतम स्थिति में थी। वह एक आदर्श पत्नी, पुत्री और माता की भूमिका का निर्वाह भी आदर्श रूप में करती थी।

समय का पहिया विचित्र गति से निरंतर घूमता है। सतयुग में नारी और नर एक-दूसरे के पूरक सिद्ध हुए, परंतु त्रेतायुग में आकर नारी दोयम दर्जे पर अवस्थित हो गई। द्वापरयुग में आते-आते नारी का अश्रुपूरित इतिहास भी सामने आने लगा। कालांतर में नारी की शक्तियों के क्षरण का आभास भी होने लगा। वह अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखने के प्रति कुछ असावधान होने लगी। अशिक्षा, अज्ञान तथा भाग्योन्मुखी प्रवृत्ति ने उसे शनैः शनैः कमजोर कर दिया और उन्नति से अवनति की ओर अग्रसर होने लगी। नारी की इस अधोगति के पीछे पुरुष की स्त्री-विरोधी मानसिकता ही अधिक जिम्मेदार रही है, जिसके निर्माण में योगदान किया पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने, जिसमें स्त्री के शरीर पर उसके श्रम पर और उसके स्त्रीत्व पर पुरुष का पूर्ण नियंत्रण हो गया। सारा शास्त्र विशिष्ट पुरुष की विभाजित मानसिकता का विशिष्टाधिकार संपन्न संविधान है, जिसमें स्त्री को लिंग के आधार पर और शूद्र-दलित को वर्ण के आधार पर 'मनुष्यत्व' से वंचित रखा गया है।

'वास्तव में स्त्रीवाद उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी पितृसत्ता यदि स्त्रियों को पुरुषों के अधीन रखने के लिए तमाम तरह के बंधनों में जकड़ देने का नाम है तो स्त्रीवाद उन बंधनों से मुक्त होने के लिए विद्रोह करने और स्त्री-पुरुष की समानता के लिए प्रयास करने का नाम है।'[1]

आज समय आ गया है कि नारी अपने प्राचीन संबोधनों को नकार रही है, उसके मन में छटपटाहट है, वह अपने पुराने लिबास को उखाड़ फेंकना चाह रही है। अपनी पीड़ा और तन्मुक्ति हेतु वह अपनी वकील आप बन रही है। किसी अन्य की अनुभूति को वह केवल 'सह' अनुभूति भर मानती है।

स्त्री-विमर्षवादियों का मानना है कि एक स्त्री के विषय में पुरुष उतना सही-सटीक लेखन नहीं कर सकता है, जितना कि एक स्त्री स्त्री के बारे में स्व अनुभूति की अभिव्यक्ति कर सकती है, परंतु कुछ लोगों का मत है कि द्रष्टा की दृष्टि जरूरी है, न कि स्त्री या पुरुष होना उतना जरूरी जितना संवेदनायुक्त, संवेदनशील स्त्री और संवेदनशील पुरुष होगा। संवेदना में वह जादू होता है, जो कभी-कभी तो भोक्ता से भी ज्यादा सफल यथार्थपूर्ण ढंग से उस अनुभूति को व्यक्त कर देता है। संवेदन और संप्रेषण की वास्तविक सामर्थ्य यही है। वस्तुत: भोगने की और उसे महसूस करने की क्षमता एक समान नहीं होती। अत: 'स्त्री की तरह पढ़ना' और 'स्त्री की तरह अनुभव' करना कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। जो ऐसा नहीं है, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, स्त्री पर प्रमाणिक ढंग से नहीं लिख सकता। तमाम स्त्रियाँ स्त्री होकर भी स्त्रीवादी नहीं है, अपने लेखन को भी स्त्री-लेखन कहलाना पसंद नहीं करती।

तात्पर्य यह है कि स्त्री-जीवन की समस्याओं का ओर-छोर नहीं है। यहाँ क्षमा शर्मा के कहानी संग्रह 'रास्ता छोड़ो डार्लिंग' की कुछ प्रमुख कहानियों में स्त्री-जीवन की समस्याओं का समाकलन करने का प्रयास किया जाएगा। उनके कहानी-संग्रह में कुल 41 कहानियाँ संकलित हैं। इन कहानियों के माध्यम से क्षमा जी समाज के समक्ष उन अप्रत्यक्ष समस्याओं को लाना चाहती हैं, जिनका अभी तक कोई निवारण नहीं हुआ है। स्त्री आज अगर घर की दहलीज लाँघकर बाहर निकल रही है तो उसके चरित्र पर प्रश्नचिह्न लगा दिया जाता है। सृष्टि के प्रारंभ में नर और नारी समानाधिकारी थे। सामाजिक उत्थान के साथ पुरुष की स्वार्थपरता की भावना बढ़ती गई और स्त्री की स्वतंत्रता क्षीण होती गई। स्त्री के कार्यक्षेत्र को सीमित कर उसे घर की चाहरदीवारी में कैद कर लिया गया। अपने आपको सबल बनाकर पुरुषों ने स्त्रियों को सामाजिक बंधनों में जकड़ लिया और उन्हें पुरुषों की बनाई लीक पर चलने को मजबूर किया। परिणाम यह हुआ कि स्त्री की सामाजिक स्थिति पुरुष की तुलना में निम्नस्तर की हो गई। 'भार्या श्रेष्ठतम सखा' की भावना शनै: शनै: धूमिल होती गई और नारी पुरुषों की निर्मम चक्की में पिसती रही। शोषित और प्रताड़ित होती रही, अपमान के घूँट पीती रही। नारी को मात्र भोग की वस्तु समझकर उसके प्रति मात्र वासनात्मक दृष्टि ही पुरुषों में शेष रही। पुरुष सदैव 'सीता' जैसी आदर्श पतिव्रता पत्नी की कामना करता है, किंतु स्वयं 'राम' जैसा बनने को तैयार नहीं।

क्षमा शर्मा की कहानी 'मातृऋण' में नायिका की माँ एक खुद्दार स्त्री है, जो अब बूढ़ी हो चुकी है। उनकी राय, उनकी नीयत, उनकी उम्र सब-कुछ बीते जमाने की बातें हो गई हैं, अपनी बात कहती रहती हैं। पुराने भूतकाल के गढ़े मुर्दे उखाड़ती रहती हैं। मगर वक्त ने भी उनको पंक्ति के बाहर खदेड़ दिया है। यह दुनिया जिसमें शक्ति, चुस्ती, फुर्ती और युवावस्था का साम्राज्य है, उसमें दृश्य से परे चली गई। उनकी हर चीज लड़कों तक चली गई है, सिर्फ संवेदना बेटियों के हिस्से बची है। कानून जानने की वजह से मकान के हिस्से करते वक्त जब वे बेटियों के नाम लेती हैं, तब बेटे बड़ा बवाल मचाते हैं। उनका कहना है एक बार पूछ तो सकते थे। मेरी लड़कियों

के पास भगवान का दिया क्या नहीं है? बस अपने हाथ कटाते जाओ। कानून लड़कियों को कुछ दे दे, पर लड़कियाँ माँगेंगी नहीं, इस डर से कि कहीं भाइयों से संबंध न बिगड़ जाएँ।'[2]

सुनिता 'कैसी हो सुष्मिता' कहानी की प्रमुख पात्र है। जो सत्रह-अट्ठारह साल की किशोरी है। जिसने अपनी पढ़ाई छोड़कर माँ के साथ झाड़ू-पौंछा का काम शुरू किया है। स्वभाव से अत्यंत चंचल सुनिता टी॰वी॰ की बहुत बड़ी शौकीन है। उसे सजना-सँवरना, सिनेमा देखना, जोर-जोर से गाने गाना बहुत पसंद है। 'लेकिन अब स्थिति बदल रही थी। उसकी कोशिश थी कि अब कोई आए तो पाताल में समा जाए या आसमान उसको निगल ले।'[3] लेकिन इस सबसे जो डर था आखिर वही हुआ। सुनीता ने चोरी-चुपके मॉडलिंग शुरू की और इसी बीच उसे पुलिस पकड़कर ले गई। भारतीय समाज में स्त्री-अस्मिता के प्रश्न आज भी सच कहा जाए तो अनुत्तरित ही हैं। नारी की अस्मिता और स्वाभिमान तभी सुरक्षित है, जब समाज अनुशासित होगा अन्यथा संबंध-विच्छेद, व्यभिचार, यौन-शोषण और यौन-हिंसा जैसी भयानक बीमारियाँ सामाजिक ताने-बाने को नष्ट-भ्रष्ट कर देंगी। क्षमा जी की कहानी 'ढाई आखर' के मेहतासाहब और मिश्राजी के निम्न वार्तालाप द्रष्टव्य हैं—'मिश्राजी ने उधर देखा और हँस दिए—'अरे मियाँ, जवान लड़के-लड़कियाँ हैं। इस उम्र में यह सब नहीं करेंगे तो हमारी तरह बिना कुछ किए ही बूढ़े हो जाएँगे।'

'हमारी तरह...हम तुम्हें बूढ़े नजर आते हैं....अभी कुल पैंतालीस के ही तो हैं। मगर अपने जमाने में तो यह सब खुले-आम करने की इजाजत न थी....'हूँ तो यह बात है अंगूर खट्टे हैं....मगर जब मौका नहीं मिला तो अब कुछ कर लो यार'

'साली को देखो जरा, छातियाँ किस तरह तान रखी हैं। किसी का भी मन बेईमान हो जाए।' मिश्राजी ने शरारत भरे स्वर में कहा—'हो रहा है क्या? कहो तो कुछ हो जाए, लड़की तो चटक नमूना मालूम होती है....तुम्हें देखेगी तो उस मरियल को अपने आप फुटा देगी।'[4]

इस वार्तालाप में मिश्रा व मेहता के मन की कुत्सित ग्रंथियाँ जाग्रत हो जाती हैं, जो स्त्री को कुदृष्टि से देखकर नैनसुख प्राप्त करता है व अपनी घृणित मानसिकता का प्रदर्शन करता है।

लेखिका ने नारी के एक स्वतंत्र व्यक्तित्व को चित्रित किया है। ये स्त्रियाँ ऐसी हैं जो स्वयं निर्णय लेती हैं, किसी के नीचे रहना पसंद नहीं करती हैं और जब चाहे, जो चाहे करती हैं। 'कस्बे की लड़की' कहानी में ऐसे ही स्वतंत्र व्यक्तित्व रूपी नारी-चरित्रों को उजागर किया गया है। लेखिका उसे क्रांति का मार्ग बताती हैं।

'बया' कहानी में नायिका रिपु अपनी गुजरी माँ की यादों में खोई हुई है। अपनी सहमी माँ और पिता का कठोर बर्ताव उसे याद आ रहा है। वह कहती है, 'माँ से अप्पी ने सिनेमा तो क्या कभी दो मीठे बोल भी न बोले होंगे।'[5] नायिका की माँ पति के तेज, कठोर, निर्दयी और अहंकारी स्वभाव के कारण निश्चित न रहकर हमेशा डरी-सहमी हुई रहती है। उनके पास सुख, संपत्ति, ऐश्वर्य सब- कुछ होते हुए भी वह अपनी गृहस्थी में खुश नहीं है व अंदर ही अंदर घुटती रहती है।

'बेघर' कहानी में विनि नामक लड़की जो हॉकी की नेशनल टीम की कप्तान रह चुकी। पर घर-गृहस्थी में गैर-जिम्मेदार है। जब उसकी विजय से शादी होती है तो वह पूर्ण रूप से बदल जाती है। उसका घर विजय के इर्द-गिर्द ही चलता है—'विजय की पसंद के धोबी से धुले साफ चादर। हर चीज करीने से अपनी जगह। उसके लिए आए एक-एक फोन का हिसाब-किताब।

उसकी चिट्ठियाँ। प्रेस हुए कपड़े। बाथरूम का धुला तौलिया और महकते अंडरगारमेंट्स। उसकी पसंद का खाना।'[6] लेकिन जब विनि की ब्रेन हेमरेज से मौत होती है, तब विजय उसकी मृत्यु के ठीक नौ दिन बाद अपने बेटे अमन का जन्मदिन धूमधाम से मनाता है तथा सालभर में दूसरी शादी कर बच्चों को बोर्डिंग भेज देता है।

'रास्ता छोड़ो डार्लिंग' कहानी में नायिका मध्यमवर्गीय गृहिणी है और उसकी सहेली मीनू उच्चवर्गीय वेश्या। नायिका की घर-गृहस्थी देख मीनू को उस पर जलन होने लगती है। वह नायिका को नीचा दिखाने के लिए उसे अपने घर बुलाती है और कहती है–'तुम एक आदमी को शरीर सौंपती हो और मैं पचास को। करते तो हम दोनों एक ही काम है और मेरे पास वह सब-कुछ है– बैंक बैलेंस, कार ऊँचे संपर्क, जिनके लिए तुम जीवन-भर तरस सकती हो।'[7] कहानी में नारी की जलन ईर्ष्या व अवसाद है, जहाँ रिश्ते बेमानी से लगते हैं उनकी भी कीमत वसूली जाती है।

'जिन्न' कहानी में नायिका विधवा है, लेकिन नौकरी करते हुए अपने साज-शृंगार को नहीं छोड़ती है। कॉलेज में यही बात चर्चा का विषय है। एक दिन वह परिचित की शादी में सम्मिलित होती है, तब वहाँ की औरतें उसे देखकर व्यंग्य करते हुए कहती हैं–'घर-घर में चर्चे हैं आपके। लिपिस्टिक, बिंदी, काजल तो आपने ही छीन लिया, यह मंगलसूत्र तो छोड़ देतीं हमारे लिए। हम सुहागिनों के लिए।'[8] वह उसे सहानुभूति देना तो दूर उसके चरित्र पर शक करती हैं। समीक्षक रजनी गुप्त ने क्षमा शर्मा की कहानियों के बारे में कहा है, 'अधिकांश कहानियों में जैसे–खेल, फादर, अलविदा, एक है सुमन, व्यूह, डोर, नेम प्लेट, रसोईघर, सेमिनार आदि वे पात्रों की पारिवारिक स्थितियों को 'जस-का-तस' स्वीकारने के बजाय पूरी सतर्कता के साथ बदलाव की मुहिम छेड़ देती हैं। बाजार की चकाचौंध का प्रतिफलन स्वार्थ के दलदल में धँसते रिश्ते हैं। 'जय श्रीराम', 'नेम प्लेट', 'रास्ता छोड़ो डार्लिंग', 'एक अजनबी' संग्रह की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं, जिनके जरिए वे तकनीक की आपाधापी के बीच मनुष्यता की रक्षा की मुहिम छेड़ सकती हैं।'[9]

क्षमा जी सामाजिक सरोकारों को उद्घाटित करना अपने साहित्य का उद्देश्य मानती हैं। 'कस्बे की लड़की' में निरपराध लड़की को ब्लैकमेल किया जाना वर्णित है। 'लौटते हुए' कहानी में नारी के असफल प्रेम को दिखाया गया है। उसे अपना बनाने वाला एक दिन कहता है, 'अरे वह रिप्पी न जाने रात में कहाँ-कहाँ घूमती फिरती है।' पुरुष की बेवफाई सिद्ध कर रहा है। 'सेमिनार' कहानी बड़ों की दुनिया के छद्म पर हँसोड़ किस्म की मारक टिप्पणी है। 'और अब' कहानी में घर में तीन लड़कियाँ बोझ समझी जाती हैं और फिर भी पुत्र की कामना की जाती है। स्त्री की इच्छा- आकांक्षा, प्रेम-मर्यादा, अधिकार एवं विद्रोह को प्रमुखता से स्वर देना ही इन कहानियों का प्रमुख उद्देश्य है। ज्ञानप्रकाश विवेक के अनुसार, 'संग्रह में स्त्री-संसार की विभिन्न छवियाँ हैं। यहाँ स्त्रियाँ अकेली होती हैं। मन में हाहाकार लिए जद्दोजहद और अंतर्द्वंद्व में घिरी हो सकती हैं, लेकिन चुनौतियाँ स्वीकार करती हैं। वे पुरुष द्वारा ठगी जाती हैं, इसके बावजूद अपने होने का एहसास दिलाती हैं।'[10]

'जय श्रीराम' कहानी में नायक अपनी पत्नी को घमंडी स्वभाव का अहसास कराकर, उपकार के बोझ तले दबा लेता है। पुरुष-प्रधान संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता हुआ नायक हर पल, हर कदम पत्नी को बेबस, अबला समझकर अपमानित करता है। पति के लायक बनने के लिए निरंतर प्रयास करती नायिका को कुछ समय बाद पता चल जाता है कि उसकी जगह 'पैर

की जूती' इतनी ही है। 'घिराव' कहानी में नायक अपनी पत्नी से बहुत बुरा बर्ताव करता है। नौकरी न करते हुए हमेशा उधार माँगकर नशे में झूमता रहता है। अपनी इस हालत का जिम्मेदार भी पत्नी को ठहराता है। 'डोर' कहानी की नायिका तेज धूप में ताज देखने जाती है। पवित्रता के नाम पर सभी के जूते-चप्पल उतरवा लिए गए, लेकिन विदेशी लोगों से ज्यादा पैसे लेकर उनके जूतों पर कपड़ा बाँध दिया गया। पैसे और पवित्रता की दौड़ में अक्सर पैसा ही जीत जाता है। 'काला कानून' कहानी में देश की भ्रष्ट सरकारी प्रशासनिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है। यहाँ खिलाड़ियों की लगन की हौसला-अफजाई न करते हुए उनकी सच्चाई और इमानदारी को नजरअंदाज कर दिया गया है।

महात्मा गांधी ने नारी के आदर्श विषय में कहा है कि नारी त्याग की मूर्ति है। ठीक उसी तरह 'कार्ड' कहानी में माँ जो केन्सर की लास्ट स्टेज में है और अपने पुत्र से पेन माँगती है तथा आड़ी-तिरछी रेखाएँ लिखने की कोशिश करती है और लिखती है, 'बेटा, पापा का ध्यान रखना, वह बहुत अकेले हैं।' यहाँ मध्यवर्ग की सच्चाई, प्रेम, अकेलापन और उनकी मजबूरी को क्षमा जी ने अपनी रचनाओं में समेटा है।

'मंडी हाउस', 'खेल', 'घर की बातें' आदि कहानियाँ महानगरीय प्रदूषण, संबंधों के बिखराव, शहरीपन के संत्रास को व्यक्त करती हैं। 'घिराव', 'यहीं कहीं है स्वर्ग' में आज के नवयुवकों को रोजगार नहीं मिल रहा है, वहीं प्रौढ़ आदमी को बेरोजगारी किस तरह मजबूर करती है यह दर्शाया गया है।

निष्कर्षत: क्षमा शर्मा ने पारिवारिक धरातल को ही नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक विषयों को भी अपनी भावभूमि पर उतारा है। क्षमा जी के लेखन के केंद्र में स्त्रियाँ प्रमुख हैं। स्त्रियों के जीवन और संघर्ष से घिरी समस्याएँ हैं। 21वीं सदी की कहानियाँ वर्तमान स्त्री के बदलते विभिन्न रंगों को प्रस्तुत करती हैं। उत्तर आधुनिकता के इस दौर में साहित्य से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह किसी विशाल सत्य को वहन कर कोई संदेश प्रेषित करे, अपितु उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह जीवन के विभिन्न आयामों को देखने व समझने में सक्षम हो। लेखिका क्षमा शर्मा ने अपने समय की चुनौतियों को न केवल स्वीकार किया बल्कि उसके जटिल पहलुओं को पकड़ने का प्रयास किया है।

राजेंद्र सहगल के शब्दों में, 'क्षमा शर्मा के कथासाहित्य को पढ़ते हुए जो बात पाठक को बार-बार मथती है, वह है उसका स्त्री-पुरुष संबंधों के उत्स को पहचान मूल वृत्तियों को तार-तार करने में इतना निमग्न हो जाना कि इन रिश्तों का सच खुद-ब-खुद उभरने लगे। इसी कारण एकबारगी देखने पर उनकी स्त्रियाँ मर्दवादी होने का संभ्रम भी पैदा होने देती हैं, पर गहरे में यह रोमानियत से अलग होने की चेष्टा होती है, जिससे वे चौतरफा आत्मप्रवंचना के जाल से मुक्त हो सकें।'[11]

संदर्भ

1. उमा चक्रवर्ती, आज का स्त्री आंदोलन, पृ॰ 02
2. क्षमा शर्मा, रास्ता छोड़ो डार्लिंग, पृ॰ 59
3. वही, पृ॰ 51
4. वही, पृ॰ 151-152
5. वही, पृ॰ 11

6. वही, पृ॰ 184
7. वही, पृ॰ 110
8. वही, पृ॰ 28
9. रजनी गुप्ता, वर्तमान साहित्य, जून 2009, पृ॰ 66
10. ज्ञानप्रकाश विवेक, अमर उजाला, 4 जुलाई, 1999, पृ॰ 21
11. राजेन्द्र सहगल, आउटलुक साप्ताहिक 11 जून 2007, पृ॰ 58

2/183 **विकल्प खंड**
गोमती नगर, लखनऊ 226010
मो॰ 9839770020
9839770022

सामंतवादी एवं पूँजीवादी व्यवस्था में वर्गसंघर्ष के परिदृश्य को चित्रित करती लंबी कहानियाँ

प्रीति चौहान
शोध छात्रा, जनता वैदिक कॉलिज, बड़ौत (बागपत)
डॉ॰ साधना तोमर
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
जनता वैदिक कॉलिज, बड़ौत (बागपत) उ॰प्र॰

'वर्गसंघर्ष' (Class Struggle) मार्क्सवादी विचारधारा का प्रमुख तधव है। मार्क्सवाद के शिल्पकार कार्लमार्क्स और फ्रेडरिक एंजेल्स ने लिखा है–'अब तक विद्यमान सभी समाजों का लिखित इतिहास वर्गसंघर्ष का इतिहास है।'[1] स्वामी और दास, संघ अध्यक्ष और मजदूर एक शब्द में उत्पीड़क और उत्पीड़ित निरंतर एक-दूसरे के विरोध में खड़े रहे, कभी खुलकर तो कभी छिपकर अबाध रूप से लड़ते रहे, जिसका परिणाम या तो वृहद स्तर क्रांतिकारी समाज के पुनर्निर्माण में हुआ या संघर्षरत वर्गों की तबाही से हुआ। सामंती समाज की तबाही से उगे आधुनिक बुर्जुआ वर्ग समाज ने वर्गशत्रुता को समाप्त नहीं किया है। इसकी बजाय उसने नये वर्गों, उत्पीड़न की नई दशाओं और संघर्ष के पुराने स्वरूपों की जगह नए स्वरूपों को स्थापित किया है। यह सत्य है कि उत्पादक वर्ग के बिना समाज नहीं रह सकता है और इन्हीं का शोषण सदैव होता आया है। पूँजीपति वर्ग अपने आर्थिक लाभ के लिए आर्थिक माँग की पूर्ति के लिए संघर्षरत रहते हैं। परिणामस्वरूप असंतोष पनपता है, तब सर्वहारावर्ग पूँजीपतियों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ता है। यह वर्गीय चेतना से उभरा 'वर्ग संघर्ष' कहलाता है। आज वर्गसंघर्ष की चर्चा जोरों पर है। अपने वर्ग का संगठन, अपने वर्ग का लाभ, अपने वर्ग का स्वार्थ, अपने वर्ग का गौरव, अपने वर्ग की सत्ता पर आज बहुत जोर दिया जा रहा है। अनेक वर्ग और संघ इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। औद्योगिक विकास के साथ न केवल सर्वहारावर्ग की सदस्य-संख्या बढ़ जाती है बल्कि यह वर्ग एक बहुत बड़े जनसमूह के रूप में परिवर्तित होने लगता है। सदस्यों की संख्या बढ़ने के कारण यह वर्ग स्वयं को अधिक शक्तिशाली अनुभव करने लगा है तथा समान समस्या एवं समानहित होने के कारण सर्वहारावर्ग में एकता स्थापित होने लगती है तथा कुछ समय बाद यही वर्ग पूँजीपतियों के विरुद्ध विद्रोह करता है। समाज में सबसे अधिक आर्थिक दृष्टि से यही वर्ग प्रताड़ित है। वर्ग के इस रूप का आधार केवल 'अर्थ' है। 'ए हैन्डबुक ऑफ सोशियोलॉजी' के अनुसार, 'सामाजिक वर्गों से हमारा मतलब समाज में विद्यमान उन एक या अनेक वृहत, समूहों से है जो सामाजिक प्रतिष्ठा (सोशल प्रेस्टीज) की दृष्टि से श्रेणीकृत हैं। दोनों लिंगों ओर सभी उम्र के व्यक्ति ऐसे एक न एक वर्ग में आते हैं। एक वर्ग में समान्यत: बराबर की सामाजिक प्रतिष्ठा, समान पद और आर्थिक क्षमता के लोग होते हैं और उसका निजी जीवन-दर्शन व रहन-सहन तथा अन्य कई

कार्यों में ज्यादातर समानता दिखायी देती है।'[2] एक तो 'अर्थ' का आधार दूसरे 'वर्ण' दोनों दृष्टि से हीन व्यक्ति सेवक की भूमिका निर्वाह करता है। मार्क्स वर्गसंघर्ष की बात करते हैं पर भारत 'वर्ण' की अपेक्षा 'वर्ग' पर टिका है।

मार्क्स ने लिखा है, 'पूँजीपति वर्ग के खिलाफ आज जितने भी वर्ग खड़े हैं, उन सबमें वास्तविक रूप से क्रांतिकारी वर्ग केवल मजदूरवर्ग है।'[3] इसलिए मजदूरवर्ग को संघटित करके संघर्ष के लिए तैयार किया जाने लगा। सर्वहारावर्ग व पूँजीपतियों का जो संघर्ष हिंदी साहित्य में आया है, उसकी मूल प्रेरणा मार्क्स का दर्शन है। ग्रामीण और शहरी जिस भी परिवेश में मजदूरवर्ग को दबाया गया, प्रताड़ित किया गया, उनकी आवाज को लंबी कहानियों ने भी वाणी दी है। 'वर्गसंघर्ष' को कहानियों में देखने से पूर्व हम सामंतवादी व पूँजीवादी व्यवस्था पर एक दृष्टि डालने का प्रयास करते हैं। 'सामंतवाद' एक ऐसी मध्ययुगीन प्रशासकीय और सामाजिक व्यवस्था थी, जिसमें स्थानीय शासक उन शक्तियों और अधिकारों का उपयोग करते थे, जो सम्राट, राजा अथवा किसी केंद्रीय शक्ति को प्राप्त होते थे। 'भूमि' उत्पादन का मुख्य साधन थी, इस भूमि पर सामंतों का कब्जा रहता था। प्राचीनकाल से अब तक सामंतवाद अलग रूप में दिखाई दिया। श्री एच॰एस॰ डेवीस ने सामंवाद के स्वरूप को निर्धारित करते हुए कहा है–'इस व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्ति सुरक्षा के दृष्टिकोण से अपने प्रभुत्व से अनुबंधित होता था। वह अपने सामंती प्रभुत्व से पृथक् अपनी स्वतंत्र सत्ता की घोषणा नहीं कर सकता था। युद्ध सामंती व्यवस्था का प्रमुख सिद्धांत था। भाई-भाई के विरुद्ध और पुत्र पिता के विरुद्ध लड़ने में कोई संकोच नहीं करता था। निम्नवर्ग की दशा भी अत्यंत शोचनीय थी।'[4] समय के साथ सामंतों व किसानों के बीच संघर्ष बढ़ते गए तथा एक सामंतवाद का नाश हुआ और औद्यागीकरण के साथ रूप बदलकर पूँजीवाद का आविर्भाव हुआ। अपने प्रारंभिक विकास के साथ-साथ इसने सामंतवाद को भीतर से खोखला करके नए पूँजीवादी आर्थिक सामाजिक संबंधों के लिए आधार तैयार किया। यह प्रक्रिया कोई संयोग नहीं था, क्योंकि सामंती व्यवस्था और पूँजीवाद दोनों में एक समानता है कि दोनों ही उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व तथा मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर आधारित हैं। सामंती व्यवस्था मुख्य रूप से भूसंपत्ति पर आधारित थी एवं आत्मनिर्भर था, लेकिन व्यापार-व्यवसाय के विकास के कारण व्यापारी वर्ग पैदा हुआ, जो समृद्ध तथा एवं नई-नई तकनीक के आविष्कारों से प्रत्येक क्षेत्र में विशेषज्ञों की जरूरत पड़ने लगी, अतः पूँजीवाद का विकास होने लगा–मुद्रा का लेनदेन, व्यापारिक केंद्रों-नगरों का विकास, फैक्ट्रियों व कारखानों का विकास, किसानों का नगरों की ओर पलायन, उत्पादन में बेशुमार वृद्धि पूँजी के संबंध में अपनी धारणा को स्पष्ट करते हुए बौद्रीआ ने कहा है– 'यह पूँजी ही थी, जिसने अपने इतिहास में अपने हर संदर्भ को नष्ट किया। अपने हर संबंध को खत्म किया। जिसने सच और झूठ के बीच आदर्श भेद को खत्म किया, ताकि विनिमय और समतुल्यता का नया नियम लागू हो सके। नये नियम जो कि उसकी सत्ता का लौह नियम है।'[5] आज के सामंत वे कहलाते हैं, जिसके अधिकार असीमित है। जनता के पैसे को अपना समझते हैं जिन्हें कानून की कोई परवाह नहीं। सर्वहारावर्ग द्वारा इसी सामंतवादी व पूँजीवादी प्रवृत्ति के विरुद्ध 'वर्गसंघर्ष' के परिदृश्य को साहित्य में बखूबी दिखाया गया है। लंबी कहानियों में हम इन परिदृश्यों को विभिन्न स्थितियों में देख सकते हैं।

लंबी कहानी संघर्ष के विभिन्न रूप समकालीन परिवेश में चित्रित कर रही है। हिंदी

कहानी की एक बड़ी विशेषता इस आधुनिक समाज में गाँवों और शहरों में मुख्य द्वार के अंदर और बाहर बेहतर जीवन के लिए संघर्षरत किसानों और मजदूरों की जिंदगी के यथार्थ का चित्रण है। किसान और मजदूरों की भूख, ऋणग्रस्तता, सामंती समाज द्वारा शोषण-दमन जैसी समस्याओं को केंद्र में रखकर लंबी कहानीकारों ने कृषक-मजदूरों समाज द्वारा किए जा रहे प्रतिरोध और संघर्ष को उनके जिंदगी के यथार्थ के रूप में चित्रित किया। सृजय की 'कामरेड की कोट' में हम संघर्षरत कामरेड कमलाकांत व उसके साथियों को देख सकते हैं। कहानी का नायक कमलाकांत कहता है कि 'बिना हथियार उठाये अब हमारा बचना मुश्किल है।'[6] कहानी में जमींदार जगतनारायण व मजदूरों का संघर्ष है। यह संघर्ष हिंसा का रूप ले लेता है–'जगतनारायण के लठैतों ने मजदूरों के एक मेट को बुरी तरह पीट दिया। अनखन खोजा गया कि वह हटिया से ताड़ी पीकर लौट रहा था और बड़कऊ लोगों को गली दे रहा था। मजदूरों को न अनाज उधार मिला, न निरापद काम और न चोखी मजूरी, लेकन इतना जरूर हुआ कि इस पिटाई के बाद उनका मटिआया कलेजा भूख की आँच में तपकर ईंट बन गया। अब तो उनकी नाकेबंदी की जाने लगी। किसी भी भूमिहीन खेतिहर मजदूर के खेत-खलिहान में जाने पर पाबंदी लग गयी।.... सँपेलवा को भी मारो तो मरते-मरते भी उसकी चेष्टा एक बार डस लेने की होती है। मजदूर भी मरण दंश देने पर उतारु हो गए। गुपचुप तय हुआ कि जगतनारायण के गैरकानूनी मिल्कियत वाले खेतों पर धावा बोला जाए। इसके सिवा अब कोई दूसरा चारा नहीं।'[7]

समाज में वर्गसंघर्ष की प्रक्रिया निरंतर रूप से चलती रहती है, इसीलिए मार्क्स भी कहते थे कि दुनिया के आज तक के समाजों का इतिहास 'वर्गसंघर्ष' का इतिहास है। वर्गसंघर्ष कई अलग-अलग रूप ले सकता है–प्रत्यक्ष हिंसा के अंतर्गत संसाधनों के लिए लड़े जानेवाले युद्ध और सस्ते श्रम, अप्रत्यक्ष हिंसा जैसे गरीबी, भूखमरी, बीमारी या असुरक्षित कामकाजी परिस्थितियों से मृत्यु, जबरदस्ती कार्य लेना आदि। अरुणा सीतेश की 'कल्लू का कल्लू' में यह वर्गसंघर्ष पूरा हिंसात्मक रूप लेता है और त्रासद स्थितियाँ जन्म ले लेती हैं। रामलखन निम्नवर्ग के होने के साथ मजदूरवर्ग से है। पढ़-लिखकर उसके भीतर उचित-अनुचित की चेतना जन्म लेती है। वह मजदूरों को सरकारी रेट से कम पर मजदूरी करने के खिलाफ एकजुट करता है, जिसके कारण वह जमींदार विदेश्वर बाबू का शत्रु बन जाता है।

पूँजीपति वर्ग इस आवाज को दबाने के लिए किसी भी हद तक गुजर सकते हैं। गरीब व छोटी जाति के लोग उन्हें केवल अपने स्वार्थपूर्ति का साधन नजर आते हैं। वे नहीं चाहते कि उनकी सदियों से चली आ रही सत्ता के विरुद्ध कोई आवाज निकले, उस आवाज को भी बंद करना इन्हें भली-भाँति आता है। कहानी का नायक रामलखन जो मजदूरों की हक की लड़ाई में आगे था उसका अंत करा दिया जाता है। जमींदारों की अपनी उच्च जाति को लेकर अहंकार भावना सदा से बनी रही है जिसके चलते ये निम्न जाति के सर्वहारा वर्ग को कुचलने की ही मानसिकता बनाये रखते हैं। ''सदियों से शासन करते आए लोगों ने कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थी। शासन किया था तो किसी बूते पर ही। उनकी ढिलाई और नेकमिजाजी का नाजायज फायदा उठाकर गली-गली में मेढक टर्राने लगे, बिल्लियों की देखादेखी चूहे भी गुर्राने लगे, तब तो कुछ करना ही पड़ेगा। कानून अभी अंधा नहीं हुआ है, सब देखता है, समझता है। बेजुबानों को जुबान देना परमपिता परमेश्वर की कार्यवाही में दखल अंदाजी है। देनी ही होती तो वह खुद ही न दे देता।

हम अदने इंसान क्या उससे भी बढ़कर समझदार हो गए? लोगों में न्यूनतम मजदूरी माँगने का साहस जुटाने लगे? क्या भगवान नहीं जानता, ठीक क्या गलत क्या? यही बात थी तो पृथ्वी पर भेजने से पहले चुटकी भर हिम्मत और बुलन्दगी इनके कलेजों में वह खुद ही नहीं डाल देता? पर रामलखन को तो कुछ सूझता ही नहीं था, न भगवान का डर, न भगवान के भेजे ठेकेदारों का। रात-दिन बस एक ही रट बहुत दिन जी लिये मर-मरकर। अब तो फैसला होकर ही रहेगा।'[8] यह उच्च वर्ग सर्वहारा वर्ग का शोषण करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। धन बल के सहारे वे हर असंभव को संभव बनाने का प्रयास करते हैं। इसी वर्ग की अर्थ लिप्सा के परिणामस्वरूप उपनिवेश का जन्म हुआ साथ ही आज का उदारीकरण व निजीकरण इसी वर्ग की मानसिकता की देन है। प्रवीण कुमार की 'छबीला रंगबाज का शहर' में वर्ग संघर्ष को हम जाति संघर्ष के रूप में परिवर्तित होते देखते हैं। दबंग जाति की फौज 'रणसेना' का उदय गरीब मजदूर वर्ग की 'कमाले' सेना के विरोध में होता है जो हिंसात्मक कार्यवाहियों को अंजाम देते हैं-'यह तब की बात है जब राज्य में इस रणसेना की स्थापना से वर्षों पहले आई॰पी॰एफ॰ नाम से एक सशस्त्र वामपंथी सेना का गठन हुआ था।....गरीब गुरबों के समर्थन से कई बड़े जमीदारों के खेतों पर लाल झंडे लहराने लगे। गैर मजरुआ भूमि भूमिहीनों की हुई, मजदूरी और मेहनताने जैसी चीज अब जाकर अस्तित्व में आई, बेगार बंद होने लगे। समाज में इससे कोलाहल फैलने लगा। सबसे ज्यादा असर शहर पर नहीं, बल्कि शहर से सौ किलोमीटर के रेडियस में रहने वाले जमींदारों पर पड़ा। फिर अक्सर अखबारों में 'वर्गसंघर्ष' के किस्से छपने लगे, जिसे कईयों के जाति-संघर्ष के रूप में देखा।

इस तनाव ने एक पृष्ठभूमि तैयार की और जमींदारों ने सामाजिक-आर्थिक न्याय के जवाब में एक स्थानीय फौज खड़ी कर दी। कहना न होगा कि इस बेल्ट की शायद ही कोई ऐसी दबंग जाति थी, जिसका समर्थन इसे नहीं मिला। सब शमिल थे। शहर इस फौज को 'रणसेना' के नाम से जानने लगा। संघर्ष तेज हो गए। बेलरू नाम के गाँव में एक चिंगारी भी फूटी, फिर जल्दी ही बुझ गई। कहानी इस बात को स्पष्ट रूप से दिखाती है कि जब हितों की बात आती है तो सब संगठित होकर संघर्ष करने को आगे आते हैं। ये शोषक पूँजीपति व जमींदार जहाँ अपनी सत्ता व हितों पर आँच आते देखते हैं, वहीं अपना जाल बिछाना प्रारंभ कर देते हैं। सदियों से हमारे देश में दबंग उच्च जातियों ने इन दलित व मजदूरवर्ग का शोषण ही किया है, सभी गरीब स्वयं को लाचार समझकर एक व्यवस्था में पिसते रहते थे, लेकिन शिक्षा के प्रसार व औद्योगीकरण के साथ इनमें चेतना आयी। वर्गचेतना की मौजूदगी आधुनिक बुर्जुआ समाज में होती है, 'मार्क्स ने बार-बार इस बात पर बल दिया कि मजदूरवर्ग ही अपनी मुक्ति के लिए आवश्यक संगठन और आंदोलन चलाएगा। बशर्ते उन्हें पूँजीवाद की असलियत और उसमें निहित उसकी रणनीतिक रूप से निर्णायक भूमिका का अहसास करा दिया जाए। अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी के प्रति कामगार वर्ग का सचेत होना ही उसकी वर्गचेतना है।'[10] औद्योगीकरण के बाद पैदा हुए आधुनिक मजदूरवर्ग को इस बदलाव का वाहक घोषित किया गया है। समय के परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न 'वर्गसंघर्ष' को दिखाती मिथिलेश्वर की 'गाँव का मधेसर' कहानी है, जहाँ गाँव में ही विद्यमान दो टोली नन्हटोली व बड़टोली के बीच दबे पाँव आता संघर्ष विराजमान है। नन्हटोली के हरिजन कुछ चेतन अवस्था में दिखाई देते हैं-'नन्हटोली के हरिजन और पिछड़े अपने काम से फुर्सत या

 ISSN 0975-735X

रात में देर तक एक जगह बैठते थे और खुसुर-फुसुर करते थे। ऐसी बात नहीं कि बड़टोली को इसकी भनक नहीं, पर उन्हें यह विश्वास नहीं था कि उनके खेतों में काम करनेवाले और उनके टुकड़ों पर जीनेवाले उनसे लोहा लेने की तैयारी करेंगे और ऊँच-नीच का भेद त्याग बराबरी का दर्जा देने के लिए उन्हें बाध्य कर देंगे। वे तो पुश्तों से उन्हें परजा-पवनी और आसामी समझते आ रहे थे। पर उनकी इस सोच को झटक दिया था उन्होंने...पहले की भाँति बड़टोली के लोगों की गाली बात सह जाना तथा अपने हक और अधिकारों के मामले में भी चुप बने रहना उन्होंने छोड़ दिया। बड़टोली के लोग गरजते-धमकाते, तो वे भी उसी लहजे में जवाब देते। वे लोग मारते-पीटते तो संगठित होकर वे भी हमले पर उतारु हो जाते। शायद यह परिवर्तन समय की देन थी। शायद यह उनकी संगठित शक्ति का कमाल था। जो हो, दोनों ओर से जोर-आजमाइश शुरू हो गई थी।'[11]

कहानियों में जहाँ हम संघर्ष के हिंसात्मक परिदृश्यों को देखते हैं, वहीं संघर्ष की कुछ स्थितियाँ हमें केवल विरोध रूप में दिखाई देती हैं। अन्याय व शोषण के खिलाफ आवाज उठाने पर जहाँ पूँजीपति वर्ग हिंसात्मक साधनों से उसे दबाने का प्रयास करते आये हैं, वही यह 'वर्ग संघर्ष' बिन हिंसा के विरोध रूप में भी प्रकट होता है। जमींदारी व्यवस्था के भीतर संघर्षरत जमींदार व किसान और मजदूर तो अपने हितों की रक्षा के लिए लड़ते ही हैं, नौकरीपेशा व्यक्ति भी मालिक की गलत नीति के विरोध में आवाज उठाता है, यह भी एक प्रकार का 'वर्गसंघर्ष' ही है। पंकज मित्र की 'हुडुकलल्लु' का नायक जहाँ नौकरी करता है, वहाँ गलत कार्य के विरुद्ध बोलता है–'लुक मिस्टर, क्या हूँ मैं पी॰आर॰ मैनेजर कि दलाल हूँ रंडी का? कई बार से रंग-ढंग ठीक दिख नहीं रहा है तुम लोगों का। कभी साला दारू पहुँचाओ, कभी लड़की पहुँचाओ, यही काम रह गया है मेरा?....मूतते हैं तुम्हारी नौकरी पर, साला हुडुकलल्लु सब।'[12] हम सभी आज ऐसी परिस्थितियों में जीने को मजबूर हैं, जहाँ पर चारों ओर केवल स्वार्थ का बोलबाला ही है। सामंती व्यवस्था के समापन के बाद जो यह पूँजीवाद उभरा, इसने शोषण में नये-नये हथकंडे अपनऐ हैं, जिसे जरा भी शक्ति व धन का साथ मिला, वही लाचार लोगों की मजबूरियों का लाभ उठाने को दौड़ा। पूँजीपतियों का केवल एक ही उद्देश्य है कि किस प्रकार लाभ और केवल लाभ कमाया जाये, उसके लिए ये किसी भी कीमत तक जा सकते है किंतु अपनी मूल संवेदनाओं को बरकरार रखता हुआ व इनसे संघर्ष करता अखिलेश की 'वजूद' का रामबदल व उसका पुत्र जयप्रकाश है। वैद्य संसाधनों पर कब्जा रखनेवाला सामंतवादी वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है, जो नहीं चाहते कि उसके अतिरिक्त कोई भी औषधि बनाने का ज्ञान प्राप्त कर उसका प्रयोग करें। रामबदल जो सर्वहारावर्ग से है वैद्य द्वारा मार्मिक अंत की मृत्यु की करुणापूर्ण घटना इस व्यवस्था का कुरूप चेहरा सामने लाती है। पिता की मृत्यु से आहत जयप्रकाश का आक्रोश कहानी के अंत में 'वर्गसंघर्ष' की स्थिति को दर्शाता है। जयप्रकाश कंपनियों के ऑफर को ठुकराकर इस व्यवस्था के प्रति अपना विरोध प्रदर्शित करता है साथ ही बैद्य को धक्का देना उनकी व सारी सामंती व्यवस्था से संघर्ष का आर्तनाद ही प्रतीत होता है–'ठीक इसी समय वह कांड घटित हुआ। जयप्रकाश ने वैद महाराज की कुर्सी को धक्का दिया। वे गिर गया तो उनकी नाक पर अपने घुटनों से मारा और वैद महाराज के चीखने से पहले वह खुद दर्द से चीखा।

जयप्रकाश भी भौचक था, वह तो उस तरह चीखना चाहता था जैसे उसका पिता रामबदल

नाक पर घूँसा पड़ने पर चीखा था। इतनी तेज चीख कि आसपास के पेड़ों पर बैठे परिंदे उड़ गए थे और थोड़ी दूर पर मवेशी चलने लगे थे।'[13] राजनीति के क्षेत्र की यदि बात करें तो आज की इस प्रजातांत्रिक शासन-प्रणाली में भी हमारे राजनेता सामंतशाही प्रवृत्ति को अपनाने से बाज नहीं आते। इसी कारण कई बार पूरी लोकतांत्रिक व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न लगा दिया जाता है। लोकतंत्र में चुनाव-प्रणाली का विशेष स्थान है। निष्पक्ष चुनाव-प्रणाली ही लोकतंत्र में जान डालती है, किंतु इसके रूप को कुरूप बनाने में भी सभी दल आगे हैं। यहाँ भी एक आक्रोश इन दलों के विरुद्ध देश के नागरिकों में पनपता है, जो इन राजनेताओं व दलों की सामंती प्रवृत्ति व आमवर्ग के बीच संघर्ष रूप में दिखायी देता है। प्रियंवद 'आर्तनाद' में निमाई के माध्यम से इसी संघर्ष का परिदृश्य निर्मित करते हैं। लोकतंत्र की खाल में सामंती प्रवृत्ति लिए सत्तासीन लोगों के साथ संघर्ष का उपाय यहाँ वोट का बहिष्कार के रूप में ढूँढा गया है, क्योंकि यही ताकत प्रजातंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को मिली हुई है। इस शक्ति को दिखाने की बात करता हुआ निमाई कहता है–'हमारी कोई इज्जत नहीं, हमारे लिए कोई न्याय, सुरक्षा और सुख नहीं है। इनकी खालें इतनी मोटी हो गई हैं कि इन पर अब हमारी बातों का कोई असर नहीं होता, इनकी खुली बेईमानी, झूठ ओर दरिंदगी देखते हुए हम थक गये हैं। हम कुछ और नहीं कर सकते, हम अपनी नफरत तो दिखा सकते हैं और इसलिए हम इस बार किसी को वोट नहीं देंगे। हम उनको बताएँगे कि हम सोचने लगे हैं, देखने लगे हैं और बोलने भी लगे हैं हम उनसे पहले हिसाब करेंगे।'[14] समकालीन लंबी कहानियाँ स्पष्ट रूप से समूचे ही मजबूत होते शिकंजे को लक्ष्य कर रही हैं। गाँव देहात में ही नहीं, कस्बों और शहरों में भी वही सामंतशाही रीति-नीतियाँ निरंतर जारी हैं। 'पुराने सामंतवादी और नवसामंतवाद का यही वह नापाक गठबंधन और भीषण दुरभिसंधि है, जिसके खूनी पंजों में हमारे जनतंत्र की गर्दन फँसी पड़ी है।'[15] हमारे आज के शिक्षा-जगत् में घुस चुके पूँजीवाद ने युवावर्ग को किस प्रकार प्रताड़ित कर रखा है और युवा जो मोटी-मोटी फीस भरकर रोजगार का स्वप्न लिए इन शिक्षण-संस्थानों में प्रवेश लेते हैं, वे किस प्रकार इस पूँजीवाद से संघर्ष कर रहे हैं, नीलम सिंह की कहानी 'इब्तिदा के आगे खाली ही' में इसका यथार्थ चित्र उपस्थित हुआ है। इन संस्थाओं से प्लेसमेन्ट की उम्मीद में ये युवा धोखेबाज कंपनी के चंगुल में फँस जाते हैं। सच्चाई का पता लगने तक देर हो जाती है।

ऐसे ही फरेब का शिकार वर्ग कहानी में है, जो इस पूरी व्यवस्था से संघर्ष करने को मजबूर हैं–'और यह कैसी लड़ाई थी? व्यक्तिगत बात या सामूहिक? अगर इसे सामूहिक लड़ाई बन जाने की छूट दी जाती तो इसका पक्ष-विपक्ष आरोप-प्रत्यारोप बहस-झगड़े की भेंट चढ़ जाना तय था। और अगर इसे व्यक्तिगत लड़ाई समझा जाता तो इसके परिणाम से व्यवस्था अप्रभावित रह जाती सिरे से। इसलिए अगर हम वाकई कोई परिवर्तन चाहते थे तो हमें व्यक्तिगत लड़ाई लड़ते हुए भी सामूहिक स्वरूप को नहीं छोड़ना था। यानी खलबली हर तरफ रहती, पर लड़ने का ढंग व्यक्तिगत होता। अपनी-अपनी आत्मा, सोच और दृष्टि को साधकर बनाया गया छोटा-छोटा व्यक्तिगत मोर्चा....जिसके निशाने पर भ्रष्ट हो चुकी व्यवस्था होती।'[16] जिस प्रकार सामंती जीवन में अपने आश्रित लोगों को धन का व अन्य कोई लालच देकर उनका शोषण होता था, वही प्रवृत्ति आज के समय में भी जारी है, जिस भी क्षेत्र में जिसे जहाँ जो मौका मिलता है, वह इस जाल को बिछाता है। उदय प्रकाश की 'और अंत में प्रार्थना' राजीसेठ की 'यात्रा मुक्त' मिथिलेश्वर की 'भोर

होने से पहले' में हम सामंती प्रवृत्ति के रूपों से परिचित होते हैं, साथ ही उसमें संघर्षरत पात्रों की मनोदशा से भी अवगत होते हैं। 'और अंत में प्रार्थना' में चिकित्सा-क्षेत्र में संघर्षरत डॉ॰ वाकणकर एक ईमानदार व्यक्ति हैं तो उनके क्रिया-कलापों से बेहाल भ्रष्ट अधिकारी हैं। यहाँ इसी भ्रष्ट व्यवस्था में डॉ॰ वाकणकर अपने सिद्धातों का तन्मयता से पालन करते हैं। तौफीक की पोस्टमार्टम रिपोर्ट को बदलवाने के लिए उन पर दबाव बनाया जाता है किंतु डॉ॰ वाकणकर सत्य व ईमानदारी के साथ अडिग होकर सही रिपोर्ट तैयार करते हैं और कहते हैं–'आप लोग भी दस्तखत कर दीजिए। जो सच है, उसे पुष्ट करिए। मैंने जो किया है, सोच समझकर किया है। डॉ॰ वाकणकर की आवाज में कोई कंपन नहीं था। यह सीधी साफ-सुथरी, किसी ठंडी धातु की तरह ठोस आवाज थी, जो यहाँ से नहीं, किसी दूसरे ग्रह से आती हुई लग रही थी। उसमें कुछ था जो अलौकिक था।'[17] यहाँ यह संघर्ष पूरी व्यवस्था के विरुद्ध किया गया ऐसा संघर्ष है, जो न्याय व अन्याय, सत्य और असत्य, ईमानदारी और बेईमानी के बीच का संघर्ष है। राजीसेठ की 'यात्रामुक्त' में सामंती जीवन में गुलाम बन चुके पिता को उसका पुत्र इससे बाहर निकालना चाहता है। वह अपने पिता की तरह इस गुलामी के जीवन को स्वीकार कर नहीं जीना चाहता। वह इस व्यवस्था से स्वयं भी बाहर आना चाहता है और पिता को भी गुलामी करने को नहीं छोड़ना चाहता। वह कहता है–'मैं सच कहता हूँ बापू, मैं इस ममता-वमता के चक्कर में नहीं आनेवाला। वह मुझे बाँध रही है तुम्हारी तरह। मैं नहीं बँधने वाला। तुम्हारे लिए मैं यहाँ बैठा....सिर्फ तुम्हारे लिए, तुम जब तक चंगे नहीं हो जाते तब तक मैं बैठा हूँ। जो कहोगे करूँगा, जैसे रखोगे रहूँगा, पर यह जान लो मैं तुम्हें उस जालिम के हाथ नहीं छोड़ने वाला तुम्हें साथ लेकर जाऊँगा।'[18] यह एक ऐसे वर्ग के संघर्ष का चित्र है, जो गुलामों का जीवन हो जीता आया है किंतु चेतना के फलस्वरूप अब वह इसे न स्वीकार करता है, न करने देता है जबकि ये सामंती लोग रूप बदल-बदलकर गुलामी करवाने में ही अपना हित साधते हैं 'दास प्रवृत्ति' अपनाकर ये सामंत व जमींदार लोग खूब अत्याचार सदा से ही करते आये हैं, इसी अत्याचार के विरुद्ध हम वर्गसंघर्ष विभिन्न स्थितियों में देखते हैं।

निष्कर्षत: यह देखा गया है कि मध्यकालीन सामंती व्यवस्था ने जो नया रूप धारण कर पूँजीवाद का आवरण चढ़ाया है, इसने सामंतवाद से भी आगे बढ़कर समाज व आमजन को हानि पहुँचाई है। 'पूँजी' ने गाँव हो या शहर सभी को इस कदर जकड़ लिया है कि इससे समाज मूल्यहीन होकर गर्त की ओर जा रहा है। जिनके पास धन है, वही स्वयं को सर्वेसर्वा मान बैठे हैं, बाकी गरीब व मजदूरवर्ग सिवा कराहने के कुछ नहीं कर सकता। लेकिन धीरे-धीरे इस व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष तेज होने लगे हैं। शोषितवर्ग में भी जागरूकता आने लगी है। यही जागरूकता वर्गसंघर्ष का प्रथम चरण है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में बात करते हुए लेनिन का कहना है कि युद्ध का कारण पूँजी है। पूँजी से साम्राज्य स्थापित होते हैं। साम्राज्यवादी लिप्सा के कारण एक अंतर्राष्ट्रीय वर्गसंघर्ष एक दिन पूँजीवाद का विनाश कर देगा।

संदर्भ

1. विकीपीडिया से।
2. डॉ॰ पी॰एम॰ थॉमस, भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास, पृ॰ 3॰
3. डॉ॰ शोभा शंकर, आधुनिक भारतीय समाजवादी चिंतन, पृ॰ 2॰

4. विकीपीडिया से।
5. सुधीश पचौरी, उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श, पृ॰ 17
6. सृंजय, कामरेड का कोट (हंस की लंबी कहानियाँ), पृ॰ 217
7. सृंजय, कामरेड का कोट (हंस की लंबी कहानियाँ), पृ॰ 217
8. डॉ॰ अरुणा सीतेश, कल्लू का कल्लू (चार लंबी कहानियाँ, पृ॰ 43
9. प्रवीणकुमार, छबीला रंगबाज का शहर, पृ॰ 77
10. Palpardhan.com (वर्गचेतना), 23 मार्च 2॰16
11. मिथिलेश्वर, गाँव का मधेसर, पृ॰ 65
12. पंकज मित्र, हुडुकलल्लु, पृ॰ 125
13. अखिलेश, अँधेरा (कहानी-संग्रह), पृ॰ 48
14. प्रियंवद, आर्तनाद (हँस की लंबी कहानियाँ), पृ॰ 33
15. शंभु गुप्त, कहानी : समकालीन चुनौतियाँ, पृ॰ 12॰
16. नीलाक्षी सिंह, इब्तिदा के आगे खाली ही (कहानी संग्रह), पृ॰ 53
17. उदयप्रकाश, और अंत में प्रार्थना (हंस की लंबी कहानियाँ), पृ॰ 322
18. राजी सेठ, यात्रा मुक्त (सात लंबी कहानियाँ संग्रह), पृ॰ 91

देवनगर, गली नं॰ 1
निकट सी॰ओ॰ आफिस
बड़ौत (बागपत)
मो॰ 9412473191

बुंदेलखंडी संस्कृति के लोकगीत

डॉ० सुधारानी सिंह, डी०लिट्०
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (हिंदी)
शहीद मंगल पांडे राज० स्नातकोत्तर महाविद्यालय
माधवपुरम्, मेरठ

बुंदेलखंड भूभाग की लोकभाषा बुंदेली कहलाती है। पश्चिमी हिंदी की बोलियों में बुंदेली एक मुख्य बोली है, जो बुंदेल क्षत्रियों के समय से ही ख्याति प्राप्त कर चुकी है। बुंदेलखंड की भूमि सदैव ही वीरों की धरा रही है। बुंदेलखंड अपनी संघर्षशीलता और जुझारुपन के साथ ही नीति विषयक कहावतों के लिए भी प्रसिद्ध रहा है। इसकी संस्कृति का प्राचीनतम स्वरूप इस अंचल में विंध्य पर्वतमाला की गुफाओं में प्रागैतिहासिक शैलचित्रों में दृष्टिगोचर होता है। यमुना के दक्षिण से नर्मदा तक फैले हुए तथा विंध्य पर्वतमाला की गोद में स्थित बुंदेलखंड भारत के मध्य में स्थित होने के कारण भारत का हृदयस्थल कहलाता है। इसकी सीमाओं का विस्तार छत्रसाल के शासन में सबसे अधिक हुआ। इसकी सीमाओं के निर्धारण के बारे में एक लोकोक्ति उद्धृत की जाती है—

इत चंबल उत नर्मदा, इत जमुना उत टोंक।
छत्रसाल सौं लरन की, रही न काहू हौंस।[1]

'लोक शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु से धञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ 'देखना' होता है। अत: लोक शब्द का अर्थ 'देखने वाला' व 'समस्त जनसमुदाय' जो इस कार्य को करता है, लोक कहलाएगा। ऋग्वेद में लोक के लिए 'जन' शब्द का प्रयोग मिलता है।'[2] वैदिककाल में लगातार लोक शब्द का प्रयोग कई रूपों में किंतु समान अर्थों में होता रहा है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार, 'आधुनिक सभ्यता से दूर, अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को लोक कहते हैं, जिसका आचार-विचार एवं जीवन परंपरायुक्त नियमों से नियंत्रित होता है।'[3] बुंदेलखंड सांस्कृतिक दृष्टि से ऐसे रीति-रिवाजों और परंपराओं से युक्त है, जिसका राष्ट्रीय जीवन में विशेष महत्त्व है। इसकी संस्कृति को बुंदेली लोक गाथाएँ और लोकगीत अपने में समेटे हुए हैं। लोक के संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की परिभाषा सबसे उपयुक्त है—'लोक शब्द का अर्थ 'जन-पद' या 'ग्राम्य' नहीं है, बल्कि नगरों व गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचिसंपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जानेवाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि रखने वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।'[4] भारतीय समाज की जीवन-शैली कमोबेश एक जैसी होने पर भी उसमें आंचलिकता का पुट उसे विशिष्टता प्रदान करता है और यही विशिष्टता उस अंचल की

लोकसंस्कृति कहलाती है। संस्कृति शब्द का संबंध मुख्यत: संस्करण या संस्कार से होता है। कोई भी भाषा अपनी लोकसंस्कृति से कटकर विकास नहीं पा सकती। भाषा विकास के मूल में उस क्षेत्र की लोकसंस्कृति, कला और जीवन के रहन-सहन में निहित होती है। लोकभावों की सर्वाधिक अभिव्यक्ति लोकगीतों में होती है, क्योंकि जीवन के प्रति एक प्रसंग के साथ लोकगीत जुड़ा हुआ है। अत: यह लोकगीत स्थानीय सांस्कृतिक परंपराओं के खजाने होते हैं। 'लोकगीत किसी संस्कृति के मुँहबोलते चित्र हैं।'[5]

इनमें गाँव, नगर, देश, नदी-तालाब, पोखर, पर्वत, वृक्ष आदि का वर्णन भी मिलता है। किसी ग्राम अथवा स्थान की लोकप्रियता की चर्चा लोकलय में होने से उसका भौगोलिक महत्त्व वहाँ के लोकगीतों की विशेष उपलब्धि होती है। लोकगीत लोकमन की सहज आकांक्षाओं की तरल तरंग होने के कारण लोकजीवन में अपना विशिष्ट स्थान बनाए रखने में सक्षम होते हैं। इनकी मनोरम स्वरलहरियाँ विविध भावनाओं के साथ मुखरित होकर जीवन को और मादक बना देती हैं। बुंदेली लोकगीतों में भाव-माधुर्य एवं लालित्य भरा पड़ा है। इस छंद के माध्यम से जीवन की विभिन्न अनुभूतियों को देखा जा सकता है–

ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे हवै नैननि–
त्यों-त्यों खरी निकसे सी निकाई।[6]

बुंदेली लोकगीतों में संस्कारगीत, देवीगीत अथवा माता के भजन, हरदौल के गीत, बनरा-बनरी, बारात के स्वागत के समय लड़कीवालों के द्वार पर गाए जानेवाले गीत, साजन, ज्यौनार, गारी, अरवती, रसिया, ढोला, नवरता, मामुलिया, ऋतुगीत, बसंतगीत, फाग गीत, रावला, बंथुलिया, सैरे, विरहा, भजन, दादरा, शृंगारी आदि विभिन्न अवसरों पर गाए जानेवाले गीत हैं, जिनमें से कुछ के उदाहरण प्रस्तुत हैं। संस्कार-संबंधी गीत के अंतर्गत सोहर गीत का एक सुंदर उदाहरण–

जन्म लियो रघुरैया, अवध में बाजे बधैया
ऋषि मुनि सब जन शब्द उचारें, जय जय राम रमैया। अवध में...
राम लखन और भरत सत्रुघन संग-संग जन्मे चारों भैया। अवध में...
घर-घर मंगलकलश धराए, नाचे लोग लुगइया। अवध में...

कुछ गीतों के माध्यम से सामाजिक जीवन चित्रण की झलक भी मिलती है। आभूषणों से अति लगाव रखने वाली गृहिणी नेग के समय भी आभूषण देना नहीं चाहती, किंतु परिजनों का दबाव जब उसे बाध्य करता है तो वह खीझकर अपने गहने किस प्रकार उतारकर देती है–

माँगे-माँगे ननद रानी कंगना, लालन के जनम भए कौ
अँगना में ठाड़े ससुर समझावैं,
दै देउ दै देउ बहूरानी कंगना लालन के जनम भये कौ।

इसी तरह बारी-बारी से सभी परिजनों के कहने पर वह झुँझला जाती है–

कंगना उतारि आँगन बिच फेंका,
लेजा लेजा हठीली ननदिया कंगना। लालन...
कंगना पहन ननदी घर अपने जाओ, फिर मत अइयो मेरे अंगना। लालन...
कंगना पहिर भाभी हम घर जाए रहे, जुग जुग जिओ तेरो ललना। लालन.
जब-जब भाभी तुम पूत जनौगी तब तब ले लूंगी मैं कंगना। लालन...

 ISSN 0975-735X

इसी तरह विवाह में मेहँदी लगाना, कंगन बाँधना, कंगन खोलना, हल्दी चढ़ाना, मंडप आदि के विभिन्न अवसरों पर विविध भावों वाले गीत गाए जाते हैं। बन्ना और बन्नी के रसमय भावों और विचारों की अभिव्यक्ति लोकगीतों में होती है। प्रसिद्ध उदाहरण में स्त्रियाँ (विशेष रूप से बन्ना की भाभी) बन्ना को समझाती है कि उसे क्या और कैसे करना है। साथ ही बन्नी भी अपनी इच्छा अपने परिवार के सदस्यों के सामने स्पष्ट करती हुई कहती है कि उसे कैसे लड़के से विवाह करना है। इन सभी भावों और विचारों की अभिव्यक्ति लोकगीतों में हुई मिलती है—

बन्ना धीरे से चलो ससुराल देहरियां। बन्ना सेहरा सम्हारेंगी बेई सखियाँ
जिनके लंबे-लंबे केश रसीली अखियां। जिनके गोरे-गोरे हाथ हरीली चुरियाँ।
बन्ना कुंडल सम्हारेंगी बेइ सखियाँ।...बन्ना कंगन सम्हारेंगी बेई सखियाँ....

इसी तरह सभी वस्तुओं का नाम लेकर अंत में कहते हैं—

बन्ना, बन्नी हमारी जैसे फूल गुलाब वर ढूँढन उनके बाबाजी जाएँगे,
छोटा वर ढूँढो मत, सब गुण खोटो है।
लम्बो वर ढूँढो मत, दरवाजा मेरो छोटो है।
काला वर ढूँढो मत, चलत लजावेगा।
गोरो वर ढूँढो मत, चलत पसीजेगा।
ऐसो वर ढूँढो जैसे कृष्ण मुरारि। ऐसो वर ढूँढो जैसे राजकुमार।

बन्नी को भी गीतों के माध्यम से समझाया जाता रहा है कि खुश रहने वालों से सभी खुश रहते हैं। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

हंस-हंस के बोलो प्यारी बन्नी, हंसन हिरदे में समानी।
मैंने झूमर मँगाई बड़ी दूर से, हँस-हँस के पहरो, प्यारी बन्नी।
हँसन हिरदे में समानी।

हमारे देश में लगभग सभी उत्सव ऋतु से ही संबंधित होते हैं। उनमें बसंत का अपना अलग ही आनंद होता है। पौराणिक काल में मदनोत्सव के नाम से मनाया जाने वाला यह पर्व माँ सरस्वती के प्राकट्य दिवस के रूप में बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। यह दिन सरस्वती पूजा के साथ-साथ वेद पूजा, ऋतु पूजा, रतिपूजा, प्रकृतिपूजा, देवपूजा एवं कृष्णपूजा आदि का दिन माना जाता है। इसी दिन बच्चों की पढ़ाई आरंभ करने हेतु पट्टी पूजा का भी विधान है। किसान इस दिन नए अन्न गेहूँ और जौ की बालियों को भूलकर उनमें घी और गुड़ मिलाकर खाते हैं, जिसे 'उमी' कहते हैं। इस सामाजिक पर्व को 'नवान्न' भी कहा जाता है। इस अवसर पर श्रीकृष्ण को भी संबोधित कर गीत गाए जाते हैं—

कन्हैया जू की टोपी, बसंती रँगवाई देऊँगी
जो कान्हा पर टोपी न होगी, बरसाने से मँगवाइ देऊँगी
मेरी चूनर रंगी बसंती, बामे ते फारि सिमवाइ देऊँगी
कन्हैया जू की टोपी...

फाल्गुन मास में पढ़ने वाला मस्ती का त्योहार होली पूरे देश में महीने भर बड़े हर्ष और उल्लास के साथ मनाया जाता है। प्रेम, सौहार्द और एकता का संदेश देनेवाला यह पर्व प्रेम से रंगों में सराबोर कर जीवन में नई उमंग और उत्साह भरता है। इसमें शृंगार के अलावा अन्य रस भी

प्रयुक्त होते हैं। कुछ भक्तिप्रधान गीत भी होते हैं, जो अधिकतर राधा-कृष्ण पर आधारित होते हैं, जैसे–

नैंक ठाड़े रहियो लाला रंग डारूँगी। रंग डारूँगी-डारूँगी रंग डारूँगी,
बहुत दिनन में अवसर आयो, सिगरी कसर निकारूँगी ओ लाला
सिगरी कसर निकारूँगी। नैंक....
लाल गुलाल मलूँ मुख तेरे गालन गुलछा मारूँगी ओ लाला
अँगना ठाड़े कृष्ण मुरारी, भर पिचकारी मारूँगी ओ लाला

बुंदेलखंड की बोली में गाये जाने वाले हास्य गीत सबका मनोरंजन करने वाले होते हैं। इन्हें सुनने वाले के लिए अपनी हँसी रोक पाना मुश्किल होता है–

कछु लेती न देतीं बुलाय लेतीं, हमसे तो गाना गवाय लेतीं।
सब सखियन खौं चार-चार लडुआ, हम खौं बतासा बताय देतीं।
सब सखियन खौं ढोलक मंजीरा, हम खौं तो डिब्बा गहाय देतीं।
सब सखियन खौं पान सुपारी, हम खौं तो चूना चटाय देतीं।
सब सखियन खौं जाजम गलीचा, हम खौं तो बोरा बिछाय देतीं।

बुंदेलखंडी लोकरागिनी में लेंद अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। यह गीत फागुन-चैत्र मास में होते हैं। मार्गीय संगीत के रूप में यह हर समय गाये जाते हैं। इनका उपशास्त्रीय स्वरूप बसंत ऋतु में बहुत ही आकर्षक लगता है। इसमें राधा-कृष्ण पर आधारित गीत भी मिलते हैं–

राधे जू बृज की रानी, हमारी पराधनीता मेटियो।
मैं तो आठ पहर चौंसठ घरी धरौ तुम्हारौ ध्यान। हमारी...
मेरे गुन औगुन चित ना धरौ
तुम हेरौ हमारी ओर, हमारी पराधीनता मेटियो
राधे मैं जन जान-अजान हूँ, तुम कृपासिंधु भगवान, हमारी पराधीनता मेटियो।

पावस ऋतु में आनंद, उल्लास और करुण रस के समवेत स्वरवाले राछरे नामक लोकगीत भी बुंदेलखंड में गाये जाते हैं–

बदरिया रानी बरसौ बिरन के देस
कानाँ से आयी कारी बदरिया, कानाँ बरस गये मेह।
अग्गम दिसा से आयी बदरिया, पश्चिम बरस गये। बदरिया...।

सावन के आने पर पूरे महीने जगह-जगह पड़े हुए झूलों-हिंडोलों पर घिरी हुई काली घटाओं और पड़ती फुहारों के बीच मधुर गीत गाए जाते हैं–

सावन आयो सुघर सुहावनो जी ऐजी कोई आयी हरियाली तीज...
घर-घर झूला परि गये जी, ऐजी कोई गावत गीत मल्हार।

पूरे माह भाई बहन और पति-पत्नी से संबंधित मधुर भावों में भीगे हुए रिमझिम-रिमझिम वर्षा में गाए जाने वाले अधिकांशत: गीतों में सामाजिक और पारिवारिक स्थितियों का चित्रण देखने को मिलता है। एक लड़की ससुराल में अपने माता-पिता, भाई-बहन एवं सखियों को याद करती है–

छोटी बड़ी सुइयाँ रे, जाली का मेरा काढ़ना।
एक सुख पायो मैंने बाबुल के राज में, संग सहेली रे झूले का मेरा झूलना।

एक दु:ख पायो मैंने ससुरा के राज में,
गीली-गीली लकड़ी रे चूल्हे का मेरा फूँकना।

रक्षाबंधन का त्यौहार आने पर एक पत्नी अपने पति से पीहर जाने की अनुमति माँगती है। वहाँ उसे अपने भाई को राखी तो बाँधनी ही है, साथ ही अपनी सहेलियों के साथ मिलकर उत्सव भी मनाना है। इन्हीं भावों को व्यक्त करते हुए वह कहती है–

आयो राखी का त्योहार, बलम मैं पीहर जाऊँगी
भैया मेरो बाट तके, भौजाई काग उड़ावै।
भैया को उमगाय जिया बहन को हिचकी आवै।
मेरी डुलिया कर देउ तैयार, संग सहेलिन मंगल गाऊँ लै पूजा के थार
भइअन कें राखी बाँधूँ और देऊँ असीस हजार।
आज मत जइयो पल्ली पार। बलम मैं पीहर जाऊँगी...

'लोकगीतों में भारत की यही सांझा संस्कृति भारतीयता की पहचान है। लोकसंस्कृति के माध्यम से मिलने वाली यह भारतीयता की झलक बरबस मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है।'[7] वर्तमान समय में हमारी संस्कृति और संस्कारों पर मीडिया के माध्यम से जो हमले हो रहे हैं, उनसे बचने हेतु हमारे लोकगीत रक्षाकवच के रूप में सहायक सिद्ध होते हैं। विदेशी सभ्यता के निरंतर बढ़ते प्रभाव और पीछे छूटती हुई अपनी संस्कृति को बनाए रखने में प्रांतीय लोकगीत ढोलक की थाप, मंजीरे की मधुर झंकार और कंठ से निकली लोकगीतों की स्वर लहरियाँ आज भी प्राचीन संस्कृति का महत्त्व प्रतिपादित करने में सक्षम हैं। यह साहित्य ग्रामीण लोगों के दिलों में सैकड़ों वर्षों तक युग संस्कारों का संवाहक बनता रहेगा। बुंदेलखंड की संस्कृति न केवल भारत अपितु विश्व की संस्कृतियों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। बुंदेलखंड की भाषा को लोकगीतों की उपलब्धता समृद्ध बनाती है।

संदर्भ

1. अयोध्याप्रसाद गुप्त कुमुद, बुंदेलखंड का लोकजीवन, पृ॰ 11
2. सिद्धांत कौमुदी, वेंकटेश्वर प्रेस बंबई, 1998, पृ॰ 417
3. डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका, पृ॰ 11
4. डॉ॰ द्विवेदी, जनपद वर्ष 1 अंक एक, पृ॰ 95
5. बुंदेली लोकसाहित्य, डॉ॰ के॰एल॰ वर्मा, दीपक प्रकाशन निवाड़ी, टीकमगढ़, (म॰प्र॰)
6. डॉ॰ विद्याबिन्दु सिंह, अवधी लोकगीतों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ॰ 98
7. डॉ॰ अन्नपूर्णा भदौरिया, ग्वालियर चंबल संभाग की लोकसंस्कृति लोकगीतों के संदर्भ में, पृ॰ 64

गीतिकाव्य-परंपरा और जयदेवकृत गीतगोविंद

शशिभूषण प्रसाद
व्याख्याता हिंदी विभाग
एस॰डी॰एम॰वाई॰ कॉलेज, धोरैया

संस्कृत साहित्य की महान परंपरा के परवर्ती कवियों में बंगाल के बहुचर्चित कवि जयदेव का नाम सर्वज्ञात है। भारतीय साहित्येतिहास में जयदेव नाम के तीन कवि, साहित्यकार हुए : पहला, संस्कृत भाषा के नाटककार तथा 'प्रसन्नराघव' के रचयिता। ये विदर्भ प्रांत के 'कुण्डिल' नगर के निवासी थे। दूसरा, मिथिला के नैयायिक जयदेव तथा तीसरा, बंगाल के अंतिम हिंदू शासक राजा लक्ष्मणसेन के दरवारी कवि एवं 'गीतगोविंदम्' के रचयिता जयदेव। विवेच्य आलेख 'गीतगोविंद' के रचयिता जयदेवकृत 'गीतगोविंद' के संदर्भ में है।

ज्ञातव्य है कि साहित्येतिहास में तीन जयदेव के नाम तथा उनके साहित्य के दर्शन होते हैं और ये तीनों ही भारतीय साहित्य के आदि प्रणेता हैं। लेकिन, जितनी प्रसिद्धि गीतगोविंदकार को मिली, उतनी अन्य दोनों को नहीं। इन तीनों में गीतगोविंदकार जयदेव तथा 'प्रसन्नराघव' के रचयिता का काल क्रमश: 12वीं तथा 11-13वीं के बीच माना जाता है। डॉ॰ उमाशंकर 'ऋषि' प्रणीत पुस्तक 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' में इस बात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है–'संस्कृत के रामकथाश्रित 'प्रसन्नराघव' नामक नाटक के रचयिता जयदेव की ख्याति उनकी शैली के कारण बहुत अधिक है। इस नाटक के अतिरिक्त 'चंद्रलोक' नामक पद्यात्मक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ भी इन्होंने लिखा था। 'गीतगोविंद' के रचयिता जयदेव तथा मिथिला के नैयायिक जयदेव से ये भिन्न थे।'[1] इससे एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि तीनों ही साहित्य के क्षेत्र में सिद्धहस्त थे। परंतु, इन तीनों में सर्वाधिक लब्धप्रतिष्ठ तथा प्रतिभासंपन्न 'गीतगोविंद' के रचयिता जयदेव ही थे।

गीतिकाव्य काव्यविधा का सर्वाधिक लोकप्रिय काव्यभेद है। यह आत्मतत्त्व/मनोगत भावों का सांगीतिक प्रकाशन कराता है, जिसमें मानवीय भावनाओं, जैसे-सुख-दुख एवं अभिलाषाओं की सहज-सरल अभिव्यक्ति होती है।

'गीतिकाव्य का उद्गम ऋग्वेद की ऋचाओं से माना जाता है। उसमें अग्नि, इंद्र, विष्णु आदि देवों के प्रति विविध ऋषियों के द्वारा की गई स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। भक्तों का समर्पण भाव इन स्तुतियों में श्लाघनीय है। इंद्र के प्रति एक ऋचा में कहा गया है–

तुंजे-तुंजे य उत्तरे, स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिण:।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम्। (ऋग्वेद-1/7/7)

अर्थात् विविध वस्तुओं का दान करने वाले अन्य देवों के लिए जो स्त्रोत(अच्छे माने जाते) हैं, उन्हें मैं इन्द्र की स्तुति के लिए उपयुक्त स्त्रोत नहीं मानता। प्रजापति की स्तुति में हिरण्यगर्भ सूक्त(ऋ॰10/121) उत्कृष्ट गीतिकाव्य है, जिसके प्रतयेक मंत्र के अंत में आया है-कस्मै देवाय हविष विधेम।.....इसी प्रकार अथर्ववेद में भूमि की स्तुति में गीतिकाव्य का

 ISSN 0975-735X

विन्यास है। पृथ्वी देवी के प्रति कृतज्ञता की अभिव्यक्ति 63 मंत्रों में अथर्वा ऋषि ने की है। पृथ्वी के प्रत्येक गुण का वर्णन इस प्रसंग में हुआ है। सामवेद का संगीत-पक्ष गीतिकाव्य के अनन्य गुण को विशेष रूप में धारण करता है। इसीलिए वैदिकयुग ही संस्कृत गीतिकाव्य के उद्भव के लिए ठोस धरातल देता है।

रामायण का उदय भी गीतिकाव्य के रूप में हुआ है। इसमें स्थल-विशेष पर ऋतु-वर्णन, स्त्री-सौन्दर्य का चित्रण, विरह-वर्णन, देव-स्तुति आदि गीतिकाव्य को स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट करते हैं। महाभारत में प्राप्त होने वाली स्तुतियाँ भी गीतिकाव्य के सोपान के रूप में स्वीकृत हैं।'[2]

संस्कृत गीतिकाव्यों में मुख्य रूप से शृंगार, नीति, विरह, वैराग्य, भक्ति, ऋतृवर्णन, देवस्तुति आदि में किसी भी विषय को चुनकर उसे संवेगात्मक अभिव्यक्ति दी गई है। मानव को अभिभूत करने के लिए इसमें आत्मा और विषय का साक्षात् संवाद निरूपित हुआ है, क्योंकि आत्मा की स्वरूपोपलब्धि के बिना आनंद की कल्पना संभव नहीं है। संस्कृत काव्य में गीतिकाव्य के दो भेद मिलते हैं-शृंगारमूलक गीतिकाव्य तथा भक्तिमूलक गीतिकाव्य। 'गीतगोविंद' संस्कृत के शृंगारमूलक गीतिकाव्य के अंतर्गत आता है।

ऊपर कहा गया है कि गीतिकाव्य का उद्भव वैदिक साहित्य है। वैदिक वाङ्मय में दो प्रकार के गीतों की परिपाटी मिलती है-ऋक और गाथा। 'ऋक' के अंतर्गत ईश्वर और देवताओं की वंदना स्तुति मिलती है, जबकि 'गाथा' के अंतर्गत राजाओं तथा शासकों की वंदना एवं उनके वीरत्व का वर्णन। भारतीय मनीषा की उत्कट उपलब्धि ऋग्वेद है। ऋग्वेद की सांगीतिक ऋचाओं का संकलन सामनेद है, जिसे संगीत का आदिग्रंथ माना गया है। सामवेद ही मानव इतिहास का सबसे प्राचीन व प्रामाणिक गीति ग्रंथ साबित होता है। सामवेद के गान के आधार पर ही राग-रागिनियाँ, उसका रूप-रंग और स्वर-लय-ताल तथा उसके सहजात वाद्ययंत्र का निरूपन हुआ है। इसी के आधार पर गीत-संगीत का प्रचार-प्रसार हुआ और संगीत एक लोकप्रिय कला के रूप में विकसित हुई। 'सामवेद में अनेक सुंदर-सुंदर गीतों का प्रयोग किया गया है। वैदिक साहित्य में काव्य और गीत में भेद नहीं था, क्योंकि काव्य की रचना इस प्रकार से हाती थी की उसे गाने में कोई बाधा उत्पन्न न हो। इसलिए प्राचीन काव्य जितने भी लिखे गये हैं, वे सब अधिकांशत: गेय हैं।'[3]

वैदिक वाङ्मय के बाद बौद्धकालीन साहित्य में गीतिकाव्य परंपरा की क्षीण रूप दिखाई देता है। संस्कृत से चली आ रही गीतिकाव्य परंपरा अतिशृंगारिकता के कारण धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही थी। बाद चलकर जब जयदेव के आगमन के साथ ही लुप्त गीतिकाव्य की परंपरा पुनर्जीवित हो उठी। 'गीतगोविंद' इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। ऐसा नहीं था कि जयदेव पूर्व गीतिकाव्य का सर्जन नहीं हो रहा था। हो रहा था, लेकिन जितनी व्यापकता एवं उदात्तता संस्कृत काल में थी उतनीपाली, प्राकृत और अपभ्रंश काल में नहीं थी। विद्वत्जनों का मानना है कि गीतिकाव्य परंपरा के लुप्त होने का कारण उसमें अतिशय शृंगारिकता का आ जाना था। इसीकारण गीतिकाव्य धारा का प्रवाह थोड़ी कम हो गई थी। लेकिन जयदेव ने इस काव्यधारा फिर से गति दी एवं 'गीतगोविंद' की मर्यादित रचना कर उन्होंने इसका क्षेत्र विस्तार किया।

भारतीय वाङ्मय के अनुशीलन के उपरांत यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि वास्तव में जयदेव से ही इस काव्य-परंपरा का पूर्ण उन्मेष हुआ। गीतिकाव्य की पुनर्प्रतिष्ठा में जो भूमिका

जयदेव ने निभाई थी, वह किसी अन्य गीतिकार ने नहीं निभाई। 'वास्तव में जयदेव को ही स्वतंत्र गीतिकाव्य का जन्मदाता मानना चाहिए, क्योंकि उन्होंने ही संगीत की उत्कृष्ट मर्यादा पर राग-रागिनियों से पूर्ण सुकुमार भाव-भाषा में राधा-कृष्ण के प्रेम में तन्मय होकर गीतों की परम पावन धारा प्रवाहित की। जयदेव के गीतों में पद-लालित्य, सौंदर्य-भावना और रस की जैसी व्यंजना एवं उत्कृष्ट छटा विद्यमान है, वैसी अन्यत्र कम ही मिलेगी। उनके गीतों में विश्वभर के मानव के हृदय को प्रकंपित कर देने की शक्ति है।'[4]

गीतिकाव्य और गीत गोविंद

संस्कृत गीतिकाव्य परंपरा में जयदेवकृत 'गीतगोविंद' सर्वश्रेष्ठ गीतिकाव्य है। यह बारह सर्गों में विभाजित है, जिसमें ताल और लय से संबद्ध गीत हैं। इसकी रचना अन्तयनुप्रास (तुकबंदी) और ध्रुवपद (एक ही पंक्ति या पदसमूह की आवृत्ति) में हुई है। इसका कथानक राधा-कृष्ण के बीच हास-परिहास और गोपियों से कृष्ण की रासक्रीडा से संबद्ध है। इसके बारह सर्गों में क्रमश: श्रीकृष्ण के साथ गोपियों के साथ रासक्रीड़ा, राधा का विषाद, कृष्ण के लिए व्याकुलता, उपालंभ, कृष्ण की राधा के लिए उत्कंठा, राधा की रखी द्वारा राधा के विरह संताप का वर्णन, कृष्ण का आगमन, राधा का कोप-प्रकाशन, कृष्ण का संगीत और राधा से मिलन का निरूपन। इस काव्य के गीत राधा, दूती और कृष्ण के द्वारा गाये गये हैं। ये गीत रस और भाव से पूर्ण हैं। प्रत्येक गीत के अंत में जयदेव का नाम है। इन गीतों को कथा-सूत्र में बाँधने के लिए वर्णनात्मक पद्य भी हैं। ये पाठ्य पद्य हैं, जिन्हें सस्वर पढ़ा जाता है। इसप्रकार 'गीत गोविंद' में गेय और पाठ्यांशों का समन्वय है।

'गीतगोविंद' काव्य में जयदेव ने परंपरागत रचना-प्रणाली का अनुकरण न करके सर्वथा नवीन व मौलिक शैली को अपनाया है। श्लोक, गद्य और गीत के मिले-जुले प्रयोग द्वारा काव्य में अनुपम रचना-माधुर्य की सृष्टि हुई है। कवि ने कथा-सूत्र के निर्वाह के लिए आवश्यक दृश्य-योजना अथवा अवस्था विशेष के चित्रण-जैसा वर्णनात्मक प्रसंगों में श्लोकों का प्रयोग किया है। पात्रों की मनोदशा को सूचित करनेवाले संवादात्मक प्रसंगों में गद्य का प्रयोग हुआ है तथा भावानुभूति की अभिव्यंजना पद्यों में की गई है। इसप्रकार गीत गोविंद में अपनाई गई अभिनव रचना-प्रणाली में वर्णन, संवाद और गीत-परंपरा इस प्रकार गुंथ गये हैं कि उससे एक विलक्षण आनंद की अनुभूति होती है। इस अनुपम रचना-शैली के अविष्कर्त्ता हैं—जयदेव।'[5]

गीत गोविंद में कवि ने अपने आराध्य के लिए शृंगार के दोनों रूपों-संयोग और वियोग (विप्रलंभ) की नियोजना की है। उन्होंने संयोग से कहीं ज्यदा वियोग पक्ष को महत्त्व दिया है। क्योंकि, उनकी मान्यता है कि वियोग की परिपुष्टि संयोग शृंगार से ही सहृदयों में होती है और उन्हें आह्लादित करती है। कालांतर में कवि की इस मान्यता को संस्कृति के कवियों ने शास्त्रीय आधार प्रदान किया। संस्कृत काव्यशास्त्र में उनकी यह मान्यता स्वीकृत हो गई और यह मान्यता प्रचलित हो गया—'न बिना विप्रलम्भेन सम्भोग: पुष्टिमश्नुते।'

'गीत गोविंद' का विन्यास बारह सर्गों और चौबीस प्रबंधों में विभक्त है। उक्त सर्गों और प्रबंधों में निबद्ध 'गीतगोविंद' के सर्गों का नामकरण कृष्ण के विविध मन:स्थितियों के आधार पर किया है। इस ग्रंथ का मंगलाचरण-प्रारंभ-और समापन राधा-कृष्ण की प्रणय-चेष्टाओं से संबद्ध है। प्रथम अथवा प्रारंभिक पद्य में मंगलाचरण के अंतर्गत कवि कहता है—

ISSN 0975-735X

मैघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरूरयंत्वमेव तदिमं राधे! प्रापय।
इत्यं नन्दनिदेशितश्चलितयोः प्रत्याध्वकुंजद्रुमम्,
राधामाध्वयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलय।

अर्थात् हे राधे! आकाश में घिरे काले मेघों, तमाल वृक्षों के फैलाव तथा सूर्यास्त से हुए अंधेरे से उद्दीप्त मैं श्रीकृष्ण तुमसे अपनी गृहिणी-संभोग सुख देने वाली-बनने का अनुरोध करता हूँ। भीरु स्वभाव का होने के कारण न मैं अकेले घर जा सकता हूँ और न ही तुमसे कुछ अधिक कह सकता हूँ।'[6] श्रीकृष्ण के इस अनुरोध सं गौरवान्वित होकर राधा और कृष्ण यमुना के तट पर कुंजद्रुम मालाओं की ओट में सुरत-क्रीडा का आनंद लेने चले जाते हैं।

'गीतगोविंद' भक्ति, संगीत और शृंगार रस की त्रिवेणी है। संगीत तत्त्व का चरमोत्कर्ष, गूढ़ परमात्मचिंतन का भावात्मक चित्रण तथा रसराज शृंगार के दोनों रूपों का जैसा हृदयहारी चित्रण इस काव्य में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कविसुधी एवं सहृदय रसिकों से सरस माध्यम से भक्ति तत्त्व में आरूढ़-स्थिर होने के लिए 'गीतगोविंद' के अनुशीलन की अनुशंसा करता है।

'गीतगोविंद' संस्कृत भाषा में एक नूतन साहित्य-प्रकार को लेकर आया। विगत वर्षों में यूरोप में भी यह बहुत प्रशंसित तथा लोकप्रिय हुआ है। यूरोपीय विद्वानों ने इसे अपने-अपने ढंग से साहित्य प्रकार में रखा है। रस विलियम जॉन्स ने इसे ग्राम्य नाटक (pastorol drama) ए लासेन ने गीतिनाटक (Lyric drama) ए फॉन श्रोएडट ने परिष्कृत यात्रा (Refined yatra) कहा है। पिशेल ने इसे संगीत नाटक (Melo drama) नाम देना उचित समझा है। इसमें वस्तुतः अभिनयात्मक कथोपकथन है, किंतु इसी से यह नाटक की श्रेणी में नहीं आता। जयदेव ने इसे सर्गों में विभक्त करके प्रबंध काव्य का रूप दिया था। यह बिल्कुल नये रूप का संगीत प्रधान काव्य है; गीतिकाव्यों का शिरोमणि है।'[7]

सारतः, 12वीं शताब्दी के मध्य में बंगाल की बसुधा ने एक ऐसे कवि-प्रतिभा को जन्म दिया, जिनकी काव्य-प्रतिभा से बंगाल नहीं, समस्त भारतवर्ष चमत्कृत हुआ। संस्कृत भाषा में गीतिकाव्य के वास्तविक जन्मदाता एवं राधा-कृष्ण के मर्यादित व उदात्त प्रेम-भावनाओं की पवित्रता से आप्लावित करने वाले भक्तप्रवर जयदेव की प्रतिष्ठा विश्वविश्रुत है। उनकी ख्याति का एक मात्र आधार 'गीतगोविंद' है। उनकी यह कृति भारतीय काव्य-संगीत एवं साहित्य में प्रतिनिधि कृतियों में से एक माना जाती है। 'गीतगोविंद' का उपजीव्य 'श्रीमद्‌भगवत' और 'ब्रह्मवैवर्त' है।

गीतगोविंदकार का जीवन आनंदकंद व्रजनंद की दिव्य भक्ति में पगे हुए एक भक्त का-सा था। उनके जीवन में एक ही रस बाहर और भीतर आप्लावित होता था, वह है—भक्तियुक्त शृंगार रस। उनकी भक्ति का स्वरूप शृंगारमूलक थी और उनकी अमर कृति 'गीतगोविंद' 'भगवती संस्कृत-भारती' के सौंदर्य की मधुर व चरम परिणति। 'गीतगोविंद' की तुलना महाकवि कालिदास के काव्य से की जाय, तो इनकी शृंगारिक चेतना व कोमलकांत पदावली के समक्ष कालिदास थोड़े पीछे रह जाते हैं। उनकी इस कालजयी कृति में कोमलकांत पदावली का जितना सरस व मधुर प्रवह दिखाई देता है, वह संस्कृत साहित्य में तो दूर, किसी अन्य भाषा के साहित्य में भी नहीं दिखाई देता। कृष्ण-राधा की ललित-लीलाओं का जितना लास्यपूर्ण व सांगीतिक प्रकाशन 'गीतगोविंद' में जयदेव ने किया है, उतना किसी समकालीन व परवर्ती गीतिकाव्यकारों की रचना

में नहीं मिलता।

जयदेवकृत गीतिकाव्य 'गीतगोविंद' की विशेषता उसमें निहित संगीतबद्धता के लिए नहीं, बल्कि राधा-कृष्ण के मर्यादित शृंगार-वर्णन को गेयता प्रदान करने के कारण जगत् प्रसिद्ध है। संस्कृत साहित्य की काव्य-परंपरा, विशेषत: गीतिकाव्य-परंपरा में मधुराभक्ति को संगीतबद्ध कर उसे गेय बनाने का कौशल 'गीतगोविंद' को कालातीत सिद्ध करती है। उन्होंने लुप्तप्राय: गीतिकाव्य-परंपरा को न सिर्फ पुनर्जीवित किया, बल्कि एक नए रचना-कौशल के साथ प्रस्तुत भी किया। राधा-कृष्ण की केलि-कथाओं तथा उनकी अभिसार-लीलाओं का रसमय चित्रण 'गीतगोविंद' को आध्यात्मिक शृंगार का मनोरम ग्रंथ बना देता है। राधा-कृष्ण के प्रणय-चित्र प्रेम का विविध दशाओं-आशा-निराशा, उत्कंठा, ईर्ष्या, कोप, मान, मिलन आदि के जैसा अभिभूत करनेवाला चित्रण इसकी काव्यगत विशेषता को और भी पुष्ट करता है।

संदर्भ

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास; उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ॰ 540-41
2. वही, पृ॰ 328
3. वही, पृ॰ 329
4. विद्यापति एवं उनकी पदावली, देशराज भाटी, कुसुम प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 92
5. जयदेवकृत गीतगोविंद, रामचंद्र वर्मा 'शास्त्री', परंपरा बुल्स प्रा॰ लि॰, दिल्ली, 2007, पृ॰ 13
6. वही
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास, उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ॰ 354

साहित्य की रक्षा की चिंता

प्रियाकुमारी

साहित्य की रक्षा की चिंता मानवीय भाषिक अभिव्यक्ति की चिंता है, क्योंकि मनुष्य जो कुछ देखता है, सुनता है उनका संश्लिष्ट बोध करता है। समग्र जीवन के परिप्रेक्ष्य में वह अनुभूति जगत पर जिस जीवन को रचता है उसे अभिव्यक्त करना चाहता है। इस लोकमानव ने अपने समस्त जीवन के अनुभव को मुहावरों और लोकोक्तियों में अनुबंधित करने की कोशिश की। ये मुहावरे और लोकोक्तियाँ जीवन के अपरंपार अनुभव को अति संक्षिप्त रूप में प्रकट करते हैं और युग-युग तक सत्य बनकर जाते हैं। यही लोक से उठकर मानक भाषा के मुहावरे और लोकोक्तियाँ बन जाते है चूँकि लोक का संबंध नाना उत्पादनों से कर्म से एवं नाना जीव-जंतुओं से होता है, इसलिए उसमें शब्द-निर्माण की अद्‌भुत क्षमता होती है। केवल शब्द ही नहीं भाषा निर्माण भी लोक से ही होता है। वस्तुत: लोकभाषा ही परिमार्जित होकर अभिजात भाषा बनती है और फिर वही अपने स्वरूप से बदलकर लोकभाषा में आकर सनविष्ट हो जाती हे। इस बात को गोडवहो कथा में कहा है–

सयलाओ इमम् वाया बिसन्ति, एत्तो यणेति वायाओ
एन्ति समुद्धम् च्चियणेति, सायराओ च्चिय जलाई।

(भोजपुरी लोकगीत और उसका सामाजिक संदर्भ, हरिश्चंद्र मिश्र, पृ॰ 303)

भारत में वैदिक आर्य रचना को छोड़ दिया जाए तो शिष्ट काव्य की रचना वाल्मीकि की रामायण से मानी जाती है फिर रचना का एक सतत क्रम चलता है। रचना तो रचनाकार ने कर दी अब उसकी समीक्षा की समस्या शुरू हो गई। प्रश्न उठता है रचना क्या है? कैसी है और अपने-अपने युग में उसे कैसा होना चाहिए? आदि समस्या खड़ी होती है। ऐसा सोचने वाले लोगों को आचार्य रूप में माना गया और उनके विचारों को शास्त्र कहा गया–'काव्य च शास्त्रं च।'

इन दो रूपों में भारतीय वाङ्‌मय का विकास हुआ। धीरे-धीरे काव्य दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य के रूप में विभिन्न विधाओं के साथ विकसित हुआ। अब काव्य की समीक्षा की समस्या खड़ी होती है बड़े मोटे तौर पर कह दिया गया–'कवेरिदं कार्यं वा काव्यम्।'

काव्य की खोज की समस्या चलती रही और आगे आचार्य भामह ने रचनात्मक स्तर पर काव्य की समीक्षा की, जो परिपूर्ण न होने पर भी काफी वैज्ञानिक रही। उन्होंने कहा–'शब्दार्थो सहितौ काव्यम् गद्य पद्यं च तद्विधा।' (डॉ॰ भगीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, पृ॰ 7, 27वाँ संस्करण 2016)

उन्होंने बताने की कोशिश की शब्द और अर्थ का समभाव ही काव्य है। कारण है कि बिना अर्थ के शब्द के प्रयोग का कोई महत्त्व नहीं है। इसको आगे व्याख्यायित करते हुए वामन ने शब्द अर्थ को गुण और अलंकार से युक्त कर दिया। यह शब्द और अर्थ के साथ गुण और अलंकार का प्रवेश कविता होने का कुछ विस्तार है। वामन के अनुसार–'काव्यशब्दोऽयं गुणालंकार

सहितयोः शब्दार्थयोवर्तते।'

यह शब्द अर्थमय होने की बात बहुत दूर तक आगे बढ़ती है। आनंदवर्धन ने 'शब्दार्थ शरीरं तावतकाव्यम्' कहकर यह बताने की कोशिश की शब्द और अर्थ जिसका शरीर है वही काव्य है।

आचार्य मम्मट ने कहा–'तद्दोषो शब्दार्थो सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि' (भगीरथ मिश्र, काव्यषास्त्र, पृ० 9, 27वाँ संस्करण, 2016)

इन्होंने पुनः यही कहा कि दोषरहित और गुणरहित अलंकृत शब्दार्थ ही काव्य है। हेमचंद्र तक आकर बात कुछ आगे नहीं बढ़ती, दोषहीनता गुण एवं अलंकारयुक्त शब्दार्थ ही काव्य हो जाता है–'अदौषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थो काव्यं।' (हेमचंद्र, भगीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, पृ० 9)

आचार्य विश्वनाथ ने वाक्य के वैशिष्ट्य को रसवैशिष्ट्य मानते हुए कहा–'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।'

काव्य की पूरी रचना का मूल्यांकन कैसे हो? इस रसवादी आलोचना के साथ काव्य की आत्मा का सिलसिला चलने लगा और इस काव्य की आत्मा की तलाश में आनंदवर्धन ने कहा– 'काव्य आत्मा ध्वनिरीतिः।'

उन्होंने काव्य में ध्वनि की शक्ति का उल्लेख किया और बताने की कोशिश की कि कोई भी शब्द ध्वनित होकर अपना अर्थ संप्रेषित करता है और इसी संदर्भ में शब्द की शक्तियों को तलाश लिया और यहीं से अभिधा, लक्षण, व्यंजना तीन शब्द शक्तियाँ सामने आईं। धीरे-धीरे काव्य के अंतरंग तत्त्वों को खोजने की कोशिश की जाती है और शब्दार्थ गुण अलंकार से आगे बढ़कर उसका तात्त्विक विश्लेषण शुरू हो जाता है। संस्कृत आचार्यों ने काव्य के होने की और उसके स्वरूप निर्धारण की अपनी सीमा में चिंता तो की, लेकिन अभी समस्या का पूर्णतः निदान न हो सका। बीच-बीच में रचनाकार काव्य के बारे में कुछ कह देते हैं, लेकिन उनका कथन कोई शास्त्रीय कथन नहीं होता। जायसी ने अपनी रचना के संदर्भ में इतना ही कहकर अपने को मुक्त कर दिया कि मैं रचना इसलिए करता हूँ मैं इस रचना के द्वारा जाना जाऊँ–

औ मन जानि कवित्त अस कीन्हा
मकु यह रहे जगत मह चीन्हा।

यह लौकिक अमरता की इच्छा इसलिए है कि उनका काव्य संपूर्ण लोक के लिए है और पूरा काव्य लोकजीवन को समर्पित है। भक्तिकाल का सारा साहित्य सार्वभौमिक सार्वजनीन है। वास्तव में साहित्य के सिद्धांत हर युग में समान नहीं हो सकते, क्योंकि विभिन्न युगों का साहित्य अपनी संपूर्ण मानवीय अभिव्यक्ति में होता है। आधुनिककालीन प्रवृत्ति रीतिकालीन साहित्य से अलग रूप में अपना संप्रेषण रखती है। अनुभव में अंतर के साथ साहित्य में अंतर आ जाता है। उदाहरण स्वरूप रीतिकाल में नायक-नायिका से साहित्य संबंध है और छंदबद्ध है जो सवैया आदि के रूप में है, लेकिन छायावाद के अनुभव के कारण प्रकारांतर से साहित्य में अंतर आया। मुक्तिबोध जीवन के वैविध्य की बात करते हैं और कहना चाहते हैं कि काव्य के अनंत विषय हैं यही रचनाकार का संकट है। उनका कहना है–

जीवन में आज के
लेखक की कठिनाई यह नहीं कि

 ISSN 0975-735X

कमी है विषयों की वरन् यह है कि
आधिक्य ही उनका
उसको सताता है।

(मुक्तिबोध, 'कविता के पत्ते ठिकाने', पृ॰ 16)

मदन कश्यप ने 'आज का दुख' कविता में भूत वर्तमान और भविष्य के साथ मनुष्य के बदलते स्वरूप की ओर संकेत किया है और उसी में से आज की दुख की संपूर्ण अभिव्यक्ति को कविता माना है–

आज का दुख
बस आज का दुख है
कल यदि होगा
तो वह कल का अपना दुख होगा
जो हम दुख को झेलते चले जाते है
तो दरअसल वह बीतता चला जाता है।

निश्चित ही युगजीवन के व्यापक दुख को व्यक्त करना ही कविता है। 'कात्यायनी' ने विषयों के साथ एक अपने दंग की चिंता व्यक्त करती है–

अभिव्यक्ति की आजादी का सवाल उठाया
और विधि के शासन में अविश्वास जताया
उस दिन मैंने
पूरी ईमानदारी से
दो-टूक शब्दों से
बयान कर दी वे सारी बातें जो दिल में थीं उस दिन
पूरे शहर में रेड अलर्ट घोषित कर दिया गया
यह भी हुई क्या कोई कविता।

(कात्यायनी कविता संग्रह 'इस पौरुषपूर्ण समय में', बनी नहीं कविता, पृ॰ 106)

सीताकांत महापात्र 'पूछते हैं कविता किसके लिए है?' शीर्षक में कविता को निरर्थक नहीं मानते हैं अपितु वे गरीबी, अन्याय, अत्याचार के इतिहास को समेटते हुए एक सच्ची अभिव्यक्ति मानते हैं। कविता को शृंगार के दरवाजे से हटाकर शोषण की त्रासदी में कविता लिखे जाने की बात कहते हैं। इस प्रकार कविता तमाम असहायों के साथ खड़ी होने की चीज है। सच में कविता होने की यह चिंता अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध खड़े होने की चिंता है। यह कविता सीताकांत महापात्र की है, जिसका हिंदी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत है। सीताकांत महापात्र के बहुत पहले प्रगतिवाद के प्रवर्तक गोदावरीस महापात्र ने कविता होने के लिए यह उद्घोषित किया था।

उठ-उठ कंकाल जाग-जाग दुर्बल
हत गौरव बत गौरव रास

रहे दुर्बल हे कंकाल मात्र जागो और उठो जिसका गौरव समाप्त कर दिया गया है उसी भावना के क्रम में सीताकांत महापात्र की कविता ठहरती है–

पूछते हो कविता क्यों लिखें

किसके लिए?
कविता क्या किसी के लिए लिखी जाती है?
कविता क्यों, क्या यह प्रश्न पूछा जाता है,
बहुत दिन हुए एक कवि
रिल्के ने दिया था संक्षिप्त
उत्तर :
अगर सोचते हो कविता न लिखने से भी काम चल जाएगा
तो लिखो मत
लिखते हैं कल को साक्षी रहने के लिए
मानव के भाग्य का,
आम की गुठली, मांड भी न पाकर
वे अनाहार में मरे हैं कि नहीं
उसी बाबत तमाम युक्ति तर्क की
कविता लिखते हैं
बेकार, बाबरा, कौड़ी भर का मूल्य नहीं
हाथों में साग भी न सीझे उन शब्दार्थों के लिए
वह भी लगभग सुनाई न पड़े आवाज में
लिखते हैं किसी के पीछे छुपकर खड़े होकर
एक शब्द कहने के लिए 'मैं यहीं हूँ
तू अकेला नहीं मेरे भाई।'
लिखते हैं झीना रेशम, कुंडल के लिए नहीं
लिखते हैं गाय के पगुराने से न डरकर
दूब घास एक पूरे दिन खटकर एक मिलीमीटर का
दसवाँ भाग अपने को बढ़ाती रहती।

तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
मो० 7667556742

 ISSN 0975-735X

उषा प्रियंवदा के कथासाहित्य में नारी-जीवन

डॉ॰ कीर्ति कुमारी

साहित्य-जगत में कथा अभिव्यक्ति की एक समर्थ विधा है। जीवन की कटु सच्चाइयों को अभिव्यक्त करने में वह विद्या हमेशा ही तत्पर रही है। इस विधा को पुरुष लेखकों ने समर्थ बनाया है तो पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्था में रहकर स्त्रियों ने भी अपनी प्रबल समसामयिक चेतना-संपन्न रचनाधर्मिता का परिचय दिया है। उषा प्रियवंदा एक ऐसा ही नाम है। सठोत्तरी हिंदी कथाकारों में इनका विशिष्ट स्थान है। उनका कथासाहित्य नारी-प्रधान है। इतना ही नहीं उनके कथासाहित्य में प्रयुक्त नारियाँ एक प्रकार का त्रासद जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं। उनके कथा-जगत का केंद्रीय बिंदु नारी है। उन्होंने नारी के इर्द-गिर्द बुने नैतिकता के जाल व प्रतिष्ठित सामाजिक, पारंपरिक मान्यताओं को तोड़कर नारी के मौलिक व्यक्तित्व का अन्वेषण किया है। नारी की कुंठा, घुटन, अकेलापन, विवशता, प्रेम और आत्मपीड़न आदि मन:स्थितियों को अभिव्यक्ति देकर उन्होंने उसे एक नया रूप दिया है।

उषा प्रियंवदा ने कला की अपेक्षा जीवन के यथार्थ को अधिक महत्त्व दिया है। उनकी कहानियों में कथातत्त्व प्रबल है और उनमें शिल्पगत बिखराव नहीं पाया जाता। जीवन में वे विवेक को महत्त्व देती हैं। भावुकता उनमें अवश्य है, किंतु साथ ही वैचारिक गरिमा, संयम और गहराई है। 'बुद्धिजीवी नारी के जीवन की उदासीनता को उन्होंने कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है और रूढ़ियों, जड़ मान्यताओं और मृत परंपराओं पर चोट की है। उनकी कहानियों में जगह-जगह मानवीयता और करुणा के स्वर भी फूट पड़ते हैं। कलात्मक रहते हुए भी उन्होंने नारी के दृष्टिकोण को अधिक महत्त्व दिया है।'[1] 'पचपन खंभे लाल दीवारें' (1961 ई॰) उपन्यास में उन्होंने नारी-जीवन के इसी दृष्टिकोण को उजागर किया है। छात्रावास के पचपन खंभे लाल दीवारें उन परिस्थितियों के प्रतीक चिह्न हैं, जिनमें रहकर सुषमा को ऊब और घुटन का तीखा अहसास होता है। वे पचपन खंभे जिम्मेदारियों की वे बाँहें हैं, जिन्होंने सुषमा को अपने में जकड़ रखा है। उन पचपन खंभों में अमरबेलि की तरह उसके जीवनसत्य को चूसकर खोखला-सा कर दिया है। वे ऐसी परिस्थितियों में जीवने के लिए अभिशप्त है। अंतर्मुखी सुषमा (पचपन खंभे लाल दीवारें की नायिका) अपने आपको जिम्मेदारियों में जकड़ देती है। बढ़ती उम्र के साथ पारिवारिक दायित्वों का घेरा भी सख्त होता चला जाता है। अपने सुख का उसे ख्याल नहीं रहता। वह कहती है–'मेरी जिंदगी खत्म हो चुकी है। मैं केवल साधन हूँ। मेरी भावना का कोई स्थान नहीं। विवाह करके परिवार को निराधार छोड़ देना मेरे लिए संभव नहीं।'[2]

सुषमा का एकाकीपन उसे हर पल कचोटता रहता है, ऐसे में नील नामक युवक उसकी जिंदगी में आता है और उसके संपूर्ण अस्तित्व पर हावी हो जाता है। नील का साथ उसे अच्छा लगता है। उसके पास का मौन भी उसे बहुत अर्थपूर्ण लगता है। लेकिन, नील को स्वीकारने में भी उसका संकोच उसे रोक देता है। यह सच स्वीकार करने की उसके पास हिम्मत नहीं है। उसकी

सहयोगिनी मीरा जब उससे उनके आपसी संबंध के विषय में पूछती है तो वह अपने बीच के रिश्ते को बता नहीं पाती। यह बात स्वयं उसे भी परेशान करती है–'मिस्टर कश्यप। मैं कायर हूँ, मुझमें साहस नहीं है, क्यों नहीं मैं मीरा दी के सामने उस नाम का उच्चारण करती? क्यों नहीं कह देती आई लव हिम नील मेरी जिंदगी में फूट पड़ी प्रकाश की किरण है, जिनकी स्निग्ध गरमाई मेरे अंग-अंग में है।'[3] उक्त अंश स्पष्ट करता है कि सुषमा पर संकोच किस कदर हावी है। उसका दर्द, उसकी घुटन कभी बाहर नहीं निकल पाते, इसलिए वह हर पल मानसिक यंत्रणा का शिकार होती है। उसे इस बात का भी दुख है कि उसके घर के लोग उसके दर्द को समझ नहीं पाए। माँ ने भी हमेशा उसका उपयोग किया है। उसकी जिंदगी में जो रिक्तता है, उसे उसकी मौसी महसूस करती है। इसके लिए वह सुषमा की माँ को फटकारती भी है-'जब लड़की की उम्र थी तब तो आजादी दी नहीं। अब वह कहाँ ढूँढने जाएगी। लड़कियाँ सभी की होती हैं, शादियाँ भी सभी करते हैं। तुम्हारी तरह हाथ-पर-हाथ रखकर बैठने वाला कोई नहीं देखा।'[4] यहाँ भी सुषमा माँ को यह कहकर बचा लेती है कि 'आप भी मौसी, किस पचड़े को ले बैठीं। जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण काम है, सिर्फ विवाह ही तो नहीं।'[5] इस बात से सुषमा औरों को तो बहला देती है। परंतु, स्वयं को बहलाना असंभव है। भारतीय संस्कारों ने नारी-हृदयों पर कुछ मर्यादाएँ लाद दी हैं। यहाँ लड़कियाँ अपनी जिंदगी का फैसला खुद नहीं करतीं। जिस शादी से उसकी जिंदगी के मायने बदल जाते हैं, उसी के विषय में उनकी राय जानने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। उनसे यह उम्मीद की जाती है कि बड़ों के फैसले को वे खामोशी के साथ स्वीकार कर लें। इन्हीं संस्कारों से सुषमा के व्यक्तित्व का भी पोषण हुआ है। उसके अंदर मर्यादा, संस्कार और संकोच सभी मौजूद हैं। आज जब नारियाँ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो रही हैं, उसकी आर्थिक आत्मनिर्भरता को उसकी सबलता बताया जा रहा है, वहाँ उषा प्रियंवदा ने नारी की इसी आत्मनिर्भरता को उसके जीवन की सबसे बड़ी जटिलता के रूप में पेश किया है। लेखिका ने यह दिखलाना चाहा है कि आज चाहे स्त्री कितनी भी आत्मनिर्भर हो रही है परंतु समाज की परंपराओं और रूढ़िवादी मानसिकता उसे कभी स्वतंत्र रूप से जीने नहीं देगी। महादेवी वर्मा इस संबंध में कहती हैं कि 'स्त्री की स्थिति भी युगों से ऐसी ही चली आ रही है। उसके चारों ओर संस्कारों का ऐसा क्रूर पटरा रहा है कि उसके अंतरतम जीवन की भावनाओं का परिचय पाना ही कठिन हो जाता है। वह किस सीमा तक मानवी हैं और उस स्थिति में उसे क्या अधिकार रह सकते हैं, यह भी वह तब सोचती है जब उसका हृदय बहुत अधिक आहत हो चुकता है।'[6]

उनका एक अन्य उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका' (1967) एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जो अपने ही हृदय की परतों में उलझकर रह गई है। अपनी खोज में अपने ही अंदर बैठकर यात्रा कर रही है। इस यात्रा में हमेशा उसे मानसिक पीड़ा से गुजरना पड़ता है। नारी हमेशा अपने आस-पास के परिवेश एवं व्यक्ति से प्रभावित होती है। वह स्वयं में एक स्वतंत्र परिचय नहीं होती। वह हमेशा किसी रिश्ते के तहत पहचानी जाती है। स्त्री-जीवन से संबंधित वैयक्तिकता उसके अस्तित्व से जुड़ी होने के बावजूद उसकी नहीं है। अधिकतर स्त्रियाँ अपने व्यक्तिगत क्षेत्र के बारे में खामोश रह जाती हैं। भीतर दर्द सालता रहता है। खंडित पहचान की पीड़ा से ग्रस्त स्त्री मानसिक यातना को भोगती रहती है, त्रासदी से गुजरकर भी वह अपने से जुड़े व्यक्ति को नकार नहीं पाती।

'रुकोगी नहीं राधिका' की राधिका घर छोड़ने का निर्णय ले लेती है। इस निर्णय के पीछे शत-प्रतिशत उसके पिता हैं। निर्णय लेना अपने आपमें एक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया है। राधिका के पिता शादी करने का निर्णय लेते हैं। इस बात से राधिका आहत होती है–'वह चाहती थी कि पापा जब खूब-खूब देर में लौटें तो उसे ऐसा ही बैठा पाएँ और तब समझें कि उन्होंने उसे कितना आहत किया है।'[7] वह सब करती है, पर पिता की तरफ से कोई भावनात्मक साथ नहीं मिलता। यह उपन्यास अकेली स्त्री के अनुभवों की नहीं, आधुनिक समाज के बदलते रिश्ते की प्रकृति से तालमेल न बैठा पानेवाले अनेक व्यक्तियों और संबंधों की बारीकी से पहचान करना है।, जिसमें राधिक का व्यक्तित्व विघटित होता दिखाया है। वह जीवनभर द्वंद्व में, अस्थिरता में ही जीती है। राधिका की दुविधा एक ऐसी भारतीय नारी की दुविधा है, जो अपनी दिशा तय नहीं कर पा रही है। वह अपने व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के लिए लड़ती है।

उषा जी द्वारा लिखित 'शेषयात्रा' की नायिका 'अनुका' भी संकोची स्वभाव की है। एक मध्यमवर्गीय परिवार में बिना माँ-बाप के उसका बचपन गुजरता है। जहाँ उसकी इच्छा-अनिच्छा की परवाह किसी को नहीं है। इसी बीच उसकी शादी 'प्रणव' से हो जाती है। यहीं से अनु की जिंदगी में त्रासदी की शुरुआत होती है। एक-एक करके प्रणव के नाजायज रिश्ते सामने आते है–'अनु तुम अपना भला-बुरा सोचो। इस नोक को क्यों पकड़े बैठी हो। अपने को गला रही हो। प्रणव तो हमेशा से ही ऐसा था, कभी किसी का होकर रहा है? शादी के पहले भी उसके कितने संबंध रह चुके हैं।'[8] वह टूट जाती है। उसका दिमाग खाली है, भावशून्य। प्रणव कहता है कि उसके लिए यह शादी बहुत पहले मर चुकी है, केवल एक वैधानिक बंधन बचा है किंतु, अनु यकीन नहीं कर पाती। 'पेड़-पौधे मरते हैं, जीवजंतु भी, आदमी-औरतें भी कहीं मैरिज भी मरा करती है, खासतौर से हिंदुस्तानी मैरिज।'[9] अनु विक्षिप्त हो जाती है। प्रणव भी उसे पागल करार कर देता है। पिता की असफलताएँ, अम्मा की पराजय, ननिहाल में उतरन पहनकर बड़ी होने की ग्लानि सब-कुछ भूल गई थी वह विवाह के बाद। आज उसी ने उसके अस्तित्व को नकार दिया। अनु की त्रासदी की वजह व्यक्तिजन्य है।

उषा जी की कहानी 'सुरंग' में तीन पात्राएँ हैं। ये तीनों ही मानसिक यंत्रणा से गुजर रही हैं। अरुणा, बेबी और उसकी माँ–ये तीनों ही अपने-अपने दुखों में अकेली हैं। बेटे की मौत ने अरुणा की माँ को जड़ कर दिया है। नियति की इस क्रूर मार ने माँ की सारी संवेदनाओं को खत्म कर दिया है। वह बेटे की मृत्यु के बाद पूजा-पाठ से जुड़ जाती है। इस बीच अरुणा और बेबी को सिर्फ उपेक्षा मिलती है–'अरुणा को याद नहीं है कि इन नौ वर्षों में उन्होंने कभी अरुणा के सिर पर हाथ फेरा है या पास आकर बैठी है। बेबी जब कभी रोकर उनसे निपट जाती थी तो वे उसे सिर्फ हाथों से अलग कर देती थी।'[10] माँ की यह जड़ता बढ़ती ही चली जाती है और उसके साथ ही बेबी का दुख भी। ये तीनों नारी मन परिस्थितियों से जूझ रहे हैं, अपने-अपने दुख में ये सभी अकेली हैं। कोई किसी के लिए दोषी नहीं है। फिर भी एक मानसिक यंत्रणा है, जिनसे ये गुजर रही हैं।

'प्रतिध्वनि' कहानी की नायिका 'वसु' अपने पति को छोड़कर अन्य पुरुषों से संबंध बनाती है, क्योंकि अपने वैवाहिक जीवन में वह सुखी नहीं है। वसु 'श्यामल' (वसु का पति) का खिलौना है। वह अपनी बेटी रुचिरा को बताना चाहती है कि शादी के बाद उसने क्या-क्या झेला

है–'विवाह के उन छः वर्षों की सारी गाथा रुचिरा से केसे कहे ? कैसे कहे कि मुक्त होकर पहली बार लगा था कि वह एक आकर्षक युवती है, उमंगें और कामनाएँ मरी नहीं हैं। अपने में निहित, स्वातंत्र्य, पूर्व व्यक्तित्व को पाना कितनी बड़ी उपलब्धि थी और श्यामल के अंकुशों से निकलकर कितना हल्का-हल्का लगता था।'[11] लेकिन वह एक दिलासा मात्र है वसु खुश नहीं है। वह विद्रोह करके भी मानसिक पाप से असंतुष्ट है। इस बीच वह खुद को मारने की भी कोशिश करती है।

'पुनरावृत्ति' कहानी की नायिका 'संदीपनी' एक संकोची व्यक्तित्व की महिला है। उसका पति 'चिरंतन' एक विद्वान व्यक्ति है। किंतु, कहीं से वह 'पुरुष' होने के दंभ से उद्धत भी है। पत्नी उसके लिए हाड़-मांस का एक खिलौना है, जिससे वह जी भरकर खेलता है। चिरंतन के लिए संदीपनी बच्चे पैदा करने वाली मशीन है–'जिसने साल के साल बच्चे पैदा करना शुरू कर दिया, एक के बाद एक तीन बेटे, फिर तीन बेटियाँ और अंत में जुड़वाँ बच्चों की जोड़ी...और सातवें प्रसव के बाद संदीपनी पागल हो गई थी।'[12] उसके अवचेतन मन में जो विद्रोह चिरंतन के लिए था, उसे उसने कभी नहीं निकाला। अपने अंदर की घुटन झेलती हुई विक्षिप्त हो जाती है।

लेखिका द्वारा रचित कहानी 'संबंध' की नायिका श्यामला भी संकोची स्वभाव की वजह से पीड़ित है। पिता की मृत्यु के बाद वह घर की जिम्मेदारी सँभाल लेती है। लेकिन, वह अपनी जिंदगी जीना चाहती है। 'उसे बड़ा गुस्सा आ जाता है, एक निरुपाय, बेसहारा आक्रोश, कर तो दिया सबके लिए-जितना हो सका, जैसे जिया ने चाहा, पर अब भी क्यों वह बोझ ढोये जाये। बाबू की मृत्यु के बाद, उसने घर सँभाल लिया था, एक भावुक कर्त्तव्य के वष, पर अब क्यों सब वे अपनी जिंदगी नहीं जीने देते, जैसे भी वह चाहे।'[13] यह विचार उसे हमेशा कुंठित करता है।

'नींद' की नायिका अपने आप से लड़ रही है। उसका अकेलापन उसे त्रासदी देता है, जहाँ वह पूरी खामोशी के साथ जी रही है। पति से अलगाव उसे अंदर से तोड़ रहा है। वह मानसिक रूप से बीमार हो जाती है। मानसिक यातना से जूझना ऐसे व्यक्तित्व की नियति बन जाता है, जहाँ वह नितांत अकेला होकर स्वयं से लड़ता रहता है। लेखिका के कथासाहित्य में ऐसी कई पात्राएँ हैं, जो स्वभावगत कमजोरियों की वजह से पीड़ित हैं। जैसे–मछलियाँ की 'विजी', कितना बड़ा झूठ की 'किरण', टूटे हुए टीटी ये सभी अपनी खामोशी में घिरी रहकर मानसिक यंत्रणा से गुजरती रहती है।

इस तरह हम देखते हैं कि उषा प्रियंवदा के स्त्री-पात्रों के विद्रोही स्वाभाव की तरह उनका संकोची स्वभाव भी उनके जीवन को त्रासद बनाने के लिए अभिशप्त करता है। इनके कथा-जगत का केंद्रीय बिंदु नारी है। इन्होंने नारी के इर्द-गिर्द बुने नैतिकता के जाल व प्रतिष्ठित सामाजिक पारंपरिक मान्यताओं को तोड़कर नारी के मौलिक व्यक्तित्व का अन्वेषण किया है। नारी की कुंठा, घुटन, अकेलापन, विवशता, प्रेम और आत्मपीड़न इत्यादि मनःस्थितियों को अभिव्यक्ति देकर उन्होंने उसे एक नया रूप दिया है। धनंजय वर्मा ने उषा प्रियंवदा को मन्नू भंडारी और श्रीमती विजय चौहान से अधिक संस्कारगत बताया है, क्योंकि उनकी कहानियों में नयी परिस्थितियों और उनसे मानसिक जटिलता की छाया है। बुद्धिजीवी नारी के जीवन की उदासीनता को उन्होंने कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है और रूढ़ियों, जड़ मान्यताओं और मृत परंपराओं पर चोट की है।

संदर्भ

1. डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, द्वितीय महायुद्धोत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 191-192
2. उषा प्रियंवदा, पचपन खंभे लाल दीवारें, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1985, पृ॰ 58-59
3. वही, पृ॰ 62
4. वही, पृ॰ 9-1॰
5. वही, पृ॰ 1॰
6. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ॰ 92
7. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1984, पृ॰ 40
8. उषा प्रियंवदा, शेष यात्रा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1984, पृ॰ 57
9. वही, पृ॰ 64
10. उषा प्रियंवदा, कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1966, पृ॰ 76
11. वही, पृ॰ सं- 39
12. उषा प्रियंवदा, पुनरावृत्ति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1984, पृ॰ 11
13. उषा प्रियंवदा, कितना बड़ा झूठा (संबध), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1966, पृ॰ 16

द्वारा उमेशप्रसाद सिंह
पो॰ मानो (चौधरी टोला), जिला लखीसराय
बिहार 811310
24kirtisinghnetjfr@gmail.com

युवा सशक्तिकरण एवं नेतृत्व

डॉ॰ त्रिसुख सिंह
(असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान)
राजकीय महाविद्यालय, पुवाँरका
सहारनपुर (उ॰प्र॰)

20 वी सदी में राजनीतिक अवधारणाओं के अध्ययन की सर्वोपरि एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता राजनीतिक नेतृत्व के अध्ययन की है। जिस प्रकार 18 वी सदी के राजनीतिक विश्लेषण की प्रमुख संप्रभुत्ता व प्रत्यक्ष लोकतंत्र की थी और 19 वी सदी में राजनीतिक अध्ययन में सामाजिक वर्गभेद और समूह-संघर्ष के अध्ययन को प्रधानता मिली, उसी प्रकार 20 वी सदी के राजनीतिक अध्ययन में नेतृत्व की भूमिका के विश्लेषण को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया।[1] आधुनिक व्यवस्थाओं में नेताओं द्वारा संचार के साधनों के माध्यम से जनता की अबुद्धिवादिता का लाभ उठाया जाता है। विकासशील देशों में व्यावसायिक राजनीतिज्ञों का शासन में प्रभुत्व बढ़ता जा रहा है।[2]

नेतृत्व कुछ खास लोगों में पाया जानेवाला एक विशिष्ट प्रकार का व्यावहारिक गुण है, जो गुणों के कारण अगुआ बनकर नेतृत्व करते हैं। नेतृत्व में नेता और अनुयायी दोनों का होना आवश्यक है।[3] नेतृत्व उन गुणों के संयोग का नाम है, जिनको रखने पर कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से काम लेने योग्य होता है, विशेषकर उसके प्रभाव द्वारा अन्य लोग स्वेच्छा से कार्य करने के लिए तैयार हो जाते है।[4] नेतृत्व का गुण प्राकतिक होता है और यह सभी लोगों में मौजूद नहीं रहता। मैक्स वैबर की करिश्मा प्रधान नेतृत्व की धारणा इसका एक प्रमुख उदाहरण है।[5]

जार्ज आर॰ टेरी ने नेतृत्व को उस योग्यता के रूप में परिभाषित किया है, जो उददेश्यों के लिए स्वेच्छा से कार्य करने हेतु प्रभावित करता है।[6] युवा से आशय समाज के एक ऐसे वर्ग से है, जिसके कंधे पर परिवार, समाज और देश का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं व्यवसायिक विकास निर्भर करता है। इस युवाशक्ति (मानवीय संसाधन) द्वारा भौतिक संसाधनों का उपयोग करके देश को उन्नतशील एवं विकसित राष्ट्र बनाया जा सकता है, जो शासन की नीतियों पर भी निर्भर करता हैं।[7]

प्रत्येक देश का भविष्य उस देश के युवावर्ग पर निर्भर करता है, अर्थात् युवावर्ग प्रत्येक राष्ट्र के विकास एवं निर्माण की आधारशिला होते हैं।[8] देश में प्रत्येक वर्ष लाखों युवा डॉक्टर, इंजीनियर, व्यवसायी, विज्ञान एवं तकनीकि के क्षेत्र में दक्षता प्राप्त कर देश को अग्रणी देशों की श्रेणी में खड़ा करने की पूरी क्षमता रखते हैं।[9]

हमारे देश के युवाओं ने नेतृत्व-क्षमता एवं कार्यकुशलता के आधार पर वैश्विक स्तर पर भारत की अलग पहचान बनायी। जैसे स्वामी विवेकानंद द्वारा शिकांगों सम्मेलन (अमेरीका) में भारत का प्रतिनिधित्व करके धर्म, अध्यात्म एवं भारतीय संस्कृति पर व्याख्यान के माध्यम से

विश्व को भारत की संस्कृति से अवगत कराया। डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर का शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान व भारत की सामाजिक रूढ़िवादी व्यवस्था को तोड़कर सभी स्त्री एवं पुरुषों में शिक्षा के प्रति चेतना जाग्रत करना, जिस कारण संयुक्त राष्ट्र संघ ने डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर के जन्मदिवस को 'विश्व ज्ञान दिवस' के रूप में मनाए जाने की घोषणा करना आदि। ऐसे युवाओं को अपना प्रेरणा स्रोत मानते हुए भारत सरकार ने युवाओं में नेतृत्व-क्षमता को बढ़ाने एवं विकसित करने के उद्देश्य से 'राष्ट्रीय युवा नीति-2014' बनाई, जो कि सरकार की एक सराहनीय व युवाओं के प्रति सकारात्मक सोच पर आधारित है।

युवावर्ग के अंतर्गत 14 से 40 वर्ष तक के लोगों को शामिल किया जाता है।[10] 2011 की जनगणना में एक अरब 21 करोड़ जनसंख्या में 37 करोड़ के करीब अर्थात 31.27 प्रतिशत आबादी युवा है। यदि 18 से 40 वर्ष के लोगों को युवा मानें तो यह 38.31 प्रतिशत होते हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि भारत में अधिकृत रूप से युवाओं के लिए कोई आयु तय नहीं है।[11] व्यवसाय के आधार पर या जिन किशोरों में जिम्मेदारियों के निर्वहन करने की इच्छाशक्ति होती है, वे सभी किशोर युवा की परिभाषा में शामिल किए जा सकते हैं।[12]

हमारे देश के युवा चहुँमुखी प्रतिभा के धनी हैं। यदि इनका नेतृत्व एवं मार्गदर्शन करनेवाले वे सभी व्यक्ति, समाज, समूह एवं संस्थाएँ अपने कर्तव्यों का इमानदारी के साथ पालन करें।[13] जिनमें सबसे पहले परिवार आता है वर्तमान समय में प्रत्येक परिवार द्वारा अपने बच्चों के भविष्य को उज्ज्वल एवं एक अच्छा इंसान बनाने का अथक् प्रयास किया जाता है। जैसे उनके लिए अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य एवं संस्कार आदि।[14] लेकिन बच्चा जैसे ही परिवार के परिवेश से बाहर निकलकर आस-पड़ोस, समाज, समूह या सोसायटी आदि के संपर्क में आता है तो इन सभी से उतना अच्छा वातावरण नहीं मिल पाता है, जितना परिवार से मिलता है। यदि परिवार से बाहर के सभी समाज एवं समूहों से भी उतना अच्छा वातावरण मिल जाए तो ये युवावर्ग स्वयं अपने, अपने परिवार, समाज, राष्ट्र निर्माण एवं विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देकर देश के सभी क्षेत्रों में उन्नति कर उसे विश्वगुरु बना सकते हैं।[15]

देश के युवावर्ग की समस्याएँ, कारण एवं निवारण

शिक्षा पद्धति : हमारे देश की शिक्षा-पद्धति का स्वरूप असमानता पर आधारित है, क्योंकि भारत अनेकता में एकता वाला देश है।[16] यहाँ की अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है साथ ही साथ भारत के अधिकांश राज्यों ने अपने-अपने शिक्षा बोर्ड बना रखें हैं, जिस कारण इनके पाठ्यक्रमों में अंतर पाया जाता है। यह अंतर तब और ज्यादा बढ़ जाता है, जब इन प्रदेशों की सरकारें अलग-अलग दल एवं विचारधाराओं पर आधारित होती हैं, जिस कारण ये सरकारें अपने-अपने दल के संस्थापक या विचारकों की जीवनी शामिल करना अपनी प्राथमिकता में रखती हैं, ये सब इसलिए होता है कि पूरे देश में एक ही प्रकार के बोर्ड एवं पाठ्यक्रम का अभाव है।[17] अत: इस प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए पूरे देश में केवल एक ही प्रकार का बोर्ड होना चाहिए। जैसे राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बोर्ड आदि। आज भी भारत के प्राथमिक/सरकारी स्कूलों में पाठ्यक्रम की शुरुआत कक्षा एक से होती है, या 6 वर्ष की आयु प्राप्त बच्चों को ही प्रवेश देने की प्रथा है अत: सरकार को स्कूलों के पाठ्यक्रम में प्रवेश कक्षा नर्सरी व तीन वर्ष की आयु निर्धारित कर सभी शिक्षा संस्थाओं में, चाहे वे सरकारी हो या प्राईवेट, सभी का पाठ्यक्रम

भी एक समान होना चाहिए अर्थात एक देश एक पाठ्यक्रम कक्षा 12 तक होना चाहिए।[18]

युवावर्ग का नैतिक विकास : प्रत्येक व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राष्ट्र के विकास का पैमाना उसका नैतिक उत्थान ही माना जाता है, जिसके अंतर्गत मूल्य, आदर्श, संस्कृति, आचरण एवं संस्कार आदि को शामिल किया जाता है।[19] नैतिक विकास से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास संभव है, जो सिद्धांतों पर आधारित होता है। जैसा कि हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि 'प्राण जाये पर वचन न जाए।' युवावर्ग के नैतिक विकास की जिम्मेदारी परिवार के साथ-साथ शिक्षा-संस्थाओं की सबसे ज्यादा होती है, क्योंकि शिक्षा संस्थाएँ ऐसा केंद्र होती हैं, जिनमें बच्चा परिवार के बाद सबसे ज्यादा समय देता है।[20] प्रत्येक देश का भविष्य इन शिक्षा-संस्थाओं पर निर्भर करता है, क्योंकि ये शिक्षा-संस्थाएँ युवाओं के शारीरिक एवं मानसिक विकास का केंद्र होती हैं।[21] यूनानी दार्शनिक अरस्तु के अनुसार–'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण करना ही शिक्षा है।' युवावर्ग के स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर भारत सरकार द्वारा 5 सितंबर 2019 को शिक्षक दिवस के अवसर पर 'फिट इंडिया कार्यक्रम' की शुरुआत की गई। क्योंकि भारत के 75 प्रतिशत युवा 21 वर्ष की आयु से पहले शराब एवं अन्य मादक पदार्थों के सेवन में लिप्त पाये जाते है, जिसका दुष्परिणाम युवावर्ग के शारीरिक एवं मानसिक विकास के साथ-साथ कार्यक्षमता पर पड़ता है।[22]

बेरोजगारी : युवावर्ग में बढ़ती बेरोजगारी को हम अधिकांशत: बढ़ती जनसंख्या के रूप में देखते हैं, जो कि सत्य भी है, लेकिन आज के भौतिकवादी युग में युवावर्ग की बढ़ती हुई असीमित आवश्यकताएँ भी बेरोजगारी एवं दुख का कारण बन रही हैं, जिससे उनमें बढ़ती मानसिक रुग्णता व नैतिक मूल्यों का ह्रास, देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। कुछ युवाओं के अंदर बढ़ती अहम् की भावना के कारण वे समाज एवं राष्ट्रविरोधी तत्त्वों के हाथों की कठपुतली बनकर देश के अंदर हिंसक घटनाओं को अंजाम देते है।[23] जैसे–नक्सलवाद, आतंकवाद, माँब-लिंचिंग, जाति एवं धर्म पर आधारित हिंसक घटनाएँ आदि। देश में बढ़ती बेरोजगारी से आशय युवावर्ग को अपनी योग्यता से कम योग्यता का कार्य करना पड़े या जब कम योग्यता का भी कार्य न मिले तो युवावर्ग के अंदर ईर्ष्या एवं द्वेष की भावना बढ़ने लगती है। अत: सरकार को अधिक से अधिक रोजगारों का सृजन कर इस युवावर्ग की प्रतिभा का लाभ उठाना चाहिए।[24]

भ्रष्टाचार : बढ़ती निराशा व असंतोष के लिए त्रुटिपूर्ण राष्ट्रीय नीतियाँ, शिक्षा पद्धति, गुणात्मक रूप से बढ़ती हुई जनसंख्या व बढ़ती प्रतिस्पर्धा आदि के कारण युवा जब अपनी प्रतिभा का समुचित प्रदर्शन नहीं कर पाता है तो युवाओं के अंदर असंतोष की भावना उत्पन्न होने लगती है। रोजगार की तलाश में भटकते युवावर्ग में कुंठा, निराशा व हताशा बढ़ाने में भ्रष्टाचार आग में घी डालने का कार्य करता है। भ्रष्टाचार के कारण विभागों में रिश्वत, क्षेत्रवाद, जातिवाद एवं भाई-भतीजावाद आदि के कारण युवावर्ग में निराशा को बढ़ावा देता है, परिणामस्वरूप हत्याएँ, लूटपाट, चोरी, आगजनी, हड़ताल व हिंसक प्रदर्शन व पत्थरबाजी के कारण राष्ट्रीय संपत्ति को हानि पहुँचायी जाती है।[25] अत: युवावर्ग के बढ़ते असंतोष को शांत करने के लिए शासन एवं प्रशासन को अपने निहित स्वार्थ से ऊपर उठकर देश में रोजगारपरक नीतियाँ बनाने पर ज्यादा जोर देना चाहिए, जिससे युवावर्ग की प्रतिभा का सुचारु रूप से क्रियान्वयन किया जा सके। क्योंकि देश के विकास की कल्पना तब तक नहीं की जा सकती है, जब तक प्रति व्यक्ति आय नहीं

 ISSN 0975-735X

बढ़ेगी। इसलिए युवावर्ग को रोजगार देने के लिए की जानेवाली भर्तियाँ देश के सर्वोच्च कानून संविधान की भावना एवं गुणवत्ता के आधार पर हों, जिसमें भाई-भतीजावाद आदि को कोई स्थान न हो। साथ ही साथ देश के सभी विभागों में चाहे वह मेडिकल का क्षेत्र हो, या इंजीनियरिंग का या कोई ओर क्षेत्र सभी से जुड़ा वी॰आई॰पी॰ या मैनेजमैंट कोटा पूरी तरह समाप्त कर देना चाहिए।[26]

प्रतिभा पलायन : युवावर्ग में प्रतिभा पलायन की समस्या लगातार बढ़ती जा रही है, प्रतिभा पलायन से आशय देश का युवा रोजगार की तलाश में अपना स्थायी निवास छोड़कर जब दूसरे स्थान पर जाकर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने लगता है तो उस युवा की प्रतिभा का लाभ उठाकर उस स्थान के लोग अपने लाभ में वृद्धि करने लगते हैं। प्रतिभा पलायन युवा भौतिक सुख-सुविधाओं एवं धनार्जन के लिए करते हैं, जैसे-एक देश के युवा का दूसरे देश में जाकर अपनी सुविधाएँ प्रदान करना, या देश के अंदर ही गाँव देहात एवं पिछड़े क्षेत्रों से युवा बहुतायत में देश के बड़े-बड़े शहरों की और रोजगार की तलाश में पलायन करते हैं, जिससे इन शहरों की बढ़ती जनसंख्या के कारण इनके दुष्परिणाम सामने आने लगते हैं, जैसे चौरी-डकैती, लूटपाट, नशाखोरी, देश की सुरक्षा के लिए खतरनाक तत्त्वों के हाथों की कठपुतली बनना व शोषण के कारण मानवाधिकार सुरक्षित न रहना आदि। अत: सरकार को इन समस्याओं के समाधान के लिए अपनी योजनाओं का विस्तार करना चाहिए। जैसे मनरेगा के अंतर्गत आनेवाले मजदूरों के कार्य दिवसों में वृद्धि करना व उनकी दैनिक मजदूरी समूह-घ के कर्मचारियों के बेसिक के बराबर कर देना चाहिए, सरकार को जिले स्तर पर ज्यादा से ज्यादा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की स्थापना करनी चाहिए, जिससे ज्यादा से ज्यादा युवाओं को स्थानीय स्तर पर ही रोजगार उपलब्ध कराया जा सके।[27]

लघु उद्योगों जैसे हस्थकरघा व हैंडीक्राफ्ट आदि के अंतर्गत बनायी जाने वाली वस्तुओं के लिए हर ब्लाक स्तर पर औद्योगिक इकाई गठित करना, जिससे उसमें कार्य करनेवाले मजदूरों/कर्मचारियों को कार्य करने हेतु ज्यादा दूर न जाना पड़े। ये औद्योगिक इकाइयाँ ही कौशल विकाश प्रशिक्षण के केंद्र भी हों। सरकार को वस्तुओं एवं दवाओं के उत्पादन के साथ-साथ उनके विक्रय पर भी नियंत्रण करना चाहिए अर्थात विक्रय केंद्र (दुकान) शहर में हो कस्बों में हो या गाँव में हो सभी के लिए लाइसेन्स अनिवार्य होना चाहिए। इन लाइसेंस प्राप्त दुकानों पर बिकनेवाली वस्तुएँ एवं सामानों की डिलिवरी सरकार करे, जिससे सभी प्रकार की वस्तुओं में मिलावट भी बंद हो जाएगी, जिसका सीधा-सीधा फायदा देश की जनता के स्वास्थ्य पर पड़ेगा। अत: सरकार द्वारा जब तक युवावर्ग को रोजगार से नहीं जोड़ेगी तब तक युवावर्ग देश के बारे में न सोचकर केवल अपने तक ही सीमित रह जाएगा।[28]

निष्कर्ष के आधार पर कहा जा सकता है कि युवावर्ग को एक निश्चित आयुवर्ग के आधार पर परिभाषित न करके उसकी क्रयशक्ति, क्षमता एवं अनुभव को भी शामिल किया जाए। उसके चारित्रक, नैतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, बौद्धिक, शारीरिक एवं मानसिक विकास में परिवार एवं शिक्षण-संस्थाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। सरकार को सामाजिक समानता के उददे्श्य पर आधारित, अधिक से अधिक रोजगारों का सर्जन कर युवावर्ग की क्षमताओं एवं अनुभवों का लाभ उठाकर देश में सुख, शांति एवं समृद्धि स्थापित करने का सकारात्मक प्रयास

करना चाहिए।

संदर्भ

1. बी॰एल॰ फड़िया, राजनीतिक सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 1998, पृ॰ 10
2. डी॰एस॰ बघेल व टी॰पी॰ कर्चुली, राजनीतिक समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, जवाहरनगर, दिल्ली, 2007, पृ॰ 330
3. वही, पृ॰ 123
4. बी॰एल॰ फड़िया, लोकप्रशासन के तत्त्व, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 1998, पृ॰ 122
5. वही, पृ॰ 123
6. वही, पृ॰ 122
7. हेनरी मेडीकम, पंचायतीराज रूरल लोकल गर्वनमेंट इन इंडिया, इन जरनल ऑफ लोकल एडमिनिस्ट्रशन, वोल्यूम-4(1), 1962
8. एस॰के॰ पांडेय, पंचायतीराज सिन्थेसिस, 1965
9. जे॰सी॰ अग्रवाल, शैक्षिक तकनीकि तथा प्रबंध के मूल तत्व, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, 2011
10. डॉ॰ एस॰पी॰ गुप्ता, भारतीय शिक्षा का विकास, इतिहास एवं समस्याएँ, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, 2015
11. डॉ॰ एम॰ लोढ़ा, नैतिक शिक्षा के विविध आयाम, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2013
12. शालिग्राम त्रिपाठी, शिक्षण व्यवहार, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1996
13. डॉ॰ हेतसिंह बघेला, शिक्षा सिद्धांत एवं आधुनिक भारत में शिक्षा, पृ॰ 63
14. प्रो॰ सरयूप्रसाद चौबे, शिक्षा के समाज शास्त्रीय आधार, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ॰ 98
15. एस॰एन॰ अग्रवाल, गांधीवादी योजना के सिद्धांत, आगरा, 1944
16. काका कालेलकर, गांधी के व्यक्तिगत विचार, इलाहाबाद, सस्ता साहित्य मंडल, 1939
17. ग्रास एलेक जैंडर, सोशल एंड पॉलिटिकल आईडियाज ऑफ महात्मा गांधी, आई॰सी॰डब्लू॰ए॰, नई दिल्ली, 1949
18. जयप्रकाश नारायण, समाजवाद से सर्वोदय की और, अ॰ भा॰ सर्वसेवा संघ, काशी, 1958
19. चंद्रराज भंडारी, गांधी दर्शन, गांधी हिंदी मंदिर, इंदौर, 1959
20. भारत सरकार, राष्ट्रनिर्माता गांधी, प्रकाशन विभाग, 1950
21. देवप्रकाश चौधरी, लोकनायक अन्ना हजारे और जन लोकपाल बिल, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2011, पृ॰ 10
22. गौरीशंकर, नई आर्थिक नीति, उपलब्धियों के विविध आयाम, गांधी विचार, 1993, पृ॰ 26
23. वही, पृ॰ 54
24. डी॰एस॰ बघेल व टी॰पी॰ सिंह, राजनीतिक समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, जवाहरनगर दिल्ली, 2007, पृ॰ 330
25. जी॰पी॰ नेमा, राजनीतिक समाजशास्त्र, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दिल्ली, 2007, पृ॰ 301
26. पंडित जवाहरलाल नेहरू, विश्व इतिहास की झलक, खंड दो, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, 2008, पृ॰ 47
27. डॉ॰ राजेंद्र प्रसाद, खंडित भारत, ज्ञान मंडल पुस्तक भंडार, दिल्ली
28. डॉ॰ राजेन्द्रकुमार शर्मा, राजनीतिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स, दिल्ली, 2003, पृ॰ 484

अरुण कमल का काव्य-शिल्प

रजनीकुमारी पांडेय

भाषा के साथ केवल कवि जूझता है, अकेले और बिल्कुल अकेले। यह उसकी नियति है।

—धूमिल

80 के दशक में जिस समय अरुण कमल का आगमन हिंदी कविता में हुआ, उस समय उनके सामने एक तरफ अकविता की शब्दावली थी वहीं दूसरी ओर नक्सलबाड़ी कविता की भाषा। जहाँ अकविता का मुहावरा फूहड़, नंगा और बेलौस था, वहीं नक्सलबाड़ी कविता की भाषा वक्तव्य प्रधान, गढ़ी हुई, बनावटी और सपाट थी। अरुण कमल ने अकविता और नक्सलबाड़ी कविता दोनों की भाषा से अपना अलगाव किया। लेकिन उनकी स्वयं की भाषा कैसी हो, यह अभी स्पष्ट नहीं था। उस समय काव्य परिदृश्य पर वरिष्ठ पीढ़ी के कई कवि सक्रिय थे, जिनमें एक तरफ वरिष्ठतम पीढ़ी के नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर थे तो दूसरी ओर मँझली पीढ़ी के रघुवीर सहाय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, कुँवरनारायण, केदारनाथ सिंह। ये वो कवि थे जो अकविता और नक्सलबाड़ी कविता के प्रभाव से मुक्त होकर लिख रहे थे। अरुण कमल ने अपना आदर्श नागार्जुन त्रिलोचन, शमशेर को बनाया। अरुण जी के ही शब्दों में, 'सतरंगे पंखोंवाली' ने मेरी आँखें खोल दीं। यह हमारे आस-पास का जीवन था, आस-पास की बोली और गहरा प्रेम था, गहरी करुणा जो चेखव की कहानियों में थी, जो प्रेमचंद में थी। तभी 'तालाब की मछलियाँ' निकली। 'पत्रहीन नग्न गाछ' मिला। और शमशेर की 'कुछ कविताएँ', कुछ और कविताएँ, त्रिलोचन की 'धरती'। इन सबने मुझे वो रास्ता दिखा दिया, जो मैं खोज रहा था। आस-पास का जीवन, आस-पास की बोली।'[1]

नागार्जुन, त्रिलोचन और शमशेर की कविता को अरुण जी ने अपना आदर्श बनाया। इसके पीछे दो वजहें थीं। पहली वजह यह कि इनकी कविता स्थानीयता को महत्त्व देनेवाली थी, जीवन में भी और भाषा में भी और दूसरी वजह कि 'जीवन के हर पक्ष की, हर क्षण की अपनी भाषा होती है। जैसे ही जीवन के दृश्य बदलें, भाषा भी साथ-साथ बदले। कवि की कोई एक भाषा नहीं होती। जितने मुँह उतनी बोली।...नागार्जुन, त्रिलोचन और केदार जी में हिंदीभाषा के विभिन्न रंग सहज ही मिलते हैं।'[2]

इसके अतिरिक्त अरुण कमल ने संस्कृत कविता से भी प्रभाव ग्रहण किया। खासकर कालिदास और भवभूति के बिंबों ने उन्हें समकालीन कविता को नये ढंग से देखने पर विवश किया।

इस तरह अरुण कमल ने अकविता और नक्सलबाड़ी कविता की भाषा से अपने को अलगाते हुए संस्कृत के कालिदास, भवभूति से लेकर हिंदी के नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर,

केदारनाथ अग्रवाल को अपना आदर्श बनाया और अपनी एक अलग भाषा गढ़ी। उन्होंने सामान्य बोलचाल की हिंदी को अपनी कविता का आधार बनाया और स्थानीयता लाने के लिए भोजपुरी के शब्दों, मुहावरों और स्वर-भंगिमाओं का प्रयोग किया। ये प्रयोग इतने सहज रूप से इनकी कविता में आते हैं कि भोजपुरी क्षेत्र से न जुड़ा हुआ व्यक्ति भी इन्हें आसानी से समझ जाए। वे भोजपुरी के बहुप्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं। जैसे—टो रहा, पाँक, बझ, छेदती, फगुआ, हरियरी, बधार, उठँगा, सिझेंगा, ठोप भर, भौजी, उकस, बउआ, झटास, मुसहर, फाग, धरती की फाट, घूर, रगेदते, साँझ, लुझ, हीड़े, ढहती, टपने, मसोमात, बगलगीर, चाँड़ती।

इनकी कविताओं में आनेवाले भोजपुरी के मुहावरे और स्वर-भंगिमाएँ भी चिरपरिचित होती हैं। जैसे—'ऐसी सुंदरता कौन काम की/ जिसके देखे दीदा फूटे।'[3]

'जैसे बैशाख का गया भादों को लौटा हूँ।'[4]

अरुणजी अपनी कविताओं में तीन तरह की शैली का प्रयोग करते हैं—पहली शैली वह है, जहाँ अरुणजी गद्यात्मक कविताएँ रचते हैं। बावजूद गद्यात्मकता के भाषा में एक आंतरिक लय रहती है। जैसे 'नये इलाके में' संग्रह की 'अंतष् शीर्षक कविता—'आखिर इसी जान/इसी देह की खातिर तो सब किया/ जहाँ बोलना था चुप रहा/जिससे बोलना बंद कर देना था उससे/हँस-हँस कर बोला।'[5]

उपर्युक्त पंक्तियों में गद्य की आंतरिक लय विद्यमान है।

कविता रचने की दूसरी शैली वह है, जहाँ अरुणजी कविता के भीतर कोई कथा कहते हैं। गद्यात्मक कविता की शुरुआत तो छायावाद से ही हो चुकी थी। समकालीन कविता में कथा कहने की प्रवृत्ति ने जोर पकड़ा, जिसके पीछे संचार-माध्यमों का प्रभाव कम कर रहा था। कविता से बाहर संचार-माध्यमों ने बिंबों का जो जमघट लगाया, उसकी प्रतिक्रिया में कविता ने बिंबों की उपेक्षा करनी शुरू कर दी, जिसकी शुरुआत अरुण कमल ने अपने पहले कविता-संग्रह 'धार' से ही कर दी थी। अरुणजी के यहाँ इस कथात्मक कविता की भी कई शैलियाँ हैं। कहीं वे स्वयं कथावाचक होकर किसी की कथा कहते हैं। जैसे 'नये इलाके में' संग्रह से 'असत्य के प्रयोग' शीर्षक कविता—'किसने सोचा था वह इस तरह जाएगा/कहता था मैं कौआ का मांस खाकर आया हूँ/मरूँगा नहीं मैं इसी जगह राज करूँगा पूरा कलयुग.../और एक दिन/वह गिरा पड़ा था औंधा गली/अपने ही खून और पेशाब में डूबा/पड़ा है बीसवीं शताब्दी का एक और अजूबा।'[6]

यहाँ कवि की भूमिका नैरेटर की है।

कहीं अरुणजी 'मैं' शैली में कथा कहते हैं जैसे 'मैं वो शंख महाशंख' संग्रह से 'सेवक' शीर्षक कविता—'लगता है अभी भी वह साँस मेरे भीतर घूम रही है/ वह डूबती आँख मुझे पीछे से ताक रही है...।'[7]

इसे हम एकालाप और संलाप की शैली भी कह सकते हैं।

कभी-कभी कविता के भीतर की कथा में 'मैं' और 'वह' की संवादपरक शैली भी होती है। जैसे 'नये इलाके में' संग्रह की 'एक रात जब मैं सफर में था' शीर्षक कविता—'मैं अकेला खड़ा था उसके पास घनी रात में/दरवाजे के पास सामान लिए.../सबसे ज्यादा जाड़े और बरसात में कटते हैं जानवर/आदमी भी सबसे ज्यादा मरता है भादों और पूस में/मैं जानता हूँ सब इतना पुराना टी॰टी॰ हूँ जंगली लाइन का/और कितनी दूर है मेरा स्टेशन/मैंने थककर पूछा और बैठ गया!'[8]

 ISSN 0975-735X

तो कभी वे किस्सागो की शैली में कविता कहते हैं–'नये इलाके में' संग्रह से 'लोककथा' शीर्षक कविता–'एक समय की बात है/ किसी गाँव में एक किसान के घर/डाका पड़ा रात के तीसरे पहर/और उसका बड़ा बेटा/ढेर हुआ/गहना बचाते/अर्थी उठाने का समय हुआ/पर गाँव का एक भी आदमी नहीं आया/सबने सोचा डकैत बुरा मान जाएँगे/किस्सा गया वन में/सोचो अपने मन में।'[9]

कविता रचने के दौरान अरुणजी की तीसरी शैली तुकांत कविताओं की है। जैसे–'अपनी केवल धार' संग्रह की यह कविता–'अपना क्या है इस जीवन में/सब तो लिया उधार सारा लोहा उन लोगों का/अपनी केवल धारस।'[10]

अरुणजी की कविता के केंद्र में समाज के निम्नवर्ग और निम्नमध्यवर्ग की जनता के दुख-सुख, हर्ष-विलाप हैं। ऐसी जनता के बीच जितने तरह के पात्र हो सकते हैं और उन पर जितने विषय हो सकते हैं, उन सबको अरुणजी ने अपनी कलम की नोक से उकेरा है। यही नहीं, समाज के अपराधिक तत्त्व भी उनकी कविता के चरित्र और विषय बनकर आते हैं। चूँकि चरित्रों और विषयों की विविधता है, इसलिए भाषा और लयों की विविधता भी है। अरुणजी की भाषा के अनेक रंग हैं। जैसे–'अपनी केवल धार' संग्रह की 'दरजिन' कहती है–'सब-कुछ सी दूँगी बीबी जी/ बेबियों का गरारा जम्पर समीज.../जिस वक्त हुक्म कीजिए/ सिलाई/ बाहर से आधे पर तो.../ जी/इससे कम? गुजारा नहीं होगा बीबी जी/सोचिये केतना काम है/ टाँकते-टाँकते उँगली फट जाएगी।'[11]

यह निम्नवित्तीय दरजिन का स्वर है, जिसमें गहरी करुणा और विवशता भरी है।

इसी प्रकार जब अरुणजी 'कुबड़ी बुढ़िया' पर कविता लिखते हैं तो उनके स्वर में दयनीयता और क्षोभ झलकता है और भाषा का रंग यह हो जाता है–'अचानक ही चल बसी/हमारी गली की कुबड़ी बुढ़िया/अभी तो कल ही बात हुई थी/जब वह कोयला तोड़ रही थी../मलकीनी को तेल लगाया/ घर आई फिर चूल्हा जोड़ा.../और अचानक बैठे-बैठे साँस रुक गयी।'[12]

'कथावाचक' शीर्षक कविता का कथावाचक एक अलग स्वर में अपनी दीन-हीन दशा और जीवन की अनिश्चयता को व्यक्त करता है–'हो कोई जो भरे हुंकारी/ फिर तो कथा सुनाता जाऊँ/रात-रात भर/कभी न सोऊँ/कहना सबको सबको लाना/बच्चे बूढ़े नारि सभी को/ बदला समय भाव भी बदले/एक जून भोजन भी भारी भक्तों के घर।'[13]

'अनुभव' शीर्षक कविता में वे प्रेम की ऐंद्रिकता को मधुर-मधुर भाव और भाषा में महसूस करा देते हैं–'और तुम इतना आहिस्ते मुझे बाँधती हो/ जैसे तुम कोई इस्तरी हो और मैं भींगी सलवटों भरी कमीज/ तुम आहिस्ते-आहिस्ते मुझे दबाती सहला रही हो....तुम मुझमें कितनी पुकारें उठा रही हो/कितनी बंशियाँ डाल रही हो मेरे जल में।'[14]

कभी अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग प्रेम की विरह-व्यथा को व्यक्त करने के लिए करते हैं–'मेरे दिल में इतनी मेखे हैं/कि तन सकते हैं प्यार के हजार शामियाने/पर हाय! जिस किसी काग को बनाया कासिद/वही कंकाल पर ठहर गया/पूर्णिमा का चाँद यह/घुमाता है मुझको चाक पर अपने/ घुमाते घुमाते एकदम छोड़ता हाथ/मैं गिरता हवाओं पें उघरता खुलता।'[15]

समकालीन कवियों ने कविता के भीतर कथा कहने की वृत्ति के साथ-साथ नाटक के तत्त्वों को भी समाहित करने का प्रयास किया, फलस्वरूप आज समकालीन कविता के पास बात

कहने के अनेक ढंग हैं। अरुण कमल के यहाँ इस नाटकीयता में व्यंग्य का समिश्रण भी देखने को मिलता है। उदाहरणस्वरूप 'मैं वो शंख महाशंख' से 'एक स्वप्न' शीर्षक कविता–'क्या हत्यारों का आत्मविश्वास कम हो रहा है/ क्या लुटेरे नरक के त्रास से डरने लगे हैं/और दंगाई हताश/हे भगवान, यह मैं क्या सुन रहा हूँ/क्या यह दुनिया नष्ट हो जाएगी प्रभु।'[16]

कभी-कभी अरुणजी की व्यंग्य-मुद्रा हल्के हास्य के साथ खीझ और झुँझलाहट लिए होती है। जैसे 'मैं वो शंख महाशंख' से 'घर और घूर' शीर्षक कविता–'इतने तामझाम संपत्ति की इतनी घोषणाओं छापों/हिरासतों जेल की सलाखों और चेहरे पर कालिखों/के बाद भी संपत्ति वहीं थी जहाँ थी/और जो जेल से छूट बाहर आ रहा था दो उँगलियों/से दोकाना बनाता वह उतना ही खुश या प्रफुल्ल/ मानो अभी अभी नींद से जागा हो पहली बारिश के बाद/और जो कंगले थे वे तालियाँ बजाते जै जै गा रहे थे/कि चाहे जो कहो यह व्यवस्था वैसी बुरी तो नहीं.../और थोड़े दिन बाद वे देखते वे जहाँ थे वहाँ से भी नीचे/ धकेले गए/और उनके घर बदल गए घूर में/इस तरह विश्व का विशालतम लोकतंत्र लोक में प्रसिद्ध हुआ।'[17]

इस कविता में कवि देश की व्यवस्था पर व्यंग्य करता है। प्रशासनिक व्यवस्था में छेद जहाँ व्यक्ति को लूट, चोरी की सह देता है तो न्याय-व्यवस्था में छेद व्यक्ति को उस अपराध से बरी कराने में मददगार सिद्ध होता है। इस तरह हमारे देश में एक वर्ग ऐसा बन गया है, जो जनता के पैसों पर पलता है; और जनता है कि दिनोंदिन कंगाल होती जा रही है। प्रस्तुत कविता में कवि ने इसी तथ्य का उद्‌घाटन व्यंग्य के माध्यम से किया है।

कभी-कभी अरुणजी भ्रष्ट व्यवस्था के कुकर्मों से इस कदर क्षुब्ध हो जाते हैं कि उनके व्यंग्य में क्रोध फूट पड़ता है। जैसे 'सबूत' से 'उत्सव' शीर्षक कविता–'देखो हत्यारों को मिलता राजपाट सम्मान/ जिनके मुँह में कौर मांस का उनको मगही पान/ प्राइवेट बंदूकों में अब है सरकारी गोली/गली-गली फगुआ गाती है हत्यारों की टोली.../धधक रहा है प्रांत समूचा ज्यों कुम्हार का आवा/हत्या-हत्या केवल हत्या-हत्या का ही राज/अघा गए जो मांस चबाते फेंक रहें हैं गाज।[18]

अरुण जी की इस कविता में व्याप्त व्यंग्य और विडंबना का स्वर नागार्जुन की 'शासन की बंदूक' शीर्षक कविता से मिलता है–'खड़ी हो गई चाँपकर, कंकालों की हूक/नभ में विपुल विराट-सी, शासन की बंदूक।'[19]

इस प्रकार अरुणजी की कविता में बात कहने के अनेकानेक ढंग हैं। कह सकते हैं कि भाषा, भंगिमा और लय की विविधता की दृष्टि से हिंदी के कवियों की शृंखला बनाई जाए तो निराला, नागार्जुन, त्रिलोचन के बाद चौथा नाम अरुणजी का आएगा।

बिंबों के क्षेत्र में भी अरुणजी ने सर्वथा नए प्रयोग किए। अरुणजी की ग्रामीण संस्कृति में गहरी रुचि है। जिस परिवेश को आधार बनाकर वे अपनी कविताएँ रचते हैं, वह लगभग ग्रामगंधी है। यही कारण है कि इनके अधिकांश बिंबों में कृषि-संस्कृति के उपादान मिलते हैं। कृषि-संस्कृति से गहरा लगाव नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह की कविताओं में भी मिलता है। नागार्जुन, त्रिलोचन के यहाँ बिंबों से अधिक वक्तव्य और सपाटबयानी मिलती है। केदारनाथ सिंह बिंबों के कवि हैं, किंतु उनकी बिंब रचने की शैली अरुणजी से भिन्न है। केदारजी की अधिकांश कविताओं में बिंबों द्वारा ही पूरा का पूरा काव्य परिदृश्य रचा जाता है, मानो कविता नहीं, चित्रों का एलबम हो। जबकि अरुणजी की अधिकांश कविताओं में वक्तव्य के बीच बिंबों का आहिस्ते से

 ISSN 0975-735X

प्रवेश होता है, जो प्राय: एकाध पंक्तियों में सिमटे होते हैं।

अरुण कमल की कविता में दृश्य, श्रव्य, घ्राण, स्पर्श, स्वाद आदि बहुइंद्रिय बिंब मिलते हैं। इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

दृश्य बिंब : तारों भरा आकाश देखकर कवि कहता है–'तारों भरा आकाश/ काले पहाड़-सा जिसके रोम-रोम में फूटा हो चमचम झरना।'

इसी प्रकार आँधी आने के बाद धूल-गर्द से सने वातावरण को देखकर कवि कहता है– 'दूर-दूर तक झर गया है भूरा आकाश/ बतियों की रोशनी मढ़ दी है धूल ने।'[21]

श्रव्य बिंब : आँधी में हिलते पेड़ों और कड़कती बिजली का चित्र देते हैं–'गरजता है गगन/और बिजलियों को देह में सोखने को उद्यत गरजते हैं धरती की ओर से ये वृक्ष।'[22]

विरह की तड़प का बिंब देते हैं–'तप्त खपड़ी में फूटते चने-सा तड़पता रह जाऊँगा।'[23]

घ्राण बिंब : अरुणजी को घ्राण बिंबों की बहुत गहरी समझ है। घ्राण बिंब के उदाहरण इस प्रकार हैं–'प्याज की तेज गंध जीरे की कपूर की गंध मुझे किसी औरत की गंध लग रही है।'[24]

'जलते मांस की गंध सँड़सी की तरह।'[25]

स्पर्श बिंब : इस ठंड में मेरा शरीर खेतों के बीच अलाव-सा जल रहा है।[26]

कई ढकी दबी आवाजें पुआल के भारी बोझ की तरह।[27]

स्वाद बिंब : स्त्री के कोमल और कमसिन रूप को दर्शाने के लिए कहते हैं–

तुम कितनी पतली थीं तब कितनी कम पंखड़ियाँ थीं
और कितने रोएँ जैसे भतिया ककड़ी।[28]

अरुणजी की कविताओं में मूर्त का मूर्तीकरण ही नहीं बल्कि अमूर्त का मूर्तीकरण भी मिलता है। जैसे–'और एक चिड़िया/वहाँ अकेली ठहरी हुई/ जिंदगी की छींट।'[29]

कैसा समाज है जो अपनी देह की मैल से डरता है।[30]

यहाँ 'जिंदगी' और 'समाज' जैसे अमूर्त भावों का कवि ने मूर्तीकरण किया है।

इस प्रकार अरुणजी ने अकविता और नक्सलबाड़ी कविता के नकारात्मक तत्त्वों से लड़ते हुए, संस्कृत कविता से लेकर हिंदी की प्रगतिशील कविता तक से आदर्श ग्रहण किया और अपनी भाषा, शैली, भंगिमा, लय, बिंब गढ़े। अरुणजी की कविताएँ देखने में सीधी-सरल लगती हैं, लेकिन सपाट नहीं होतीं। कविता के मर्म में प्रवेश करने पर अर्थ का नया गुंफन खुलकर सामने आता है। कह सकते हैं कि 'सादगी का जो सौंदर्य' हमें नागार्जुन-त्रिलोचन की कविताओं में मिलता है, वही अरुण कमल की कविताओं में भी है।

संदर्भ

1. अरुण कमल, कथोपकथन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृ॰ 54
2. अरुण कमल, कविता और समय, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृ॰ 190
3. अरुण कमल, अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ॰ 24
4. अरुण कमल, नये इलाके में, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1996, पृ॰ 14
5. वही, पृ॰ 26
6. वही, पृ॰ 64

7. अरुण कमल, मैं वो शंख महाशंख, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012, पृ॰ 17
8. अरुण कमल, नये इलाके में, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1996, पृ॰ 19
9. वही, पृ॰ 57
10. अरुण कमल, अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ॰ 88
11. वही, पृ॰ 40
12. वही, पृ॰ 30
13. अरुण कमल, सबूत, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1999, पृ॰ 34
14. अरुण कमल, पुतली में संसार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ॰ 94
15. वही, पृ॰ 91
16. अरुण कमल, मैं वो शंख महाशंख, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012, पृ॰
17. वही, पृ॰ 66
18. अरुण कमल, सबूत, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1999, पृ॰ 62
19. नागार्जुन रचनावली भाग-1, संपादक शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली, 2003, पृ॰ 450
20. अरुण कमल, सबूत, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1999, पृ॰ 38
21. अरुण कमल, अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ॰ 42
22. वही, पृ॰ 14
23. अरुण कमल, सबूत, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1999, पृ॰ 15
24. अरुण कमल, नये इलाके में, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1996, पृ॰ 36
25. अरुण कमल, सबूत, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1999, पृ॰ 70
26. अरुण कमल, पुतली में संसार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ॰ 36
27. अरुण कमल, सबूत, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1999, पृ॰ 71
28. अरुण कमल, मैं वो शंख महाशंख, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012, पृ॰ 38
29. वही, पृ॰ 52
30. वही, पृ॰ 61

47, Bhairab Dutta Lane
Nandibagan,Salkia, Howrha
West Bengal 711106
rajanivatsal@gmail.com
मो॰ 9163805354

‘कोणार्क’ नाटक में मिथकीय चेतना

विनोदकुमार यादव
शोधार्थी, हिंदी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

जगदीशचंद्र माथुर एक प्रयोगधर्मी नाटककार रहे हैं। प्राय: जगदीशचंद्र माथुर को प्रसाद और परवर्ती नाटककारों के बीच की कड़ी कहा जाता है, शायद यह उन्हें पसंद नहीं था। माथुर ने प्रसाद युग की बनी-बनाई लीक को तोड़ा है। शिल्प के क्षेत्र में ही नहीं, कथ्य के क्षेत्र में भी वे अपने पूर्ववर्तियों की अपेक्षा अधिक जागरूक रहे हैं। वे अपने युग के ज्वलंत प्रश्न उठाने में भी सक्रिय रहे।

माथुर राजनीतिक, सामाजिक और सौंदर्यशास्त्रीय आयामों की जटिलताओं से भी जूझते रहे। इस दौर के नाटककारों में वे सच्चे अर्थों में प्रगतिशील नाटककार हैं, क्योंकि स्वाधीनतापूर्ण हिंदी नाटक की विकास-यात्रा पर एक विहंगम दृष्टि इस तथ्य को उजागर करती है कि भारतेंदु ने जिस हिंदी नाटक को जन्म दिया था, उसमें रंगमंच दर्शक और समसामयिक जीवन के साथ सीधा जुड़ाव था, लेकिन ज्यों-ज्यों परवर्ती नाटककारों ने हिंदी नाटक के कथाफलक को भव्य रूप दिया, अतीत रूप दिया, अतीत के प्रति सम्मोहन दिखलाया।’

जगदीशचंद्र माथुर का रंग-विधान अधिक सघन और समस्याओं को उभारने वाला है। डॉ॰ सुधींद्रकुमार के अनुसार, ‘जगदीशचंद्र माथुर इसी नई सक्रिय नाटक-परंपरा के सूत्रधार नाटककार हैं। इन्होंने आकाशवाणी और रंगमंच से जुड़कर हिंदी नाटक में नए प्राण फूँके हैं और उसे नई जीवन-शक्ति दी है। इन्हीं के नाटकों से नाटककार और दर्शक के बीच सीधे संपर्क साधन का नए सिरे से सूत्रपात हुआ है।’[1]

इनकी रचनाओं का रचनाकाल 1951 से 1979 है। इस दौरान लिखे गए इनके नाटकों और एकांकियों में अँगरेजों के शासनकाल में घटित विश्वयुद्ध-संबंधी घटनाओं, शासन की शोषणमूलक प्रणाली और उसके विरुद्ध छिड़े विविध आंदोलनों ने इस नाटककार को आंदोलित किया था। देश की स्वाधीनता ने इनके हृदयांदोलन को स्वाधीन होकर नाटक रूप में उपस्थित होने का अवसर प्रदान किया था।

गोविंद चातक के अनुसार, ‘प्रसादोत्तर नाटकों के सामने एक ज्वलंत प्रश्न था—समसामयिक भावबोध और रंगधर्मिता का। माथुर ने दोनों को अपनाया। उनका कोणार्क 1951 में हुई जब हिंदी नाटक अपूर्णता का बोध कर रहा था और नई दिशा की तलाश में था। छायावाद अपनी मौत मर चुका था और प्रगतिवाद पर काली छाया मँडरा रही थी, माथुर का साहित्यिक संस्कार इन्हीं दो के बीच उदित हुआ था। पर मोहभंग की स्थिति भी सामने थी। पूर्ववर्ती काल में लघुता का तिरस्कार था, माथुर ने लघुता का विद्रोह अपनाकर एक नई बौद्धिक तलाश की और युग की चेतना का मानवीय धरातल पर विस्तार किया। अत: ‘कोणार्क’ पहला नाटक था, जिसे संकेतात्मक समकालीनता का प्रारंभिक बिंदु का एक उदाहरण कहा जा सकता है। यहाँ उन्होंने एक नई राह पर पैर रखा।’[2] कोणार्क को स्वाधीनता के बाद पहला महत्त्वपूर्ण और चर्चित नाटक माना जाता है।

डॉ॰ नगेन्द्र के अनुसार, 'मंचीय सार्थकता और नई जटिल जीवनानुभूतियों की नाटकीय रचनात्मकता जगदीशचंद्र माथुर के 'कोणार्क' (1951) में लक्षित होती है। विभिन्न प्रकार के पात्रों, घटनाओं आदि को इसमें इस प्रकार संयोजित किया गया है कि वे विशिष्ट नाटकीय स्थितियों में संश्लिष्ट हो उठते हैं। इसमें संघर्ष के कई आयाम उभरते हैं–प्रभुसत्ता और गरीब शिल्पी के बीच का संघर्ष, वस्तुत: कोणार्क का निर्माण एक गहरे अंतर्द्वंद्व का परिणाम है।'[3]

डॉ॰ बच्चन सिंह के अनुसार, 'यह (कोणार्क) इतिहास से अधिक मिथकीय है। इतिहास अपनी तथ्यात्मकता में जड़ोन्मुख होता है तो मिथक तथ्यात्मकता से मुक्त होकर चिदोन्मुख हो उठता है। ऐसी स्थिति में मिथक धार्मिक अनुष्ठानों, पुराकथाओं, आद्यबिंबों, निषेधों आदि से जुड़कर एक ओर अतीत से जुड़ता है तो दूसरी ओर विशिष्ट स्थितियों, त्रास, गहन आकांक्षा से संबद्ध होकर वर्तमान और भविष्य से।'[4] यद्यपि वह अर्थ के अनेक सार्थक स्तरों पर संचरण करता है। ऐतिहासिक नाटक सामान्यत: एकआयामी होते हैं तो मिथकीय बहुआयामी और घटना विरल। प्रसाद के नाटक राष्ट्रीय सांस्कृतिक और वैयक्तिक और घटना-बहुल होते हैं, आयाम तक रुक जाते हैं, जबकि माथुर के नाटक बहुत से अन्य आयामों को भी उद्घाटित करते हैं, इसके लिए उन्हें नए नाट्यरूपों का अन्वेषण करना पड़ा है। यह अन्वेषण कथ्य को प्रभावी ढंग से संप्रेषणीय बनाने के लिए किए गए हैं।

गोविंद चातक के अनुसार, 'कोणार्क ही एक ऐसा प्रयोग है जो पुराततन और नूतनता का कथ्य और शिल्प दोनों की दृष्टि से समुचित आकलन करता है।'[5] छायावादी रोमानी प्रभाव जगदीशचंद्र माथुर पर भी छाया रहा किंतु उन्होंने अपने को नूतन युगबोध के अनुरूप ढालने का प्रयत्न नहीं किया। फलत: उन्होंने स्वच्छंदतावाद के कालजयी अंश तथा युग की उभरती प्रगतिवादी दृष्टि दोनों के समन्वय से एक सुविचारित सुगठित युगबोध अपनाया, जिससे समसामयिक यथार्थवादी लेखन के बीच 'कोणार्क' को अद्भुत वैशिष्ट्य प्राप्त हुआ। वस्तुत: 'कोणार्क' की रचना-प्रक्रिया और भावबोध स्वच्छंदतावाद और यथार्थवाद के विलक्षण योग का परिचायक है।

'कोणार्क' का निर्माण एक गहरे अंतर्द्वंद्व का परिणाम है। मनोविज्ञान की शब्दावली में यह एक प्रकार का उदात्तीकरण है। डॉ॰ बच्चनसिंह के अनुसार, 'इस नाटक में इतिहास का ढाँचा भर लिया गया है, अत्यंत विरल ढाँचा : इतना ही कि नरसिंहदेव ने 'कोणार्क' का मंदिर बनवाया। नरसिंहदेव के बंगप्रवास में मंत्री राजराज का शक्तिशाली होना तथा 'कोणार्क' के विध्वंस का कारण बनना भी ऐतिहासिक है। मूलत: 'इसमें तीन प्रकार की अवधारणाओं के बीच संघर्ष समायोजित है सर्जना और विध्वंस के बीच, पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच, राजसत्ता और जनसत्ता के बीच, यद्यपि इनके प्रस्तुतीकरण के लिए मांसल व्यक्तियों, नाट्य बिंबों, स्मृति-चित्रों आदि को इस तरह संगुफित किया गया है कि एक संघर्ष दूसरे का कारण बनकर एक संश्लिष्ट पद्धति में मूर्त हो उठते हैं।'[6]

'कोणार्क' की निर्मिति के मूल में शिल्पी विशु की सुकुमार मौन सर्जना क्रियाशील है रतिभाव का उदात्तीकरण। किंतु इसके केंद्र में शिल्पी पिता-पुत्र का मिथक है, जो मनोवैज्ञानिक तथा राजनीतिक यथार्थ से जुड़कर शक्तिशाली नाट्यबिंबों के माध्यम से अनेक आयामी जीवन की संपूर्णता का प्रतीक बन जाता है। संभवत: माथुर अपनी नाट्य-कल्पना में काक्त्यू, इलियट और एट्स से किन्हीं अर्थों में प्रभावित हैं।

श्रीमती मिथलेश गुप्ता के अनुसार, 'डॉ॰ माथुर के ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटकों में

जहाँ एक और आधुनिकता को व्यक्त करनेवाले संकेत हैं, वहाँ दूसरी ओर व्यक्ति की द्वंद्वात्मक चेतना भी निहित है। युगीन संवेदनाओं को नाटक का केंद्रीय विषय बनाकर 'कोणार्क' में डॉ॰ माथुर ने न केवल प्रसाद की नाट्य-परंपरा को पुष्ट किया वरन् उसे आधुनिक विचारधारा और शिल्प के अनुरूप भी ढाला। 'कोणार्क' में दो स्तरों पर प्रतीकात्मकता को उभारा गया है। एक विशु के माध्यम से कलाकार के शाश्वत द्वंद्व को तथा दूसरे धर्मपद के चरित्र में आधुनिक जनवादी चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है।'[7]

डॉ॰ विजयेंद्र स्नातक के अनुसार 'कोणार्क' नाटक में बीते हुए युग के संदर्भ में समकालीन जीवन को अन्वेषित करने का प्रयास है। नाटक में स्थापित सत्ता और शिल्पी के बीच और कलाकार का सर्जन प्रेरणा की मन:स्थितियों, स्थितियों के बीच गहरा संघर्ष है। संभवत: कोणार्क आधुनिक हिंदी का सर्वाधिक मंचित नाटक है, जिसकी टेकनीक में हिंदी नाटक की क्लासिकल संवेदना का पुट है।'[8]

डॉ॰ नरनारायण राय के अनुसार, 'कोणार्क' में प्रसाद की काव्यात्मकता, भारतेंदु का युगबोध, सहज-स्वाभाविक जीवन-स्थिति और संवाद-योजना, वस्तु-विधान में नाटकीयतापूर्ण आरोह-अवरोह, पात्र के स्वतंत्र व्यक्तित्व तत्त्व का निरूपण, (यथार्थ) इतिहास और कल्पना (संशोधित किवदंती कथा) का समन्वित सम्मिश्रण कर यथार्थवादी और रोमांटिक शैली की विशिष्टताओं को एक ही साथ समेटने की कोशिश एक साथ देखी जा सकती है। इसमें केवल शिल्पी के प्रतिशोधात्मक मनोद्वंद्व को नाटक का तंतु बनाने के कारण इसमें कल्पित कथ्य की नवीनता है और इतिहास का सहारा भर लिया गया है।'[9] शिल्पी विशु की रचना-प्रक्रिया अनेक तरह के अंत:संघर्षों से प्रेरित है। एक विशेष बिंदु पर पहुँचकर तो परिवेश का संघर्ष अंत:संघर्ष से मिलकर इतना उद्वेलन पूर्ण हो उठा है कि रचयिता विशु अपनी रचना का विध्वंस स्वयं कर देता है। इस ध्वंस की व्याख्या करते हुए नाटककार कहता है, 'मुझे तो लगा जैसे कलाकार का युग-युग से मौन पौरुष, जो सौंदर्य-सृजन के सम्मोहन में अपने को भूल जाता है, कोणार्क के खंडन के क्षण में पुट निकला हो।'[10]

विशु एक शिल्पी है और शिल्पी ही रहना चाहता है। वह शासन के मामले में नहीं पड़ना चाहता, किंतु उसका पुत्र धर्मपाल उसका प्रतिवाद करता है और राजसत्ता के विरोध में सक्रिय होता है। 'कोणार्क' के ध्वंस के साथ राजमद ध्वसत हो जाता है। कला का सम्मोहन टूट जाता है, किंतु जनसत्ता अत्याचार के प्रतिकार के लिए उभरकर आगे आ जाती है।

उत्कलनरेश नरसिंहदेव से कहता है, 'राजराज चालुक्य आप पर आक्रमण करने को तैयार हैं इसलिए आप आत्मसमर्पण कर दीजिए। इस पर राजा इंकार कर देता है तो शैवालिक कहता है, 'राजसत्ता की भित्ति विश्वास नहीं, बल है।'[11] अर्थात् बल से राजसत्ता प्राप्त की जा सकती है। इससे आगे शैवालिक शिल्पी विशु से कहता है, 'तुम्हें इन बातों से क्या मतलब, तुम लोग शिल्पी हो, कल इनके नौकर थे, आज से राजराज चालुक्य महाराज के। शासन की बागडोर चाहे जिसके हाथ में हो, तुम्हें अपनी कला साधना करनी है।'[12] इस प्रकार शैवालिक चाहता है कि शिल्पी अपने जन्मजात कर्म पर ही ध्यान दें। वे राजसत्ता के मामले में मतभेद न करें। शिल्पी हो शिल्पी ही रहो।

शिल्पी विशु का पुत्र धर्मपद शैवालिक से कहता है, 'बहुत हुआ, बहुत हुआ दूत! क्या हम लोग भेड़-बकरियाँ हैं, जो चाहे उसके हवाले कर दी जाएँ। आज ही तो हमारे भाग्य का फैसला है, जिस सिंहासन को तुम डाँवाडोल कर रहे हो, वह हमारे ही तो कंधों पर टिका है। क्या उस पर

वह बैठेगा, जिसके कारण सैकड़ों घर उजड़ चुके हैं, वह जिसने कोणार्क के सौंदर्य-निर्माता शिल्पियों को ठीकरों से तुच्छ माना ठुकराया? कलिंग हमारा है और उसके अधिपति हैं, हमारे प्रजावत्सल नरेश श्री नरसिंह।'[13] इसमें शिल्पी विशु का पुत्र अपने अधिकारों को अपने कर्मो से प्राप्त करना चाहता है तथा अपने समाज के लोगों को अधिकार दिलवाना चाहता है। क्योंकि राजसत्ता प्राप्त करने वाले लोग उनको अपनी कठपुतली बनाकर उनका शोषण करते हैं। इसलिए धर्मपद अपने कला संबन्धी विचारों के संघर्ष से उनको परिवर्तन का संकेत करता है। यथार्थवादी बात कहकर अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करना चाहता है तथा अपने अधिकारों के लिए पूरे उत्तरदायित्व के साथ नई पीढ़ी को लेकर अत्याचार के खिलाफ भिड़ जाता है। इस पर नरसिंह कहता है, 'युवक, तुम्हारी वाणी ने हमें नई दिशा दी है। हम मृत्यु पसंद करेंगे, लेकिन उस नीच पामर चालुक्य के आगे घुटने न टेंकेंगे।'[14] अर्थात् नरसिंहदेव युवापीढ़ी का प्रतिनिधित्व करनेवाले धर्मपद की वाणी को एक नए परिवर्तन के लिए उसका समर्थन करने को सहमत है, जो एक राजा का कर्तव्य होता है। धर्मपद पुनः शैवालिक से कहता है

'सुनो शैवालिक! अपने नए स्वामी के पास यह अंगारों-भरा संदेशा ले जाओ कि कलिंग-नरेश श्री नरसिंहदेव महाराज, अत्याचारी विश्वासघातियों की धमकियों की चिंता नहीं करते। वे आज अकेले नहीं है, आज उनके पीछे वह शक्ति है, जिससे धरती थर्रा उठेगी, दीन-निर्धन प्रजा की शक्ति, जो कोणार्क के शिल्पियों और मजदूरों में दुर्दम सेनाओं का बल भर देगी।'[15] अर्थात् धर्मपद युवापीढ़ी का प्रतीक है, जो उत्साह और आशा से भरी होती है। उसमें उत्साह है, संघर्षशीलता है, विचारों की दृढ़ता है और है—शीघ्र निर्णय लेने की शक्ति। वह छैनी-हथौड़ी और पत्थरों के धनी शिल्पियों और कारीगरों को कुशल योद्धा बना ड़ालता है। अन्याय और शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने में उसका सानी नहीं है। राजराज चालुक्य के शोषणपूर्ण व्यवहार और दमनकारी आदेशों को खुली अवहेलना करने और चुनौती देने का साहस केवल धर्मपद में है, इसीलिए वह निर्भीक भाव से राजा नरसिंह देव के सामने वस्तुस्थिति को खोलकर रख देता है।

धर्मपद अपने पिता विशु से कहता है, 'जिस नीच से आप भीख माँगते हैं, मैं उसे भीख दूँगा, अपने प्राणों की भीख। तातः मैं जानता हूँ आप कायर नहीं है, पर मेरा मोह आपको दुर्बल बना रहा है। तात, जाते-जाते आपको याद दिलाऊँ कि आप पिता होने के पूर्व शिल्पी हैं, कारीगर हैं... .आज शिल्पी पर अत्याचार का प्रहार हो रहा है। कला पर मदांधता टूट पड़ी है। सौंदर्य को सत्ता पैरों के तले रौंद रही है; और कोणार्क, आपका सुनहरा सपना, जिस घोंसले में आपके अरमानों का पंछी बसेरा लेने जा रहा था, वही कोणार्क, एक पामर, पापी, अत्याचारी के हाथ का खिलौना बन जाएगा। आतंक के हाथों में जकड़ी हुई कला सिसकेगी। वही कारीगर की सबसे बड़ी हार होगी, सबसे भारी हार।'[16] अर्थात् धर्मपद पिता विशु के सिद्धांतों को स्वीकार नहीं करता बल्कि मानता है कि मेरे विचारों और पिता के विचारों में भिन्नता है। पिता विशु राजसत्ता से अपने का अलग नरखता है, लेकिन धर्मपद कलाकार को स्वाभिमान की रक्षा और अत्याचारों का विरोध करने की प्रेरणा देने है। धर्मपद व्यक्तित्व का सुलझा हुआ, प्रतिभायुक्त और खरे सोने-सा पहलू उसकी उलझन को दूर करके एक नई उत्साहमयी और करुणा को जन्म देती है। आज की विपरीत और अवमानना वाली स्थितियों से जूझ रहे कलाकार की अधिकार माँगने वाली वाणी के रूप में धर्मपद कला और कर्तव्य की साधना में रत युवक था। वह कला को भी सम्मान देना चाहता है।

कला के कलाकारों के अधिकारों को भी दिलवाना चाहता है।

धर्मपद अपने पिता शिल्पी विशु से कहता है, 'जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक और सीढ़ी है, जीवन का पुरुषार्थ। अपराध क्षमा हो आचार्य! आपकी कला उस पुरुषार्थ को भूल गई है। जब मैं इन मूर्तियों में रसिक जोड़ों को देखता हूँ, तो मुझे याद आती है पसीने में नहाते किसानों की, कोसों तक धारा के विरुद्ध नौका खेनेवाले मल्लाह की, रात-दिन कुल्हाड़ी लेकर काटने वाले लकड़हारे की। इसके बिना जीवन अधूरा है, आचार्य।'[17] अर्थात् धर्मपद का जीवन का सबसे बड़ा गुण पुरुषार्थ है। वह जिन विपरीत परिस्थितियों में जन्मा तथा जिन कठिनाइयों को झेलकर सारिका ने अपने पुत्र की रक्षा और उसका पालन-पोषण किया था, उनके कारण धर्मपद में आक्रोश और विरोध की शक्ति और वांछित कार्य कर पाने की अदम्य लालसा उत्पन्न हुई थी। अभावों में पलकर उसमें अभावग्रस्तता की पीड़ा की समझ और दूसरों के दु:ख-दर्द को दूर कर पाने की इच्छा से महाशिल्पी पिता विशु के कलात्मक यथार्थ का विरोध इस आधार पर करता है कि वासना पूर्ण कला से समाज का हित नहीं होता है। उसका विद्रोही मन कला में पुरुषार्थ की छाया देखना चाहता है, पुरुषार्थी व्यक्ति ही लक्ष्य में बाधक तत्वों से संघर्ष करने को तत्पर रहता है और साहस तथा पराक्रम दिखलाता है। धर्मपद कला, तर्क, संघर्ष और यहाँ तक कि मृत्यु के क्षेत्र में भी वह विजयी रहता है। वह हार मानना नहीं सीखा है, हार मनवाना सीखा है। शिल्पी विशु को अपनी कला सूक्ष्म, अरूप और सारे जीवन की गति का रूपक लगती है। कला को जीवन, भोगे हुए जीवन का प्रतिबिंब मान लेना उस व्यक्ति के लिए सहज स्वाभाविक है, जिसने उसे स्वयं जीवन में जिया है। महाशिल्पी विशु जिस व्यक्तिवादी रोमानी कला का समर्थक है, लेकिन धर्मपद उसको बौद्धिकता से जोड़ने का प्रयास करता है, किंतु विशु कला को चयन पर आधारित मानता है और चयन संस्कार पर निर्भर करता है और संस्कार बहुत कुछ अचेतन पर। धर्मपद गुण-चेतना का शिल्पी होने के नाते कला को अचेतन की अपेक्षा चेतन से जोड़ने का उपक्रम करता है तथा यही कालाकारों के दो वर्ग उभरकर आते हैं—एक का प्रतिनिधि विशु है, दूसरे का धर्मपद। विशु छायावादी विचारधारा की देन है। वह छायावादी कवि की भाँति अपने व्यक्तित्व बोध, सत्ता और स्वयंभू होने के मिथ्या गौरव से ग्रस्त है और वह राजनीतिक विचारों का वाहक होने से बचता है। विशु राजीव से कहता है—'शिल्पी को विद्रोह की वाणी नहीं चाहिए, राजीव! मेरी कला में जीवन का प्रतिबिम्ब और उसके विरुद्ध विद्रोह, दोनों सन्निहित है।'[18] अर्थात् यहाँ विशु अपनी कला को ही महत्त्व देता है। जो जीवन में भोगा गया अनुभव है तथा अपने को राजसत्ता से अलग रखना चाहता है।

विशु अपने पुत्र धर्मपद से कहता है—'वह सारे जीवन का प्रतिबिम्ब है। देखो, हमारे कोणार्क देवालय को आँखें भरकर देखा। यह मंदिर नहीं सारे जीवन की गति का रूपक है। हमने जो मूर्तियाँ इसके स्तंभों, इसकी उपपीठ और अधिस्थापन में अंकित की है उन्हें ध्यान से देखो। देखते हो, उनमें मनुष्य के सारे कर्म, उसकी वासनाएँ, मनोरंजन और मुद्राएँ चित्रित हैं। यही तो जीवन है।'[19] अर्थात उसकी दृष्टि में कला की साधना, समर्पण की भावना से ही की जा सकती है। उसके लिए कलाकार के लिए कला ही जीवन है, कला ही उसका लक्ष्य है तथा विशु की इस मान्यता के पिछे सामंती युग बोल रहा है, कला साधना के प्रश्न में विशु अपने कला-कर्म के प्रति पूरी ईमानदारी से प्रतिबद्ध है। विशु कल्पना की ऊँचाई कलात्मक मंदिर के निर्माण में और संवेदनशीलता अपने विगत प्रवासी जीवन को मूर्तियों में प्रतिबिंबित करने में दिखाई पड़ती है। विशु के जीवन में कला के

प्रति समर्पण भाव और कलाकार के आहत स्वाभिमान के बीच जब द्वंद्व की स्थिति उत्पन्न होती है, तब वह अपने भीतर के कलाकार की रक्षा करना अपना पहला दायित्व समझता है, किंतु उसकी यह समझ केवल अर्न्तदहन बनकर रह जाती है। अपने पुत्र धर्मपद का संपर्क पाकर उसकी यह अंतर्ज्वाला अपने ही कला शिखर का ध्वंस कर डालने को। प्रेरित करती है। इस ध्वंस के पीछे अपने दग्ध हृदय को शीतल करने और आततायी से प्रतिशोध लेने की अदम्य भावना है।

धर्मपद के विचारों की सामाजिक भूमिका कला को यथार्थ और जनजीवन से जोड़ने का प्रयत्न करती है जिस पर स्पष्टत: प्रगतिवादी विचारधार की छाप है; विशु व्यक्तिवादी है किंतु धर्मपद बार-बार जन शक्ति के महत्व को अलापता है। कोणार्क अंतर्मुखी और ऊर्ध्वमुखी दोनों प्रवृत्तियों का प्रतिनिधि दृश्य काव्य है। वह समकालीन सर्जन पर एक दृष्टि बिंदु है। उसके केंद्र में प्रणयिनी और माँ के रूप में छायावादी नारी है किंतु कर्म का वृत्त पौरुष अंकित हुआ है।

कोई भी कलात्मक लेखन अनुभूति और अनुभव पर आधारित होता है। 'कोणार्क' की नाट्यानुभूति काव्यानुभूति की भावभूमि पर स्थित है। अनुभूति की यह प्रामाणिकता उसकी अभिव्यंजना, शिल्प और शैली को विलक्षण शक्ति प्रदान करती है। अंतर्सत्यों और अन्ध्र्वनियां को उजागर करने वाली यह कृति अनुभूति का ऐसा इंद्रधनुष बुनती है कि विषयवस्तु गौण हो गई है और अंतर्वस्तु मुख्य। ज्योतिषी कहता है—'कोणार्क देवालय ज्यों ही पूरा होगा त्यों ही इसके पत्थरों के पंख लग जाएँगे और सारा मंदिर आकाश में उड़ जायेगा।'[20] अर्थात् इन तथ्यों में भविष्य के संकेत छिपे हैं। ये कथावस्तु को अनागत संदर्भों से जोड़ते हैं और भविष्य में घटनेवाले चक्र के लिए आधार निर्मित करते हैं।

कोणार्क के संबंध में स्वयं नाटककार का कथन है—रोचक कथा-पट प्रस्तुत कर देने से मुझे संतोष नहीं हुआ। मुझे तो लगा जैसे उस समय सारा युग राष्ट्रीय और वैचारिक स्तर पर संघर्ष का युग था, जिसमें व्यक्ति की ईहा और समाज-दर्शन मुख्य वस्तु थी। मानवता के भाग्य के निर्माण में व्यक्ति की ईहा और उसका पुरुषार्थ तथा समाज की भूमिका का सदा से जो हाथ रहा है इसमें 'समकालीन प्रगतिवाद की प्रतिध्वनि' मानकर दुत्कारे जाने की बात कही है।

'प्रणय की अठखेलियों और भाग्य के थपेड़ों के आधार पर कोणार्क के खंडहरों का सहारा ले एक कलाकार के मानस में कुंडली मारकर सोए पौरुष नाग की अनाहूत फूत्कार एवं कलाकार का युग-युग से मौन पौरूष जो सौंदर्य सृजन सम्मोहन में अपने को भूल जाता है। चिरंतन मौन ही उसका अभिशाप है, उस पौरुष को वाणी देन की मैंने धृष्टता की है।'[21] इस प्रकार धर्मपद पौरुष का प्रतीक बन जाता है और विशु का पथ-प्रदर्शन या प्रेरक भी। दोनों पात्र विशु और धर्मपद एक दूसरे के पूरक हैं और अंतत: दोनों एक हो जाते हैं। व्यक्तिगत वैषम्य के साथ सामाजिक समस्याओं का गठबंधन मैंने किया।

नर सिंह देव के शब्दों में 'विजय के तुरंत बाद हम अपनी सेवा को बंग देश में ही छोड़कर राजधानी को लौट पड़े। कोणार्क का सम्मोहन व्याध की वंशी था और हम थे विवश मृग।'[22] राजनीति का तो सिद्धान्त वाक्य ही है कि विश्वसनीय पर भी विश्वास नहीं करना चाहिए और नरसिंह देव है कि विशु और धर्मपद के बार-बार सचेत करने पर भी महामंत्री की कृतघ्नता और देशद्रोहिता पर विश्वास नहीं करते हैं। इस प्रकार नरसिंह देव के गुणों में मृग जैसी सरलता व सादगी है तो महामंत्री में जैसे शिकार करने की चेष्टा है।

'कोणार्क' नाटक के केंद्र में शिल्पी पिता और शिल्पी पुत्र का मिथक है। इसमें गहन मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक द्वंद्व के साथ वर्ग-संघर्ष का भी समावेशन हुआ है। इनमें नाट्य में गहरा तनाव पैदा होता है और एक प्रभावशाली नाट्य-बिंब की सृष्टि होती है। शिल्पी विशु अपने पुत्र से प्रभावित होकर अपनी ही कला को तोड़ देता है। विशु का पुत्र नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है।

नाटककार श्री माथुर का कहना है—'हम एशियावासी कितने आधुनिक क्यों न हो जाएँ, नाटक, गति और नृत्य का मिला-जुला स्वरूप हमारे स्वभाव और धरोहर का एक अंग ही बन गया है।'[23] मंदिर के उद्घाटन के अवसर पर अभिनय के लिए तैयार किया गया कुंती-सूर्य नृत्य नाट्य में विशु और धर्मपद की माँ के प्रणय को भी प्रच्छन्न रूप में शामिल कर लेता है। एक विचित्र बात यह है कि इसमें एक भी नारी-पात्र नहीं है। पर सारा नाट्य नारी की प्रणय-चेतना की निर्जरिणी से मुखर है। यह भी एक प्रयोग है।

संदर्भ

1. हिंदी नाटक : परंपरा और प्रयोग, डॉ॰ सुधींद्रकुमार, पृ॰ 142
2. नाटककार जगदीशचंद्र माथुर, गोविन्द चातक पृ॰ 16
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ नगेंद्र पृ॰ 660
4. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, बच्चनसिंह, पृ॰ 307
5. नाटककार जगदीशचंद्र माथुर गोविन्द चातक, पृ॰ 29
6. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, बच्चनसिंह, पृ॰ 308
7. डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में आधनिक बोध, श्रीमती मिथिलेश गुप्ता, पृ॰ 61
8. हिंदी साहित्य का इतिहास, विजयेंद्र स्नातक, पृ॰ 388
9. जगदीशचन्द्र माथुर की नाट्य सृष्टि, डॉ॰ नरनारायण राय, पृ॰ 38
10. हिंदी का गद्य साहित्य, डॉ॰ रामचंद्र तिवारी, पृ॰ 366
11. जगदीशचंद्र माथुर रचनावली, संपादक सुरेश अवस्थी, पृ॰ 52
12. वही, पृ॰ 53
13. वही, पृ॰ 53
14. वही, पृ॰ 53
15. वही, पृ॰ 53
16. वही, पृ॰ 66
17. वही, पृ॰ 66
18. वही, पृ॰ 31
19. वही, पृ॰ 35
20. वही, पृ॰ 28
21. वही, पृ॰ 20
22. वही, पृ॰ 46
23. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चनसिंह, पृ॰ 462

पुत्र श्री रामनिवास यादव
वी॰पी॰ओ॰ भालोजी, तहसील कोटपूतली
जिला जयपुर 303108 **(राज.)**
मो॰ 6377632513
vinodktp1984gmail.com

जीवन के यथार्थ से टकराते रेणु के रिपोर्ताज

डॉ॰ नीलू अग्रवाल
पटना

रिपोर्ट के साहित्यिक एवं कलात्मक रूप को रिपोर्ताज कहते हैं। फ्रांसीसी भाषा के इस शब्द का उपयोग यूरोप के रचनाकारों द्वारा द्वितीय विश्वयुद्ध के समय युद्ध के मोर्चे से साहित्यिक रिपोर्टों के लिए किया गया था। वस्तुतः यथार्थ घटनाओं को संवेदनशील साहित्यिक शैली में प्रस्तुत करना ही रिपोर्ताज है। रिपोर्ताज का आधार वास्तविक घटित घटना होती है। घटना-प्रधान होने के साथ ही रिपोर्ताज में कथातत्त्व के गुण भी होने चाहिए, परंतु उन कथातत्त्वों में कल्पित घटना का कोई स्थान नहीं हो सकता। रिपोर्ताज लेखक को जनसाधारण के जीवन की सच्ची और सही जानकारी रखनी पड़ती है, तभी वह प्रभावोत्पादक बनता है।

हिंदी में रिपोर्ताज का आगमन 1938 में प्रकाशित हुए शिवदान सिंह चौहान के रिपोर्ताज 'लक्ष्मीपुरा' से माना जाता है। प्रकाशचंद्र गुप्त, रांगेय राघव, प्रभाकर माचवे तथा अमृतराय आदि ने रोचक रिपोर्ताज लिखे। अपने समय की समस्याओं से जूझती जनता को इन लेखकों ने अपने रिपोर्ताजों में प्रस्तुत किया। इसी क्रम में फणीश्वर नाथ 'रेणु' इस विधा को नई ताजगी के साथ लेकर प्रस्तुत हुए। उन्होंने आँखों देखी घटनाओं को कथा कहने की देशज तकनीक के सहारे अभिव्यक्त किया, जिसमें अपनी परंपरा से प्राप्त आख्यान परंपरा के साथ उर्दू की किस्सागोई भी थी। रेणु ने गीत एवं गाथा के साथ एक खास प्रकार की लयात्मकता एवं संगीतात्मकता का प्रवेश अपने रिपोर्ताजों में कराया, जिससे उनके कथा-प्रसंग रोचक और अर्थव्यंजक होते गए। रेणु के रिपोर्ताज में वर्णनात्मक गद्य एवं लयात्मक काव्य दोनों के गुण मिलकर उसे अति रोचक बनाते हैं।

रेणु का संपूर्ण साहित्य ही राजनीति की मजबूत बुनियाद पर स्थित है, परंतु सामाजिक बदलाव के लिए उन्होंने साहित्य को राजनीति से कमतर कभी नहीं माना। रेणु की पक्षधरता पूरी तरह से शोषितों के यथार्थ के प्रति रही। इसका पता उनके अन्य साहित्य रूपों की तुलना में रिपोर्ताज में अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। 1 अगस्त 1945 के साप्ताहिक 'विश्वामित्र' के अंक में रेणु के पहले रिपोर्ताज 'विदापद नाच' का प्रकाशन हुआ। इसमें रेणु अपने कोशी अंचल के प्रसिद्ध लोकनृत्य (जो अब लुप्तप्राय है) विदापद नाच का परिचय हिंदी पाठकों से करवाते हैं। मुसहरों, धांगड़ों, दुसाधों जैसे दलितवर्गों के बीच प्रचलित इस लोकनृत्य को चुनौतीपूर्ण मुद्रा के साथ शहरी आभिजात्य के सामने लोकजीवन में व्याप्त कलाकारों के माध्यम से उपस्थित करते हैं। रेणु तथाकथित भद्र समाज पर व्यंग्य करते हुए नाच के बारे में अपना अनुभव इस प्रकार बताते हैं– 'जबसे मैं अपने को भद्र और शिक्षित समझने लगा, तबसे इस नाच से दूर रहने की चेष्टा करने लगा किंतु थोड़े दिनों बाद ही मुझे अपनी गलती मालूम हुई और मैं इसके पीछे फिदा रहने लगा।'[1] वह इस लोकनृत्य की नाटकीयता और हास-उल्लास के चित्रण के साथ ही उन लोककलाकारों की पीड़ा को भी उभारते हैं, जो सदियों से शोषित और वंचित हैं। उदाहरणस्वरूप

 ISSN 0975-735X

विकटा को जब कोड़े से पीटने का दृश्य आता है तो वह कहता है 'मुझे पीटकर बेकार समय बर्बाद किया जा रहा है। जमींदार के जूते खाते-खाते मेरी पीठ की चमड़ी मोटी हो गई है।'[2]

रेणु के पूर्णिया जिले से लगी है नेपाल की सीमा, और सीमा से लगा है नेपाल का विराटनगर शहर। इस शहर में उनकी किशोरावस्था नेपाली कोइराला परिवार के साथ बीती। जहाँ उन्हें साहित्य और राजनीति की दीक्षा मिली। यही कारण रहा कि नेपाल के दो बड़े जनआंदोलनों में उन्होंने 'कलम और तलवार' (जिसे उन्होंने सिद्धिदा और रक्तपा का नाम दिया था) दोनों के साथ हिस्सा लिया। सोशलिस्ट पार्टी के मुखपत्र 'जनता' (पटना) का प्रकाशन 1946 से प्रारंभ हुआ, जिसमें उन्होंने अपने जिले और नेपाल के बारे में रिपोर्ताज लिखना आरंभ किया। 2 मार्च 1947 के 'जनता' के अंक में रेणु का रिपोर्ताज 'सरहद के उस पार' प्रकाशित हुआ, जिसमें रेणु के प्रखंड वामपंथी स्वरूप का दर्शन मिलता है। यहाँ रेणु विराटनगर के मिल मजदूरों की बदतर जीवन-स्थितियों का यथार्थ चित्र तो खींचते ही हैं साथ ही वहाँ के पूँजीपतियों एवं राणाशाही पर तीखे व्यंग्य भी करते हैं, 'आपको मेरी बात लग गई लेकिन मैं कहता हूँ इन मिलों में पंद्रह-बीस हजार मजदूरों की पिसाई होती है, मगर कभी आह भी नहीं करने दिया जाता। माँगों और हड़तालों की चर्चा तो स्वप्न में भी नहीं की जाती। देखिए दाहिनी ओर वह मजदूर कॉलोनी है या 'सूअर के खूहारों' का समूह! उनके बच्चों और औरतों की दशा देखिए, कितनी दर्दनाक सूरत है।....कितनी अच्छी जिंदगी! बोलिए– प्रभुवर राणा के वंशजों के साथ-साथ चमड़िया-सिंहानिया लायलकाओं की जय!!'[3] खास बात यह रही कि इस रिपोर्ताज के प्रकाशन के बाद ही विराटनगर के मजदूरों का प्रखर आंदोलन शुरू हुआ। इस आंदोलन पर रेणु ने फिर एक लंबा रिपोर्ताज 'विराटनगर की खूनी दास्तान' लिख डाला। इसे पुस्तक रूप में छपवाया गया। इन क्रांतियों में रेणु की उपस्थिति ने सामाजिक-राजनीतिक हलचलों को जनता तक पहुँचाने हेतु उन्हें उद्वेलित किया। रिपोर्ताज इसका सबसे अच्छा माध्यम बना। नेपाल के आंदोलन की पृष्ठभूमि में उन्होंने 'जनता' में 'हिल रहा हिमालय' धारावाहिक रिपोर्ताज लिखा, जिसका पुनर्लेखन 'नेपाली क्रांति कथा' के नाम से 1971 में किया।

भारत के नक्शे में कहीं खोए से अपने प्रिय कोशी क्षेत्र से दुनिया का परिचय रेणु अपने साहित्य के माध्यम से कराते रहे। कोशी नदी यहाँ का श्राप मानी जाती है। इसमें आनेवाली विनाशकारी बाढ़ और उससे उत्पन्न पीड़ा को रेणु अपने रिपोर्ताज 'जै गंगा' और 'डायन कोशी' में प्रदर्शित करते हैं। 'जनता' साप्ताहिक में के 7 नवंबर 1948 के अंक में 'जै गंगा' प्रकाशित हुआ। बाढ़-पीड़ितों के दुखों के साथ यहाँ कथा की विद्रूपता तब और बढ़ जाती है, जब सरकार की ओर से पहुँचाई जाने वाली रिलीफ को सरकारी अफसरों द्वारा हड़पने के गंदे खेल का संकेत मिलता है, 'चकमका का मालगोदाम आज फिर खाली हुआ। चकमका के स्टेशन मास्टर ने डेढ़ महीने की छुट्टी ली है। उन्हें बहुत काम करना है। लड़का की शादी, जमीन खरीद से लेकर और भी छोटे-बड़े काम।'[4] 'कोशी डायन' (1948) में रेणु की कलम की अद्भुत शक्ति देखने को मिलती है। जनजीवन की तह की बातें उनकी आँखें पढ़ लेती हैं। इंसान के भावस्थल की पकड़ उनमें है। 'कोशी डायन' में उन्होंने हमारा परिचय इतने तरह के पात्रों से कराया है कि हम एक दूसरी ही यथार्थ दुनिया में पहुँच जाते हैं।'[5] कोशी मैया के प्रकोप के रूप में बाढ़ की विभीषिका, मौत का तांडव, जीव-जंतुओं के ही नहीं धरती के भी लाश बन जाने की दर्दनाक संवेदनशील

रिपोर्ट पाठक को दहला देती है, 'आ गई...मैया आ गई। जय, कोसी महारानी की जय...। विक्षुब्ध उत्ताल तरंगों और लहरों का तांडव नृत्य...मैया की जय-जयकार हाहाकार में बदल जाती है। इंसान, पशु, पक्षियों का सहरुदन। कोसी की गड़गड़ाहट, डूबते और बहते हुए प्राणियों की दर्द-भरी पुकार रफ्ता-रफ्ता तेज होती जाती है, मगर आसमान बच्चों का बैलून नहीं जो यूँ ही बात-बात में फट जाए।'[6] रेणु के पात्र दर्द में भी हँसते हैं और मृत्यु के कगार पर खड़े रहकर भी जिंदगी के चिह्न खोज लेते हैं। तभी तो 'धरती की लाश लड़खड़ाती हुई जिंदे नरकंकाल की टोली फिर से अपनी दुनिया बसाने को आगे बढ़ती है। मेरा घर यहाँ था...वहाँ तुम्हारा...पुराना पीपल मेरे घर के ठीक सामने था...देखो।'[7] भारत यायावर इस रिपोर्ताज को उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानते हैं, जिसमें यथार्थ के साथ एक दृष्टि का योग भी है।

बाढ़ पर ही रेणु के दो और महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं—पहला 'पुरानी कहानी नया पाठ' और दूसरा 'पटना जलप्रलय'। बाढ़ का आना तो रेणु के क्षेत्र के लिए पुरानी कहानी ही रही, पर नया पाठ में रेणु ने यह बताया कि बाढ़ लाने के असली अपराधी एवं बाढ़ के नाम पर 'अपनी गोटी लाल' करने वाले कोई और नहीं हमारे जनसेवक जी ही हैं। 1975 में आई पटना की बाढ़ पर फ्लैशबैक शैली में लिखे रिपोर्ताज 'पटना जलप्रलय' में पटना की जलमग्न सड़कों और चौक-चौराहों पर फैले पानी के आतंक की कथा बड़े ही सजीव चित्र खींचती है। इस बाढ़ में रेणु भी अपने घर में कैद हो गए थे, इसलिए जीवंत रूप में अपनी पत्नी के साथ-साथ कई अभिन्न मित्रों की चर्चा भी यहाँ करते हैं, जो इनके रिपोर्ताज को प्रामाणिक, लचीला, सरस एवं यथार्थवादी भी बनाता है। 'वे अपने रोजनामचा ही मानो प्रस्तुत कर रहे हों। वे समाज के बाहरी परिदृश्य की हलचलों, घटनाओं एवं अनेक गतिविधियों की रचनात्मक प्रस्तुति के साथ-साथ अपनी मन:स्थिति, घरेलू परिवेश एवं वातावरण की छवियाँ भी आँकते हैं।'[8] यह रेणु का अंतिम रिपोर्ताज था। इसमें शिल्प और संवेदना अपने उत्कर्ष पर दिखाई देती है।

1950 में पूर्णिया-सहरसा जिले का अकाल, जो बाढ़ के बाद अन्न-संकट लेकर प्रकट होता है, इस पर रेणु 'हड्डियों का पुल' नामक रिपोर्ताज लिखते हैं। यह रिपोर्ताज लिखते समय वयस्क रेणु को पूरा विश्वास है कि मजदूर-किसानों की सूरत और परिस्थितियाँ जरूर बदलेंगी। यही विश्वास इसी साल के 'जनवाणी' (वाराणसी) से प्रकाशित किसान-मार्च पर लिखे रिपोर्ताज 'नए सवेरे की आशा' में भी झलकता है जहाँ मजदूर-किसान राज्य की स्थापना को ही वे असली स्वराज मानते हैं। इस रिपोर्ताज के मुख्य पात्र ज्ञानचंद में रेणु का अपना ही व्यक्तित्व समाहित है। इस रिपोर्ताज की संरचना रेणु की कहानियों के ज्यादा करीब हैं, जिसमें बिहार के एक छोटे भूखंड की हथेली पर उन्होंने समूचे उत्तरी भारत के किसान की नीयत रेखा को उजागर किया है।

'भूमिदर्शन की भूमिका' (1966) नामक रिपोर्ताज दक्षिण बिहार में सूखे के कारण पैदा हुए अकाल का यात्रा-कथात्मक वृतांत है। अज्ञेय के साथ रेणु अकाल का दर्शन करने निकलते हैं और साथ-साथ पाठक को भी भूखे-नंगे, दलितवर्ग के बीच ले जाकर जीवन की विसंगतियों को देखने के लिए चुपचाप खड़ा कर देते हैं, '...24 जुलाई, 1966 को सुखाड़ी महतो ने भूख-प्यास से डाल्टनगंज में दम तोड़कर भूखमरी की घोषणा कर दी। 26 जुलाई को सुखदयाली भुईयाँ। 27 को जीतन भुइयाँ।....मन्नू माँझी की औरत। एक औरत तीन बच्चों के साथ कूप में गिरकर मर गई। एक अज्ञात व्यक्ति...एक औरत....एक बच्चा....!'[9] 'नए सवेरे की आशा' और 'हड्डियों के पुल' में

जो आस्था विश्वास रेणु में व्याप्त था, वह इस रिपोर्ताज तक आते-आते परास्त हो जाता है। सत्ता से कोई अपेक्षा अब उन्हें नहीं रहती। तभी तो लिखते हैं, 'रत्तूसिंह मर जाएगा तो क्या होगा कितने लोग मर गए तो क्या हुआ?....क्या होगा...? कुछ नहीं होगा।'[10] यह रिपोर्ताज 'दिनमान' पत्रिका में छह भागों में दिसंबर-जनवरी 1966-67 के अंकों में प्रकाशित हुआ।

रेणु के रिपोर्ताज जीवन के हर रंग को समेटने में कामयाब हैं इसका पता 'जीत का स्वाद' (1955) में मिलता है। यह रिपोर्ताज भारत-ऑस्ट्रेलिया टेस्ट मैच पर आधारित रनिंग कमेंट्री-सा प्रतीत होता है। अपराजेय रहनेवाली ऑस्ट्रेलियाई टीम के साथ मैच के तमाम उतार-चढ़ाव को रेणु नाटकीय अंदाज में चित्रित करते हैं। भारत जीत का स्वाद चखता है तो पूरा शहर क्रिकेटमय हो जाता है। जैसे-जैसे भारत जीत की ओर बढ़ता है पटाखे, शंख, घंटा-ध्वनि और घड़ियाल की मिली-जुली आवाजें सुनाई पड़ने लगती हैं। क्रिकेट मैच की यह जीवंत प्रस्तुति, हमारे सांस्कृतिक जीवन में इस खेल के रच बस जाने की द्योतक है।

संघर्ष चाहे जहाँ हो, मुक्ति की छटपटाहट में रेणु का कवि-मन भी शामिल हो जाता है। नेपाल की क्रांति के तो वह सहनायक ही थे। 'युद्ध की डायरी' (रिपोर्ताज) में 1965 के भारत-पाक युद्ध के समय की तो उन्होंने डायरी ही लिखी है। 1971 के बांग्लादेश मुक्ति-संग्राम का उनके मन पर किस तरह का प्रभाव पड़ा इसका पता काव्यात्मक शैली में लिखे 'श्रुत-अश्रुत पूर्व' नामक रिपोर्ताज से चलता है, 'मैं तो सुबह से ही जिस क्षण मार्शल लॉ की घोषणा की जा रही थी-अपने मन के टेलीविजन सेट के पर्दे पर देख रहा था, धर्मयुद्ध के दृश्य। एक के बाद दूसरी उभरती तस्वीरें....फेड इन:युवक-युवतियों का विशाल जुलूस, हर चेहरे पर अपूर्व आलोक, हर कंठ में एक ही गीत, हर होंठों पर भुवनमोहिनी हँसी, पृष्ठभूमि में पार्श्व संगीत: ओई जे आकाशे सूर्य उठेछे, आलोके आलोकमय-जय-जय-जय!....ट्रट्ठाँय! जय बांग्ला! ट्रट्ठाँय-ठाँय!! जय-जय-जय. ...किसान, मजदूर, नाविक, मल्लाह, काश्तकारों की विशाल टोली-बूढ़े बच्चे औरतें-हानादार होशियार!'[11] बांग्ला काव्य से ओतप्रोत यह रचना पूर्वी पाकिस्तान के बांग्लादेश बनने से पूर्व की स्थिति का सिंहावलोकन है ।

उपेंद्रनाथ अश्क द्वारा संपादित संकलन 'संकेत' (1955) में रेणु के 'एकलव्य के नोट्स' का प्रकाशन हुआ। इस रिपोर्ताज में एक गाँव में हो रहे परिवर्तनों का रेणु बारीकी से निरीक्षण करते हैं। भारत यायावर इस रचना को एक गाँव का समाजशास्त्रीय सर्वेक्षण कहते हैं। इस रिपोर्ताज के कुछ अंशों का संयोजन रेणु ने बाद में 'परती-परिकथा' उपन्यास में भी किया है। रेणु की कहानी 'मारे गए गुलफाम' उर्फ 'तीसरी कसम' पर गीतकार शैलेंद्र ने बड़ी शिद्दत से फिल्म बनाई थी। बतौर पटकथा लेखक रेणु को मुंबई की यात्रा करनी पड़ी। उन यात्राओं के अनुभव को उन्होंने 'एक फिल्मी यात्रा', 'तीसरी कसम के सेट पर तीन दिन', 'स्मृति की एक रील' जैसे रिपोर्ताजों में साझा किया है। एक कथाकार के तौर पर यहाँ उन्होंने फिल्मी स्टूडियो के प्रति अपना दृष्टिकोण, फिल्मी जगत के लोगों के साथ अपना व्यक्तिगत संबंध और फिल्म शूटिंग के प्रति अपनी सूक्ष्म दृष्टि की अभिव्यक्ति दी है।

नालंदा-राजगृह के अवशिष्ट खंडहरों पर रेणु ने 'समय की शिला पर: सिलाव का खाजा' नामक रिपोर्ताज लिखा, जिसमें वे बिहार के सिलाव (जगह का नाम) में बने खाजे (एक मिठाई जो परतों में होती है) की तुलना नालंदा के खंडहरों की निर्माणकला से करते हैं, बहुत ही रोचक

बन पड़ा है। रेणु रामकृष्ण एवं विवेकानंद के प्रति असीम श्रद्धा-भाव रखते थे। रेणु की दूसरी पत्नी लतिका जी भी पटना के रामकृष्ण मिशन स्कूल में पढ़ाती थीं। रामकृष्ण मिशन में चार रातों तक चलने वाले कार्यक्रम को देखते हुए रेणु विवेकानंद के जनवादी स्वरूप का दर्शन अपने रिपोर्ताज 'रस के बस में चार रात' में कराते हैं।

रेणु के लगभग सभी रिपोर्ताज खांटी देसीपन से भरपूर होते हुए भी एक क्लासिकल प्रतिमान हैं। 'वे अपने यथार्थवादी स्वरूप एवं समाज की अनेक परतों को बारीकी से चित्रित करते हुए भी कलात्मक शैली और शिल्प पर बहुविध प्रयोगधर्मा एवं सर्जनशीलता का अनूठा स्वरूप रखते हैं। रेणु इन दोनों विरोधी स्वरूपों को अद्‌भुत संयम और धैर्य से साधते हैं।'[12] अपने यथार्थवादी स्वरूप में रेणु के रिपोर्ताज समाज के बहुस्तरीय रंगो, स्तरों एवं विविध जीवन-प्रणालियों से जुड़कर समाजगत सच्चाइयों का सिर्फ ब्योरा ही नहीं देते बल्कि उसकी अनेक इकाइयों की जड़ों से पड़ताल भी करते हैं। सामान्य से सामान्य घटनाओं, स्थितियों, व्यक्तियों में वह कोई ऐसी चीज अवश्य देख लेते हैं और उसे इतनी सहजता से उभार भी देते हैं कि पाठक चमत्कृत हो जाता है। रेणु की यथार्थवादी दृष्टि को अभिव्यक्ति की कोई समस्या नहीं आती, क्योंकि रेणु तो भाषा के साथ खेलना जानते हैं। उनके अनुभव-संसार से अभिन्न रूप से जुड़ी, साधारण जनों की बोली के मर्म छूने की अद्‌भुत क्षमता है। शब्द-प्रयोग, वाक्य-रचना, अलंकार एवं बिंब-विधान आदि भाषागत विशेषताएँ उनके आंचलिक प्रयोग के मुख्य स्वर की सहयात्री हैं। वे मनुष्यों की वाणी के साथ ही जानवरों, वाद्ययंत्रों, प्रकृतिक उपादानों, शोर, मशीन, मौसम आदि की ध्वनियाँ निकालकर गहरी अर्थवत्ता के साथ यथार्थ की सजना करते हैं।

रेणु के रिपोर्ताज 1945 ई॰ से 1975 ई॰ तक की 30 वर्षों की अवधि के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिदृश्यों को अपने साथ टाँकते हैं, वे दृश्य आज भी मौजूद हैं और वह प्रक्रिया आज भी निरंतर जारी है। इन रिपोर्ताजों का यथार्थ, वर्तमान समय में भी जागरूकता पैदा करने, राजनीतिक के छल-छद्म को पहचानने, सामाजिक अंतर्विरोधों से जूझने और आर्थिक बदहाली से उबारने की क्रांतिकारी चेतना से संपन्न है। 2019 में जब पटना में जलजमाव की स्थिति पैदा हुई तो रेणु जी का 44 वर्ष पूर्व का 'पटना जलप्रलय' फिर साकार हो उठा। प्राकृतिक आपदाएँ आज भी या उससे भी ज्यादा भयंकर रूप में उपस्थित हैं। देश की गिरी हुई व्यवस्था के हृदय- विदारक दृश्य, भ्रष्ट राजनीति की आग, पूँजीपतियों की लूट, बाढ़ और अकाल का महाताडंव, सब आज भी ताजा है और इन सारी विसंगतियों के बीच आज भी जीने के जज्बे में कहीं कोई कमी नहीं आई है। रेणु के रिपोर्ताजों में बाढ़ में नद-सा हुंकार भरता हुआ जनजीवन आज भी हर अंतर्विरोधों का सामना करते हुए जीजिविषा से लबरेज है और समय के साथ-साथ इसकी महत्ता और प्रासंगिकता और बढ़ती ही जाएगी।

संदर्भ

1. फणीश्वरनाथ 'रेणु', समय की शिला पर, संकलन-संपादन : भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2002, पृ॰ 15
2. वही, पृ॰ 18
3. वही, पृ॰ 23
4. रेणु का है अंदाजे-बयाँ और, भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2014, पृ॰ 192

5. वही, पृ॰ 143
6. वही, पृ॰ 194
7.वही, पृ॰ 195
8. वही, पृ॰ 67
9. फणीश्वरनाथ 'रेणु', समय की शिला पर, संकलन-संपादन : भारत यायावर, पृ॰ 196
10. वही, पृ॰ 169
11. वही, पृ॰ 200
12. फणीश्वरनाथ रेणु के रिपोर्ताज, भारत यायावर, प्रेरणा पब्लिकेशन, पृ॰ 7

मार्कंडेय की कहानियों में अस्तित्वबोध

डॉ॰ मिनाक्षी
पीएच०डी०, स्ना० हिंदी विभाग
तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

स्वतंत्रता के कुछ ही दिनों बाद जब युवा कहानीकारों की दिशा अनिश्चित और अव्यवस्थित हो उठी, तब उन्होंने तत्कालीन मानसिक और भौतिक अराजकता से अलग अपना रास्ता बनाने की कोशिश की और कल्पना, भावुकता, मनोरंजकता आदि से अपने को मुक्त कर जीवन की उलझनों, अस्तित्व के संकट, वैयक्तिक स्वातंत्र्य, उत्तरदायित्व की बेवसी आदि अपनी आंतरिक जीवनानुभूतियों के अंकन में अस्तित्ववादी धारणाओं को ग्रहण किया।

युगजीवन की ओर अपनी मनोदशा की एकात्म अनुभूति की अभिव्यक्ति में रूपायित करने वाले नये कहनीकारों की एक बहुत ही बड़ी शृंखला हो गयी है। उनमें मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, मार्कंडेय, शिवप्रसाद सिंह, मन्नू भंडारी, रमेश वक्षी, निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, उषा प्रियंवदा, सुधा अरोड़ा, ज्ञानरंजन, रवींद्र कालिया, ममता कालिया, शैलेष मटियानी, शरद देवड़ा, फणीवश्वर नाथ रेणु, अवधनारायण सिंह, मणि मधुकर आदि मुख्य हैं।

नई कहानी के संदर्भ में आधुनिकताबोध का प्रथम प्रयोग डॉ॰ बच्चन सिंह ने सन् 1950 में प्रकाशित शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'दादी माँ' में निर्दिष्ट किया है। 'आलोचना' का समकालीन कहानी विशेषांक 'डॉ॰ देवीशंकर अवस्थी' ने इसका विधिवत् प्रवर्त्तन सन् 1956 से माना है।'[1]

आज की इस यांत्रिक सभ्यता में मनुष्य यंत्रवत् हो गया है अथवा महानगरों की भीड़ में खोकर नितांत अकेला हो गया है या जनतंत्र में भयानक माहौल में वह अजनबी हो गया है, हर स्थिति में उसकी पहचान (आइडेण्टिटी) की समस्या आत्मानुसंधान की समस्या प्रमुख हो गयी है।

'डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ऐसी कहानियों को वस्तु और शिल्प की दृष्टि से पूर्ववर्त्ति कहानियों से भिन्न मानते हुए इसे आज की कहानी कहते हैं और नई कहानी की संज्ञा को अनुपयुक्त समझते हैं।'[2]

मार्कंडेय का लेखन विशेषत: विविध सामाजिक परिस्थितियों तथा विसंगतियों से प्रेरित और प्रभावित रहा है। खासकर निम्नवर्ग के प्रति सदा उनकी विशेष सहानुभूति रही है। वे भली-भाँति समझते थे कि भारतीय संमाज की सबसे बड़ी शक्ति सर्वहारावर्ग के लोग ही हैं, जो सदा से उपेक्षित, शोषित, पीड़ित और प्रताड़ित रहे हैं। उनके प्रति समाज के अन्य वर्ग के लोगों ने मानवीय दृष्टि अपनाकर कभी न्याय की चेष्टा शायद ही की हो। वे दैन्य, निराशा और बहुमुखी शोषण के शिकार होकर, कभी-कभी पशु के स्तर से भी निम्नतर जीवन जीते हुए, अस्पृश्य और घृणा के पात्र बने रहे हैं। मानवता के इस कलंक को धोने का प्रयास जिन महापुरुषों द्वारा हुआ है,

 ISSN 0975-735X

उसमें मार्कंडेय नि:संदेह पांक्तेय महापुरुष हैं।

जैसे तेज प्रकाश के बाद ही अंधकार की गहनता का सही बोध हो पाता है वैसे ही निम्नवर्गीय चरित्रों की व्यथा और पीड़ा को अन्य वर्गों के चित्रण से मुखरता प्राप्त हुई है। मार्कंडेय जी अद्‌भुत प्रतिभासंपन्न कहानीकार थे। इनकी कहानी में आज के परिवेश के आम-आदमी की जिंदगी जुड़ी हुई है। मार्कंडेय जी की कहानी में शोषण एवं उत्पीड़न, सामाजिक तिरस्कार इतनी गहनता से वर्णित है, जो आज तक जीवंत है।

मार्कंडेय जी की कहानी का परिवेश ग्रामीण जीवन है, जिसमें उन्होंने आम आदमी के रोजमर्रा की जिंदगी जीनेवाले चरित्रों को चित्रित किया है। इनकी कहानियों की कथा पूरे देश की कथा है। मार्कंडेय जी कम्युनिस्ट थे, अत: उन पर प्रगतिवादी विचारधारा का पूरा प्रभाव लक्षित होता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के जनजीवन को जानने, समझने के लिए जिन कुछ साहित्यकारों की रचनाओं को पढ़ना जरूरी है, उनमें से एक नाम है—'मार्कंडेय'।

प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के दो पक्ष होते हैं—आंतरिक और बाह्य। व्यक्ति के व्यक्तित्व में आंतरिक पक्ष का महत्त्व अधिक होता है। कथाकार का व्यक्तित्व एक विशिष्ट प्रकार का होता है। वे संवेदनशील होते हैं। दूसरों के दर्द को अपना समझते हैं।

भारतीय साहित्य के आम आदमी का हिस्सा ही मार्कंडेय जी की कहानियों का अभिप्राय है। मार्कंडेय जी का लेखनकार्य ग्रामीण रूढ़िता और यथास्थितिवादी सामाजिक संरचना की उपज है। उनकी कहानियों का जो सामाजिक वर्ग है, वह ग्रामीण समाज के परिवेश को चित्रित करता है। साथ ही आधुनिक सामाजिक जीवन में व्याप्त संताप को भी चित्रित करता है जैसे 'कहानी के लिए नारी पात्र चाहिए', 'धूरा', 'सात बच्चों की माँ', 'वासवी की माँ', 'माही', 'प्रिया सैनी' और 'मिस शांता' नारी का यह वर्ग जीवन की स्थितियों को भी रूपायित करता है। इसमें जो आवाज है, जो चीख है, जो समाज है और जो शब्द है, वह मानव-जीवन में रक्त और पानी-सा स्थान रखता है।

विद्वानों का कहना बिलकुल सत्य प्रतीत होता है कि कलाकार तीन तत्त्वों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। ये जीवन तत्त्व हैं—देश, काल तथा परिस्थितियाँ (परिवेश); इन तीनों तत्त्वों ने मार्कंडेय जी के दिल और दिमाग को पूर्णत: प्रभावित किया।

नारी की सामाजिक स्थिति का विवेचन करते हुए मार्कंडेय ने कई समस्याओं पर विचार किया है। जैसे वैवाहिक समस्या, पारिवारिक समस्या, विधवा-विवाह, वेश्या-समस्या, स्त्री-शिक्षा आदि। सामाजिक संगठन में विवाह का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। मार्कंडेय के युग में बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल विवाह, बहुविवाह, दहेज-प्रथा आदि वैवाहिक कुरीतियाँ प्रचलित थीं, जिससे तत्कालीन समाज में स्त्रियों को ही इसके कुपरिणाम ज्यादा भुगतने पड़ते थे।

'गांधीजी ने भी इसपर खेद प्रकट करते हुए कहा था—'बालविवाह से मुझे घृणा है और विधवा बालिका को देखकर मैं पागल हो जाता हूँ।'[3]

'सात बच्चों की माँ' कहानी में सन्नो के माध्यम से मार्कंडेय ने अनमेल विवाह का उल्लेख करते हुए उसकी परिणति को दर्शाया है। मार्कंडेय के युग में प्रचलित दहेज-प्रथा विवाह-संबंधों में कोढ़ में खाज सिद्ध हो रही थी। बहुतेरे लेखकों ने बेमेल-विवाह, बहुविवाह और वृद्ध विवाह का मूल कारण इसे ही ठहराया। लड़की के गुण और सौंदर्य का दहेज के आगे कुछ

मूल्य नहीं था। अत: गरीब घरों की सुंदर और सुशिक्षित लड़कियाँ बहुधा दहेज के अभाव में, कुपात्रों के गले मढ़ दी जाती थीं, क्योंकि विवाह एक अनिवार्य धार्मिक कर्त्तव्य था।

इन तमाम वैवाहिक असमानता के दो कारण हैं–एक तो दहेज-प्रथा, दूसरा माता-पिता की ओर से असावधानी। मार्कंडेय की कहानियों के स्त्री-पात्र भारत की असंख्य निर्धन परिवारों की लड़कियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

मार्कंडेय जी की कहानियाँ नई कहानियाँ हैं, जो प्रेमचंद से बिलकुल नई हैं, जिसमें भूखी, नंगी, असहाय जनता की आह और आत्मपीड़ा का यथार्थ रूप दिखाई पड़ता है। अनमेल विवाह, बाल-विवाह अपनी प्राचीन ग्रामीण परंपरागत मान्यताओं की ही देन है। राजा राममोहन राय और दयानंद सरस्वती जैसे समाज-सुधारकों के प्रयास के पश्चात् आज भी गाँव में बाल-विवाह की प्रथा है। छोटी बालिका, जो जीवन और जीवन के दायित्व (विवाह) के अर्थ को समझ पाने में पूर्णत: असमर्थ है उसका बालावस्था में विवाह कर पालकी में बैठा, अनजाने जगह पर यह कहकर विदा कर दिया जाता है कि ससुराल ही तुम्हारा सब-कुछ है, ससुराल वाले जहाँ बैठाए वहीं बैठना, जैसे कहे वैसा ही करना।

'सहज और शुभ' कहानी-संग्रह की कहानी 'धुन' में चित्रित दलित पात्र नाथू महतों की घरवाली मंगलू की माँ द्वारा जोखू महाजन की भूखी लड़की को बाजड़ी की रोटी, लिट्टी खिलाकर परंपरा-भंजन करती है। नाथू उससे कहता भी है कि चमार की औरत होकर भले घर की लड़की को अपना (अस्पृश्य जाति के होने पर भी) रोटी खिलाकर झगड़ा सर पर ले रही है। मार्कंडेय जी ने अपनी कहानियों में ऐसे ही परंपराभंजक पात्रों का वर्णन किया है।

हिंदी कथासाहित्य के आरंभ से अबतक प्रेम बहुचर्चित विषय रहा है। कभी तो प्रेम का आदर्श रूप उद्घटित किया गया है और कभी प्रेम को योनेच्छा की परितुष्टि का यथार्थ माध्यम और जैव विशेषताओं से युक्त बताया गया है, लेकिन अस्तित्ववादियों ने प्रेमविषयक पारंपरिक मान्यताओं के विपरीत कुछ नये तथ्यों का उद्घाटन किया है। इनका कहना है कि प्रेम व्यक्ति के अंतर्जगत् से संबद्ध, अहेतुक और अनायास होता है। यह कर्तृत्व की भावना से दूर और प्राप्ति की आंकाक्षा से हीन होता है। इसीलिए प्रेम का कोई व्यावहारिक और व्यावसायिक पक्ष नहीं होता। इसका संबंध व्यक्ति के प्रमाणिक अहं से होता है। इसीलिए यह विशेष के प्रति ही हो सकता है 'सामान्य' के प्रति नहीं। यह व्यक्ति की अस्तित्वानुभूति का एक अंश होता है इसीलिए अनायास और सच्चे प्रेम को किसी आधिकारिक या आप्त-समर्थन की आवश्यकता नहीं होती है, जैसा कि विवाह में होता है। विवाह में तो अपने निर्णय के विपरीत ऊपर से थोपी गई पारंपरिक दायित्व-निर्वाह की भावना प्रेम की ऊष्मा को ही समाप्त कर देती हे। अस्तित्ववादी चिंतनधारा से युक्त प्रेमचंदोत्तर हिंदी कथासाहित्य में स्वयंभू और स्वयंनिष्ठ प्रेम से अधिक पारंपरिक वैवाहिक जीवन के प्रेम की ऊब, कटुता, एकरसता आदि का ही अंकन हुआ है। उदाहरणस्वरूप–

मार्कंडेय जी की कहानी 'सात बच्चों की माँ' की नायिका सन्नो भरी जवानी में पचास वर्षीय लगड़े सरूप के साथ व्याही जाने पर भीतर-भीतर कुढ़ती है और अनंत: देवी पंडित के साथ भाग जाती है।

अनमेल विवाह के कारण सरूप से सन्नो का शारीरिक संबंध नहीं हो पाता है। सरूप अपने घर में नहीं रहता परंतु सन्नो माँ बनती रहती है और सरूप बाप बनता रहता है। लेखक ने

 ISSN 0975-735X

संकेतात्मक भाषा में समाज पर करारा व्यंग्य किया है। हमारे समाज के रीति-रिवाज, कायदे-कानून किस प्रकार अकर्मण्यता की रस्सी से जकड़े हुए है, इसे सुधारने का काम समाज का है। सन्नो की जिंदगी को बर्वाद करने वाले उसके माता-पिता और सरूप है। इस तरह की कार्यप्रणाली पर शीघ्रता से समाज और सरकार दोनों का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास मार्कंडेय जी ने किया है।

'सोहगइला' कहानी में गाँव की यथास्थिति वाली मानसिकता पर प्रकाश डाला गया है कि बाल्यावस्था में ही लड़कियों का ब्याह कर उसके माता-पिता लकीर के फकीर बन जाते हैं। कम उम्र में विवाह होने के कारण 'जच्चा और बच्चा' की असमायिक मौतों की दर बढ़ती है, जो अन्याय है। इस ओर सुधारात्मक कदम बढ़ाकर कम उम्र में ब्याही जानेवाली लड़कियों के माता-पिता को समझाना चाहिए और साथ ही साथ कानूनी कार्यवाही कर व्यावहारिक रूप से उसे दंड देना चाहिए। सोहगइला कहानी के माध्यम से कहानीकार का यह विद्रोहात्मक तेवर ही प्रदर्शित होता है।

समाज और उससे जुड़ी संवेदनाओं को अपनी कथा का विषय बनाकर जाति, धर्म, अंधविश्वास, यथास्थितिवादी मानसिकता और शोषित समाज को सुधारने की बड़ी लड़ाई लड़ने की तैयारी मार्कंडेय जी ने की है। समाज में तेजी से हो रहे बदलावों को लेकर अपने समय और संदर्भों को, परिवेश को सामाजिक उत्थान के लिए अपनी आत्मचेतना को भारत की आत्मा में पिरोने का प्रयास किया है। समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए वे सदैव चिंतित रहे व समाज को अंधविश्वास से लड़ने के लिए आवाज दी है। प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने तो स्पष्टत: कहा था कि 'भारत तभी विकसित होगा जब यहाँ के प्रत्येक नर-नारी शिक्षित होगे, चाहे वह किसी भी जाति या संप्रदाय के हों अन्यथा भारत का विकास संभव नहीं है।'[4]

मार्कंडेय जी की कहानियों में नाटकीय संघर्ष तीव्रता के साथ दिखाई पड़ता है। उनका वर्णन एकदम वास्तविक होता है। जमुना बारिन के माध्यम से लेखक ने हरिजन कन्याओं के शीलहरण के लिए बड़े-बड़े मठाधीशों, आदर्शवादियों, जमींदारों, ठाकुरों और धर्मउपदेशकों को कठघरे में ला खड़ा कर दिया है। मार्कंडेय ने ऐसे नारी-पात्र के लिए पुरुषों को ही उत्तरदायी ठहराने का प्रयास किया है। एक लोकोकित प्रचलित है कि 'विधवा अपने को सात्त्विक बनाए रखना चाहे तो भी उसे आसपास के विधुर चैन से नहीं रहने देते।'

देखता नहीं यह पंडित, वह जमींदार का छोकरा और वह महाजन का छोटा भाई, सभी मेरे साथ सो चुके हैं, पर सब मुझे गाली देते हैं और जब-जब मेरे पेट में बच्चा आया, इन्होंने पंचायत करके उसे नाजायज करार दिया और बाहर निकाल दिया।

'कोई दूसरा बूढ़ा अपनी बीड़ी पर जोर का कस खींचता हुआ कहता है–'लड़की का जन्म ही विरथा है भाय! ई ससुरी जाने कहाँ जन्म लेती है, जाने कहाँ पहुँच जाती है। हमार तो सोचकर कलेजा फट जाता है। बिटियाँ की बिदा एक तरह की मउत ही, जो भयवा।'[5]

उपर्युक्त इन तमाम समस्याओं पर अगर मोटे तौर से विचार किया जाय तो सबके मूल में शिक्षा का अभाव ही है। मार्कंडेय-युग की नारी की आर्थिक स्थिति अत्यंत शोचनीय थी। स्त्री परिवार का एक प्रमुख सदस्य होकर भी आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र नहीं थी, संयुक्त परिवार की संपत्ति पर उसका कोई अधिकार नहीं था। केवल अपने गहनों पर ही स्त्री का कुछ हक अवश्य था जिससे हिंदू नारी में गहनों के प्रति एक प्रकार का मोह पाया जाता है। पुरुष-प्रधान समाज में

नारी की दयनीय स्थिति से मार्कंडेय जी अच्छी तरह परिचित थे। अतः नारी की इस सामाजिक दुरवस्था से वे अत्यंत क्षुब्ध थे। अधिकारविहीन, भविष्यहीन और दयनीय नारी को मार्कंडेय जी ने पुरुष की क्रूरता, अन्याय और अत्याचारों का शिकार बनते देखा था।

नारी की अधोदशा पर प्रसादजी की कटूक्ति है कि 'इस समाज में स्त्री कुछ नहीं है, वह केवल पुरुष की पूँछ है, विलक्षणता यहीं है कि यह पूँछ कभी-कभी अलग भी उठाकर रख दी जा सकती है।' वास्तव में हिंदू नारी का जीवन स्वयं एक अभिशाप है। 'नारी-जाति विधाता की एक झुँझलाहट है।'[7]

प्रसादजी की पैनी दृष्टि ने सिद्ध कर दिया था कि 'स्त्रियों को जीवन-भर केवल मरना पड़ता है। अत्याचारी पुरुष से पीड़ित होकर अंत में वे पद्मावती के समान जल मरना ही जानती है। पुरुष उस जली हुई राख को उठाकर अलाउद्दीन की तरह बिखेर देता है।'[8]

'स्वाधीनता के बाद भारतीय जीवन स्थिति में काफी बदलाव आया। इस बदले हुए परिवेश ने अपने संवेदनों और अपनी समस्याओं पर हर संवेदनशील व्यक्ति को एक नये सिरे से सोचने के लिए बाध्य किया। इसी स्थिति में सन् 1950 के आस-पास 'नई कहानी' का जो आंदोलन हिंदी में शुरू हुआ, अस्तित्वादी कहानियाँ उसी से जुड़ी हुई है। इस कहानी आंदोलन के मूल में है 'अनावश्यक भावुकता और व्यर्थ व्यामोह से मुक्ति, रचना प्रवृत्ति की चेतना, एक से अनेक, बिंदु से विराट्, संकुचन से विस्तार और व्यापकता की ओर होना। अंतःप्रेरणा का नवता के प्रति आग्रह, पुरानी परंपरित धारा को चौंका देना। तात्कालिक अनुभूति की वास्तविकता, यथार्थ पर ध्यान देना, भाषा की भावुकता का विरोध, अवस्था, स्थितियाँ तथा क्रियाओं को ईमानदारी से अंकित करना तथा पुरानी कहानी की मांसलता तथा स्थूलता से विरोध करना।'[9]

'1950 के बाद की कहानियों में क्रमशः वैयक्तिकता का दवाब बढ़ता गया। कुछ देर के लिए स्वतंत्रता-प्राप्ति का उल्लास आंचलिक कहानियों में अभिव्यक्त हुआ, पर वह कहानी की विकास-यात्रा का अस्थायी पक्ष था। शीघ्र ही स्वतंत्रता से प्राप्त होने वाले सुख के प्रति रोमानी मोह टूट गया और व्यक्ति एक तरह के कटाव या अलगाव के कठघरे में खड़ा हो गया। छठे दशक में जो तनाव या अलगाव आया, वह मूल्यों से पूर्णतः विच्छिन्न नहीं हुआ था, किंतु सन् 1962 में चीन-भारत युद्ध के समय रोमैंटिक सरकार ने हमें अंतिम रूप से मोहमुक्त कर दिया, इसीलिए मार्क्स और फ्रायड के प्रभावों से आगे बढ़कर अस्तित्ववादी दर्शन ने जीवन के बुनियादी सवालों की आरे हमारा ध्यान आकृष्ट किया, जिससे सातवें दशक में संत्रास, अलगाव, बेगानेपन और ऊब से संबंधित कहानियाँ लिखी गईं।'[10]

दौने की पत्तियाँ, भूदान यह आज के ट्रैजिक तनाव को पूरी गहराई में आँकती है, मनुष्य न तो छूटी हुई जिंदगी को छोड़ पाता है और न चुनी हुई जिंदगी को अपना पाता है, अपितु दोनों ओर खींचा जाकर क्षत-विक्षत हो जाता है।

जब कहानी कही जाती थी, तब उसका मुख्य प्रयोजन मनोरंजन था, जब कहानी लिखी जाने लगी, वह श्रव्य न रहकर पाठ्य हो गयी, तब उसका मुख्य प्रयोजन आत्माभिव्यक्ति और जीवन की आलोचना हो गया, मनोरंजन उसके साथ फिर भी लगा रहा लेकिन गौण रूप में।

संदर्भ

1. नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति सं० डॉ० देवीशंकर अवस्थी, पृ० 9

2. आधुनिक कहानी का प्रतिपाद्य, डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1966, पृ॰ 23-83
3. महिलाओं से, पृ॰ 26
4. सारिका पत्रिका पृ॰ 17, वर्ष 1989
5. सोहगइला, मार्कंडेय की कहानी, लोकभारती प्रकाशन, पृ॰ 196
6. कंकाल, पृ॰ 182
7. कंकाल, पृ॰ 257
8. वहीं, पृ॰ 260
9. अत्याधुनिक हिंदी साहित्य, सं॰ डॉ॰ कुमार विमल, पराग प्रकाशन 1965 में नई कहानी निबंध में 'नई कहानी' पर अवधनारायण मृद्गल का उद्धरण, पृ॰ 180
10. हिंदी साहित्य का इतिहास, सं॰ डॉ॰ नगेन्द्र, सहसंपादक हरदयाल, पृ॰ 728

Dr. Minksai
Wèko Nikil Kumar Yadav
Lagma Niwas , Near Bari Kali Asthan
Lallu Pokar, Munger
Bihar 811201
Mo. 8709866685, 9470402258

भारतीय सांस्कृतिक चेतना के सार्वभौम आयाम और विश्वकवि कालिदास

डॉ॰ रजनीशकुमार पाठक
प्रवक्ता संस्कृत
किशोरी रमण इंटर कॉलेज, मथुरा (उत्तर प्रदेश)

भारतीय संस्कृति प्राचीनकाल से ही सतत विकासोन्मुख रही है। यह आस्तिकमूलक भावना एवं आध्यात्मिक चेतना से अनुप्राणित है। इसमें मनुष्य एवं समाज के सर्वांगीण विकास (लौकिक और पारलौकिक) तथा उसे सुसंपन्न एवं सुसभ्य बनाने की प्रबल भावना समाहित है। भारतीय संस्कृति अपने मूल तत्त्व को सुरक्षित रखते हुए अत्यंत उदार, समन्वयकारी, सहिष्णु एवं विकासमान परंपरा से संयुक्त है। इसे अक्षुण्ण बनाए रखने में महर्षि वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, कबीरदास, रैदास, तुलसीदास, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद एवं महात्मा गांधी आदि मनीषियों का विशेष योगदान रहा है।

भारतीय सांस्कृतिक चेतना के सार्वभौम आयाम श्रुति-शास्त्र-पुराणादि ग्रंथों में वसुधैव कुटुंबकम्, सत्यमेव जयते, तमसो मा ज्योतिर्गमय, सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया: आदि रूपों में प्रस्फुटित हुए हैं। सरलतया विश्वबंधुत्व की भावना, विश्वमंगल की कामना, मानवमात्र में प्रेम की प्रतिष्ठा, समाज में सत्य एवं न्याय की स्थापना, प्राणिमात्र के प्रति ममता एवं समत्व बुद्धि तथा स्वहित-परहित में उचित संतुलन की स्थापना आदि इसके मूल स्वरूप को प्रकट करते हैं।

कालिदास विश्ववंद्य कवि हैं। उनकी कविता के स्वर देशकाल की परिधि को लाँघकर सार्वभौम बनकर गूँजते रहे हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में भारतीय राष्ट्र के प्रति अप्रतिम अनुरक्ति प्रदर्शित करते हुए भी विश्व-मानव के रूप में अपने को प्रकट किया है। भारतवर्ष के ऋषियों, संतों, कलाकारों, राजपुरुषों, विचारकों ने जो कुछ उत्तम और महान् दिया है, उसके सहस्रों वर्ष के इतिहास का जो कुछ सौंदर्य है, उसने मनुष्य को पशु-सुलभ धरातल से उठाकर देवत्व में प्रतिष्ठित करने की जितनी विधियों का संधान किया है, उन सबको ललित, मोहन और सशक्त वाणी देने का काम कालिदास ने किया है।[1] ध्रुव सत्य की ओर, उसे शिव एवं सुंदर रूप में चित्रित करके मानव जीवन को अग्रसर करना ही उनकी रचनाओं का लक्ष्य रहा है।[2] भारतीय जीवन और दर्शन के विविध रूप और मूल तत्त्व उनकी रचनाओं में निरूपित हैं। उन्होंने अपने शृंगाररस प्रधान साहित्य में भी साहित्यिक सौंदर्य के साथ-साथ आदर्शवादी परंपरा और नैतिक मूल्यों का समुचित ध्यान रखा है। वे राष्ट्र के समग्र राष्ट्रीय चेतना को स्वर देने वाले कवि हैं, इसीलिए विद्वानों ने उन्हें 'राष्ट्रीय कवि'[3] ही नहीं अपितु 'विश्वकवि' [4] के पद पर प्रतिस्थापित किया है।

कालजयी रचनाकार सच्चे अर्थों में विश्वकवि होते हैं। कालिदास की रचनाओं से आकृष्ट होकर न केवल देश के अपितु विदेश के भी अनेक विद्वान् उनकी रचनाओं का गंभीर अध्ययन

 ISSN 0975-735X

करते हैं और अनेक सार्थक निष्कर्ष निकालते हैं, जिनका सार्वदेशिक एवं सर्वकालिक महत्त्व है। इन विद्वानों में सर विलियम जोन्स, एच०एच० विल्सन, पीटर्सन, मैक्स मूलर, विंटरनित्स, फर्गुसन, हार्नर्ल, बी० स्मिथ एवं ए०बी० कीथ आदि के नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। इस दृष्टि से सर्वप्रथम सम्माननीय हैं सर विलियम जोन्स, जिन्होंने 1789 ई० में अभिज्ञानशाकुंतलम् का अँग्रेजी में तथा 1791 ई० में जर्मन भाषा में अनुवाद किया।[5] तत्पश्चात् ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के संस्कृत प्राध्यापक एच०एच० विल्सन ने 1813 ई० में 'मेघदूतम्' का अँग्रेजी में अनुवाद कर कालिदास की भारती से लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया। जर्मन कवि शिलर ने 'मेघदूतम्' का अनुकरण कर 'मेरिया स्टुअर्ट' की रचना की। मैक्समूलर ने भी 1847 ई० में जर्मन भाषा में मेघदूत का पद्यानुवाद किया।[6] विशेषकर कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुंतलम् (नाटक) और मेघदूतम् (गीतिकाव्य) विदेशी विद्वानों के आकर्षण का केंद्र बना, जिनकी प्रशंसा उन्होंने मुक्तकंठ से की है। डॉ० कीथ ने मेघदूत की प्रशंसा करते हुए कहा है–'मेघ के मार्ग-वर्णन की उज्ज्वलता, शोकाकुल तथा विरहिणी यक्षिणी के चित्रण के कारुण्य की जितनी प्रशंसा की जाय, कम ही होगी।[7] मोनोफ्रेज ने तो यहाँ तक कह डाला कि यूरोप में क्या, विश्व में ऐसे साहित्य का अभाव है।[8] जर्मन महाकवि गेटे ने अभिज्ञानशाकुंतलम् के जार्ज फास्टर कृत जर्मन रूपांतरण (1791ई०)को पढ़कर ही इसके विषय में जो समीक्षापूर्ण प्रशस्ति लिखी थी, वह डॉ० वी०वी० मिराशी के शब्दों में इस प्रकार है–

वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्
यच्चान्यस्यन्मनसो रसायनमत:संतर्पणं मोहनम्।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो-
रैश्वर्यं यदि वांछसि प्रियसखे शाकुन्तलं सेव्यताम्।।[9]

वर्तमान वैश्विक परिवेश एवं राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भारतीय सांस्कृतिक चेतना के प्रचार-प्रसार की महती आवश्यकता है। इस संदर्भ में महाकवि कालिदास की रचनाएँ अत्यंत सार्थक एवं उपयोगी हैं, क्योंकि उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक चेतना के सार्वभौम आयामों को अत्यंत सहज, सरल, मनोहर एवं मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। समाज में फैली हुई अव्यवस्था, भय एवं असुरक्षा की भावना, अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार, धन की लोलुपता एवं भोगवादी प्रवृत्ति, संकीर्ण सोच एवं आत्मकेंद्रित मनोवृत्ति, आसुरी वृत्तियाँ एवं पशुता की भावना दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इस त्रासद परिस्थितियों से मुक्ति दिलाने में महाकवि कालिदास की रचनाएँ आज भी हमारे लिए अजस्र प्रेरणास्रोत हैं, जिससे आलोक ग्रहण कर वर्तमान परिवेश की अनेक भयावह परिस्थितियों से मुक्ति पाई जा सकती है।

इस संदर्भ में सर्वप्रथम कालिदास की इस भावना का सम्मान होना चाहिए कि व्यक्ति अथवा समाज अपनी संस्कृति-परंपरा को अक्षुण्ण बनाए रखे, उसका सर्वथा त्याग न करे। किसी व्यक्ति के आविर्भाव के पूर्व में अवस्थित तथा युगों से चली आनेवाली स्थिति ही 'परंपरा' कहलाती है जो प्राय: अलिखित रूप में रहती है। परंपराएँ सामूहिक अनुभव की देन हैं, क्योंकि इसमें पीढ़ियों का ज्ञानानुभव समाहित रहता है। आरंभ में कोई कार्य-विशेष किसी आचार (व्यवहार) अथवा परंपरा के निर्वहणार्थ संपादित किया जाता है किंतु कालक्रम से वही संस्कृति का अंग बन जाता है, जिसका पालन अनिवार्य हो जाता है, जो जीवन का अवलंब बन जाता है। कवि की स्पष्ट उद्घोषणा है–

आचार इत्यवहितेन मया गृहिता, या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञ:।
कालेगते बहुतिथे मम सैव जाता, प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनार्था।।[10]

इसका यह आशय कदापि नहीं होना चाहिए कि हम परंपरा के ही पुजारी बनकर रह जाएँ अपितु विकासशील रहकर भी अपनी संस्कृति का सम्मान करें।

धार्मिक भावना का प्रभाव सर्वाधिक मानव-मन पर पड़ता है और उसके द्वारा मानव अपने व्यावहारिक जीवन को संयमित करने में सफलता प्राप्त करता है। कालिदास ने सर्वत्र धर्म से अनुप्राणित समाज का चित्रण किया है। महाभारत के अनुसार, धारण करने को धर्म कहते हैं (धारणात् धर्म:)[11], धर्म प्रजा को धारण करता है अर्थात् जिन नियमों को स्वीकार करने से जनसामान्य की रक्षा हो, समाज आगे बढ़े, पतनोन्मुख न हो, वे ही धर्म हैं। इस तरह, धर्म सामाजिक व्यवस्था का आधार है। इसीलिए कवि ने सर्वत्र धर्म-संबलित समाज का चित्रण किया है, जिसकी आज महती आवश्यकता है। उनके अनुसार ईश्वर के अवतार का हेतु 'लोकानुग्रह' ही है (लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणो:)[12], धर्म की रक्षा करने के लिए ही भगवान संसार में अवतार लेते हैं–'धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भूवि शार्गिंण:।'[13]

परमभक्त कालिदास को संसार के प्राणिमात्र में ईश्वर के दर्शन होते हैं। जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चंद्रमा, आकाश, पृथ्वी तथा वायु (अष्टविधमूर्ति)[14] तो उनके आराध्य हैं ही, संपूर्ण चराचर पशु-पक्षी,जीव-जंतु, यहाँ तक कि पेड़-पौधा, नदी-तालाब सभी उनके लिए पूजनीय हैं। जब सभी प्राणियों में ईश्वर का वास है, सभी उसी एक परम सत्ता के संतान हैं, तब पारस्परिक वैर-भाव के लिए स्थान कहाँ है? सभी में भ्रातृत्व की भावना एवं प्रेम का संचार होना चाहिए। ऐसे उदार एवं व्यापक दृष्टि के प्रचार-प्रसार की आज महती आवश्यकता है ।

वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में महाकवि की राष्ट्रीय चेतना अत्यंत उपयोगी है। इस संदर्भ में 'राजा प्रकृतिरंजनात्'[15] को व्यावहारिक रुप देने की आज आवश्यकता है। तदनुसार, प्रजा को प्रसन्न रखना ही राजा का सर्वप्रमुख कार्य है। प्रजा को वह अपने संतान-सदृश समझकर उसका पालन पोषण करे।[16] महाकवि का उद्घोष देखिए[17](प्रजा: प्रजा: स्वा इव तन्त्रयित्वा); उसे अपने सुख की चिंता न करते हुए प्रजा के हित के लिए निरंतर कष्ट सहन करना चाहिए, यही उनका कार्य व्यापार है[18] और इस गुरु-कार्य (प्रजा-पालन) में विश्राम कहाँ–'अविश्रमो अयं लोकतंत्राधिकार:।' (अभि.5/4)

वास्तव में प्रतिष्ठा (राजा का पद /उच्च पद) की प्राप्ति केवल उत्सुकता को समाप्त करती है किंतु प्राप्त हुए की रक्षा का कार्य उसको दुखी कर देता है। राज्य छाता के समान है, जिसका अपने हाथ में पकड़ा हुआ दंड थकान को उतना अधिक दूर नहीं करता है जितना (स्वयं और) थकान कर देता है–

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव।
नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्।।[19]

कहने की आवश्यकता नहीं कि कालिदास की इस दृष्टि की आज कितनी आवश्यकता है? वास्तव में प्रजा-रंजन से राज्य का उत्कर्ष होता है तथा प्रजा की उपेक्षा से विध्वंस की प्राप्ति होती है। ऐंद्रियिक सुख राजा को ही नहीं अपितु उसके विमल वंश को भी ध्वस्त कर देता है।[20] रघुवंश महाकाव्य के माध्यम से कवि ने यही संदेश दिया है। इसीलिए कालिदास क्षात्रतेज (राजा) और ब्रह्मतेज (विद्वज्जन) के परस्पर सहयोग से राष्ट्र मंगल की कामना करते हैं–

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिव:

सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्।[21]

सज्जनों के कल्याण के लिए परस्पर विरोधी 'श्री और सरस्वती' की एकत्र उपस्थिति की वंदना करते हैं[22] और इन सबसे बढ़कर विश्वकल्याण, जनकल्याण की भावना व्यक्त करते हैं–

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्व: कामानवाप्नोतु सर्व: सर्वत्र नन्दतु।।[23]

समग्रत: विश्व के महान् कालजयी रचनाकारों का महत्त्व देश-कालातीत होता है। ऐसे महान् कवि यद्यपि किसी काल-विशेष एवं देश-विशेष में प्रकट होते हैं तथापि उनकी कारयित्री-प्रतिभा सार्वभौम एवं मनुष्य मात्र की भावनाओं को व्यक्त करती है। ऐसे रचनात्मक क्षणों में वे ऐसी उदात्त भावना एवं ऊर्ध्व चेतना से संपन्न हो जाते हैं कि वे वर्तमान की सीमा को पार करके सुदूर भविष्य के लिए भी मूल्यवान सूत्र दे जाते हैं। भावी पीढ़ियों का दायित्व है कि वे अपने बदले परिवेश एवं नवीन परिस्थितियों के संदर्भ में उनका आकलन करें और उनमें निहित जीवंत एवं सार्थक तत्त्वों का अनुसंधान कर उनका युगानुरूप उचित प्रतिपादन करें।

संदर्भ

1. राष्ट्रीय कवि कालिदास, डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी (गूगल ग्रंथावली), 15 जुलाई 2014, पृ॰ 123
2. संस्कृत वाङ्मय का इतिहास, डॉ॰ सूर्यकांत, पृ॰ 174
3. राष्ट्रीय कवि कालिदास, डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी
4. विश्वकवि कालिदास, आ॰ सूर्यनारायण व्यास, ज्ञानमंडल प्रकाशन, इंदौर
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ॰ उमाशंकर शर्मा श्ऋषिश,चौखम्बा प्रकाशन, पृ॰ 482
6. मेघदूत : एक अनुचिंतन, डॉ॰ श्रीरंजन सूरिदेव, मोतीलाल बनारसीदास, पृ॰ 161
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ए॰बी॰ कीथ, पृ॰ 106
8. मेघदूत : एक अनुचिंतन, डॉ॰ श्री रंजन सूरिदेव मोतीलाल बनारसीदास, पृ॰ 161
9. कालिदास, डॉ॰ वी॰वी॰ मिराशि, राजपाल एंड संस, दिल्ली
10. अभिज्ञानशाकुंतलम्, 5/3
11. महाभारत, कर्ण पर्व, 109/58
12. रघुवंशम्, 10/31
13. वही, 15/ 4
14. अभिज्ञानशाकुंतलम् का मंगलाचरण
15. रघुवंशम्, 4/12
16. वही, 1/24
17. अभिज्ञानशाकुंतलम्, 5/5
18. वही, 5/7
19. वही, 5/6
20. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' पृ॰ 213
21. अभिज्ञानशाकुंतलम् का भरतवाक्य
22. विक्रमोर्वशियम्, 5/24
23. वही, 5/25

श्री के॰के॰दीक्षित
अग्रसेन नगर, द्वारिकापुरी
मथुरा (उत्तर प्रदेश) 281004

निराला के जीवन में 'कुल्लीभाट' का महत्त्व एवं राष्ट्रीय आंदोलन, समाजिक रूढ़िवादी घटना का खंडन

सोनी कुमारी
शोधछात्रा हिंदी विभाग
ति॰माँ॰ भागलपुर वि॰वि॰, भागलपुर (बिहार)

निरालाजी का पाँचवाँ उपन्यास 'कुल्ली भाट' है, जिसका प्रकाशन 1939 ई॰ में हुआ। 'कुल्ली भाट' समाजसेवा के अतिरिक्त राजनीति में भी सक्रिय है। कुल्ली के माध्यम से निरालाजी ने पूरे समाज पर बड़ा गहरा व्यंग्य किया है। 'कुल्ली भाट' की कथा हिंदी के यथार्थवादी साहित्य के विकास में नई कड़ी है, 'कुल्ली भाट' एक संस्करणात्मक उपन्यास है, जिसमें कुल्ली भी है और निरालाजी भी। दोनों के प्रसंग एक-दूसरे से जुड़े हैं।'[1]

कुल्ली भाट का प्रारंभ इस प्रकार किया गया है—कुल्ली का पूरा नाम पथवारी दीन भट्ट था। निरालाजी से इनकी परिचय इक्के में मालिक के रूप में हुआ था। जब वह अपने ससुराल जा रहे थे। रास्ते में निरालाजी, कुल्ली की बातों से बहुत प्रभावित हुए। पर कुल्ली के ससुराल वाले घृणा करते थे। किंतु निरालाजी ने उसे अपना मित्र बनाया और अगले दिन उसके साथ ऐतिहासिक स्थानों पर भ्रमण करने गए। निरालाजी से मिल कुल्ली के मन में आकस्मिक परिवर्तन हुआ और वह अकेला ही समाजसेवा में जुट गया। उसने अछूतों के लिए पाठशाला खोली, उन्हें स्वयं शिक्षा दी और घर-घर घूमकर काँग्रेस का प्रचार किया। उसने समाज के सम्मुख आदर्श रखने के लिए एक मुसलमान युवती से विवाह करके अयोध्या में उसे गुरुमंत्र दिलाने के बाद तुलसी की माला पहनाई। गाँव के लोग इसका विरोध करते हैं। पर इस विवाह में निरालाजी की अनुमति थी। कुल्ली के जीवन की अंतिम अवस्था सोचनीय थी। उनके शरीर का अधोभाग सड़ गया था। किंतु उसकी सहायता चिकित्सा के लिए किसी ने न की। फलस्वरूप कुल्ली की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु पर सारा दाह-संस्कार खुद निरालाजी ने ही किया।

'कुल्ली भाट' में कुल्ली के अतिरिक्त निराला के जीवन की अनेक घटनाओं का समावेश हुआ है। निरालाजी कुल्ली की भूमिका में लिखते हैं—'उनके परिचय के साथ मेरा चरित्र भी आया है और कदाचित अधिक विस्तार पाया गया है।'[2]

लेखक ने 'कुल्ली भाट' में अपने गौने की घटना, अपने सुसराल का वर्णन अपनी पत्नी 'मनोहरा देवी' के सौंदर्य और गुणों का बखान किया है। यह स्पष्ट दिखाया गया है कि 'कुल्ली भाट का निर्माण कर निरालाजी ने हिंदी की औपन्यासिक चरित्र का सृष्टि कर समस्त मान्यताओं पर कुठाराघात किया है। वस्तुत: यह आत्मपरक उपन्यास है। निरालाजी मानते हैं कि हिंदी में आत्मचरित्र की कमी है और वे कुल्ली का चरित्र लिखकर एक आदर्श उपस्थित करना चाहते हैं।'[3]

 ISSN 0975-735X

'कुल्ली भाट' उपन्यास में उपन्यासकार निरालाजी ने राष्ट्रीय आंदोलन की समसामायिक घटना का सुंदर व्यंग्यात्मक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में हिंदू, मुस्लिम एकता की ध्वनि सुनाई पड़ती है। 'कुल्ली भाट' के अतिरिक्त लेखक के अपने जीवन की भी अनेक घटनाओं का समावेश इस उपन्यास में हुआ है। निरालाजी के गौने की घटना, उनकी ससुराल का वर्णन, उनकी पत्नी मनोहरादेवी के सौंदर्य और गुणों का बखान, उनके परिवार वाले की मृत्यु, पत्नी की मृत्यु आदि का उल्लेख है। इसके साथ ही अछूतों और समाज के उच्चवर्गीय लोगों की स्वार्थवृत्ति का अंकन बहुत सजीव ढंग से किया गया है, जो निम्नलिखित बिंदुओं के आलोक में इस प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं –

निरालाजी ने इस उपन्यास के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त, छुआ-छूत, भेद-भाव एवं ऊँच-नीच जैसे कुरीतियों पर कटाक्ष करते हुए समाज को इससे ऊपर उठाने का सराहनीय प्रयास किया है। उन्होंने बताया है कि उस समय के समाज में ऊँच-नीच का भेदभाव प्रबल था। पर निरालाजी के मन में यह भावना न थी, वे बचपन से ही जात-पात से ऊपर विचार रखते थे। इस उपन्यास में इन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता को दिखाया है साथ ही अछूतवर्ग को भी समाज में आगे बढ़ाने का प्रयास किया है। इस उपन्यास का नायक पात्र 'कुल्ली भाट' हे, जो हिंदू होते हुए भी एक मुसलमानिन को अपने घर लाता है। इस काम में लेखक ने भी उसका साथ दिया है, पर समाज में इसका विरोध होता है, कुल्ली कहता है–'ये हिंदू नामर्द हो गए हैं, दूसरे को भी नामर्द बनना चाहते हैं।'[4]

वहीं समाज के उच्चवर्ग के लोगों का कहना है–'खुल्लमुखला मुसलमानिन बैठाये है उसे शुद्ध किया है, कहता है, अयोध्याजी जाने कहाँ ले, जाकर गुरु-मंत्र भी दिला आया है? देखो, तो बीबी तुलसी की माला डाले हैं। दुनिया का ढोंग।'[5] इस तरह लोग यहाँ 'कुल्ली' को ताना देते है।

दूसरी ओर 'कुल्ली', एक अछूत पाठशाला चलाता है जहाँ चमार, पासी, धोबी और कोइरी के बच्चे पढ़ते हैं। समाज के उच्चवर्ग के लोग सहानुभूति देने के बजाय कहते हैं कि 'कुल्ली अछूत लड़का को पढ़ाता है और मुसलमान, इसलिए नाराज हैं कि कुल्ली मुसलमानिन को ले आया है।'[6]

कुल्ली जब अपनी स्त्री की शुद्धि के लिए अयोध्या से गुरुमंत्र लेकर आया, तो उसी समय एक आदमी ने अयोध्या जाकर गुरुजी के चेले से कह दिया कि आपने जिसे मंत्र दिया, वह जाति की मुसलमानी है। इसके बाद यहाँ दिखाया गया है–'गुरुजी के मठ में खलबली मच गयी। उनके चेले बिगड़ जाएँगे, तो आमदनी का क्या नतीजा होगा और फिर अयोध्याजी है, जहाँ रामजी की जन्मभूमि पर बाबर की बनाई मस्जिद है, हिंदू-मुसलमान वाला भाव सदा जाग्रत रहता है।'[7]

इस प्रकार, इस पूरे उपन्यास में लेखक सामाजिक भेदभाव के साथ-साथ धार्मिक पाखंड एवं शिक्षा के क्षेत्र में भी व्याप्त छुआछूत की भावना को उजागर करने में पूर्णतया सफल रहे हैं।

ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित इस उपन्यास में भी निरालाजी ने अपने स्वभाव के अनुरूप शिक्षा के महत्त्व को दर्शाने का प्रयास किया है, जैसे इस उपन्यास के अल्पशिक्षित पात्र 'कुल्ली भाट' के द्वारा एक अछूत विद्यालय को चलाना शिक्षा के महत्त्व को भलीभाँति दर्शाता है।

इस उपन्यास में लेखक का ध्यान 'कुल्ली भाट' की शिक्षा पर ज्यादा है। कुल्ली अधिक पढ़े-लिखे नहीं, पर वह शिक्षा के क्षेत्र में, पढ़े-लिखों का भी कान काटते हैं। वह अपने गाँव में

अछूत-पाठशाला चलाते हैं, जहाँ गाँव के सभी अछूत बच्चे पढ़ते हैं। कुल्ली के आग्रह पर स्वयं निरालाजी उस पाठशाला को देखने जाते हैं और वहाँ का वर्णन अपने शब्दों में करते हैं–'गणेशजी जितने ज्ञानी है, मैंने सुना है, उतने ही मूर्ख है, बंगाल में हस्तिमूर्ख कहते हैं यानि हाथी की तरह का मूर्ख, इससे बड़ा मूर्ख दूसरा नहीं, पर इसमें शिक्षा की कमी नहीं। जहाँ हाथी सताते हों, वहाँ शेर की खाल काम देती है। बुद्धि इसीलिए सबसे ऊपर है।'[8]

समय ने बता दिया मूर्ख और गँवार कौन थे? उसी कुल्ली के लिए निरालाजी कहते हैं–'जो कुछ पढ़ा है, कुछ नहीं, जो कुछ किया है व्यर्थ है। जो कुछ सोचा है स्वप्न। कुल्ली धन्य है। वह मनुष्य है। इतने जंबुकों में वह सिंह है वह। अधिक पढ़ा-लिखा नहीं लेकिन अधिक पढ़ा-लिखा कोई, उससे बड़ा नहीं।'[9] दूसरी ओर इस उपन्यास में निरालाजी ने अपने शैक्षणिक जीवन का वर्णन कर शिक्षा के महत्त्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है–'ससुराल पहुँचने पर ससुरजी के मुख से पुत्री की प्रशंसा सुनी की, उनकी पुत्री बहुत पढ़ी-लिखी और सुशील, बुद्धिमती लड़की संसार में दुर्लभ है। एक दिन मुझे अपनी पत्नी से बहस हो गई। मैने कहा हिंदी में क्या है? तब कहती है जब तुम्हें आती ही नहीं, तब कुछ नहीं है। बैसवाड़ी बोल लेते हो, तुलसीकृत रामायण पढ़ी है, बस। तुम्हें खड़ीबोली नहीं आती थी। वे हिंदी पढ़ाई के लिए कलकते चले गए।'[10] जहाँ उन्होंने हिंदी की शिक्षा ग्रहण की।

इसके साथ ही उन्होंने मेहनत से अपने लक्ष्य की प्राप्ति की। वे परिश्रम से शिक्षा के क्षेत्र में काफी आगे निकल गए। मेहनत सब-कुछ कर सकती है।

चूँकि निरालाजी जीवनपर्यंत संघर्षशील रहे हैं। इसकी झलक प्रायः उनके सभी उपन्यासों में पात्रों के माध्यम में दिखाई देती है। यह उपन्यास भी इससे अछूत नहीं है। इस उपन्यास में भी इन्होंने अपने जीवन का संघर्ष और पात्र 'कुल्लीभाट' का आत्मसंघर्ष, रूढ़िवादी समाज से लड़ते हुए उसके चरित्र को ऊपर उठाया है।

कुल्ली निर्धन और अल्पशिक्षित होने पर भी अपनी आत्मसंघर्ष से अछूत पाठशाला चलाता है। इसके साथ ही समाज का खंडन करते हुए 'कुल्ली' स्वयं हिंदू होते हुए एक मुसलमानिन से शादी कर घर ले आते हैं। इस कार्य में निरालाजी भी सहयोग करते हैं–

'कुल्ली खुल्लखुल्ला मुसलमानिन बैठाए हैं। उसे शुद्ध किया है, कहता है, अयोध्याजी जाने कहाँ ले जाकर गुरुमंत्र भी दिला आया है। पर आदमी-आदमी है, जनाब जानवर थोड़े ही है? कान फुकाने से विद्वान शिक्षक और सुधारक होता है, देखो तो बीबी तुलसी की माला डाले है, दुनिया का ढोंग।'[11] किस तरह एक संघर्षशील व्यक्ति का समाज में रूढ़िवादी विचारक लोग खुलेआम पैर खीचते हैं, यह उस समय से लेकर आज तक के समाज में दिखलाई देता है।

इंसान कर्म से देवता बनता है। कुल्ली ने भी वहीं काम किया। निरालाजी के ससुराल में साले साहब अपनी अम्मा से 'कुल्ली' की प्रशंसा करते हुए कहते हैं–'अम्मा, कुल्ली अठारह घंटे मेहनत करते हैं। छः-छः कोस पैदल जाते हैं, काँग्रेस के मेंबर बनने के लिए, बस्ती में और बाहर सब जगह इतनी इज्जत है कि लोग देखकर खड़े हो जाते हैं।'[12] कुल्ली अपने संघर्ष से इतना महान हो जाता है, जिसके सामने निरालाजी किसी युगपुरुष को नहीं रखना चाहते।

जीवन के अंतिम क्षणों में उनकी अवस्था बहुत सोचनीय हो गई। उसके शरीर का अधोभाग सड़ गया था, किंतु अंत में किसी ने उसकी सहायता नहीं की। फलस्वरूप उसकी मृत्यु

हो गई। यहाँ 'कुल्ली' अपने आत्मसंघर्ष के बारे में बताया है–'समाज का यह निम्नतम वर्ग अपनी दीनता के प्रति अत्यधिक सजग था। इसके विपरीत समाज के उच्चवर्ग के व्यक्ति, जो सदैव दूसरों की उन्नति से जलते रहते थे। इस प्रकार के व्यक्ति केवल स्वार्थी हैं। यहाँ वह चाहे जनसेवा हो, चाहे देशसेवा इस सेवा से लगे अपनी सेवा करना चाहते हैं। कुल्ली के सतरह बार पत्र लिखने पर भी गांधी और नेहरू जैसे नेताओं ने उनकी कोई सहायता नहीं की। भारतीयों का ऐसा स्वार्थपूर्ण व्यवहार ही उनके विनाश का कारण रहा है।'[13]

इस प्रकार, निरालाजी के वास्तविक जीवन पर आधारित, यह उपन्यास प्रारंभ से अंत तक आत्मसंघर्ष एवं अंतर्विरोध से परिपूर्ण है। जीवन के साथ ही साहित्य-क्षेत्र में भी इन्हें संघर्ष का सामना करना पड़ा था। इसीलिए यह 'निराला' कहलाते हैं।

निरालाजी की भावना नारी के प्रति हमेशा से सजग रही है। लगभग इनके सभी उपन्यास नारी-प्रधान है परंतु कुल्ली भाट उपन्यास नारी-प्रधान होने के कारण नारी-स्थिति पर वर्णन मुख्यत: गौण ही है। पर कुल्ली एक मुसलमानिन स्त्री को घर में लाते हैं, जिसका समाज में विरोध हुआ है। पर निरालाजी कुल्ली का साथ देते हुए कहते हैं कि 'नारी को गंगा का रूप दिया है। बड़ी सुंदर नारी की प्रशंसा करते हुए कहा, किताब में स्त्री को नदी कहा है। नदियों में गंगा श्रेष्ठ है। तुम श्रेष्ठ स्त्री ले आए हो।'[14]

आर्थिक स्थिति

महामारी के प्रकोप के कारण निरालाजी की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय हो गई थी। परिवार की मृत्यु के पश्चात् चार भतीजों की परिवरिश सिर पर। उस समय चरखा काटने का भी जुगाड़ न था। बुनाई सीखना भी ठीक से न हुआ, इसी गरीबी में दूसरी शादी के लिए लोग आने लगे थे। निरालाजी इससे बचने के लिए अपनी ससुराल भतीजों को लेकर चले गए।

इस उपन्यास में 'कुल्लीभाट' की भी आर्थिक स्थिति दयनीय थी। कुल्ली अकेले समाज में अछूत पाठशाला चलाते है, पर उनकी सहायता कोई नहीं करता, जीवन के अंतिम दिनों में उसकी अवस्था बहुत सोचनीय हो गई, उसके शरीर का अधोभाग सड़ गया। किंतु उसकी चिकित्सा के लिए किसी ने सहायता नहीं की। फलस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई। बाद में उसका दाह-संस्कार खुद निरालाजी ने अपने हाथों से किया। इस उपन्यास में पात्रों को महामारी, बीमारी एवं गरीबी से ही जूझते हुए दिखाया गया है। लेखक का खुद का जीवन भी अपने आर्थिक स्थिति से जुझता हुआ दृष्टिगोचर हुआ है।

राजनीतिक स्थिति

'कुल्ली भाट' उपन्यास में निरालाजी ने समाज के उच्चवर्ग की कूटनीति और देश के बड़े-बड़े नेताओं की राजनीति अपने समय के दर्पण में विकसित और परिपक्व होता देख रहे थे। इस उपन्यास में पात्र 'कुल्ली भाट' के द्वारा नेहरू और गांधीजी जैसे महान नेताओं पर कटाक्ष किया गया है। इसी राजनीति प्रहार को यहाँ दिखाया गया है–

'एक ओर महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू आदि बड़े-बड़े काँग्रेसी नेता देश की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील थे, तो दूसरी ओर कुछ लोगों के राजनीतिक स्वार्थ के फलस्वरूप देश में हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य जोरों पर था। कुल्ली के एक मुसलमानिन से विवाह करने पर हिंदू और मुसलमान दोनों उसके विरोधी हो गए थे। इसी कारण उसे देशसेवा के कार्यों में किसी की

सहायता नहीं मिली। निरालाजी ने देशी राजाओं के दंभ का भी उल्लेख किया है, जो उनकी चापलूसी करता रहे, उसी से वे प्रसन्न रहते थे। वहाँ अपनी आत्मा को दबाकर रहना पड़ता था।'[15]

निरालाजी पुनः जब गाँव पहुँचते हैं, तो वहीं पर इनकी कुल्ली से मुलाकात होती है, जो समय के साथ काफी बदल गए थे—'चेहरे से सभ्य राजनीतिक हो गए थे। पहले की उदालतवाली सभ्यता अब राजनीतिक सभ्यता में बदली है, कुल्ली ने सोचा, मैं कोई महान राजनीतिक कर्मी हूँ। 'कुल्ली' एक अच्छे-खासे नेता की तरह मिले। यह देख निरालाजी कहते हैं—एक भेड़ बनता है, तो दूसरा चिड़िया बनने का हौसला दबा नहीं सकता। इसीलिए अब तक दीनता और दीन की ही संसार के लोगों ने ऊँचे स्वर में तारीफ की है।'[16]

उस समय देश में काँग्रेस की सरकार थी। कुल्ली काँग्रेस का काम करते थे। इसी प्रकार उसने अपने जिले में काँग्रेस का प्रचार किया और कहीं से सहायता न मिलने पर भी वह साहस और दृढ़तापूर्वक प्रचार कार्य में जुटा रहा। कुल्ली ने जन्मभर निःस्वार्थ भाव से सेवा की, किंतु उसकी चिकित्सा के लिए काँग्रेस ने सहायता देना स्वीकार नहीं किया। स्वयं निरालाजी काँग्रेस कमेटी के दफ्तर गए—'वहाँ प्रेसीडेंट साहब अपना पक्का मकान बनवा रहे थे। कुल्ली का काम वह देख चुके थे। रुपये की बात मैंने कही तो बोले, काँग्रेस का यह नियम नहीं। वह आपसे रुपये ले सकती है, पर दे नहीं सकती। यह मैं जानता हूँ, पर जिसे योग्य समझती है, उसे उतना देती है कि दूसरों को पता नहीं चलता।'[17]

लेखक का कहना है कि भारतीयों का ऐसा स्वार्थपूर्ण व्यवहार ही उनके विनाश का कारण रहा है। यहाँ काँग्रेसी कार्यकर्त्ता कुल्ली की चिकित्सा की तुलना में श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित का स्वागत अधिक महत्त्वपूर्ण रखते हैं। इस उपन्यास में लेखक ने अपने पात्र 'कुल्ली भाट' के माध्यम से तत्कालीन राजनीति नेताओं के दोहरे चरित्र को उजागर करते हुए, उन पर करारा प्रहार किया है। समाजसेवा का दंभ भरने वाले काँग्रेसी नेता किसी बड़े नेता की आगवानी करने को ज्यादा महत्त्व देते हैं। नेताओं के प्रति निरालाजी की सोच वर्तमान परिवेश में भी परिलक्षित है।

राष्ट्रीय चेतना

इस उपन्यास में लेखक ने पात्र 'कुल्ली भाट' को एक सजग राजनीतिक कार्यकर्त्ता के रूप में दिखाते हुए उन्हीं के माध्यम से राष्ट्रीय-चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया है। इस तरह निरालाजी से मिलने के बाद कुल्ली में आकस्मिक परिवर्तन हुआ और वह अकेला ही देशसेवा में जुट गया। उसने अछूतों के लिए पाठशाला खोली, उन्हें स्वयं शिक्षा दी और गाँव में घर-घर घूमकर काँग्रेस का प्रचार किया। अछूतोद्धार के लिए उसे किसी की विशेष सहायता नहीं मिली, किंतु उसने धैर्यपूर्वक अपना कार्य चालू रखा। इस उपन्यास में कुल्ली के माध्यम से तत्कालीन नेताओं की पोल खोलते हुए सामाजिक चेतना जाग्रत करने का भी प्रयास किया गया है।

सेवा भावना (समाजोत्थान)

निरालाजी स्वयं एक समाजसेवक थे। उनके सभी उपन्यास समाजसेवा की भावना से ओत-प्रोत हैं। 'कुल्ली भाट' भी इससे अछूता नहीं है। इस उपन्यास में निरालाजी ने यह बताने का प्रयास किया है कि साधारण मनुष्य अनेक कमजोरियाँ होते हुए भी समाज का बहुत बड़ा उपकार कर सकता है और महापुरुष कहलाने वाले लोग चरित्र पर नकली सफेदी किए समाज का उपकार करना तो दूर, सच्चे सेवकों का साथ भी नहीं दे सकते।

निरालाजी के शब्दों में कुल्ली धन्य है–'कुल्ली ने अछूत बालकों से जो आत्मीयता पैदा की थी, उसे देखकर निरालाजी की निगाह में वे बहुत ऊँचे उठ गए। उन अछूत बालकों की दृष्टि देखकर, निरालाजी लज्जित हो गए।'[18] कुल्ली अछूतों की सेवा करते है, उनके बच्चों को विद्यादान करते हैं।

इस उपन्यास में निरालाजी साहित्य क्षेत्र में लड़ते हैं, कुल्ली सामाजिक क्षेत्र में। कुल्ली एक मुसलमान महिला से विवाह कर समाज को एक सम्मुख आदर्श का भाव दिखाते हैं पर समाज में इसका विरोध होता है। वे समाज से निकाले जाते हैं। पर समाज का सारा विरोध सह और झेलकर कुल्ली ने समाज की सेवा के लिए जो कुछ किया है, वही निरालाजी की दृष्टि में उन्हें एक तेजस्वी नायक का गौरव देता है। इस प्रकार, लेखक ने उपन्यास के माध्यम से यह संदेश दिया है कि विषम परिस्थिति में भी यदि इंसान के दिल में सेवा-भावना हो, तो वह समाज की सेवा कर सकता है।

संदर्भ

1. निराला का साहित्य साधना, रामविलास शर्मा, भाग-2, 1972, राजकमल, नई दिल्ली, पृ॰ 477
2. परिषद् पत्रिका निराला अंक: जुलाई 1997, राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ॰ 99 में
3. निराला रचनावली, भाग-4, नंदकिशोर नवल, प्रथम 1983, राजकमल प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ॰ 22
4. निराला का साहित्य साधना, रामविलास शर्मा, भाग-2, पृ॰ 123
5. निराला रचनावली भाग-4, नंदकिशोर नवल, पृ॰ 60
6. वही, पृ॰ 63
7. वही, पृ॰ 65
8. वही, पृ॰ 66
9. वही, पृ॰ 23, 24
10. वही, पृ॰ 27
11. वही, पृ॰ 38
12. वही, पृ॰ 63
13. वही, पृ॰ 45
14. वही, पृ॰ 24
15. निराला की साहित्य-साधना, भाग-1, रामविलास शर्मा, 1990, तृतीय, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ॰ 427
16. निराला के उपन्यास, रामदेव शुक्ल, 2004, जे॰के॰ बुक सेंटर, पृ॰ 32
17. निराला का गद्य साहित्य, डॉ॰ निर्मल जिंदल, पृ॰ 132
18. निराला रचनावली भाग-4, नंदकिशोर नवल, पृ॰ 58, 60

द्वारा डॉ॰ शिशिरकुमार सुमन
4 **एम**/29 **(गायत्री सदन)**
बहादुरपुर हाउसिंग कॉलोनी
भूतनाथ रोड, पटना 800026

सांस्कृतिक संक्रमण के दौर में 'एकदा नैमिषारण्ये' की प्रासंगिकता

डॉ॰ रेनू त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
डॉ॰ भीमराव अंबेडकर राजकीय महाविद्यालय
महराजगंज

एक सच्चे साहित्यकार का दायित्व है कि वह अपनी रचनाओं में मानव-जीवन को उदात्त बनानेवाले आदर्शों, सिद्धांतों व मूल्यों को परखने का प्रयास निरंतर करता रहे। वर्तमान सन्दर्भों में अमृतलाल नागर का 'एकदा नैमिषारण्ये' उपन्यास बड़ा ही प्रासंगिक जान पड़ता है। यह हमें गतिमान बने रहने हेतु अपनी अमूल्य सांस्कृतिक परंपरा पर दृष्टिपात करने को उकसाता है। नागर जी ने सदा ही हमारी सांस्कृतिक धरोहर में हमारे वर्तमान और भविष्य की सुखद संभावनाओं को तलाशा है। भारशिवों और वाकाटकों के समय में होने वाले महान सांस्कृतिक आंदोलन को राष्ट्रीय महत्त्व से जोड़ने का साहस वही लेखक कर सकता है, जिसके भीतर देश और समाज को विखंडित होते देखकर गहरी पीड़ा होती हो।

सांस्कृतिक पुनुरुत्थान के प्रति सचेत करता 'एकदा नैमिषारण्ये' उपन्यास एक ओर राष्ट्रीय एकता के प्रति चिंता से संपृक्त है तो दूसरी ओर इसमें मानव के भीतर मूल्यों की स्थापना का सतत प्रयास भी है। पौराणिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों को आधार बनाकर लिखा गया यह उपन्यास भावात्मक एकता के द्वारा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को प्रतिबिंबित करता है। वस्तुतः भारत एक राष्ट्र के रूप में विभिन्नताओं से युक्त है और इस विभिन्नता में परस्पर विरोधी विचारतत्त्व भी हैं किंतु इन परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का समन्वय ही भारत को एक सशक्त पहचान दिलाता है। अपनी इस रचना में नागरजी ने जिस कालखंड को चुना है, उस समय विविध धर्मों के अनुयायियों ने अपने-अपने अनुसार देवी-देवताओं की कल्पना कर ली थी, जिसके फलस्वरूप धर्म अपने मूल भाव से भटक सा गया था। ऐसे समय में भार्गव सोमाहुति और नारद जैसे पौराणिक पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने एक धर्म की समन्वयकारिणी भावना को प्रवाहित करना चाहा है।

इस उपन्यास का आकर्षण ही है कि यह समूचे देश को एक करने, अंतर्विरोधों को समाप्त कर एक नये मानवीय धर्म का उदय करने का आग्रह करता है। उपन्यास के नायक भार्गव सोमाहुति अपने पिता के संकल्प पुत्र हैं, जो गिरा गुरु गणपति नाग द्वारा एक लाख श्लोकों वाली महाभारत संहिता का लेखनकार्य संपन्न कराते हैं और इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य को धर्म के वास्तविक रूप को पहचानने तथा अधर्म के नाश हेतु कृत संकल्प हो जाने का संदेश देते हैं। नारद के साथ मिलकर वे नैमिष में अनेक महासत्रों का सफल आयोजन करते हैं और जन-जन के हृदय

 ISSN 0975-735X

में आस्था को रोपते हैं। 'वे (सोमाहुति) नगर-नगर, गाँव-गाँव, एक-एक तपोवन में, भारत देश के कोने-कोने में इस अतिमिश्रित बहुधर्मी और बहुजातीय समाज को एक महाभावयुक्त देखना चाहते हैं। सनातन संकोच से बँधे जनहृदय को युगानुकूल उसके व्यापक होने के गुण का बोध यदि करा दिया जाए तो फिर वह आप ही अपनी स्फूर्ति से संचालित होकर सही दिशा में बढ़ने लगेगा।'[1]

वस्तुतः भारतीय समाज में व्याप्त जड़ता को तोड़ने और उसे गतिशील बनाने की ताकत नागरजी की लेखनी में थी। अपने चरित्रों की आत्मा के भीतर प्रवेश कर वे मानो अपने समय और समाज को परखना चाहते हैं। उनका मानना था कि 'हमें अपने देश में राष्ट्र की परिभाषा को व्यापक बनाना ही होगा। हमें वह संस्कार अपने भीतर जगाना ही होगा, जिससे सिंधुतट पर होनेवाले आक्रमण की बात सुनकर काशी का नागरिक कह उठे कि मेरे देश पर आक्रमण हुआ। जब तक देश अथवा राष्ट्र की वह महाभावना हमारे अंदर उत्पन्न नहीं होती है, तब तक हमारा कल्याण नहीं है।'[2] पात्रों के गहरे अंतर्द्वंद्व के माध्यम से वे पाठकों से तादात्म्य स्थापित करते हैं। यह वही स्थिति होती है, जब पाठक और उनके पात्रों की संवेदनात्मक एकता चरम अभिव्यक्ति पा जाती है।

आज हमारी संस्कृति अपने को बेबस और मूल्यहीनता से घिरा हुआ पाती है और ऐसे में यह उपन्यास भारतीय संस्कृति की व्यापकता को और अधिक मुखर कर सकता है। आपसी भेद-भाव, वाद-विवाद, रिश्तों की टूटन तथा भावों के स्खलन के जिस दौर से हम गुजर रहे हैं, यह उपन्यास हमारी चेतना को दीप्तिमान कर हमारी संस्कृति को फिर प्राणवंत बना सकता है। नागरजी मानवधर्म के पक्षपाती हैं। विश्वसंस्कृति के प्रति उनकी अटूट आस्था है। इस उपन्यास में नारद सौति को बताते हैं–'अनेक जातियों के सांस्कृतिक समन्वय से विराट चेतना का उदय होता है।.. ..सभी ने सबों को सिखाया है, सभी सबसे सीखे हैं। कौन छोटा है, कौन बड़ा, यह कहना भी मुझे तो अपराध सा ही लगता है।'[3]

भारतीय समाज में जाति, धर्म, वर्ण के आधार पर पायी जाने वाली विभिन्नता से उपजा असमानता का दंश लेखक को उद्विग्न करता है और इसी उद्विग्नता तथा व्याकुलता से ही 'एकदा नैमिषारण्ये' जैसी संघर्षशील और प्रेरक कृति का सृजन होता है। नागरजी का मत है कि 'मैं मनुष्य में विश्वास रखता हूँ, और वस्तुतः मनुष्यता ही मेरा धर्म है।'[4] वे धर्म को लोकहित का साधक मानते हैं और इसीलिए आपसी मन-मुटाव से लड़खड़ाते समाज को सेवाभाव से युक्त मानवीय धर्म के सहारे औदात्य की ओर ले जाना चाहते हैं। धर्म के नाम पर कट्टरता उन्हें ग्राह्य नहीं थी। 'धर्म को देशकालानुसार अपनी समीक्षा करनी ही चाहिए, अन्यथा वह रूढ़ होकर अर्थहीन हो जाता है।'[5]

वस्तुतः भारतवर्ष की जिस अखंडता को बचाने की जद्दोजहद सोमाहुति भार्गव और नारद जैसे पौराणिक पात्र करते रहे, आज देश को उसी समर्पण की जरूरत है। समूचे विश्व में अपनी समन्वयवादी संस्कृति के लिए समादृत हमारा राष्ट्र आज एक बार पुनः उसी समर्पण, उसी भाईचारे और एक-साथ मिल-जुलकर रहने की बाट जोह रहा है। 'इस समय हमारे देश को कर्म और धन की संपन्नता, संगठन की एकसूत्रता तथा ज्ञान, विवेक और संयम की महाशक्ति चाहिए।'[6]

भारतीय संस्कृति आस्था के प्रबल स्वर को समाहित किए हुए है। इतिहास साक्षी है कि जब-जब भारतवर्ष को अपनी पहचान से जूझने की चुनौती मिली है, हमारे देश ने इसी आस्था के बल पर उस प्रत्येक चुनौती को स्वीकार कर उसे अपनी प्रगति का मानदंड बना लिया है। यह उपन्यास भी आस्था के उसी स्वर को मुखरित करता है। अस्थिर लोकमानस को पुनः दृढ़ करने

के लिए आस्था का आधार आवश्यक है। 'इस आस्था को उद्‌बुद्ध करने के लिए राजनीतिक और सामाजिक धर्म क्रांति आवश्यक है। राजनीति, अर्थनीति और संप्रदायों तथा जनजातियों की संगठन-नीति, लोकजीवन को शासित और प्रभावित करती है। इसलिए नारद की व्यापक दृष्टि और भार्गव व्यास की भावनिष्ठा लोकोपासिका नीति, रीतियों को प्रभावित करना आवश्यक मानती है। इसी हेतु नैमिषारण्य का सांस्कृतिक आंदोलन राजनीति और सामाजिक गतिविधि से संबंधित है।'[7]

यह उपन्यास उस समय को चित्रित करता है, जब विघटन और कलह के कारण समाज कर्मशून्यता की स्थिति में आ गया था। आज भी प्रगति के नित नये आयाम प्राप्त कर भी हम विघटित होते समाज को एकजुट नहीं कर पा रहे हैं। ऐसे में इस कृति का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है जो जाति, धर्म, वर्ण आदि के आधार पर भारतीय समाज को विशृंखलित नहीं होने देना चाहती और राष्ट्रीय एकता का शंखनाद करती है। सरयू नदी में स्नान करते समय वाल्मीकि के वंशज से अस्पृश्यता की पीड़ा सुनकर सोमाहुति आहत होते हैं और देश की अखंडता को लेकर चिंतित हो उठते हैं। वे कहते हैं : 'ब्राह्मन, अब आपकी जाति मुझे आपको इस संबोधन से रोक नहीं सकती। भला आदिकवि के वंशज को अस्पृश्य बनाने वाला नियम-विधान इस देश में कौन बना सकता है।....आपसे भेंट कर मेरा यहाँ आना सार्थक हो गया।'[8] हमारी एकता के निरंतर खंडित होने का यह प्रश्न आज भी हमें मथता रहता है।

यह अमृतलाल नागर की लेखकीय दूरदर्शिता ही है कि भविष्य में आनेवाले सांस्कृतिक संकट को पहचानकर उन्होंने साहित्य-जगत को एक ऐसी रचना दी, जो भाव-संवेदना में तो समृद्ध है ही, एक पुनीत उद्देश्य भी साथ लेकर चली है। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी रचनाओं का निरंतर पुनर्पाठ हो, जिससे समाज का हर अंग अपनी सांस्कृतिक विरासत को सँजोने के प्रति संवेदनशील हो।

देखा जाय तो मानवीय अनुभूतियों को प्रमुखता देनेवाली तथा मानव-जीवन को मूल्यों, आदर्शों एवं सत्-चित्-आनंद से संपृक्त करनेवाली ऐसी संस्कृति की प्रासंगिकता हर युग में थी और सदा ही बनी रहेगी। इस संदर्भ में नवीन उजास की ओर ले जाता यह उपन्यास न केवल वर्तमान को सशक्त बनाने की क्षमता रखता है अपितु आनेवाले भविष्य को भारतीयता की अनूठी चमक से सँवारने का साहस भी दिखाता है।

संदर्भ

1. अमृतलाल नागर : एकदा नैमिषारण्ये, पृ० 473
2. अमृतलाल नागर : एकदा नैमिषारण्ये, पृ० 459
3. अमृतलाल नागर : एकदा नैमिषारण्ये, पृ० 105-106
4. अमृतलाल नागर : 'मुझे पात्रों की खोज में भटकना नहीं पड़ा', संवाद, मार्च 1990, 13
5. अमृतलाल नागर : एकदा नैमिषारण्ये, 280
6. अमृतलाल नागर : एकदा नैमिषारण्ये, पृ० 395
7. नरेंद्र शर्मा : 'एक सांस्कृतिक आंदोलन की पृष्ठभूमि : एकदा नैमिषारण्ये', धर्मयुग, 11 जून 1972, पृ० 21
8. अमृतलाल नागर : एकदा नैमिषारण्ये, पृ० 100

कबीर और बाजारवाद

शालिनी शर्मा
शोधार्थी, जामिया मिलिया इस्लामिया

कबीरदास मध्यकालीन भक्ति कविता के साथ ही समूची हिंदी कविता के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं। आचार्य शुक्ल ने कबीर को जो 'मनुष्यत्व की सामान्य भावना' और आत्मगौरव का कवि कहा है, उसका एक महत्त्वपूर्ण कारण है उनकी कविता में व्यक्त जीवन-दर्शन। कबीर असल में जीवन-दर्शन के कवि हैं। जीवन और उसकी क्षणभंगुर वास्तविकता के ही नहीं, अपितु जीवन के प्रति आवश्यक नजरिये और उसके सामाजिक-स्वरूप को गाने और बताने वाले कवि। जीवन जितना महत्त्वपूर्ण है, उसे उतनी ही अंधता और लापरवाही के साथ जिया जा रहा है, कबीर की कविता इसे मुख्यत: केंद्र बनाती है। अपना मुख्य कथ्य बनाती है। कबीर की कविता का अपना 'व्यक्तित्व' एक विराटता लिए हुए है। ये विराटता कबीर की कविता में सहज ही लक्षित होती है। रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं, कबीर 'अपने ही अंतर्जगत का वैविध्य संधान करते हैं और उसी से जीवन की विराटता सिरजते हैं।'

कबीर की कविता में विद्यमान यही विराटता है, जो कबीर की कविता को हरेक युग और समय में पठनीय और अनिवार्य बनाती है। कबीर की कविता को देखने समझने की जो पद्धतियाँ रही हैं उन्होंने अबतक जिन भी रूपों में कबीर की कविताओं को देखा समझा है वो 'अंतिम' पाठ नहीं हो सके, उसका मुख्य कारण यही जीवन-संबंधी कबीर के व्यक्तित्व की विराटता है। कबीर को समाज-सुधारक, भक्त, संत और उपदेशक सभी कुछ कहा गया है। लेकिन हर संज्ञा कबीर के सामने अधूरी-सी रह जाती है। कबीर को आधुनिक जीवन और समय के सम्मुख उपस्थित चुनौतियों के संदर्भ में भी पढ़ा गया है और यह प्रक्रिया आज भी गतिशील है। बाजारवाद और समकालीन वैश्विक बाजार द्वारा उपस्थित की जा रही स्थितियों और जटिलताओं के संदर्भ में भी जब कबीर को पढ़ा जाता है तो प्रतीत होता है कि कबीर की कविता 'संवादोन्मुख' हो उठती है। कबीर की बेहद ही प्रसिद्द काव्य-पंक्तियाँ हैं–

कबीर खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ
जो घर फूँके आपना सो चले हमारे साथ।

कबीर बाजार बीच खड़े हैं, अपने हाथ में लुकाठी लिए और सभी को उसे छोड़कर अपने साथ चलने का आह्वान करते हैं। लेकिन एक शर्त के साथ कि साथ चलने के लिए सिर्फ वही आगे आए जो अपना 'घर' और उसका मोह छोड़ने का सामर्थ्य रखता हो। 'घर' यहाँ जितना अभिधात्मक है उतना ही लक्षणात्मक भी है। 'घर' अर्थात 'मैं' और 'मेरा' की मनोवृत्ति। जो इस मानसिकता और मनोवृत्ति को त्यागने और छोड़ने का सामर्थ्य रखता है, वही जीवन और जीवित की रचना कर सकता है।

समकालीन बाजार की पकड़ मनुष्य पर कितनी गहरी और वर्चस्वी हो चुकी है, इसे कहने

की आवश्यकता नहीं। बाजार ने व्यक्ति को सामान में बदल दिया है। उसका समूचा व्यक्तित्व पदार्थों और सामानों से हस्तांतरित हो चुका है। जीवन और समाज की निजताओं और वैविध्यों को बाजार आज निगल रहा है। बाजार और उसकी वह मारक प्रकृति जो मनुष्य को उसके समूचे 'अस्तित्वों' से काटकर सिर्फ एक 'उपभोगी' जीवन में बदल डालती है, उसकी ओर संकेत करते हुए हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ कवि-आलोचक प्रयाग शुक्ल लिखते हैं, 'गाँव-कस्बों में टीवी, मोबाइल, मोटर बाईक और फ्रिज आदि बढ़ते जा रहे हैं। खान-पान की दुनिया में वहाँ भी बहुतेरे परिवर्तन हुए हैं: चिप्स, कोल्डड्रिंक्स, बिस्कुट, मैगी नुडल्स आदि की दुकाने अलग से भी खुल गयी हैं। बाजारों, बस अड्डों में...हमारा गाँव...उन सभी चीजों को बरत रहा है, जो मैं ऊपर गिना आया हूँ।' कहने को कहा जा सकता है कि इसमें कोई बुराई नहीं है। लेकिन बात बुराई से पहले इस संदर्भ में ये है कि जिन भी 'सामानों' का रेखांकन यहाँ प्रयाग शुक्ल करते हैं उनमें विशेषता ये है कि ये सभी सिर्फ 'सामान' नहीं अपितु 'चलन' और 'फैशन' का रूप ज्यादा हैं। दूसरी बात इस संदर्भ में ये हैं कि इस चलन और फैशन का ही परिणाम है कि लोक की अपनी देशजता किनारे लग चुकी है और हम सभी एक ही प्रकार की 'समरूपता' का शिकार होते जा रहे हैं।

कबीर की कविता सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक ही नहीं अपितु वैयक्तिक स्तर पर भी 'समरूपता' का नहीं अपितु निजता और विशिष्टता का आहवान करती है। इसी ओर संकेत करते हुए प्रयाग शुक्ल लिखते हैं, 'जब हम बचपन में कलकत्ता से अपने गाँव आते थे, तो वहाँ हाथ से बुनी-बनी चीजें जिस मात्रा में दिखाई पड़ती थीं, अब उस मात्रा में दिखाई नहीं पड़ती हैं।...बहुतेरी वस्तुएँ, जिन पर लोक का ही 'ठप्पा' रहता था। अब उतनी नहीं दिखती हैं। बचपन में घरों के बाहर या आँगन में, किसी टीज-त्योहार पर जो अल्पनाएँ या रेखांकन दिखा करते थे, वे अब कहाँ मिलते हैं। ढोलक की थाप पर जो लोक-स्वर कंठ से फूटते थे और उनके साथ जो पैर थिरकते थे, उनकी संख्या में भी कमी आई है।' अपनी निजताओं और विशिष्टताओं का लोप करके ही बाजार का 'उपभोगी' जीव हुआ जा सकता है। एक ऐसा जीव और जीवन जो अपनी किसी भी प्रकार की निजता और विशेषता नहीं रखता अपितु एक प्रकार की भेड़चाल में फँसा हुआ निरर्थक जीवन जी रहा है। कबीर की एक कविता है, 'चलन चलन सबको कहत हैं/ नां जानों बैकुंठ कहाँ हैं।...कहें-सुनें कैसे पतिअइये / जब लग तहाँ आप नहि जइये' बाजारू एकरूपता और समरूपता के खिलाफ कबीर अपनी आँखों देखने और विचारने पर बल देते हैं।

कबीर की कविता में बाजार और उसकी 'अवधारणात्मक' उपस्थिति अलग-अलग रूपों में दिखलाई पड़ती है। 'बाजार' सिर्फ खरीदने-बेचने की जगह के तौर पर ही नहीं अपितु जीवन और समाज के प्रति 'बाजारवादी' नजरिये के तौर पर भी दिखलाई पड़ता है। बाजार भोगवाद और लिप्साओं का प्रतीक भी है और उस अंधता और असावधानी का भी, जिसके चलते देखा-देखी अपना अमूल्य जीवन' व्यर्थ में लुटाया जाता कबीर देखते हैं। बाजार सिर्फ बाजार में विद्यमान नहीं, वो हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन में भी घर बना बैठा हुआ है। कबीर इसीलिए हर प्रकार के उस मोह और लालच को माया के रूप में देखते हैं जो मनुष्य को भरमाके अपने जाल में फँसा लेना चाहता है। यही कारण है कि कबीर की कविता न केवल अपने समय और संदर्भों में अर्थवान हुई अपितु बदलते युग और सभ्यता के हर दौर में उसकी संवाद-क्षमता कायम बनी रही।निम्नोक्त पद मनुष्य के सामाजिक परिवेश के ऐसे स्थान में बदल जाने की गवाही प्रस्तुत

करता जिसमें लूटपाट और ठगी मूल्य में बदल गए हैं और मनुष्यता और मनुष्य होने की कोशिशें उसका शिकार बन चुकी है। कबीर लिखते हैं–

ठग्ग बटमार संसार में भरि रहे, हंस की चाल कहँ काग जानी।
चपल और चतुर हैं बनै वहु चकिने, बात में ठीक पै कपट ठानी।
कहा तिन सों कहों दया जिनके नहीं, घात बहुतें करै बकुल ध्यानी।
काग कुबुधि पावै कहाँ, कठिन कठोर विकराल बानी।
अगिन के पुंज हैं सितलता तन नहीं, अमृत और विष दोऊ एक सानी।

कबीर उपर्युक्त 'पद' में अपने सामाजिक-परिवेश को परिभषित करते हैं। ये सामाजिक परिवेश समाजी संबंधों और व्यवहारों में 'ठगों' और 'धोखेबाजों' से भरा हुआ है। अलग-अलग प्रपंच रचकर ये ठग और धोखेबाज 'संपत्ति' को लूटने की कोशिश करते हैं। अगर आपने थोड़ी सी भी असावधानी बरती तो ये लोग आपको लूट लेंगे और आप हाथ मलते खड़े रह जाएँगे। इन ठगों और धोखेबाजों में दया और करुणा का लेश भी नहीं है। ये पुरे के पुरे 'बकुल-ध्यानी' हैं, बगुले' हैं। जो सदैव घात लगाए रहते हैं। मानो, कबीर लूट और सिर्फ लूट में बदल गए सामाजिक-मानवीय संबंधों का कोई मर्सिया कह और गा रहे हों। उपरोक्त 'पद' में जो सबसे महत्त्वपूर्ण और विचारणीय बात कबीर कहते हैं वो ये कि 'इन लोगों ने अमृत और विष दोनों को एक कर दिया है। दोनों का जो भेद सांस्कृतिक और मानवीय विवेक की गवाही देता रहा है उसे नष्ट कर दिया है। सच और झूठ, पाप और पुण्य, उचित और अनुचित का जो भेद और द्वैत्व हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक धरोहर है, न केवल हमारी अपितु समूची मानव-जाति की उसे खंडित और निरर्थक बना दिया है। उसकी जगह जिसे समाज और समय का आदर्श बना दिया गया है वो है स्वार्थ और उससे प्रेरित प्रपंच। अपने स्वार्थों की सिद्धि की लालसा ने मनुष्य को अँधा बना दिया है।

आज हम जिस बाजारवादी सामाजिक परिवेश और बाजार-परस्त संस्कृति के बीच घेरे हुए हैं, कबीर का उपर्युक्त पद मानो उसी की मारकता का 'समीक्षा-लेख' हो। इसीलिए ऊपर यह रेखांकित किया गया कि कबीरदास की कविता में एक बड़ा गुण है उसकी वो संवादोन्मुखता' जो देश और काल की सीमाओं को लाँघ जाती है। कबीर को इसीलिए हम विभिन्न लोकभाषाओं और उनकी सदियों की सामाजिक-यात्राओं में जीवंत उपस्थित देखते हैं।कबीर की कविता की यह सम्वादोंमुखता हर देशकाल में अपने समाजी-सांस्कृतिक परिवेश के साथ उसके पाठक के संबंध को निर्मित करती और उसके लिए भीतर से प्रेरित करती है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर होने का अर्थ रेखांकित करते हुए अपनी पुस्तक 'कबीर' में लिखा है, 'हिंदी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीरजैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वंदी जानता है: तुलसीदास। परंतु तुलसीदास और कबीर के व्यक्तित्व में बड़ा अंतर था।दोनों ही भक्त थे, परंतु दोनों स्वाभाव, संस्कार और दृष्टिकोण में एकदम भिन्न थे। मस्ती, फक्कड़ाना, स्वाभाव और सब-कुछ को झाड़- फटकार कर चल देनेवाले तेज ने कबीर को हिंदी साहित्य का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है।...उसी ने कबीर की वाणियों में अनन्य साधारण जीवन-रस भर दिया है।'

बाजार मोह और लालसाओं की रचना करता है तो कबीर की कविता समाज और अपने पाठक में मस्ती, फक्कड़पन और सहजता-संतुलन की रचना करने की चेष्टा करती है। कबीर की

कविता बाजार और उसकी उपभोक्तावादी मानसिकता से इसी प्रकार अपना 'प्रतिपक्षी' संबंध निर्मित करती है।

कबीर की कविता के संदर्भ में जीवन के जिस रस को ऊपर रेखांकित किया गया है, वह रस कबीर की कविता जहाँ से ग्रहण करती है, वह आमजन की जीवन के प्रति वही जीवटता और जिजीविषा है, जिसे नाहक ही पद, प्रतिष्ठा, भोग और लिप्साओं के मायावी संजाल ने दूभर और दुसह बना दिया है। आमजन के जीवन को संकटग्रस्त बना देने वाली तमाम सामाजिक-आर्थिक ही नहीं अपितु सांस्कृतिक और धार्मिक लालसाओं के जाल को कबीर की कविता काटने की संचेतना लिए हुए है। कबीर की कविताओं में बाजार और बाजार में बैठे 'बनिये' जो सिर्फ अपना मुनाफा देखते हैं, कबीर सहन नहीं करते। व्यापारी और बनियों को कबीर 'सकल हरामी' कहते हैं। क्योंकि वे अपने मुनाफे के सामने किसी भी और चीज को नहीं देखते। न मनुष्य और न ही मनुष्यता। संभवतः बाजार और बाजारवाद की इस विशेषता को हमारा युग बेहद ही नजदीक से देख और झेल रहा है। डॉ॰ अमरनाथ लिखते हैं, 'बहुसंख्यक आम जनता, जिसके पास क्रयशक्ति का अभाव है और इसी के नाते बाजार का हिस्सा नहीं बन पा रही है, कूड़े के ढेर की तरह निरर्थक ही नहीं, वातावरण को गंदा करने वाली होने के नाते असह्य होती जा रही है। कोर्पोरेट जगत अवसर मिलने पर इन्हें समुद्र में फेंकने से भी नहीं हिचकेगा।' बाजार आज वैसा नहीं रहा जैसा वह पहले था। आज बाजार ने समाज और व्यक्ति दोनों के नियंता की भूमिका सग्रहण कर ली है। लिप्सा और लालसाओं की प्रकृति न केवल समाज और संस्कृति के लिए अपितु मनुष्य और मनुष्यता के समूचे संधान के विपरीत है। भोग और भोगवादी मनोवृति व्यक्ति, समाज, संस्कृति और सभ्यता के हरेक स्तर पर मानवीय और सांस्कृतिक अर्जन और पुनर्रचना की प्रक्रियाओं को पूरी तरह से बाधित और कुंठित करने का कार्य करती है। साथ ही भोगवाद और बाजारवाद का समूचा तंत्र व्यक्ति और समाज दोनों के स्तर पर एक गहरा अमानवीय 'भेद' रचना का कार्य भी करता है। महात्मा गांधी ने दर्शन को सामाजिक-आर्थिक नजरिये के साथ जोड़ते हुए कहा था कि 'संसार में सभी लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए तो काफी वस्तुएँ हैं, लेकिन एक आदमी की लिप्सा के लिए वह सब भी यथेष्ट नहीं।'

कबीर बाजार और मुनाफे की प्रभुता सिर्फ 'हाट-बाजार' में नहीं देखते अपितु उसे समाज और धर्म के क्षेत्र में भी रेखांकित करते हैं। 'माया' को जिस तरह कबीर सर्वत्र उपस्थित देखते हैं, उससे भी बाजार और बाजार की मुनाफापरस्त उपस्थिति की व्यापकता देखी जा सकती है। कबीर अपने एक पद में रेखांकित करते हैं, 'यह संसार बजार मंड्या है, जानेगा जन कोई' यह संसार बाजार रूप है, लेकिन इसे कोई समझता नहीं। इस पद की सामान्य व्याख्या तो यह है कि जैसे बाजार में कोई हमेशा नहीं रहता, उसे लौटकर वापस आना होता है, जब बाजार उठ जाता है। लेकिन साथ ही यह भी लक्षित होता है कि संसार की 'व्यवस्था' बाजार हो गयी है। समाज और मनुष्य का जीवन उस बाजार में फँसा हुआ है। उपर्युक्त पद की यह लक्षणा इसलिए भी विचारणीय है क्योंकि कबीर की कविता बाजार से मुक्त होने की बात करती है। कबीर का बहुत ही प्रसिद्ध पद है, 'माया महा ठगनी हम जानी...।' जिसमें कबीर सिर्फ बाजार को ही नहीं रेखांकित करते हैं अपितु उसकी मायारूपी उस आकर्षण-शक्ति को भी रेखांकित करते हैं जो अपने 'पाश' में मनुष्य को विभिन्न रूपों और तरीकों से गिरफ्त करती है। सामाजिक-मानवीय संबंधों और आचरणों में

 ISSN 0975-735X

'विपरीतताओं' का विवेक कुंठित हो गया है। विष और अमृत दोनों एक सामान हो गए हैं। कबीर को हँसी आती है। ये हँसी इन्हीं विसंगत और विपरीत सामाजिक-मानवीय संबंधों और आचरणों को देखकर आती है। जो सहज है, सामान्य है और वास्तविक है, उसे भुला दिया गया है। उसकी जगह पर असहज, असामान्य और आवास्तविक को स्थापित कर दिया गया है। भ्रम और मिथ्या का सकल पसारा है। सामान्य विवेक को तज दिया गया है। जो खुद अंधे हैं, ये जगत उन्हीं से दृष्टि माँगता फिर रहा है।

कबीर अपने पाठक को सचेत करते हुए कहते हैं, 'काहे रे मन दह दिस धावै/विषिया संगि संतोष न पावै।' गलत को गलत कहने की शक्ति और निर्भयता कबीर की कविता का मूल स्वर है। कबीर यह निर्भयता ग्रहण करते हैं जीवन की वास्तविकता को पहचानकर। कबीर जीवन को उस पक्षी के तौर पर देखते हैं, जो संसार रूपी वृक्ष पर कुछ समय के लिए ही अपना बसेरा बना पाता है। फिर उसे उस पेड़ को छोड़कर किसी और दिशा में यात्रा पर निकल जाना होता है। जीवन का असल स्वाभाव और चरित्र यही है। सदा-सर्वदा के लिए संसार में कोई नहीं है। हर किसी को एक समय पश्चात् इसे छोड़कर अनंत की यात्रा पर निकल ही जाना है। और जब यही जीवन और संसार की वास्तविकता है तब इस जीवन और संसार का लक्ष्य वही नहीं हो सकता, जिसे कबीर अपने आस-पास देख रहे थे। कबीर देख रहे थे कि संसार माया और मोह की दौड़ में निरंतर दौड़ रहा है। माया और मोह व्यक्ति को ठहरकर अपने बारे में अपने जीवन के बारे में कुछ सोचने का अवसर नहीं देती है। ठीक वैसे ही जैसे बाजार में बैठा दुकानदार नाना-भाँति के प्रपंच रचकर ग्राहक को उलझाये रखने की चेष्टा करता है। कबीर के 'पद' की कुछ पंक्तियाँ हैं, 'चारि पहर दिस भोरा, जैसे तरवर पंखि बसेरा/ जैसे बनिये हाट पसारा...।' कबीर एक अन्य पद में लिखते हैं, 'कहै कबीर यहु सुख दिन चारि, तजि विषिया भजि चरन मुरारीं' माया और मोह जिस सुख का है उसकी आयु बहुत काम है। उसे नष्ट हो जाना है। अत: जिसे स्वयं ही नष्ट हो जाना है, उसको सहेजने अथवा उसकी चाह में पड़े रहने का कोई अर्थ नहीं है।

कबीर की कविता रेखांकित करती है कि ठगने और ठगे जाने की सारी संभावनाएँ बाजार का हिस्सा हैं। ये ठगना सिर्फ धन और संपत्ति से ही संदर्भित नहीं है अपितु आत्मज्ञान, विवेक और स्वत्व-अर्जन के भी ठग लिए जाने से भी संदर्भित है। कबीर सांसारिक मोह, लिप्सा और स्वार्थों को प्रपंची माया के द्वारा फैलाये गए विराट हाट और बाजार की संज्ञा इसीलिए देते हैं। कबीर की कविता की विशेषता है कि वे सामान्य और साधारण मनुष्य को गरिमा और उच्चता का रास्ता दिखाती है। मोह और आकर्षण से ग्रस्त समाज को नकारने की शक्ति आमजन को जिस सामर्थ्य के साथ कबीर की कविता प्रदान करती है वह उल्लेखनीय है। हजारीप्रसाद द्विवेदी इसी ओर संकेत करते हुए कबीर की कविता के संदर्भ में लिखते हैं, 'कबीरदास के इस गुण ने सैकड़ों वर्ष से उन्हें साधारण जनता का नेता और साथी बना दिया है। वे केवल श्रद्धा और भक्ति के पात्र ही नहीं, प्रेम और विश्वास के आस्पद भी बन गए हैं। सच पूछा जाए तो जनता कबीरदास पर श्रद्धा करने की अपेक्षा प्रेम अधिक करती है। इसीलिए उनके संत-रूप के साथ उनका कवि-रूप बराबर चलता रहता है। वे केवल नेता और गुरु नहीं हैं, साथी और मित्र भी हैं।'

कबीर की कविता में एक तरह जहाँ बाजार की लोलुपता, मोह, लिप्सा और अंधता अभिव्यक्त होती है, वहीं उससे मुक्ति के रास्तों को भी कबीर की कविता रेखांकित करती है। कबीर

माया से बचाव और बाजार से मुक्ति का रास्ता जहाँ लोलुपता, मोह और कामनाओं के घर को जला डालने के तौर पर प्रस्तावित करते हैं, वहीं जीव यानी मनुष्य को आत्म-अर्जन और स्वत्व-बोध का रास्ता भी दिखाते हैं। अपने को अर्जित करने के रस्ते ही मनुष्य सांसारिक लोलुपताओं और लिप्साओं से मुक्त हो सकता है। जिस सामाजिक-धार्मिक परिवेश ने व्यक्ति को भयभीत, निर्बल, अंधा और इतना छिछला बना दिया है कि वह न तो सत्य को खुद पाना चाहता है, और न किसी से अपने विपरीत कुछ सुनना ही चाहता है, उस व्यक्ति की मुक्ति तब तक संभव ही नहीं, जब तक उसके 'परिवेश' का विखंडन नहीं होता। कबीर की कविता जीव की इसी मुक्ति के स्वप्न को लेकर अपने सामाजिक-धार्मिक परिवेश का एक विखंडन रचती है। साथ ही अपने श्रोता जीव को, उसकी आत्मिक सर्जनात्मक शक्ति के हवाले, नए मानवीय सामाजिक और धार्मिक परिवेश के निर्माण की दिशा देने का काम करती है। एक ऐसा परिवेश, जिसमें 'साहेब सेवक एक संग, खेलैं सदा बसंत'। एक ऐसा परिवेश जिसमें 'संस्थाएँ' व्यक्ति के लिए 'नांव अभैपददाता' का महत्त्व और आदर्श रखती हों। कबीर जिस 'जीव' की कल्पना और अर्जना करते हैं वह 'बाजारवाद' के उपभोक्ता से विपरीत एक ऐसा व्यक्ति रूप लिए हुए हैं, जो उपभोक्तावाद का सांस्कृतिक प्रतिपक्ष हो सकता है। कबीर की कविता को बाजारवाद के संदर्भ में पढ़ने और देखने-सुनने पर हमें इसी व्यक्ति के दर्शन होते हैं, जो एक गहरी सामाजिक-वैचारिक जमीन लिए हुए है। जो निर्भय और मुक्ति की सांस्कृतिक गरिमा और आभा लिए हुए है। इसीलिए कबीर सामाजिक जीवन में व्याप्त विसंगत व्यवहारों, अंध-दृष्टियों, भेदग्रस्त-संस्थाओं और मृत विचारों को 'आत्मबोध' के लिए संकट के रूप में देखते हैं। उन्हें अपने कथ्य, यानी 'जीव' की मूल समस्या मानते हैं।

कबीर अपने सामाजिक परिवेश को देखने समझने की कसौटी जड़ शास्त्रों को नहीं अपितु प्रकृति अर्थात 'कुदरत' को बनाते हैं। कबीर रेखांकित करते हैं कि जिस जीवन को मनुष्य ने अपार लालसाओं और लिप्साओं से भर दिया है और अब उसी की कैद में जीवन जीने को बाध्य है, उस जीवन की अपनी प्रकृति क्षणभंगुर और निरंतर परिवर्तनशील है। मनुष्य जीवन और मृत्यु की चक्की से बँधा हुआ है। कबीर की कविता मृत्यु को मानवीय नियति की तरह बार-बार याद करवाती है। और इसी के माध्यम से जीवन को बेहतर और संतुलित बना लेने की प्रेरणा देती है। कबीर कहते हैं—

क्या पूजा पाहन की कीन्हें, क्या फल किए अहारा
बिन परिचे साहिब हो बैठे, विषय करै ब्यौपारा
ग्यान-ध्यान का मर्म न जानै, बाद करै अंहकारा
अगम अथाह महा अति गहिरा, बीज न खेत निवारा

जो संबंध 'बीज' और 'खेत' का है, वही संबंध व्यक्ति और समाज का है। बाजार और बाजारवादी मनोवृत्ति इसी संबंध को विकृत करने का काम करती है। कबीर इस संबंध को उसकी सहजता याद दिलाने का प्रयास करते हैं। कबीर की कविता का यह स्वर और स्वभाव मूलतः बाजारवाद और हर उस व्यवस्था के खिलाफ है, जो मानवीय जीवन को उपभोग और उपभोगवाद की गहरी नींद में ढकेलने का प्रयास करता है। एलविन अंडरहिल ने कबीर के संदर्भ में ठीक ही कहा है कि 'वे उस आत्मविस्मयकारी परम उल्लासमय साक्षात्कार के समय भी दैनंदिन व्यवहार की दुनिया को छोड़ नहीं जाते और साधारण मानव-जीवन को भुला नहीं देते। उनके पैर मजबूती के साथ धरती पर जमे रहते हैं; उनके महिमा-समन्वित और आवेगमय विचार, बराबर धीर और

 ISSN 0975-735X

सजीव बुद्धि तथा सहज भाव द्वारा नियंत्रित होते रहते हैं, जो सच्चे मरमी कवियों में ही मिलते हैं।' कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि कबीर जीव की मुक्ति के साथ ही जीव की जागृति के कवि हैं। वे अपने श्रोता को अपने और अपने समाज के प्रति सजग करने वाले एक मरमी कवि हैं। जो चाहता है कि कोई भी किसी का ग्राहक और उपभोक्ता बनकर ही न रह जाए अपितु वह अपने भीतर की ऊर्जा से अपने को प्रकाशित और प्रज्वलित करे। यही रास्ता कबीर का रास्ता है जो अपनी मूल प्रकृति में बाजार की निष्क्रिय उपभोक्तावादी मानसिकता के विरुद्ध है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1999, पृ॰ 40
2. वही, पृ॰ 39
3. हाट और समाज, प्रयाग शुक्ल, विजया बुक्स, दिल्ली, संस्करण 2011, पृ॰ 60
4. वही, पृ॰ 60
5. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2002, पृ॰ 245
6. वही, पृष्ठ–261
7. वही, पृ॰ 170
8. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ॰ अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2012, पृ॰ 259
9. वही, पृ॰ 260
10. हिंदी के जनपद संत, संपादक: जगजीवन राम, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1963, पृ॰ 16
11. वही, पृ॰ 18
12. वही, पृ॰ 19
13. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2002, पृ॰ 171
14. वही, पृ॰ 226
15. वही, पृ॰ 171

474/68, **साकेत कॉलोनी**
मुजफ्फरनगर
मो॰ 9810294313
shalinisharma1603@gmail.com

समाज एवं समाजिकता का महत्त्व निराला के उपन्यासों में

सोनीकुमारी
(रिसर्च स्कॉलर), हिंदी विभाग
ति॰माँ॰ भागलपुर वि॰वि॰, भागलपुर (बिहार)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। अत: यह जानना आवश्यक है कि समाज की उत्पति किस प्रकार हुई और इसका क्या महत्त्व है?

वसुंधरा पर मानव जन्मकाल से ही समूह बनाकर कंदराओं में निवास करता था। स्त्री-पुरुष के संसर्ग से वंश की वृद्धि होने लगी। मानव-सभ्यता नदी घाटी के किनारे विकसित होने लगी। समूह जब भीड़ का रूप धारण करने लगा, तो वह अनेक समूहों में विभाजित होने लगा। काल समय और परिस्थिति को देखकर इन समूहों आगे चलकर समाज का रूप अख्तियार कर लिया और फिर मनुष्य सामाजिक प्राणी बन गया। समाज व्यक्ति के सुख-सुविधा का ही ख्याल नहीं रखता है, बल्कि समाज व्यक्ति के दु:ख को भी दूर करने में एकजुट हो जाता है। समाज में मानवीय रिश्ते एक-दूसरे से जुड़ने लगे। मानव नैतिकता-अनैतिकता, पाप-पुण्य, प्रेम-वासना, हिंसा-अहिंसा को भलीभाँति समझने लगा।

एक समाज से दूसरे समाज में विवाह ने जबरदस्त भूमिका निभाई है। समाज के विषय में विद्वानों का मत है—स्वामी रामतीर्थ ने कहा है—'तुम समाज के साथ ही ऊपर उठ सकते हो और समाज के साथ ही नीचे गिरना होगा। यह तो नितांत असंभव है कि कोई व्यक्ति अपूर्ण समाज में पूर्ण बन सके। क्या हाथ अपने आप को शरीर में पृथक् रखकर बलशाली बन सकता है? कदापि नहीं।'[1] व्यक्ति का विकास समाज में ही संभव होता है। जीवन से मरण तक का सफर समाज में ही संभव है—

अनिल देह के लिए अनादि जीव क्या डरे।
वही मनुष्य है जो मुनष्य के लिए मरें।

संसार के सभी महान व्यक्ति समाजसेवा को ही अपनाकर महान बन सके हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध, अशोक, ईसा और महात्मा गांधी आदि का जीवन समाजसेवा के लिए ही उत्सर्ग था।'[2] समाज की परिभाषा विद्वान गोयलजी ने इस प्रकार दी है—'जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं की जब गणना की जाती है, तो वायु, जल, खाद्य पदार्थ, आवास आदि का नाम लिया जाता है, वह है समाज।'[3]

महत्त्व

वास्तव में सामाजिक महत्त्व उसी समय माना जाता है, जबकि मानव-जीवन के सभी पक्षों, कलात्मक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में भी विकास हो, केवल आर्थिक पक्ष ही सामाजिक

 ISSN 0975-735X

जीवन के उन्नति का आधार नहीं है। बल्कि समाज में विकास का होना बहुत जरूरी है। जितनी गति से आविष्कार होंगे, उसी गति से समाज का विकास भी होगा। जैसा कि कहा गया गया है–

‘भारत में समाज के लिए जिन तत्त्वों को आवश्यक माना गया, उनका उद्देश्य एक ऐसी व्यवस्था को विकसित करना था, जिसमें व्यक्ति और समाज को एक-दूसरे का पूरक बनाया जा सके। भारतीय समाज सदैव से कृषक समाज रहा है। इस दृष्टिकोण से यहाँ उन व्यवस्थाओं को विकसित किया गया, जिनके द्वारा वैयक्तिक तथा सामूहिक विकास को समान महत्त्व मिल सके।’[4]

इस प्रकार, निरालाजी के उपन्यास साहित्य में समाज का सजीव चित्रण हुआ है। इनके हर उपन्यास में सामाजिक महत्त्व के साथ-साथ समाजोत्थान की भावना भी होती है। उन्होंने समाज के प्रत्येक वर्ग की अनेक प्रवृत्तियों को भलीभाँति पहचाना है और अपने उपन्यास में पात्रों के माध्यम से समाज के अनेक बिंदुओं से रूबरू कराया है।

इनके उपन्यास ‘अलका’, काले कारनामे, चमेली जैसे उपन्यास में, लेखक समाज के कुरूप पक्ष का चित्रण किया है। वे अपने उपन्यास में भारतीय समाज की दो प्रमुख समस्याओं वेश्या और विधवा-विवाह का चित्रण और समाधान उनकी अनेक कृतियों में हुआ है। अप्सरा की नायिका कनक जो एक वेश्या पुत्री है वह सर्वांगपूर्ण नारी है। वहीं दूसरी ओर ‘अलका’ में नारी चरित्र की प्रधानता के साथ हमारे सामाजिक जीवन की प्रगति का कुरूप झाँकी बड़े आकर्षक रूप में प्रस्तुत की गई है।

वर्णगत-स्थिति (जाति-पाति)

समाज में वर्ण विभाजन गुण और कर्म पर आधारित है। यानि एक व्यक्ति अपने कर्मों के आधार पर वर्ण की सदस्यता को परिवर्तित कर सकता है। समाज में वर्ण-व्यवस्था को चार वर्गों में बाँटा गया है–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन सभी के लिए समाज में एक नियम आधारित था, कि जो जिस धर्म या नैतिक कर्त्तव्य समझकर उनका पालन किया जाता था।

आर्थिक दृष्टि से वर्ण को तीन वर्गों में बाँटा गया है–उच्चवर्ग, मध्यम वर्ग और निम्नवर्ग। जिनके पूर्वज से ज्यादा संपत्ति हो वह उच्च वर्ग, जो पहनने खाने के योग्य हो वह मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग के अंतर्गत निर्धन लोग आते है।

डॉ॰ शर्मा का मानना है–‘वर्ण शब्द मुख्य रूप से कर्मा और गुणों का वर्णन करने उनको स्वीकार करने या उनके गुणों और कर्मों को निभाने की प्रेरणा देने के लिए ही प्रयुक्त हुआ है।’

स्वामी विवेकानन्दजी ने बड़े जोरदार शब्दों में कहा है–‘ऐ भारत के उच्च वर्णवालो, तुम्हें देखता हूँ, तो जान पड़ता है कि चित्रशाला में तस्वीरें देख रहा हूँ। तुम लोग छायामूर्तियों की तरह विलीन हो जाओं, अपने उत्तराधिकारियों को (शूद्रों को) अपनी तमाम विभूतियों दे दो नया भारत जग पड़ेगा।’[5]

निरालाजी का मानना है कि समाज में जाति-पाती और उसमें प्रचलित ऊँच-नीच का भेदभाव, समाज के लिए अत्यंत हानिकार है इनके विषय में कहा गया है–‘निरालाजी का व्यक्तिगत जीवन ब्राह्मण और शूद्र के विभेदों से बहुत दूर था। वे चमार, घोबी सभी के मित्र थे। उन्होंने चतुरी चमार के साथ जिस आत्मीयता का परिचय दिया, वह स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है।’[6]

समाज के इस भाव से निरालाजी लज्जित और क्षुब्ध थे; उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से इस भावना का पर्दाफाश किया है। समाज में ऊँच-नीच का भेद मिटाना ही निरालाजी के लिए एक राजनीतिक कर्त्तव्य था। निरालाजी उच्च विचार के प्राणि थे वे जात-पांत से हमेशा उठकर सोचते थे। यह उनके उपन्यासों में भी दिखाई पड़ता है।

रहन-सहन

किसी भी समाज को जानने एवं परखने के लिए उस समाज का रहन-सहन आवश्यक होता है। भारतीय समाज में मुख्यत: तीन वर्गों के लोगों का रहना होता है—उच्चवर्ग, मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग। उच्चवर्ग के पास पूर्वजों की अथाह संपत्ति रहती है, मध्यम वर्ग के पास उच्चवर्ग से कम संपत्ति होता है और निम्नवर्ग के पास संपत्ति का बहुत ही अभाव होता है। लेकिन सभी की इच्छा रहती है रोटी, कपड़ा और मकान की। धनी पुरुष हमेशा विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं, जबकि गरीबों का रहन-सहन बहुत ही दयनीय रहता है, पर सभी की चिंताएँ भिन्न-भिन्न होती है। यथा—

'एक तालाब के किनारे अपना झोपड़ा बनाता है, एक अपने घर के आगे तालाब बनाता है। एक बरसात में टपकने के भय से अपने झोपड़े पर खपड़ा चढ़ाता है। एक मिथ्या प्रदर्शन के लिए अपने घर के आगे खपड़ा। खपड़ा की चिंता दोनों को सता रही है, परंतु चिंताएँ भिन्न-भिन्न तरह की हैं।'[7]

निरालाजी भी अपने उपन्यास में दो तरह का रहन-सहन दिखाया है। एक जमींदार वर्ग, जिसका रहन-सहन काफी ठाठ-बाठ का है, तो दूसरा वर्ग गरीब, जो भूखमरी से त्रस्त होकर काफी निम्नस्तरीय जीवन जीने को मजबूर है।

खान-पान

किसी भी समाज की विशेषता को समग्र रूप से परखने के लिए, वहाँ का रहन-सहन, वर्ण-व्यवस्था को जानने के पश्चात्, वहाँ के खान-पान के तौर-तरीके को जानना आवश्यक होता है। हमारे समाज में कोई जीने के लिए खाता है, तो कोई खाने के लिए जीता है। एक पुरानी कहावत है—'सादा जीवन उच्च विचार। रहेंगे सादा निभेगा बाप-दादा।' दूसरी कहावत है—'ऊँचा मकान फीका पकवान।' सभी कहावत खान-पान से ही संबंधित हैं।

निरालाजी ने अपने उपन्यास में खान-पान के समान स्तर को दिखाया है। उन्होंने एक ओर गाँव के गरीब किसान का खान-पान निम्नकोटि का दिखाया है, तो दूसरी ओर जमींदार वर्ग आते हैं, जो अपनी रुचि के अनुसार शाकाहारी एवं मांसाहारी व्यंजन पसंद करते हैं और गरीब सूखी रोटी से अपना गुजारा करते हैं। खान-पान हमेशा स्वच्छ एवं सादा होना चाहिए, सादा भोजन ही मनुष्य को निरोग्य बनाता है। एक स्वच्छ मनुष्य ही परिवार, समाज एवं देश का कल्याण कर सकता है।

वेष-भूषा

समाज में परिधान का अपना एक अलग ही महत्त्व होता है। किसी भी व्यक्ति को निखारने में उसके वेश-भूषा का महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है। अच्छे वेशभूषा से व्यक्ति की शिष्टता, गंभीरता एवं विद्वत्ता का परिचय मिलता है। समाज में वेशभूषा का एक अलग ही पहचान होता है, लोग

शादी-विवाह के समय लाल-पीला सुंदर वस्त्र, आभूषण पहनते हैं, तो दूसरी ओर मृत्यु के पश्चात् शांत श्वेत रूप धारण करते हैं।

हमारे समाज में भी वेशभूषा का कई रूप देखने को मिलता है। यहाँ वेशभूषा में भी अलगाव दिखता है। एक रेशमी परिधान को अपना आवरण बनाते हैं, दूसरी जालीदार एवं कम वस्त्र पहनते हैं और तीसरा किसी तरह के वस्त्र से अपने को छिपाता है। जैसा यहाँ दिखाया गया है—एक फटे-पुराने वस्त्र को सीकर तन ढककर कर अपनी लाज को छिपाता हैं, एक कम-से-कम वस्त्र को धारण कर तन उभारकर लज्जा दिखलाता है।

निरालाजी ने अपने उपन्यास के माध्यम से वेशभूषा के दो रूप दिखाए हैं, एक ओर सादगी पूर्ण वेशभूषा को अपनाया है, तो दूसरी ओर अपनी नायिका के माध्यम से शृंगार वर्णन कर, अप्रतिम नारीसौंदर्य की उत्कृष्ट झलक दिखाई है।

शिक्षा-दीक्षा

शिक्षा एक बहुत विस्तृत शब्द है। इसमें मानव-जीवन के सभी महत्त्वपूर्ण पहलू मानसिक, सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक आदि आते हैं। मानव ही शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग्य पात्र है। शिक्षा के द्वारा ही वह नये विचारों तथा जीवन के विभिन्न रूपों का आदान-प्रदान ग्रहण करता है। वास्तव में शिक्षा ही जीवन की एक मुख्य प्रक्रिया है। सामान्य जीवन में शिक्षा के बिना असंभव है। शिक्षा के अभाव में समाज के भीतर अनेक कुरीतियाँ प्रचलित हो सकती है। शिक्षा के विषय में ऋग्वेद में कहा गया है—'शिक्षा मनुष्य को आत्मविश्वासी तथा स्वार्थहीन बनाती है।' वही कौटिल्य का मानना है कि 'शिक्षा का अर्थ है देश के लिए प्रशिक्षण तथा राष्ट्र के लिए प्यार।' महान कवि रवींद्रनाथ टैगोर के अनुसार 'शिक्षा मनुष्य के जीवन का समस्त विश्व के साथ संबंध स्थापित करती है।'[8]

शिक्षा सभी के लिए आवश्यक है। अत: लेखक ने 'शिक्षा-दीक्षा' को समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। उन्होंने अपने उपन्यास में अपने पात्रों के माध्यम से शिक्षा के स्तर को बढ़ाया है। निरालाजी के सभी पात्र स्त्री हों या पुरुष, सभी शिक्षित होते हैं। उनका प्रयास था समाज के हर वर्ग को शिक्षित करना।

अंतर्विरोध एवं संघर्ष

अंतर्विरोध एवं संघर्ष यह मुनष्य को तेजस्वी बनाता है। आज समाज में मनुष्य को हर पल संघर्ष करना पड़ता है, जिससे सभी लोग प्रभावित है। जैसे—'आत्मनिर्वासन और आत्मसंघर्ष दोनों किसी अर्थ में एक-दूसरे की पूरक स्थितियाँ है।'[9] दूसरी ओर 'दु:ख और पराजय का ज्ञान, संघर्ष की कठिनाइयों और मार्ग के अवरोधों का चित्रण, मनुष्य के धैर्य और उसकी वीरता की विशेषताएँ हैं।'[10]

उपन्यासकार निरालाजी का अंतर्विरोध एवं संघर्ष विभिन्न स्तरों पर उनके उपन्यास साहित्य में देखा जा सकता है। वहीं वे सामाजिक रूढ़ियों के पर्दाफाश करने में लगे हैं। उनके अधिकांश उपन्यास भारतीय समाज के अंतर्विरोध को उजागर करने का प्रयास किया गया है। 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'काल कारनामे', 'चपेली' आदि जैसे उपन्यासों में समाज के कुरूप पक्ष का चित्रण हुआ है। इस प्रकार, निरालाजी की यह ललकार मौत के सामने घुटने टेकने के बदले वह खुद को और दूसरे को लड़ने और मेहनत करने की सलाह देते हैं—'पथ पर वे मौत न मर,

श्रम कर तू विश्रम कर।'

आर्थिक स्थिति

भारतीय समाज में आर्थिक विकास का बहुत महत्त्व है। पहले के लोग आर्थिक क्षेत्र में उन्नतिशील नहीं थे। वे कंद-मूल-फल खाकर अपना जीवन चलाते थे। धीरे-धीरे कृषियुग का आगमन हुआ। लोग खेती करके अपनी आजीविका चलाने लगे। बाद में संयुक्त परिवार-प्रथा का जन्म, भूस्वामियों का युग आया और धीरे-घीरे आर्थिक-व्यवस्था के विकास ने समाज के ढाँचे को ही बदल डाला। आर्थिक क्षेत्र का यह विकास कृषि की उन्नति तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि प्रौद्योगिकी के युग का आरंभ होते ही समाज के ढाँचे में सभी प्रकार से परिवर्त्तन हो गया। अब के समय में आर्थिक-स्थिति का महत्त्व इस प्रकार हुआ है-'आज के युग की प्रमुख समस्या आर्थिक विकास की समस्या है। विकासशील देशों के लिए इसका बहुत महत्त्व है, क्योंकि आर्थिक विकास के द्वारा वे अपनी दरिद्रता और पिछड़ेपन से मुक्ति पा सकते हैं। आर्थिक स्थिति के लिए विकास की अति आवश्यक होता है, राष्ट्रीय आय में वृद्धि, निर्धनता को दूर करना तथा सामान्य जीवनस्तर में सुधार करना।'[11]

निरालाजी भारत में आर्थिक स्थिति का सबसे बड़ा कारण जमींदार वर्ग ओर अँग्रेजों को मानते हैं। इन दोनों के बीच में किसानों की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय हो गई थी। उन्होंने अपने उपन्यास के माध्यम से सामंतों, जमींदारों और साम्राज्यवाद की मिलीभगत से आम जनता की आर्थिक दुरव्यवस्था का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया है।

राजनीतिक-स्थिति

राजनीति राज की नीति को कहते हैं, जिसका संबंध राज्य के व्यावहारिक पक्ष से होता है। आज शासनतंत्र के लिए राजनीति का महत्त्व है, जिससे जनता प्रभावित है। गार्नर के अनुसार 'राजनीति का आरंभ व अंत राज्य के साथ होता है।' लास्की का विचार है कि 'राजनीति के अध्ययन का संबंध संगठित राज्यों से संबंधित मनुष्य के जीवन से है।'[12] अर्थात् राज्य के बिना सरकार की कल्पना नहीं हो सकती।

निरालाजी ने अपने उपन्यास में राजनीति को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। लेखक अपने युग के समाज में प्रतिदिन जमींदारों के अत्याचार से पीड़ित, शोषित जनों का क्रंदन सुना था। इन समस्याओं को अपने उपन्यास में चित्रित किया है। 'काले करनामे', 'प्रभावती' का काकोरी 'केस', 'अलका', 'चोटी की पकड़' तथा 'अप्सरा' जैसे उपन्यास में राजनीति का वर्णन हुआ है। इसके साथ ही अपने उपन्यास में भी राजनीति समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया है।

सांस्कृतिक स्थिति

संस्कृति हमारे सीखे हुए व्यवहारों का नाम है जो मानव-समाज की विशेष धरोहर है, यह समाज की आत्मा है। यह संस्कृति है जिसके बल पर मानव अपने सामाजिक जीवन को नित्य परिष्कृत, समृद्ध एवं सुसज्जित करता आया है। 'समाज में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी संस्कृति में जन्म लेता है। बनी-बनाई संस्कृति उसे विरासत में मिलती है। संस्कृति व्यक्ति को इस प्रकार प्रशिक्षित करती है कि समृद्ध बनाने के लिए रोज नई-नई वस्तुओं का निर्माण एवं अविष्कार करता है।'[13]

संस्कृति के बिना समाज का अस्तित्व संभव नहीं है। हमारे यहाँ सार्वजनिक तौर पर विवाह, खान-पान के तौर-तरीकों में भी संस्कृति का भेद दिखाई देता है। निरालाजी के व्यक्तित्व निर्माण में सांस्कृतिक अग्रदूत रामकृष्ण और विवेकानंद के उपदेशों का विशेष योगदान रहा है। इनके उपन्यासों में भारतीय संस्कृति की उत्कृष्ट झलक दिखलायी पड़ती है।

राष्ट्रीय चेतना

भारत एक विशाल राष्ट्र है। जिसमें राष्ट्रीय एकता की भावना जितनी अधिक होगी, देश उतना ही शाक्तिशाली होता है। इसके विपरीत विभाजित राष्ट्रवाद देश को कमजोर और बर्बाद कर देता है। अत: आज राष्ट्रीय एकता और अखण्डता की भावना उतनी ही आवश्यकता हमें है, जितनी जीवन के लिए रोटी की। प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह संकीर्ण विचारों को छोड़कर समूचे राष्ट्र के लिए सोचे, मनन करे, उसकी समृद्धि के लिए प्रयत्न करें।

निरालाजी पूर्ण रूप से एक राष्ट्रीयवादी विचारक थे। उनके उपन्यास में राष्ट्रीयता की धारा प्रबल वेग से बहती दिखाई देती है। देशभक्तों के प्रति निरालाजी की सद्भावना और श्रद्धा उनके उपन्यास में प्रकट हुई है। उनके शोषित पात्र तो इस दिशा में सक्रिय हैं ही, राजन्य वर्ग भी शामिल है।

सेवा-भावना (समाजोत्थान)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही जन्म लेता और समाज में पलता, बढ़ता एवं मर जाता है। संसार के सभी महान व्यक्ति समाजसेवा को ही अपनाकर महान बन सके हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध, अशोक, ईसा, महात्मा गांधी आदि का जीवन समाजसेवा के लिए ही उत्सर्ग था। अत: हम मानवों का यह कर्त्तव्य है कि हम समाज के प्रति अपनी सेवा भावना बनाये रखें। 'सेवा ही परमो धर्म।'

'सच्चा समाजसेवी अहर्निश अपने समाज से दु:ख, दैन्य, अशिक्षा, बीमारी को भगाने का भगीरथ प्रयत्न करता रहता है, अत: यदि हम अपना कल्याण चाहते हैं, तो समाज सेवा के अनुष्ठान को अपनी हर साँस में बसा लें।'[14]

उपन्यासकार निराला ने अपने उपन्यास के माध्यम से सेवा-भावना एवं समाजोत्थान को पूर्ण रूप से परिलक्षित किया है। सामाजिक जीवन के छिपे हुए कुरूप अंशों को उद्घाटित किया है और संपूर्ण असत्, छल-कपट को खत्म कर, सच्चे सत्साहस के साथ समाजसेवा का भाव विकसित किया है।

नारी स्थिति

नारी वह नूर है जिनके बिना समस्त साहित्य अधूरा है। कहा जाता है कि समाज में नारी का स्थान और मर्यादा वही है, जो पुरुष की है, न कम और न अधिक। स्त्रियों को हमारे हिंदू समाज में अर्द्धांगिनी कहा गया है। यहाँ तक कि भगवान की शक्तियों का लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, काली आदि नारी रूपों में ही वर्णन किया गया है। अर्थात् नारी ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना है। दया, करुणा, क्षमा की प्रतिमूर्ति नारी समाज की शक्ति है, नर और नारी एक ही सत्ता के दो रूप है। उसमें किसी एक का अपना अलग एवं संपूर्ण व्यक्तित्व नहीं है। समृद्धि किसी को हो, चाहे परिवार का हो, समाज का हो, अथवा देश या फिर पूरे विश्व का, बगैर महिलाओं की सहभागिता के कल्पना करना कठिन है।

हमारे समाज की महिलाएँ प्राय: पीड़ित तथा शोषित होती रही हैं, कारण है कभी बाल विवाह, तो कभी सास-बहू की झगड़े, तो कभी दहेज आदि। हमारा समाज यह क्यों नहीं समझता कि पुरुष का स्त्री के समान न कोई बंधु है, न ही धर्म-साधन में वैसा कोई सहायक है। पति के लिए चरित्र, परिवार के लिए ममता, समाज के लिए शील, विश्व के लिए दया तथा प्रत्येक जीव-मात्र के लिए करुणा सँजोकर रखने वाली महाप्रवृत्ति ही नारी है। समाज या राष्ट्र ने जब-जब नारी को अवसर व अधिकार दिया तब-तब नारी ने विश्व के समक्ष एक श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया–

'जब तक हमारी गृह देवियाँ लक्ष्मी तथा सरस्वती के रूपों में हमारे गृह का अंधकार दूर नहीं करती तब तक सुख तथा शांति की कल्पना पुरुषों के मस्तिष्क की एक बहुत बड़ी भूल है, यह हर एक भारतवासी को समझ लेना चाहिए। लक्ष्मी तथा सरस्वतियों को केद करना भी अपने ही अन्धकार के दीपक को गुल कर देना है। स्त्रियों को उत्साह देने से पुरुषों में कितनी बड़ी शक्ति का जागरण हो सकता है। महिलाओं के रूप में जो विजय घर में मौजूद है वही उसे बाहर भी मिलती है। घर का अभागा कभी बाहर प्रसिद्धि नहीं पाता है।'[15]

निरालाजी के उपन्यासों में नारी-चरित्र की प्रगति का मार्ग भी प्रशस्त किया गया है। इनकी नारी-दृष्टि उच्चकोटि की रही है और इस क्षेत्र में क्रांति, पौरुष से निरालाजी की कोमलता का पता चलता है। इनके उपन्यास में भारतीय समाज की दो प्रमुख समस्याओं वेश्या एवं विधवा-विवाह का चित्रण किया गया है एवं उसका समाधान भी बतलाया गया है। यह भाव उनकी अनेक कृत्तियों में दिखाई देता है। उन्होंने समाज में पतिता समझी जानेवाली वेश्याओं में नारी गरिमा का दर्शन किया, साथ ही उसे शिक्षित कर नायिका का आसन भी अपने उपन्यासों में प्रदान किया है जिसकी 'अप्सरा' शीर्षक उपन्यास में कनक और उनकी माता का चरित्र वेश्या के उदात्त रूप को प्रकाशित करता है। वही 'क्या देखा' शीर्षक कहानी में हीरा नाम की वेश्या का चरित्रांकन बड़े ही सफल रूप में किया गया है, तो कहीं विधवा समस्या का भी खात्मा अपने उपन्यास के द्वारा किया है एवं इन्होंने 'विधवा' शीर्षक कविता का भी रचना की, साथ ही 'ज्योतिर्मयी' शीर्षक कहानी में विधवा जीवन की व्यथा का सुंदर चित्रांकन हुआ है। प्राय: इनके सभी उपन्यास नायिका-प्रधान हैं। वे प्रगतिशील विचारधारा के सशक्त साहित्यकार रहे हैं।

निरालाजी का नारी के प्रति दृष्टिकोण अत्यंत स्वाभाविक एवं अनुकरणीय है। नारी की समाज में स्थिति को सुधारना एवं उसे ऊपर उठाना उनका प्रथम कर्त्तव्य था। उदाहरणस्वरूप समाज में स्त्री-पुरुष का भेद करना उन्हें पसंद नहीं था। स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिलें, पुरुषों के समान ही वे देश के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में भाग लें। इतना ही नहीं इन्होंने अपने उपन्यास के माध्यम से नारीपात्रों को शिक्षित कर समाज में स्त्री-शिक्षा को एक नया संदेश दिया है। निरालाजी का विचार था कि 'शिक्षा अपने आप में वांछनीय है; शिक्षित होकर स्त्रियाँ स्वालंबी बनें, तो यह और भी अच्छा है। राष्ट्र के नए नागरिकों को जन्म देने वाली माताएँ अशिक्षित न रहनी चाहिए। महिलाओं की स्वतंत्रता ही उनके जीवन की सब दिशाओं का विकास करेगी।'[16]

शिक्षा ही एकमात्र ऐसा साधन है जिसकी सहायता से समाज में महिलाओं की स्थिति को सुधारा जा सकता है, जिससे वे अपने पैरों पर खुद खड़ी हो सकेगी।

इसप्रकार भारतीय समाज में नारी की दयनीय स्थिति को निरालाजी ने अपने उपन्यास के

 ISSN 0975-735X

माध्यम से उभारने का भरपूर प्रयत्न किया है, जो उनके उपन्यासों में दिखाई देता है।

संदर्भ

1. उपहार हाईस्कूल निबंध : शालिग्राम मिश्र, संस्करण 1995, किशोर भारती रोड, पटना, पृ॰ 48
2. वही, पृ॰ 47
3. समाज और व्यक्ति, प्रो॰ देशराज गोयल, 1957, राष्ट्रीय साहित्य मंदिर, नई दिल्ली, पृ॰ 1
4. भारतीय समाज एवं संस्कृति, डॉ॰ गोपालकृष्ण अग्रवाल, पृ॰ 1
5. प्रबंध-प्रतिभा : वर्तमान हिंदू समाज, संपादक 'निराला', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ॰ 144
6. निराला का कथा साहित्य, डॉ॰ रंजना कुमारी, पृ॰ 86
7. अपनी-अपनी चिन्ता: शोषित मुक्ति, डॉ॰ यशवंत सिंह, पृ॰ 15
8. B.Ed. Paper 1 में पृ॰ 4 में, ग्रंथ Philosophical, Sociological and Economic Bsaes fo Education.
9. निराला का आत्मसंघर्ष, डॉ॰ परमानंद श्रीवास्तव; परिशोध-पत्रिका, अंक-19, 1973, हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, पृ॰ 50
10. निराला का साहित्य साधना, भाग - 2; रामविलास शर्मा, पृ॰ - 169
11. वही, 248
12. निराला निबंध प्रतिभा, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला; पृ॰ - 81 में
13. राजनीतिक सिद्धांत, डॉ॰ एस॰सी॰ सिंहल, 2002, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, पृ॰ 2, 3
14. समाज और व्यक्ति, डॉ॰ गोपीकृष्णप्रसाद, 1986, भारती भवन, गोविंद मित्रा रोड, पटना, पृ॰ 2, 3
15. उपहार हाईस्कूल निबंध, शालिग्राम मिश्र, 1995, किशोर भारती, खजांची रोड, पटना, पृ॰ 48
16. निराला प्रबंध प्रतिमा, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, 1981, राजकमल प्रकशन, नई दिल्ली, पृ॰ 80

द्वारा डॉ॰ शिशिरकुमार सुमन
4 **एम**/29 **(गायत्री सदन)**
बहादुरपुर हाउसिंग कॉलोनी
भूतनाथ रोड, पटना 800026

कविता की कहानियों में सामाजिक परिदृश्य

डॉ॰ शालिनी
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
आर्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय
पानीपत (हरियाणा)

कविता वर्तमान हिंदी कहानी साहित्य में श्रेष्ठ महिला कहानीकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से सामाजिक परिदृश्य को प्रकट किया है। स्वतंत्रता के बाद समाज में अनेक परिवर्तनों के अनुसार विभिन्न शृंखलाओं का जन्म हुआ है। व्यक्ति समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई होता है, जिसके आधार पर समाज का निर्माण होता है। मनुष्य समाज में रहकर रीति-रिवाज, धर्म, कानून, संस्थाओं, समुदाय व संस्कृति को ग्रहण करता है। मनुष्य ही समाज को व्यवस्थित रूप देने एवं समाज में संतुलन स्थापित करने में संपूर्ण रूप से सामाजिक बन जाता है। 'उलटबाँसी' कहानी संग्रह में लेखिका ने समाज के बदलते परिवेश एवं आधुनिक युगबोध के चित्रण के साथ-साथ जातिगत, धर्मगत परिदृश्य पर स्पष्ट रूप से दृष्टिपात किया है। कविता ने अपनी कहानियों में जीवनमूल्यों में हो रहे परिवर्तनों के द्वंद्व के बीच आत्मविश्वास व आत्मनिर्भरता को प्रकट किया है। उन्होंने स्त्री-जीवन के यथार्थ व सशक्तिकरण का परिचय दिया है। 'उलटबाँसी' कहानी-संग्रह लेखिका का दूसरा कहानी-संग्रह है। इसमें लेखिका ने समाज के ऐसे परिदृश्यों को स्पष्ट किया है, जो समय के साथ परिवर्तनशील हैं और कुछ अपरिवर्तनशील। वर्तमान सामाजिक परिदृश्य के अंतर्गत मनुष्य समाज में आत्मकेंद्रित हो गया है। लेखिका ने समाज में घटते मूल्यों को चित्रित किया है, कि मनुष्य वर्तमान समय में स्वार्थमय होकर तनावमय व मनोविकारों से घिरा हुआ है। 'उलटबाँसी' कहानी में लेखिका ने परिवार में बुजुर्गों की दशा का वर्णन किया है। आधुनिक होड़ में व्यक्ति अपने परिवार के बड़ो की स्थिति को अनदेखा करने लगा है। कहानी में 'अपूर्वा' की माँ अपने बुढ़ापे की तकलीफों को व्यक्त करती हुई कहती है–'उम्र होने लगी, तकलीफें तो होंगी ही, बैठ जाऊँ सब छोड़-छाड़कर तो बदन में और जंग लग जाएगी, फिर एक गिलास पानी के लिए भी मुँह ताको। ये सारी बीमारियाँ ये बताने को आती हैं कि बुढ़ापा अब कहीं आसपास से झपटा मारने वाला ही है।' लेखिका ने सामाजिक परिदृश्य के अंतर्गत समाज में जातिगत भेदभाव को प्रकट किया है। जातिगत भेदभाव सदियों से हमारे समाज में विद्यमान है। लेखिका ने 'लौटते हुए' कहानी में जातिगत भेदभाव के अंतर्गत अस्पृश्यता को भी प्रस्तुत किया है। कहानी में 'अमन' और 'बिरजू' दोनों दोस्त हैं। 'बिरजू' निम्न जाति से है। तब 'अमन' के पिता 'अमन' को समझाते हैं कि बिरजु से अपनी दोस्ती तोड़ दो, क्योंकि वह निम्न जाति का लड़का है। ऊँच-नीच में विश्वास रखने वाले तुम्हारे दादा ने मुझसे निम्न जाति के लड़के से दोस्ती कर लेने पर अपना क्रोध प्रकट करते हुए कहा–'आज से उनका कोई भी पुत्र नहीं कि उनकी लाश तक भी बालक को न छूने

 ISSN 0975-735X

दी जाए कि उसके छूने-भर से ही उनके सारे पुण्य समाप्त हो जाएँगे कि उनकी मृतदेह भी अपवित्र हो जाएगी।'

'लौटते हुए' कहानी में मैना ने निम्न जाति की होने के कारण स्त्री के जीवन के सत्य को प्रकट किया है कि मनुष्य आज प्रेम के वश में तो हो जाता है, परंतु विवाह के लिए मर्यादाशील होने का ढोंग करता है। कहानी में पात्र 'मैना' से प्रेम करता है परंतु विवाह के समय निम्न जाति के कारण त्याग देता है। वह पत्र के माध्यम से 'मैना' को बताता है–'वह मैना से प्यार नहीं करता, कर भी कैसे सकता है? जो लड़की देखने-सुनने में भी हद से ज्यादा साधारण है, जो पढ़ने-लिखने में भी ऐसी-वैसी ही है, जिसे न जाने कौनसी बीमारी है कि वह रोज बीमार ही रहती है, ऐसी लड़की से वह कैसे प्यार कर सकता है? कि अगर वह उस पर दया भी करना चाहे तो उसे ब्राह्मणों में भी श्रेष्ठतम माता-पिता किसी असुंदर और अपने से नीची जाति की लड़कों को कभी स्वीकार नहीं कर पाएँगे। उसे तो सिर्फ मैना का शरीर खींचता था, जिसे पाने की खातिर उसने इतनी नौटंकी की पर फिर भी कामयाब न हो सका तो लगा जाते-जाते मैना को सच बताता ही जाए।' संविधान व कानून में निषेध होने के बावजूद समाज का घिनौना रूप प्रदर्शित होता है जो वर्तमान में भी समाज में विद्यमान है। लेखिका ने समाज के महत्त्वपूर्ण परिदृश्य को प्रत्यक्ष रूप से समाज के समक्ष रखा है। लेखिका ने समाज के कुछ परिवर्तनशील परिदृश्य भी समाज के समक्ष रखे हैं। मनुष्य आधुनिकता की होड़ में इतना व्यस्त हो गया है कि वह जीवन में विवाह के बंधन में बँधना नहीं चाहता है। आज समाज में व्यक्ति अपने जीवन में लिवइन रिलेशनशिप को महत्त्व प्रदान करता है। लेखिका ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज के परिवर्तनशील परिदृश्य को स्पष्ट करते हुए नारी-जीवन के यथार्थ को प्रकट किया है कि वर्तमान समय में पुरुष विवाह के बंधन को महत्त्व न देकर स्त्री के साथ रहता है। परंतु समाज में नारी पर ही लांछन लगाया जाता है। 'आशिया-ना' कहानी में कहानी का पात्र 'मुकुल' 'सीमा' के साथ बिना विवाह किए एक किराये के मकान में रहता है। 'मुकुल' के परिवारवाले 'मुकुल' को दोष न देकर 'सीमा' पर दोष लगाते हैं। 'मुकुल' के चाचा क्रोधित होकर सीमा को बेइज्जत करते हुए कहते हैं–'एक तो परिवार की इज्जत दाँव पर लगाकर इस लड़की के साथ रहते हो, दूसरे कहते फिरते हो कि पति-पत्नी हैं। ऐसी चालू लड़कियाँ पत्नी शब्द की गरिमा को समझ भी सकती हैं क्या? हमारे घर की बेटियाँ ऐसे कहीं रहतीं तो काटकर फेंक देते...मैंने मकान मालिक को सब बता दिया है....कोई पत्नी-वत्नी नहीं है...ऐसे ही राह चलती कोई है।'

कविता ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में फैले भ्रष्टाचार, पैसे का बोलबाला, शोषण व अपराध आदि समस्याओं का पर्दाफाश किया है कि व्यक्ति आज समाज में धन-बल के आधार पर अपराधों पर नकाब डालता है। 'गिनीपग' कहानी में 'सपना' एक छोटी आयु की लड़की है। वह अपने पिता के मित्र सर्वेशसिंह के घर जाती है तो घर में उसके बड़े बेटे विवेक द्वारा, जो दसवीं कक्षा का छात्र है सपना का यौन-शोषण किया जाता है। सर्वेशसिंह अपने बेटे द्वारा किए गए गलत कार्य का पर्दा डालते हैं। सर्वेशसिंह का पी०ए० सपना के पिता को फोन पर कहता है–क्या साबित कर सकेंगे वे? किसी गवाही के बूते? विकी बाबा की? वे तो बच्चे हैं। बच्चों की गवाहियाँ कहाँ मायने रखती हैं? और उनसे मिलना इतना आसान है क्या? बिल्लू बाबा भी तो अभी अल्पव्यस्क हैं, कौन सजा दिलवाएगा उन्हें? हद से हद बाल-सुधारगृह भेज देंगे यही न? वे

सारी तो इसी सरकार के रहमों-करम पर चल रही हैं, उन्हें कोई असुविधा नहीं होगी वहाँ...' सर्वेशसिंह अपने बड़े बेटे विवेक को दंड देने की बजाय धन के आधार पर सभी बातों पर सफाई पेश करते हुए कहता है—मेरा बड़ा बेटा तो उस दिन घर पे था ही नहीं। अपने स्कूल के बच्चों के साथ एजुकेशनल टूर पर गया था। चाहो तो स्कूल के प्रिंसिपल टीचर से वेरीफाई कर सकते हो. .. छोटे बेटे से बात क्यों कराऊँ? वह तो तुम्हारी बेटी के छत से गिरने के हादसे से इतना विचलित है कि महीनों से बीमार है। मैं अपने बच्चों की जान से नहीं खेल सकता। केस करना चाहते हो, कर सकते हो? मैंने तो तुम्हें मित्र समझकर तुम्हारी मदद के लिए अपने घर का रास्ता दिखाया था। क्या पता था विरोधियों से मिले हो तुम। उनकी साजिश में शामिल हो, वरना इतनी बड़ी भूल मैं कभी नहीं करता....'

लेखिका ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज के अंतर्गत धर्मगत भेदभाव के परिदृश्य को प्रस्तुत किया है। 'बिंदी री बिंदी' कहानी में हिंदूधर्म से संबंधित राहुल मुस्लिम लड़की आयशा से विवाह कर लेता है। राहुल विवाह के बाद आयशा से धर्मगत भेदभाव को अपनाता है, और आयशा की भावनाओं का दमन करके उसे अकेलेपन व तनाव की स्थिति में छोड़ देता है जिसके कारण आयशा उपेक्षित नारी के रूप में विवश होकर रह जाती है। राहुल पुरुष मानसिकता रखते हुए आयशा से कहता है—'तुम उनके जैसी नहीं हो आयशा। तुम्हें इस घर में खुद को प्रूव करना है। उनकी उम्मीद से भी ज्यादा उन जैसी बनकर। तुम सबकी इच्छा के विरुद्ध आयी थीं इस घर में। वह भी वैसी ही गयी है? तुम एक-दूसरे मजहब से दूसरी तरह की जिंदगी से निकलकर आयी हो, तुम्हें ही रँगना होगा उनके रंग में।'

कविता ने अपनी कहानियों में पुरुष-प्रधानता के अंतर्गत नारी पर अत्याचार, घुटन व प्रताड़ना को व्यक्त किया है। 'राहुल' आयशा से विवाह करता है और अपनी भाभी की छोटी बहन निशा से प्रेम करने लगता है। आयशा एक दिन सुबह नमाज में अपना ध्यान लगाती है तो राहुल उस पर अत्याचार करता हुआ कहता है—'अब यह नयी नौटंकी क्या शुरू हो गयी? मैं कहता हूँ बंद करो यह सब-कुछ। बच्ची रो-रोकर जान दे रही है और इनको नया शौक चर्राया है। आगे से नहीं देखना चाहता हूँ मैं अपने घर में यह सब-कुछ।'

कविता ने अपनी कहानियों में बदलते सामाजिक परिवेश के अंतर्गत स्त्री सत्य व स्त्री मुक्ति को उजागर किया है। 'लौटते हुए' कहानी में मैना के प्रति अन्याय व विश्वासघात होने पर मैना निराश न होकर जीवन से हार नहीं मानती है, वह स्वयं अपने जीवन में नई चेतना व जागृति उत्पन्न करती है। जाति व सुंदरता न होने के कारण मैना को विश्वासघात व अन्याय का सामना करना पड़ता है, जिसके कारण वह सचमुच टूट जाती है परंतु मैना अपने प्रति हुए अन्याय से जागरूक होकर सशक्तिकरण का सबूत देती है—'डॉक्टर, वैद्य, दवाएँ, फल सब बेकार...धीरे-धीरे उसने ही खुद को समेटा, बोझ ही तो बनकर रह गयी है वह। लड़कियाँ यूँ भी परिवार पर एक बोझ ही तो होती है, माँ-बाप के बगैर भाई की गृहस्थी में आश्रित बहन तो और ज्यादा? तिस पर उसकी बीमारी, आत्मलिप्तता...बच्चों को दूध मिले न मिले उसे जरूर दिया जाएगा बीमार जो है वह। क्या हुआ है उसे? कुछ भी तो नहीं। मैना ने जिस दिन से ऐसा सोचा उसी दिन बिछावन से उठ खड़ी हुई। उसने धीरे-धीरे घर का काम-काज सँभाला, बच्चों की पढ़ाई की जिम्मेदारी सँभाल ली...'

अतः लेखिका ने अपनी कहानियों के माध्यम से सामाजिक परिदृश्य के अंतर्गत समाज में निहित न केवल पुरानी रूढ़ियों को चुनौती दी है बल्कि साथ ही आधुनिक युगबोध का भी परिचय दिया है। वर्तमान में नारी अपने यथार्थ के परिदृश्य को पहचानकर एक नए संसार का निर्माण करती है। लेखिका ने अपनी कहानियों में समाज के महत्त्वपूर्ण परिदृश्य की झलक को स्पष्ट रूप से प्रस्तुति दी है।

संदर्भ

1. कविता, उलटबाँसी, पृ॰ 3
2. कविता, वही, पृ॰ 68
3. कविता, वही, पृ॰ 77
4. कविता, वही, पृ॰ 127
5. कविता, वही, पृ॰ 110
6. कविता, वही, पृ॰ 110
7. कविता, वही, पृ॰ 33
8. कविता, वही, पृ॰ 35
9. कविता, वही, पृ॰ 77

भावों की सशक्त अभिव्यक्ति, भाषा का सरल प्रवाह

डॉ॰ सीमा शर्मा

'खिड़कियों से झाँकती आँखें' सुधा ओम ढींगरा का सातवाँ कहानी संग्रह है। आपकी कहानियाँ भारत और अमेरिका के बीच एक ऐसे पुल का निर्माण करती हैं, जिस पर चलकर आप इन दोनों देशों के सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने को बहुत बारीकी से समझ सकते हैं। आप चीजों को व्यापक परिदृश्य में देखते हैं और इस प्रक्रिया में आपके कई पूर्वाग्रह ध्वस्त हो जाते हैं। यह प्रक्रिया किसी एक कहानी में नहीं बल्कि कहानी-दर-कहानी चलती रहती है। समीक्ष्य संग्रह की पहली कहानी 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' से लेकर अंतिम कहानी 'एक नई दिशा' तक आते-आते आपकी धारणा और अधिक पक्की होती जाती है।

संग्रह की प्रतिनिधि और प्रथम कहानी 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' अत्यंत संवेदनशील है। इस कहानी में 'आँखें' प्रतीक हैं, उन वृद्धों की, जिनकी संतानें सफलता की राह पर आगे बढ़ गईं और ये बहुत पीछे छूट गए। अब ये 'आँखें' स्नेह एवं प्रेम की एक किरण जहाँ पर भी दिखाई दे, उसी से चिपक जाना चाहती हैं, लेकिन यही 'आँखें' कथानायक डॉ॰ मलिक को असहज कर देती हैं, क्योंकि वह इनकी सच्चाई नहीं जानता। डॉ॰ खान उसे इनकी सच्चाई बताते हुए कहता है—'यंग मैन, इन आँखों से डरने की जरूरत नहीं, इनको दोस्ती का चश्मा चाहिए, पहना दो, चिपकना बंद कर देंगी।'(पृ॰ 16) डॉ॰ मलिक को बहुत जल्दी ये बात समझ आ जाती है और वह कहता है, 'मैं जान गया कि सहारे को तलाशती ये आँखें किसी भी अजनबी में अपनापन ढूँढ़ने लगाती हैं।' (पृ॰ 17)

इस कहानी में कई आयाम हैं। एक ओर अपनी जड़ों से कटकर स्वयं को कहीं और स्थापित करना। अपनी जड़ें जमाने और वहीं रच-बस जाने के बाद आप ही की तरह आपकी अगली पीढ़ी कहीं किसी देश में अपनी दुनिया बसा लेती है। अब आप नितांत अकेले हो जाते हैं, इसलिए एक बार पुन: अपने देश लौटने की चाह उत्पन्न होना स्वाभाविक है, लेकिन तब वहाँ आपके पास कोई स्थान शेष नहीं रह जाता। यह ऐसा ही है जैसे किसी पौधे को निकालकर कहीं और रोप दिया जाए तो कुछ समय के बाद वहाँ उस पौधे के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह जाता। ऐसा भी हो सकता है कि उस पौधे के स्थान पर कोई और पौधा उगे एवं वृक्ष बन जाए। 'डॉ॰ मलिक, देश की धरती में लगे पौधे को उखाड़कर हमने विदेश की धरती में बो दिया। पहले पहल उसे बहुत मुश्किलों का सामना करना पढ़ा, फिर धरती और पौधे दोनों ने एक-दूसरे को स्वीकार कर लिया' (पृ॰ 21) 'जब पौधा वृक्ष बन गया तो हमने उसे उखाड़कर फिर पुरानी धरती में लगाने ले गए। जिन रिश्तों के लिए पौधा विदेश में वृक्ष बना, उन्हीं रिश्तों ने स्वार्थ की ऐसी आँधी चलाई कि वृक्ष के सारे पत्ते झड़ गए, टुंड-मुंड हो गया वह। पुरानी धरती और टुंड-मुंड हुए वृक्ष, दोनों ने एक-दूसरे को स्वीकार नहीं किया और रोप दिया हमने विदेश की धरती पर वह वृक्ष एक बार फिर। इस धरती ने उसे पहचान लिया और सीने से लगा लिया।' (पृ॰ 21)

 ISSN 0975-735X

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में यह बात बार-बार उभरकर सामने आती है कि स्वदेश में रहने से सब बहुत अच्छे और विदेश में रहने से बुरे नहीं बन जाते। न ही उन संस्कारों को भूलते हैं, जो उन्हें परिवार और समाज से मिले और जो भूल जाते हैं या स्वार्थी बन जाते हैं, ऐसे अपवाद कहीं भी हो सकते हैं। किसी के व्यक्तित्त्व निर्माण में देश-विशेष का प्रभाव तो अवश्यंभावी है, लेकिन और भी अनेक कारक हो सकते हैं। समीक्ष्य संग्रह की दूसरी कहानी 'वसूली' में ऐसे ही एक विषय को उठाया गया है। 'वसूली' कहानी सत्तर के दशक से नब्बे के दशक तक जाती है, इसमें लेखिका ने हरि और सुलभा के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है कि प्रवासी भारतीय; अपनी भारतीयता, देश और परिवार से कितना लगाव रखते हैं, जबकि भारत में रहनेवाले कितने भारतीय ऐसे हैं, जिनके लिए उनका स्वार्थ सर्वोपरि है। शंकर और उमा को उस मनोवृत्ति के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है। हरिमोहन अमेरिका में रहकर भी अपने परिवार को सुखी और प्रसन्न देखना चाहता है। विदेश जाकर बसने के पीछे भी यही कारण था, लेकिन हरि के लिए जो सच्चाई थी, शंकर के लिए वह निरी भावुकता। शंकर के शब्दों में 'हरि, तुम शुरू से ही भावुक थे, विदेश जाकर तो भावनात्मक बेवकूफ बन गए हो।' हरि के लिए शंकर का यह व्यवहार आश्चर्यजनक था, तभी तो वह कहता है, 'कहाँ गई आपकी मर्यादा! कहाँ गया आपका संस्कार! विदेश में तो मैं रहता हूँ और समुद्र का खारापन आपकी आँखों पर छा गया है।' (पृ॰ 26)

हरि भारत में जन्मा, छह भाई-बहनों के बीच अत्यंत गरीबी में पला-बढ़ा। बहुत मेहनत करके पढ़ाई की, संभवत: इसलिए उसका व्यक्तित्व एक भावुक और उदार व्यक्ति के रूप में निर्मित हुआ, जबकि उन्हीं परिस्थितियों के बीच पले-बढ़े उसके बड़े भाई शंकर का व्यक्तित्व ठीक उलट दिखाई देता है। जबकि बचपन में वह भी हरि की ही तरह अत्यंत संवेदशील था। ऐसे में क्या इसे मात्र व्यक्तिगत भिन्नता के रूप में देखा जा सकता है या संगत भी एक कारक रूप में रही होगी। लेखिका ने इस और संकेत किया है। शंकर के व्यवहार का उसके परिवार पर जो असर है, वह उसके समूचे परिवार पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। एक माँ का अपने ही बेटे से डरना और अपनी व्यथा को इस तरह व्यक्त करना 'उमा उसे भड़काती रहती है, अब बार-बार एक ही बात करता है, मैं, मेरी पत्नी मेरा परिवार है और बाकी सब यानी बहन-भाई आपकी गृहस्थी हैं।' (पृ॰ 27) वह समझ नहीं पाती उससे क्या गलती हो गई, वह बेटा जो सारे विश्व को अपना परिवार समझता था, अब सबको अलग कैसे समझने लगा।

यह कहानी वैसे तो संपत्ति के लालच में एक परिवार के बिखराव की कहानी है, लेकिन इसके छोटे से कथ्य में व्यापक गहराई है। लेखिका ने एक परिवार की समस्या के माध्यम से मानवीय व्यवहार का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इसका विस्तार दिल्ली से लेकर अमेरिका तक है। समीक्ष्य कहानी इस भ्रम को भी तोड़ती है कि सुसंस्कार और उदार व्यक्तित्व स्वदेश में रहकर ही हो सकते हैं, उदाहरण के रूप में सुलभा एवं हरि जैसे पात्रों को देखा जा सकता है, विशेष रूप से सुलभा के चरित्र को। यदि सुलभा का चरित्र उमा जैसा होता तो हरी का व्यक्तित्व निश्चित ही कुछ और होता। बहुत संभावना इस बात की थी कि वह भी कि शंकर के जैसा स्वार्थी होता। सुलभा का जन्म अमेरिका में होने के बाद भी वह भारतीयों से अधिक भारतीय है, जबकि उमा सत्तर के दशक में जो मान-मर्यादा, सामाजिक पाबंदियाँ और परिस्थितियाँ थीं उनके ठीक विपरीत बर्ताव करती है। उमा और शंकर भौतिकता के आकर्षण में एक अंधी दौड़ का हिस्सा बन जाते हैं।

समीक्ष्य संग्रह की तीसरी कहानी 'एक गलत कदम' वृद्धआश्रम और परिचर्यागृह के एक दृश्य के साथ शुरू होती है, जहाँ दयानंद शुक्ला एवं शकुंतला शुक्ला को उनके दो पुत्र और पुत्र वधुओं ने यहाँ तक पहुँचाया है। यह 'एडल्ट लिविंग एंड नर्सिंग होम' लिखित रूप में तो सबके लिए है लेकिन अघोषित रूप से यह केवल भारतीयों के लिए और इसमें सूक्ष्म भारत की झलक मिलती है। 'सारे डाक्टर, नर्स, सेवक-सेविकाएँ और कर्मचारी भारतीय हैं। हर गृह में एक मंदिर भी होता है। हर प्रदेश का भारतीय भोजन यहाँ दिया जाता है और भारतीय माहौल उत्पन्न किया जाता है।' अप्रवासी भारतीयों के अंदर जो भारत बसता है, वृद्धाश्रम उसी का प्रतिबिंब है। यह उन लोगों का आश्रयस्थल बन जाता है, जो किन्हीं कारणों से भारत नहीं जा पाते और अपने परिवार के साथ भी नहीं रह पाते। सभी सुख-सुविधाओं से संपन्न यह वृद्ध आश्रम भारतीय बुजुर्गों में बहुत लोकप्रिय है। यह एक ऐसा स्थल है, जहाँ उन्हें अहसास हो कि वे भारत में ही रह रहे हैं। इस अहसास से उन्हें सुख की अनुभूति होती है। 'चारों ओर भारतीय! शोर-शराबा, संयुक्त परिवार-सा खान-पान, सुबह-शाम घंटियों की आवाज, शंख का नाद, भारतीय संगीत, धूमधाम से मनाये जाते भारतीय उत्सव। ढलती उम्र में जन्मभूमि बहुत याद आती है, बस ऐसे गृहों में उसे ही मुहैया करवाने की कोशिश की जाती है।' (पृ॰ 45) विशेष बात यह है कि इसका निर्माण भी एक भारतीय डॉ॰ सुमंत हीरादास पटेल ने कराया था।

इस कहानी का बहुत बड़ा भाग पूर्वदीप्ति शैली (फ्लैश बैक) में आगे बढ़ाता है। यह कहानी एक ओर सजातीय और विजातीय होने के भ्रम को तोड़ती है और इस तथ्य को स्थापित करती है कि अच्छे-बुरे लोग देश-विदेश सब जगह होते हैं और अपवाद कहीं भी हो सकते हैं। डॉ॰ शरद शुक्ला और डॉ॰ जैनेट शुक्ला जैसे पात्रों के माध्यम से लेखिका ने कई पूर्वाग्रहों को तोड़ने का कार्य किया है। इस कहनी में उन्होंने इस धारणा को भी ध्वस्त किया है कि यूरोपीय देशों में संयुक्त परिवार नहीं होते या उनके बीच वैसी परवाह, स्नेह और सामंजस्य नहीं होता जैसा कि भारत में।

सुधा ओम ढींगरा ने 'ऐसा भी होता है' कहानी में एक ऐसे विषयों को उठाया है जिस पर हम या तो ध्यान नहीं देते या देना नहीं चाहते। समाज में दहेज की समस्या पर खूब बात होती है लेकिन लेखिका ने समीक्ष्य कहानी में इससे ठीक विपरीत एक विषय को उठाया है। कहानी पत्रात्मक शैली में लिखी गयी है। इसकी मुख्य पात्र दलजीत कौर के माध्यम से लेखका ने उन सभी स्त्रियों की पीड़ा को शब्द दिए हैं, जो अपना 'मायका' (एक ऐसा घर जो सामान्यतया उनका होता ही नहीं) बचाने के लिए अपनी सामर्थ्य से अधिक प्रयास करती हैं लेकिन अंततः उन्हें निराशा ही हाथ लगती है। कहानी भले विदेश में बसी बेटी को लेकर बुनी गयी है लेकिन यह समस्या सार्वदेशिक कही जा सकती है। कहानी में उस मानसिकता पर प्रहार है, जहाँ सारा प्यार-दुलार तो बेटों के हिस्से आता है लेकिन सारी अपेक्षाएँ बेटियों से। कथानायिका दलजीत कौर के माध्यम से लेखिका ने प्रश्न किया है–'आप सबके दिल में मेरा सिर्फ इतना ही स्थान है कि मैं आपकी अपेक्षाएँ पूरी करने के लिए बनी हूँ। आप लोगों के जीवन और दिलों में मेरा और कोई महत्त्व नहीं।' (पृ॰ 62) कहानी में एक सहज प्रश्न है कि बच्चों के जन्मने की एक जैसी प्रक्रिया के बाद; धरती पर आते ही भेदभाव कैसे शुरू हो सकता है? उससे भी बड़ा प्रश्न कि एक माँ कैसे भेदभाव कर सकती है? 'बीजी, जैसे आप वीरों को सीने से लगाती हैं, कभी आपने अपनी धीयों (बेटियों) को भी सीने से लगाया। क्यों नहीं लगाया? हम तो आपकी ही हैं, आपकी

जात की। बाउजी और चाचाजी ऐसा करें तो मैं मान सकती हूँ, वे पुरुष हैं, वीर उनकी जात के हैं, पुरुष प्रवृत्ति ऐसी ही होती है। अफसोस तो इसी बात का है, स्त्री ही अपनी जात के साथ गद्दारी करती है।' (पृ॰ 63) दलजीत अक्सर महसूस करती थी, हमारे घर में कुड़ियाँ आँगन के फूल नहीं बस ऐंवई पैदा हुई खरपतवार हैं। सारा प्यार, दुलार और सारी सुख-सुविधाएँ तो वड्डे वीर जी और छोटे वीरे के लिए हैं।' (पृ॰ 63)

मायके की निरंतर मदद करने वाली दलजीत का एक बार उनकी मदद न कर पाना; वह भी जानबूझकर नहीं, वरन उसके घर से आये एक पत्र के न मिल पाने के कारण। लेकिन यही कारण उसके मोहभंग का भी है। दलजीत की वेदना को इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है—'पिछले ग्यारह महीने की चिट्ठियों ने तो मेरे अहसासों को और पुख्ता कर दिया। आपके दिल में कुड़ियों का कोई महत्त्व है ही नहीं। आपके लिए वे कठपुतलियाँ हैं जैसे चाहे नचा लो..मुझे दोनों वीरों से कोई ईर्ष्या नहीं बस बीजी के भेदभाव से ऐतराज है और निराशा भी है; जिन्होंने हर बच्चे को नौ महीने पेट में पालकर, एक जैसा कष्ट सहा। पर बाहर आते ही शिशु लड़का-लड़की बन गया और भेदभाव का सिलसिला उसी क्षण से शुरू हो गया, जब बच्चे की आँख ही खुली।' (पृ॰ 63)

लेखिका ने दलजीत के पिता के रूप में एक ऐसे पात्र को गढ़ा है, जिनके लिए बेटियाँ उनके सपनों को पूरा करने का माध्यम मात्र हैं। दलजीत की पीड़ा के माध्यम से लेखिका ने उस समूचे वर्ग पर व्यंग्य किया है, जो अपनी बेटियों को परदेश में केवल इसलिए ब्याहते हैं कि उनके सपने पूरे हो सकें। इन सपनों के बीच उपेक्षित हुई लड़कियों की मनोदशा को लेखिका ने बहुत मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है, 'बाऊजी जिसने यह रिश्ता करवाया, उसने आपके साथ धोखा किया है। यहाँ डॉलर उगते नहीं, कमाने पड़ते हैं, कड़ी मेहनत से...इस परिवार ने मुझे अहसास दिलवाया कि मैं सिर्फ एक स्त्री नहीं, इंसान भी हूँ और मुझे भी सोचने और कहने का हक है; जो आपके घर में मुझे कभी नहीं मिला' (पृ॰ 65)

'कॉस्मिक की कस्टडी' कहानी की कथावस्तु की बात की जाए तो दो पंक्तियों में आ सकती है। माँ (मिसेज रॉबर्ट) और बेटे (ग्रेग) कॉस्मिक की कस्टडी के लिए केस लड़ते हैं। जैसा कि हम जानते है कि 'हर केस में कुछ टूटता है या छूटता है।' लेकिन यहाँ इसके ठीक विपरीत स्थिति है। यह केस न केवल एक माँ-बेटे के रिश्ते में निकटता लाता है वरन भावात्मक रूप से भी उसे सुदृढ़ बनाता है। यह इस कहानी की खूबी है। यहाँ कहानी की कथावस्तु का संकेत नहीं किया जा रहा है, क्योंकि इस कहानी को पढ़ने का जो आनंद है वो कम हो सकता है।

संग्रह की छठी कहानी 'यह पत्र उस तक पहुँचा देना' को सतही ढंग से देखने पर तो जैनेट और विजय की प्रेम कहानी है किंतु लेखिका ने इस कहानी के द्वारा दो देशों की राजनीतिक व्यवस्था, समाजगत ढाँचा एवं इन व्यवस्थाओं में विभिन्न विभेद; जिनके कारण कई तरह की जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं। घटिया राजनीति, नस्लवाद और रंगभेद के कारण दो भोले-भाले लोगों का जीवन समाप्त होना; इससे दुखद क्या हो सकता है? राजनीति एवं राजनेताओं की स्थिति लगभग सभी जगह एक जैसी है।

'अँधेरा-उजाला' समीक्ष्य-संग्रह की एक अनूठी कहानी है। जब आप इसे पढ़ते हैं तो अनायास आपको चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' याद आने लगती है। मोटे तौर

पर दोनों कहानियों में कोई साम्य नहीं है। कथावस्तु, पात्र, देशकाल और परिस्थितियाँ सब-कुछ अलग है, लेकिन इन दोनों कहानियों में कुछ तो ऐसा है जो भावनात्मक स्तर एक समता इनमें दिखने लगती है। उसने कहा था का लहनासिंह और 'अँधेरा-उजाला' कहानी का मनोज दोनों ही पात्र एक ही धरातल पर खड़े दिखाई देते हैं। लहनासिंह अपनी प्रेयसी के लिए मृत्यु का वरण करता है तो मनोज अपनी फैन इला से किए वादे को जीवनपर्यंत निभाता है क्योंकि किसी फैन ने उससे वादा लिया था 'इसलिए वह निरंतर रियाज करता है और गाता है कि वह दुनिया के किसी भी कोने में रहे उसकी गायकी सुनती रहे।' इसके अतिरिक्त इस कहानी में और भी कई आयाम हैं। कहानी की कथावस्तु कई दशक पहले के परिवेश से शुरू होती है उस समय जाति और वर्ग-भेद की खाई अब से कहीं अधिक गहरी थी। कथानायिका का बालमन इस अमानुषिक भेदभाव से खिन्न हो जाता। इला देखती कि उसकी दादी ने सोमा को आँगन की दहलीज कभी पार करने नहीं दी। इला की माँ को यह सब पसंद नहीं था, लेकिन वह कभी कह नहीं सकी चूँकि उसकी खुद की दशा दोयम दर्जे की थी। इला की माँ का जो मूक विरोध था, वह इला में मुखरित होता है। वह तो सोमा के बेटे मनोज से स्नेह करने का दुस्साहस कर बैठती है। ये अलग बात है कि उसे सफलता नहीं मिलती किंतु उसका विद्रोह जारी रहता है। अँधेरा-उजाला कहानी बालमनोवज्ञान को भी छूकर जाती है। लेखिका ने समीक्ष्य कहानी में अभिभावकों की उस मनोवृत्ति की ओर संकेत किया है, जब वे अपनी अतृप्त इच्छाओं को बच्चों से पूरा करना चाहते हैं–'उससे बच्चे किस मानसिक तनाव से गुजरते हैं माँ-बाप कभी महसूस ही नहीं कर पाते। कई बार बच्चे अवसाद में चले जाते हैं। ऐसे में बच्चों के व्यक्तित्व का सही विकास नहीं हो पाता।' (पृ॰ 100)

संग्रह की अंतिम कहानी 'एक नई दिशा' भारतीय मूल के परेश और मौली जैसे पात्रों के माध्यम से कही गई एक सकारात्मक कहानी है। पूर्वदीप्ति शैली में लिखी इस कहानी में रीटा भास्कर और उसके पति के रूप बंटी और बबली (ठग) जैसे पात्र हैं, जिनके माध्यम से कहानी आगे बढ़ती है। परेश व मौली एक सजग दंपती हैं, जो कठिनाइयों से जूझना जानते हैं। एक-दूसरे का साथ देते हैं। जीवन में आई किसी जटिलता या नकारात्मकता को भी एक नई और सार्थक दिशा देते हैं। यही इस कहानी का उद्देश्य भी है।

सुधा ओम ढींगरा कहानियाँ लिखती नहीं वे उन कहानियों में स्वयं रच-बस जाती हैं। आपके पास व्यापक अनुभव हैं इसलिए हर कहानी कथावस्तु की दृष्टि से, एक-दूसरे से नितांत भिन्न होती है लेकिन एक ऐसा तंतु इन कहानियों में छुपा रहता है, जिससे ये लेखक का परिचय स्वयं दे देतीं हैं। भावों की सशक्त अभिव्यक्ति, भाषा का सरल प्रवाह और बीच-बीच में पंजाबी भाषा का प्रयोग जैसे बघार का काम करता है और कहानियाँ एक सौंधी-सी महक से भर जाती हैं। वसूली हो या एक गलत कदम या खिड़कियों से झाँकती आँखें भारतीयता और भारत से प्रेम इन कहानियों में स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है।

कहानी संग्रह : **खिड़कियों से झाँकती आँखें**; लेखिका : सुधा ओम ढींगरा; प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, पी.सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, (मप्र), 466001, दूरभाष- 07562405545; प्रकाशन वर्ष : 2020, मूल्य : 150 रुपये, पृ॰ 132

एल 235, **शास्त्रीनगर, मेरठ (उ॰प्र॰)** 250004
ई-मेल seema561@gmail.com
मो॰ 09457034271

‘बंद कर लो द्वार’ का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन।

डॉ॰ शिवजी श्रीवास्तव

अनेक विधाओं के सिद्धहस्त रचनाकार श्री रामेश्वर काम्बोज ‘हिमांशु’ का नवीन हाइकु संग्रह ‘बंद कर लो द्वार’ अभिनव कल्पनाओं और बिंबों से संयुक्त 661 हाइकुओं का संग्रह हैं। हाइकु मूलत: जापानी कविता है, अपनी मूल प्रकृति में यह प्रकृति की कविता है; किंतु जब यह भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण कर विश्व कविता बनी तो उसका क्षेत्र भी विस्तृत हुआ, भारत में आकर उसने भारतीय साहित्य के गुण-धर्म को आत्मसात् किया इस संदर्भ में काम्बोज जी ने संग्रह की भूमिका में लिखा है, ‘जापानी विधा होने पर भी हिंदी-हाइकु का आकाश भारतीय है और भारतीय साहित्य की परंपरा है।’

नि:संदेह कलेवर के अतिरिक्त हाइकु का सब-कुछ भारतीय ही है, भारतीय भूमि में यहीं के भावों के अनुरूप हाइकु में विषयों की अभिव्यक्ति हो रही है, किंतु भावभूमि भारतीय होने पर भी हाइकु-साहित्य की समीक्षा भारतीय काव्यशास्त्र के आधार पर नहीं की जा रही है, मूलत: समीक्षा में बिंब-विधान एवं प्रकृति का ही उल्लेख किया जाता है। काम्बोज जी लिखते हैं– ‘हिंदी-हाइकु का आकाश भारतीय है’ तो मेरे विचार से उनकी समीक्षा में भी भारतीय मानकों को ग्रहण करना समीचीन होगा।

भारतीय काव्यशास्त्र में रस, छंद, अलंकार के साथ ही विविध मनोभावों के चित्रण की विवेचना होती है, जहाँ तक छंद-विधान का प्रश्न है, हाइकु में उसकी विवेचना की आवश्यकता ही नहीं; क्योंकि भारतीय हाइकु में 5-7-5 वर्णों का नियम निश्चित है ही, इस नियम से च्युत होने पर हाइकु, हाइकु ही नहीं रहेगा। यहाँ इस तथ्य की ओर भी ध्यान देना होगा कि हाइकु अपने में पूर्ण कविता ही है। बहुत से लोग इसे छंद के रूप में ग्रहण करके लंबी कविताएँ रच रहे हैं, उसे उचित नहीं कहा जा सकता।

भाव-विधान की दृष्टि से ‘बंद कर लो द्वार’ को देखें तो संग्रह की भूमिका में ही काम्बोज जी ने लिखा है ‘ये मेरे साधारण हाइकु हैं; क्योंकि इनसे मेरा सुख-दु:ख जुड़ा है, मुझे आशा है कि इस संग्रह में कुछ हाइकु ऐसे जरूर मिल जाएँगे, जिनमें सभी को अपनी प्रतिच्छाया दिख जाएगी, अपनी जीवन-यात्रा का कोई पड़ाव नजर आएगा..।’

वस्तुत: कवि की चेतना लोकजीवन की ही चेतना होती है। कवि का जो कुछ निजी होता है, वह लोक का ही सुख-दु:ख होता है। इस दृष्टि से यह संग्रह लोकजीवन के सुख-दु:खों की अभिव्यक्ति के हाइकु का संग्रह है।

संग्रह को सात विभागों में विभक्त किया गया है–आ जाओ द्वारे, घटा में धूप, जीवन संझा, उड़ गया पखेरू, मन बावरे, अनुरागी आखर एवं स्वप्न-जल। इन शीर्षकों से ही स्पष्ट है कि कवि ने मन की विविध सुख-दु:खात्मक, राग-विराग परक भावनाओं को हाइकुओं में आबद्ध किया है। इस संग्रह के समस्त वैशिष्टय को कुछ शीर्षकों के आधार पर देखने का प्रयास

किया जा सकता है।

प्रकृति-चित्रण

हाइकु मूलत: प्रकृति की ही कविता है, अत: अधिकांशत: हाइकुकार प्रकृति -चित्रण पर दृष्टि केंद्रित रखते हैं, यह स्वाभाविक भी है, पर जहाँ तक प्रकृति चित्रण का प्रश्न है उस संदर्भ में भी काम्बोज जी का स्पष्ट अभिमत है, 'प्रकृति के दो प्रकार हैं–अंत:प्रकृति और बाह्य प्रकृति। हाइकु में कुछ लोग बाह्य प्रकृति के दायरे से बाहर नहीं निकलते ।वह अंत: प्रकृति जो हमारे जीवन के समस्त मनोव्यवहार का हिस्सा है, उसे उपेक्षित करना न्यायसंगत नहीं है। मानव-मन के सुख- दु:ख से जुड़ी भावनाएँ और क्रियाएँ इतनी उपेक्षित क्यों? क्या उस मानव-मन को हाइकु से बाहर कर दें? अगर ऐसा है तो फिर साहित्य किसके लिए और क्यों?'

भूमिका के वक्तव्य के अनुरूप ही प्रस्तुत संग्रह के हाइकु भारतीय साहित्य की भावभूमि की प्रकृति के अनुरूप बाह्य एवं आंतरिक प्रकृति के हाइकु हैं। बाह्य प्रकृति के विविध एवं मनोहर चित्रों का चित्रण काम्बोज जी ने अत्यंत सहज रूप में किया है। प्रकृति के आलंबन रूप, उद्दीपन रूप, आलंकारिक रूप, मानवीकरण के रूप इत्यादि सुंदर प्रतीकों से युक्त आलंकारिक चित्र मिलते हैं। कुछ चित्र उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य हैं–

आलंबन रूप-

बरसी आग/सूखे कूप-बावड़ी/प्यासे तरसे
ठिठुरे पात/कोहरे के कहर/दिन में रात।
झुलसा नभ/उड़ती चिंगारियाँ/व्याकुल धरा।

उद्दीपन–

धरा नर्तित/सिंधु-घन गरजे/बाँहों में ले लो।
नभ उदास/हो गई दोपहर/कोई न पास।
सांध्य बेला में/बहुत याद आए/अपने साए।
साँझ उतरी/खिंच गया सन्नाटा/यादें छलकीं।

आलंकारिक रूप–

शांत रात में/टिटहरी जो चीखी/जंगल जागा।
धान रोपती/छप-छप बदरी/अ।बर क्यारी।
चाँद- दराँती/काटे रात भर/मेघों का खेत।

अंत:प्रकृति का चित्रण

अंत:प्रकृति के चित्रों में कवि के भावुक मन की विविध स्थितियों के सहज रूप के दर्शन किए जा सकते हैं, वहाँ प्रेम का उदात्त रूप है, विरह की आकुलता है, लोक-पीड़ा से उद्भूत वेदना है, वैयक्तिक एवं सामाजिक संबंधों में बढ़ती स्वार्थपरता का दर्द है, साथ ही चतुर्दिक सामाजिक/नैतिक मूल्यों के ह्रास होते जाने का क्षोभ है का, इन विविध मन:स्थितियों के चित्र कहीं मन को मोहते हैं, कहीं त्रास देते हैं और कहीं मन में विविध भावों को जन्म देते हैं।

कवि का मन विरह-व्यथित है, ये विरह व्यापक है जो प्रकृति के विविध उपादानों में दृष्टिगोचर होता है, विरह व्याकुल मन प्रिय का आह्वान करता है–'आ जाओ द्वारे/भोर से शाम तक/प्राण ये पुकारे।'

 ISSN 0975-735X

घिरा आग में/व्याकुल हिरना-सा/खोजूँ तुमको।
चाँद उदास/लगा तुम रोए हो/आज की रात।
चूमना चाहे/चाँद को प्यासा सिंधु/चूम न पाए।
चौमुखा दिया/बनके जला मैं/कभी तो आओ।
जीवन सारा/बन गया गोमुख/दु:ख ही बहा
जोगिया भेस/उदास हुई साँझ/बनी योगिनी।
तुम्हारी याद/रोम रोम में गूँजे/बनके नाद।
मन बावरे/दर्द के साथ पड़ी/तेरी भाँवरें।

कवि का प्रेम उदात्त है, वहाँ दैहिकता/वासना नहीं है, बस भावाकुलता है। क्योंकि कवि का मानना है–'वासना कीट/करता बदरंग/जीवन-रंग।' उनके प्रेम में पवित्रता है, जीवन के पथ को आलोकित करने की क्षमता है, प्रिय का नाम-रूप उन्हें अंधकार में प्रकाश प्रदान करनेवाला है– 'घने अँधेरे/प्रकंपित लौ तुम/किये उजेरे।'

'घना अँधेरा/सिर्फ एक रोशनी नाम तुम्हारा।' प्रिय के आगमन से कवि का जीवन महकने लगता है–'खुशबू फैली/नहाया हर कोना/तुम आ गए।' 'खुशबू भरी/हर बात तुम्हारी/फूलों की क्यारी।'

अंत:प्रकृति का क्षेत्र व्यापक है। इसमें कवि के समस्त मनोभावों को समाहित किया जा सकता है, इन मनोभावों के अंतर्गत साहित्य की रस-दशा भी समाहित है, शृंगार के संयोग-वियोग पक्ष के साथ ही करुण एवं शांतरसों को भी देखा जा सकता है।

लोकजीवन के प्रतीक

कविता का मूल उत्स लोक ही है, लोकजीवन, लोकमन और लोकसंस्कृति के अभाव में कविता का जीवन दीर्घ नहीं हो सकता, 'बंद कर लो द्वार' के हाइकु इस बात के प्रमाण हैं कि उनकी लोकजीवन और संस्कृति पर गहरी पकड़ है, लोकजीवन के अनेक प्रतीकों एवं बिंबों का प्रयोग उन्होंने प्रभावी ढंग से किया है। उनका एक हाइकु है–'भिड़ते मेघ/मरखने साँड़ों से/नभ कुचलें।'

यहाँ बड़ा सहज किंतु संश्लिष्ट बिंब है, जब गगन में मेघ के टुकड़े तीव्र गति से भागते हैं, टकराकर गर्जन करते हैं, तो कवि को ऐसा प्रतीत होता है, मानो दो मरखने साँड़ द्वंद्वरत होकर नभ को कुचल रहे हों। मेघों की उपमा मरखने साँड़ों से बिल्कुल नई है, जिन्होंने गाँवों, मोहल्लों या बाजारों में मरखने साँड़ों को उत्पात करते देखा है, वे इस दृश्य के मर्म का अनुभव कर हाइकु का आनंद ले सकेंगे, इसी प्रकार के कुछ और बिंब है, जिनमें लोकजीवन से जुड़े दृश्यों को देख जा सकता है। यथा–

व्योम अखाड़े/ढोल तिड़क धुम्म/मेघों की कुश्ती।

तथा–

धान रोपती/छप-छप बदरी/अम्बर क्यारी।
चाँद- दराँती/काटे रात भर/मेघों का खेत।

इन बिंबों का अर्थ भी वही ग्रहण कर सकता है जिसने लोकजीवन को निकट से देखा/समझा हो। लोकजीवन से बिंबों के चुनने के साथ ही लोकविश्वासों एवं लोकसंस्कृति को भी

हाइकु में चित्रित किया गया है। यथा–

पेंग बढ़ाए/मन ही मन गाए/भोली बिटिया।
खेलते खो-खो/मेघ-शिशु अंबर/शोर मचाएँ।

अलंकार-योजना

केवल तीन पंक्तियों एवं सत्रह वर्णों की कविता में अलंकारों का चित्रण भी कवि की मेधा, अध्ययन एवं कौशल से ही संभव है, अधिकांशतः हाइकु में मानवीकरण या उपमा-रूपक अलंकार स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं, किंतु काम्बोज जी के हाइकु में अनेक अलंकारों को देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए कुछ अलंकारों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

अनुप्रास

पर्ण-पर्ण में/अम्लान छवि तेरी/आद्या अपर्णा।
आपका आना/हम सबके साथ/घर विहंसा।
जीवन जाए/किसी बहन पर/आँच न आए।

उपमा– खिली धूप-सा/निखरा मधु रूप/खिले नयन।

रूपक–

वासना-कीट/करता बदरंग/जीवन रंग।
अंबर-क्यारी/खरगोश-बादल/दुबकें, दौड़ें।
चाँद-दराँती/काटे रात भर/मेघों का खेत।

उत्प्रेक्षा– चाँद उदास/लगा तुम रोए हो/आज की रात।

यमक– ठिठका चाँद/झाँका जो खिड़की से/दूजा चाँद।

दृष्टांत– बीहड़ वन/हिंस्र जीवों से घिरा/यही जीवन।

उदाहरण–

भाल तुम्हारा/मन में झिलमिल/ईद का चाँद।
घोर अमा है/जीवन अघोरी-सा/अपना मन।

संदेह– बूँद टपकी/नभ या नयन से/किसने जाना।

भ्रांतिमान–

गुलाबी होंठ/मुस्कान थिरकी या/भोर-किरन।
खिले कमल/या हँसा सरोवर/देख भोर को।
खिला कमल/या तुम मुस्काई हो/बनके भोर।

विरोधाभास–

अंधी रोशनी/टटोल रही रास्ता/कोहरा घना।
पूर्ण हो तुम/मुझको घटा दोगो/फिर भी पूरे।

मानवीकरण–

बेला का नशा/पी करके हवाएँ/हुईं बावरी।
जोगिया भेस/उदास हुई साँझ/बनी योगिनी।

असंगति– घाव तुम्हारे/रिसे है निरंतर/मेरे भीतर।

इसी प्रकार अन्य अलंकारों को भी संग्रह में देखा जा सकता है।

भाषा एवं बिंब-विधान

विश्व में प्रचलित वर्तमान साहित्यिक विधाओं में हाइकु सर्वाधिक छोटी कविता है, इसकी लघुता इसकी शक्ति भी है और कमजोरी भी, भाषा, प्रतीकों एवं बिंबों का सटीक और सफल प्रयोग ही हाइकु को महत्त्वपूर्ण बनाता है, यह प्रयोग सतत साधना से ही संभव है। काम्बोज जी श्रेष्ठ साहित्य-साधक हैं, उनके हाइकु भाषा की दृष्टि से भी उत्कृष्ट हाइकु हैं, अभिनव एवं अद्‌भुत बिंबों के चित्रण में वे सिद्धहस्त हैं। यथा–'कसीदे काढ़े/चुप्पी के अनगिन/पिरोई साँसें।'

इस हाइकु में कवि ने कसीदे काढ़ने का जो अद्‌भुत प्रयोग किया है, वह चमत्कृत करता है।

विरह की चरम दशा है जब प्रेमी/प्रेमिका अवसाद की स्थिति में है, उसने चुप्पी ओढ़ रखी है, केवल साँसों के आने जाने का क्रम है, वही उसके जीवित रहने का प्रमाण है, इस चरम दशा को छोटे से हाइकु में विलक्षण बिंबों में प्रस्तुत किया गया है, इसके जितने भी विस्तार में जाएँ उस भावदशा को व्याख्यायित करने के लिए कम होगा। यह हाइकु पाठक को रस दशा में ले जाता है। वस्तुत: हाइकु का सौंदर्य ही इस बात में निहित होता है कि उसमे कहे से अधिक अनकहा होता है, हर पाठक अपनी मन:स्थिति और भावनाओं के अनुरूप हाइकु की व्यंजना को ग्रहण करता है। एक और उदाहरण द्रष्टव्य है–'चौमुखा दिया/बनकर जला मैं/कभी तो आओ।'

चौमुखा दिया बनकर जलने का बिंब अभिनव तो है ही साथ ही व्यापक अर्थ का द्योतक है, संभवत: महानगरीय संस्कृति में पलने-बढ़ने वाले नई पीढ़ी के बहुत से लोग तो चौमुखा दिया से अनभिज्ञ ही हो, विरह में नायक भी ऐसे दीपक की तरह जल रहा है, जिसमें चारों ओर बाती जलती है, ये जलना बड़ा ही प्रतीकात्मक है, दिए में जलने के लिये नेह (स्निग्धता) अनिवार्य है। यहाँ विरही भी नेह की अग्नि से जल रहा है, जैसे चौमुखा दिया चारों दिशाओं को अपनी ज्वाला से आलोकित करता है, वैसे ही नेह-प्रसूत विरहाग्नि चतुर्दिक अपनी ज्वाला बिखेर रही काम्बोज जी की भाषा में लोक में प्रचलित सामान्य उक्तियों एवं मुहावरों के सुंदर एवं सार्थक प्रयोग भी मिलते हैं। यथा–'आँखों के तारे/दीपोत्सव मनाएँ/प्राण जुड़ाएँ।'

यहाँ एक ही मुहावरे में आँखों के तारे मुहावरे और प्राण जुड़ाना लोकोक्ति का बहुत सार्थक प्रयोग है। इसी प्रकार कुछ और प्रयोग देखे जा सकते हैं–

आँखें तरसें/अपलक तकती/सूनी है बाट.
आँखों की नमी/बिना बोले कहती/क्या-क्या है कमी।
आँखें दिखाए/घर-द्वार-आँगन/चलते चलो।
बेटी मुस्काए/तन-मन के दु:ख/हवा हो जाएँ।
बिछड़े तुम/कटी पतंग हम/किधर उड़ें?

भाषा में अभिधात्मक प्रयोग कम हैं। कवि ने प्राय: लक्षणा एवं व्यंजना को ही ग्रहण किया है। कहीं भाषा आलंकारिक है, कहीं कहीं संश्लिष्ट तो कहीं एकदम सीधी सहज देशज भाषा। संग्रह में सामाजिक सरोकारों के हाइकु भी हैं। वहाँ भाषा की सहजता देखी जा सकती है–

गाँव था स्वर्ग/आकर के चुनाव/विष बो गया।
आज का गाँव/युवा हुए लापता/झींकते बूढ़े।
बात अधूरी/फोन क्या कट गया/हुई न पूरी।

बेटी मुस्काए/तन-मन के दु:ख/हवा हो जाएँ।

नि:संदेह भाषा के जितने सार्थक एवं सुंदर प्रयोग संभव हैं, काम्बोज जी के हाइकु में देखने को मिल जाते हैं।

दार्शनिक एवं आध्यात्मिक सत्य

काम्बोज जी के अनेक हाइकु दार्शनिक एवं आध्यात्मिक अर्थों की व्यंजना भी करते हैं। उदाहरणार्थ एक हाइकु है–'अंधी रोशनी/टटोल रही रास्ता/कोहरा घना।'

अभिधा में यह हाइकु साधारण अर्थ का प्रतीत होता है, घने कोहरे में चलते हुए वाहनों की रोशनी भी इतनी क्षीण होती है कि रोशनी भी नजर नहीं आती लगता है। वह रोशनी भी रास्ता टटोल कर चल रही है, पर इसका व्यंग्यार्थ अध्यात्म में घटित होता है, साधक और ईश्वर के मध्य भ्रम का घना कुहासा है, भौतिकता की चकाचौंध वह अंधी रोशनी है, जिसमें रास्ता खो जाता है और साधक अनुमान से (टटोलते हुए) लक्ष्य की ओर अग्रसर है।

अध्यात्म एवं दर्शन के गूढ़ तथ्यों को काम्बोज जी के कई हाइकु में देखा जा सकता है, कहीं व्यंजना में और कहीं अभिधा या लक्षणा में यथा–'अंश तुम्हारा/तुमको घटाया तो/कुछ न बचा।' जिसे उपनिषद् कहता है–'सर्वम् खल्विदं ब्रह्म' या तुलसी कहते हैं 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी।' तो उसका सीधा अर्थ है कि हम सब आत्म रूप में ईश्वर के अंश है, इस चेतना को स्वयं से हटा दिया जाए (गणितीय भाषा में घटा दिया जाए) तो जो होगा वह शून्य (कुछ नहीं) बचेगा। इस आध्यात्मिक सत्य को छोटे हाइकु में व्यक्त करना भी साधना से कम नहीं। उपनिषद् के पूर्णं, पूर्णमिदं... वाले भाव को भी उन्होंने अत्यंत कौशल से छोटे से हाइकु में व्यक्त किया है–'पूर्ण हो तुम/मुझको घटा दोगो/फिर भी पूरे।'

हाइकु का वैशिष्ट्य इस बात में भी है कि ब्रह्मज्ञानी तो इसे ब्रह्म के संदर्भ में ग्रहण करेगा, जबकि सामान्य प्रेमी इसे लौकिक जीवन के प्रिय पर घटित करके अर्थ ग्रहण कर लेगा।

सूफी दर्शन के लौकिक से अलौकिक प्रेम की व्यंजना के भाव को भी अनेक हाइकु ध्वनित करते हैं, कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं–

घने अँधेरे/प्रकंपित लौ तुम/किये उजेरे।
घना अँधेरा/सिर्फ एक रोशनी/नाम तुम्हारा।
अमृत-सिंधु/जिसको भेंट मिला/मिली है तृप्ति।
एक ही रूप/प्रभुवर हों मेरे/या मेरा चाँद।

'बंद कर लो द्वार' के काव्यशास्त्रीय विवेचन का यह आलेख एक संक्षिप्त प्रयास भर है, 661 हाइकुओं के वैशिष्ट्य को संक्षिप्त आलेख में पूर्णत: व्यक्त करना सहज नहीं है। समग्रत: यही निष्कर्ष निकलता है कि 'बंद कर लो द्वार' में भारतीय काव्यशास्त्र के समस्त गुण विद्यमान हैं।

बंद कर लो द्वार; कवि-रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'; मूल्य : 250 रुपये; पृ॰ 124;
प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, 16, साहित्य विहार बिजनौर (उ॰प्र॰)

shivji.sri@gmail.com
मो॰ 9557518553

'साइबरमैन' : समय और समाज के सच का संधान

डॉ॰ लवलेश दत्त

किसी भी विधा में रचे साहित्य की सार्थकता समय और समाज के साथ चलने में है। वही विधा कालजयी और लोकप्रिय होती है, जिसमें अपने समय और समाज का चित्रण होता है। यही कारण है कि कथासाहित्य ने एक लंबी यात्रा तय की है और आज भी सभी विधाओं में कथासाहित्य सर्वाधिक लोकप्रिय है। यह बात अलग है कि समय-समय पर कथासाहित्य में विभिन्न प्रयोग किए गए, कभी लंबी कहानी के रूप में, तो कभी छोटी कहानी। आज कहानी की ही एक समानांतर विधा लघुकथा बहुत चर्चित और लोकप्रिय बनकर उभर रही है। विगत तीन-चार दशकों में लघुकथा ने जो लोकप्रियता प्राप्त की है, उससे यह बात स्पष्ट है कि आज के भागदौड़ वाले जीवन में पाठकों को छोटी-छोटी रचनाएँ सहज ही आकर्षित करती हैं। यही कारण है कि आज प्राय: प्रत्येक पत्रिका में लघुकथाएँ प्रमुखता के साथ प्रकाशित की जा रही हैं। लघुकथाकारों की बढ़ती संख्या भी इस विधा के भविष्य के लिए सुखद समाचार है। आज लघुकथा को जो स्थान प्राप्त है उसके लिए कुछ ऐसे साहित्यकारों का योगदान है, जो लघुकथा के क्षेत्र में निरंतर सक्रिय रहे हैं। न केवल लघुकथा लेखन, बल्कि लघुकथा के प्रति लोगों में रुचि जाग्रत करने में लघुकथा सम्मेलन, लघुकथा गोष्ठी, चर्चा, विमर्श आदि भी निरंतर आयोजित करते रहे हैं। ऐसे लोगों में सुकेश साहनी का नाम सबसे महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय है। साहनी जी के अब तक तीन लघुकथा-संग्रह प्रकाशित हुए हैं—डरे हुए लोग, ठंडी रजाई और साइबरमैन। उनका तीसरा लघुकथा संग्रह 'साइबरमैन' एक लंबे अतंराल के बाद प्रकाशित हुआ है। हालाँकि इस बीच सुकेश जी द्वारा लघुकथा की अनूदित और संपादित पुस्तकें प्रकाशित होती रही हैं तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनकी लघुकथाएँ पाठकों के समक्ष निरंतर आती रही हैं और चर्चित भी हुई हैं। उनके सृजन की लोकप्रियता और प्रामाणिकता इस बात से सिद्ध होती है कि जहाँ उनकी अनेक लघुकथाओं के पंजाबी, गुजराती, मराठी, उर्दू, संस्कृत, बांग्ला एवं अँग्रेजी में अनुवाद हुए हैं वहीं कुछ लघुकथाओं पर शार्ट फिल्में भी बनी हैं, कुछ लघुकथाएँ पाठ्यक्रम में भी शामिल की गई हैं।

'साइबरमैन' साहनी जी की पचास लघुकथाओं का संग्रह है। सभी लघुकथाएँ हमारे आस-पास घटने वाली घटनाओं के प्रेरित हैं तथा हमारे जीवन से ही उनके तार जुड़े हुए हैं। साहनी जी की लघुकथाएँ अपने समय के सच और त्रासद जीवन की सटीक अभिव्यक्ति करती हैं। इस संग्रह के नामकरण से ही यह सिद्ध हो जाता है कि वर्तमान समय साइबर का समय है जिसे देखो वही मोबाइल, इंटरनेट, सोशल मीडिया आदि-आदि से लिप्त हो चुका है। आज के समय का सबसे जहरीला नशा यही साइबर है जिसके दुष्परिणाम भी धीरे-धीरे सामने आ रहे हैं और भविष्य में इससे भी भयंकर परिणाम भुगतने होंगे, इसका इशारा सुकेश साहनी के इस संग्रह की लघुकथाओं में मिलता है।

संग्रह की लघुकथाएँ अपने विषय वैविध्य के कारण भी महत्त्वपूर्ण हैं। राजनीति, पर्यावरण

के साथ-साथ मानसिक प्रदूषण, पर्यावरण संरक्षण, संवेदनहीन समाज, भ्रष्टाचार, परिवार, दिखावा, पदलोलुपता, संप्रदायवाद, अवसरवादिता, शोषण आदि ऐसे अनेक विषय हैं, जो संग्रह की लघुकथाओं के दायरे में आते हैं। सुकेश साहनी के सृजन की विशेषता है कि वे प्रतीकों में अपनी बात कहने में दक्ष हैं। उनकी लघुकथाओं में निहित ये प्रतीक और बिंब अव्यवस्था विरोध के अस्त्र की तरह प्रयोग होते हैं। इस बात का प्रमाण उनके संग्रह की सबसे पहली लघुकथा 'अथ उलूक कथा' से ही स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगता है। जातिवाद और धर्मांधता किसी भी समाज के लिए घातक होती है। अवसरवादी राजनीतिज्ञ इस विष का प्रयोग करके समाज को भ्रमित करते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं। प्रस्तुत लघुकथा में यह बात संकेतों को माध्यम से कही गई है, जो आज की परिस्थितियों में सटीक बैठती है। इस प्रकार की अवसरवादी राजनीति और भ्रष्ट नेताओं पर यूँ तो बहुत सी लघुकथाएँ लिखी जा रही हैं, जो सीधे-सीधे इन विषयों को लेती हैं लेकिन सुकेश साहनी इस प्रकार के संकेतों का प्रयोग करते हैं कि केवल राजनीति ही नहीं पूरी की पूरी व्यवस्था ही कठघरे में खड़ी हो जाती है। 'राजपथ', 'मेढकों के बीच', 'बादल, पानी और हवा', 'मुर्गे', 'कानून का दरवाजा', 'चादर', 'दाहिना हाथ' आदि उनकी ऐसी लघुकथाएँ हैं, जो न केवल राजनीति, सांप्रदायिकता, शोषण, भ्रष्टाचार जैसे सामाजिक कलंक को इंगित करती हैं; बल्कि संवेदनाशून्य होते जा रहे लोगों की असली छवि भी उजागर करती हैं। 'बादल, पानी और हवा' में जहाँ सामंती दृष्टिकोण दिखाई देता है, तो 'मुर्गे' में पुलिस महकमा और 'कानून का दरवाजा' में वकीलों द्वारा किया जाने वाला आम आदमी का शोषण साफ-साफ दिखता है। दुख की बात तो यह है कि न्यायालय भी इसकी गिरफ्त से बाहर नहीं हैं। उसी प्रकार 'सजा' में लचर शिक्षा-व्यवस्था के दर्शन होते हैं। 'श्वान विलाप' में संवेदनहीनता की पराकाष्ठा को दर्शाया गया है। गुंडों द्वारा अश्लीलता की शिकार लड़की के विलाप का किसी पर कोई फर्क नहीं पड़ा जबकि कुत्ते के रोने को मनहूस मानते हुए लोगों के दरवाजे खुलने लगे। यह हमारे उस समाज की सच्चाई है जो स्वयं को संभ्रांत और 'एलीट क्लास' का मानता है।

ऐसा नहीं है कि केवल संवेदनहीनता ही सुकेश जी की लघुकथाओं में आई है, 'ओएसिस' में एक कुत्ते से नफरत करने वाली दादी उसे सर्दी में ठिठुरते न देख सकी और उसे अपनी रजाई के भीतर कर लिया। इस प्रकार की कई लघुकथाएँ हैं, जो मानवीय संवेदना के उज्ज्वल पक्ष को मुखर करती हैं। 'जागर' जहाँ पागलों की मनस्थिति का वर्णन करती है, तो वहीं 'लाफिंग क्लब' उपेक्षित पिता की मनोदशा को बहुत सुंदरता से चित्रित करती है। नारी-विमर्श को केंद्र में रखकर रची गयी लघुकथाएँ 'बेटी का खत', 'ईश्वर', 'सेल्फी', 'आधी दुनिया', 'बॉलीवुड डेज', 'मरुस्थल' आदि पाठकों के मर्म को छूने में पूर्णत: सफल हैं। इसी प्रकार बालमनोविज्ञान भी सुकेश साहनी की लघुकथाओं में देखते ही बनता है। उदाहरण के लिए ओएसिस', 'वायरस', 'मेढकों के बीच', 'प्रक्षेपण' आदि लघुकथाओं को देखा जा सकता है।

लेखक जिस परिवेश में रहता है उस परिवेश से संबंधित अनुभव के आधार पर सृजन स्वाभाविक गुण है। सुकेश साहनी भूगर्भजल विभाग से सेवानिवृत्त हुए हैं। इस आधार पर साहनी जी की कई लघुकथाएँ हैं जिनमें पानी, कुआँ, नलकूप, हैंडपंप आदि का वर्णन है; लेकिन उन्होंने इन सभी उपादानों का प्रयोग परिवर्तनशील समाज, पानी की किल्लत, कुओं का सूखना और उसके साथ कुआँ खोदने वाले मजदूरों की स्थिति को इतनी रोचकता और मार्मिकता के साथ

चित्रित किया है कि पाठक स्वयं को उसके साथ सहज ही जोड़ लेता है। यह लेखक का शिल्प-कौशल है कि लगभग हर लघुकथा गढ़ी हुई प्रतीत नहीं होती; बल्कि सामने घटित होती हुई प्रतीत होती है। लेखक ने परिवेश और पात्रों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग किया है जिससे सभी लघुकथाएँ न केवल पठनीय बन पड़ी हैं हैं, बल्कि रोचक भी हैं। भाषागत सौंदर्य का उदाहरण उनकी 'मरुस्थल' नामक लघुकथा में देखा जा सकता है–

'जमना, तू क्या कहना चाह रही है'

'मौसी, जे जो गिराक आया है, इसे किसी और के संग मत भेजियो।'

'जमना, जे तू के रई हय? इत्ती पुरानी होके। हमारे लिए किसी एक गिराक से आशनाई ठीक नई।'

इस प्रकार केवल संवादों के माध्यम से लेखक ने ऐसा चित्र खींचा है कि लगता ही नहीं हम कोई लघुकथा पढ़ रहे हैं, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि किसी रेडलाइट एरिया में हम खड़े हैं और दो यौन सेविकाओं द्वारा ये संवाद हमारे सामने ही बोले जा रहे हैं। इसी तरह इंटरनेट पर चौटिंग करने की भाषा या शब्दावली हो अथवा फेसबुक की शब्दावली हो, सभी में सुकेश साहनी की भाषिक दक्षता के प्रमाण मिलते हैं। उन्होंने अपनी लघुकथाओं में भाषा का प्रयोग बहुत सजगता और बारीकी से किया है। घटना की विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए वे हिंदी के साथ, अँग्रेजी, हिंग्लिश, ग्रामीण अंचल आदि के शब्दों का हूबहू प्रयोग करते हैं। सरल, बोधगम्य और आम बोलचाल की भाषा ने लघुकथाओं को अधिक रोचक और स्वाभाविक बना दिया है।

लघुकथा में प्राय: कालदोष पर बहुत विचार-विमर्श किया जाता है। कालदोष को किस तरह बचाया जा सकता है, इसका प्रमाण सुकेश साहनी की लघुकथाएँ हैं। उन्होंने अपनी लघुकथाओं में घटित घटनाओं को इस तरह से पिरोया है कि पूरा कालखंड तो कभी-कभी पूरा जीवन उसमें दिखाई देता है, भले ही उसमें कुछ मिनटों या घंटों की घटना हो। उदाहरण के लिए संग्रह की लघुकथाएँ ईश्वर, बॉलीवुड डेज, उतार आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं, जो कहने को या शिल्पगत दृष्टि से लघुकथाएँ हैं, लेकिन अपनी अंतर्वस्तु में पूरा एक कालखंड समाए हुए हैं। कुछ लघुकथाओं पर खलील जिब्रान की लघुकथाओं की शैली की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। इससे पता चलता है कि साहनी जी ने खलील जिब्रान की लघुकथाओं को केवल पढ़ा ही नहीं, बल्कि सूक्ष्मता से उनका विश्लेषण भी किया है।

संग्रह की लघुकथाएँ केवल यथार्थ को ही हमारे सामने नहीं रखतीं, बल्कि अपने अंदर एक आदर्श को भी पाठकों के समक्ष रखती हैं। उदाहरण के लिए 'दाहिना हाथ' और 'आत्माराम' लघुकथाओं में भ्रष्टाचारी का अपराधबोध ग्रस्त होना, 'हैड एंड टेल' में सफलता का सच्चा अर्थ बताना, 'ओएसिस' में सर्दी में सिकुड़ते पिल्ले पर कुत्तों को नापसंद करने वाली दादी का दया दिखाना आदि कई ऐसी लघुकथाएँ हैं, जिनमें मानवीय संवेदना के उज्ज्वल पक्ष पर भी साहनी जी की कलम चली है।

संग्रह की लघुकथाओं को यदि वर्गीकृत किया जाए तो उनमें आज का ज्वलंत विषय साइबर दुनिया के अतिरिक्त राजनीति में अवसरवाद, शोषण की पराकाष्ठा, पारिवारिक मूल्यों का पतन, लचर शिक्षा व्यवस्था, अंधविश्वास और रूढ़िवादी मानसिकता, सामंती सोच, भ्रष्टाचार का चरम, नैतिकता का पतन, मूल्यविहीन मानवता जैसे विषयों को केंद्र में रखकर रची गयी

लघुकथाएँ हैं। लघुकथा का पाठक जानता है कि साहनी जी की लघुकथाओं में गंभीर अर्थ छुपे हुए होते हैं। केवल मनुष्य या पशु-पक्षी ही नहीं पर्यावरण के प्रति भी वे पूरी तरह सजग हैं तथा उनके प्रति भी उनके मन में चिंता दिखाई देती है। 'साइबरमैन' संग्रह में संगृहीत लघुकथाओं में केवल महानगरीय जीवन ही नहीं, कस्बाई और ग्रामीण जीवन की झलक भी मिलती है। उच्चवर्ग, मध्यम वर्ग और निम्नवर्ग के साथ लोकजीवन की तरंगें भी उनकी लघुकथाओं में महसूस की जा सकती हैं। शिल्प के आधार पर उनकी रचनाओं को लघुकथा कहा जाए, पर उनमें पूरा जीवन समाया है। प्रत्येक लघुकथा अपने सृजन और कहन में बेजोड़ है तथा आज के समय और समाज को आईना दिखाने में पूर्ण सक्षम हैं। यदि सुकेश साहनी को लघुकथा का पर्याय कहा जाए, तो अतिशयोक्ति न होगी।

साइबरमैन (लघुकथा संग्रह); कथाकार : सुकेश साहनी; पृष्ठ : 120, मूल्य : 250/- (सजिल्द), प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)

डॉ॰ लवलेश दत्त, 165-**ब**, **बुखारपुरा**
पुराना शहर, बरेली (उ॰प्र॰) 243005
मो॰ 9412345679

'शोध दिशा' का संग्रहणीय डॉ॰ शेरजंग गर्ग स्मृति अंक

22 फरवरी, 2020 को हिंदी भवन, नयी दिल्ली में डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल जी, डॉ॰ प्रभाकिरण जी एवं आदरणीय मंजू गर्ग के संयोजन में 'शोध दिशा' पत्रिका के 'डॉ॰ शेरजंग गर्ग स्मृति विशेषांक' का भव्य लोकार्पण हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध साहित्यकार, सामाजिक चिंतक व आई॰ए॰एस॰ अधिकारी श्री उपेंद्रकुमार जी ने की। मुख्य अतिथि भारतवर्ष के वरिष्ठ पत्रकार, राजनीतिक विश्लेषक, कुशल वक्ता एवं हिंदीप्रेमी डॉ॰ वेदप्रताप वैदिक जी थे। मंचासीन अतिथिजन में प्रदीप पंत, राजकुमार गौतम, सुप्रसिद्ध नाटककार डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल व प्रभाकिरण जैन जी ने भी कार्यक्रम को गरिमा प्रदान की। कार्यक्रम का कुशल संचालन डॉ॰ प्रभाकिरण जैन ने आत्मीयतापूर्वक किया। अध्यक्ष महोदय ने अमर रचनाकार डॉ॰ शेरजंग के साथ अपनी स्मृतियों को साझा करते हुए कहा कि उनकी ईमानदारी ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया। चाहे साहित्य की बात हो या राजनीति की वे निरपेक्ष भाव से जो भी कहते या करते थे, उस पर दृढ़ रहते थे। जब भी चैक पर हस्ताक्षर करता हूँ तो बरबस उनकी याद आ जाती है, क्योंकि हिंदी में हस्ताक्षर करने की प्रेरणा उन्हीं से मिली थी। उनके व्यक्तित्व की ही महानता है कि आज इतने लोग उनके आदर्शों का अनुसरण किसी न किसी रूप में कर रहे हैं।

डॉ॰ वेदप्रताप वैदिक ने अपने घनिष्ठ मित्र के संग बिताए पलों को ताजा करते हुए कहा, 'गर्ग साहब मेरे अभिन्न मित्र थे। श्रेष्ठ कविताओं के अविस्मरणीय योगदान के लिए तो उन्हें याद रखा ही जाएगा, साथ ही जिस तरह सरकारी ढाँचे में रहकर बेलाग निडरतापूर्ण कार्य किया, वह बेमिसाल है। वे जब सरिता पत्रिका में काम करते थे या निदेशालय में थे तो कई बार विरोध और क्रोध की बात बताते। गलत बात उन्हें सहन नहीं थी। उन्हें न किसी की परवाह थी और न कुछ पाने की चाह मानो 'विपासा' में रह रहे हों। 60 वर्षों के संग में कभी उन्होंने यह नहीं कहा कि भई, पुरस्कार के लिए मेरा नाम भी प्रस्तावित कर दो। जब हिंदी में पीएच॰डी॰ करने की ठानी तो

स्कूल ऑफ इंटरनेशनल ने निकाल दिया था। तब शेरजंग जी ही थे, जिन्होंने सबसे ज्यादा मेरा मनोबल बढ़ाया और मुझे लड़ने का हौसला दिया। संसद में हम दोनों मित्र ऊपर दीर्घा में बैठकर इस विषय पर होती गर्मागर्म बहस को सुनते, जिसमें राममनोहर लोहिया आदि नेताओं के तेवर देखते ही बनते जिनका भरपूर सहयोग मिला।

प्रदीप जी ने इस अवसर पर कहा कि उनकी दोस्ती सत्तर के दशक में हुई थी, जब संसद मार्ग पर बने टी-हाउस (जिसे खुशवंत सिंह के भाई चलाते थे) में वे और उनके दोस्त चाय की चुस्कियों संग साहित्यिक चर्चा छेड़ते और अच्छा समय बिताते थे।

गर्ग साहब की पत्नी मंजू गर्ग जी ने इस अवसर पर कहा, 'मैं जीवनसंगिनी के साथ-साथ उनकी साहित्यिक संगिनी भी थी। मैं उनकी रचनाओं की प्रथम पाठिका हुआ करती थी। उन्होंने साहित्यसेवा के साथ एक और बड़ा काम किया, वह था हिंदी के लिए संघर्ष। हिंदी के लिए बहुत से लोगों से विरोध लिया। शब्द उनके लिए ब्रह्म थे। उन्होंने जनभाषा हिंदी को सदैव बढ़ावा दिया। कार्यालयों में हिंदी की स्थिति को देखते हुए उन्होंने दो पुस्तकें भी लिखीं—हिंदी कार्यकुशलता, हिंदी में काम, अग्रिम आयाम। वे जो सही समझते थे, उसके लिए हमेशा डटे रहे।

प्रभाकिरण जैन ने कहा कि गर्गजी उनके लिए भाई और मार्गदर्शक की तरह थे। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल व डॉ॰ मीना अग्रवाल जी के समर्पित भाव ने विशेषांक को अविस्मरणीय एवं बेजोड़ बना दिया है। 'शोध दिशा' के इस अंक के बारे में डॉ॰ बलराम अग्रवाल ने सही ही कहा है—'यह अंक साहित्य और साहित्यकार दोनों के प्रति प्रेम, निष्ठा और दायित्व का पर्याय बनकर सामने आया है। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल जी ने जिस धैर्य के साथ सामग्री को मँगवाया और संयोजित किया है, वह प्रशंसनीय है। 280 पृष्ठीय इस अंक में डॉ॰ गर्ग के व्यक्तित्व और कृतित्व पर सोदाहरण विपुल सामग्री है। बालसाहित्य, गजल और डॉ॰ शेरजंग गर्ग पर काम करने वालों के लिए यह एक जरूरी अंक है। इसके प्रकाशन के लिए डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल निश्चित रूप से साधुवाद के अधिकारी हैं।'

डॉ॰ गर्ग साहब सच्चे साहित्यानुरागी और हिंदीप्रेमी थे। साहित्य में निरपेक्षता, बेबाकी और उत्कृष्टता उनसे सीखी जा सकती है। कार्यक्रम में गर्ग साहब की गजलों पर अंकित जी ने मधुर गायन प्रस्तुत कर एक अलग ही समाँ बाँध दिया। डॉ॰ बीना राघव ने बताया कि वे ओजस्वी, कुशल वक्ता होने के साथ-साथ निरपेक्ष भी थे। उनके व्यक्तित्व में कभी लाग-लपेट नहीं झलकती थी। उनका बालसाहित्य अनूठा है। सौभाग्य है कि उनका आशीर्वाद मिला और बहुत कुछ साहित्यिक गुरु भी सीखने को मिले। इस अवसर दिल्ली और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के जाने-माने साहित्यकारों ने उपस्थिति दर्ज कराई, जिनमें प्रमुख थे—डॉ॰ बलराम अग्रवाल, डॉ॰ मीना अग्रवाल, गर्गजी की सुपुत्री रचना, अनिल मीत, विभा रश्मि, आभा कुलश्रेष्ठ, कल्पना मिश्रा, मनोज अबोध आदि।

संपादक के नाम एक पत्र

गोपाल चतुर्वेदी

डॉक्टर शेरजंग गर्ग बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। बालसाहित्य, हिंदी कविता विशेषकर गजलें, व्यंग्य लेखन और आलोचना में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन सबसे उठकर वह एक बेहद संवेदनशील और महान इंसान थे। उदयप्रताप जी के शब्दों में–'कविता लिखना एक बात है, और कविता जीना बिल्कुल अलग। गर्ग साहब केवल कविता लिखते नहीं थे, जीते भी थे।' ऐसे साहित्यकार बिरले हैं। हिंदी साहित्य में उदयप्रताप जी स्वयं भी इसी श्रेणी के व्यक्ति हैं और पारखी भी हैं। उन्होंने गर्ग साहब को ठीक ही पहचाना है। इतना ही नहीं लेखन की विविधता, व्यवहार की मधुरता और सिद्धांत की दृढ़ता गर्ग साहब को एक अनूठा व्यक्ति बनाती है। उनकी बीमारी के दिनों में मैं उनको अकसर फोन करता था। कभी मंजु भाभी फोन उठाती थीं, कभी गर्ग साहब। वह डॉयलैसिस से परेशान थे। वह ही क्यों कोई भी होगा। मैंने स्वयं देखा है, कन्हैयालाल नंदन जी की डॉयलैसिस वाली बाँह को पतली होते। जरूर यह कोई बेहद कष्टदायक प्रक्रिया है। किंतु गर्ग साहब इस दशा में भी यही कहते, 'अपना ख्याल रखिये।' दूसरों के प्रति ऐसी संवेदना, वह भी सिर्फ शब्दों की नहीं, भावना और सोच की, अब कौन रखने वाला है?

'शोध दिशा' के संपादक और गर्गजी के मित्र गिरिराज जी बधाई के पात्र हैं, इस पत्रिका का डॉ॰ शेरजंग गर्ग स्मृति अंक निकालने के लिए। इतना ही नहीं उनके बहुरंगी व्यक्तित्व के हर रंग की विवेचना करते लेखों को संकलित करने के लिए भी। इस विषय में प्रकाश मनु ने उनके बालसाहित्य पर समुचित प्रकाश डाला है। प्रकाश जी स्वयं इस लेखन के प्रसिद्ध हस्ताक्षर हैं। इस लेख में अपने अग्रज के प्रति सम्मान का स्वर भी झलकता है। अपने विषय की प्रमुख हस्तियों ने गर्ग जी उपलब्धियों के बारे में लिखा है। यह लेखक बिरादरी में उनकी लोकप्रियता का साक्षी है। वीर सक्सेना ने सच ही कहा है कि वह न चाहते हुए भी हर महफिल की 'रौनक' थे। शेरजंग जी एक श्रेष्ठ लेखक थे जो प्रचार और पुरस्कारों से सम्मानजनक दूरी बनाए रखते थे। प्रेम जनमेजय ने इसका बखूबी जिक्र किया है कि कितनी कठिनाई से व्यंग्य-यात्रा के त्रिकोणीय के लिए वह सहमत हुए थे।

मैंने स्वयं देखा है कि लेखक लेख भेजने का वादा जितने उत्साह से करते हैं, उसे पूरा करने में उतनी ही सुस्ती बरतते हैं। इसके वाबजूद, गिरिराज जी इतने प्रतिष्ठित लेखकों को 'शोध-दिशा' के मंच पर ले आए, यह उनकी संपादन-कला और लक्ष्य की ओर लगन और परिश्रम से जुटने का भी साक्षी है। उन्होंने 'सिद्ध साहित्यकार' के रूप में गर्गजी को स्थापित ही नहीं किया, उनके माननीय गुणों का भी विस्तार से वर्णन किया है। माँगने पर गर्गजी ने अपने व्यंग्य-लेखों को एकत्र करने में आलस जताते हुए भी कैसे चमनलाल जी का नाम गिरिराज जी के आगे कर दिया। चमनलाल जी एक तो गर्ग साहब के देहरादून के साथी हैं, दूसरे शेरजंग जी के समान श्रेष्ठ इंसान भी। मैं ग्वालियर में उनसे मिला था और मुझे आज भी याद है कि कैसे लाइन

में लगकर शहर के भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारी ने हमें टिकट खरीदकर फिल्म दिखवाई थी। चमनलाल जी आज भी मेरी दृष्टि में एक श्रेष्ठ अफसर और इंसान रहे हैं।

इस अंक को पढ़कर ही मुझे पता लगा कि गंगाप्रसाद विमल भी देहरादून के वासी थे। उन्हें गर्ग साहब के जाने का यकीन नहीं हो रहा है और मुझे विमल जी के स्वर्गवास का। सुश्री प्रभाकिरण जी के लेख का शीर्षक कितना समीचीन है–'मेरे बड़े भाई डॉक्टर शेरजंग गर्ग हमेशा मेरे साथ रहेंगे।' मुझे भी अपने मित्र और अग्रज के बारे में यही महसूस हो रहा है।

'शोध दिशा' का यह अंक संग्रहणीय ही नहीं, हर पाठक और शोधकर्मी के लिए एक नायाब भेंट है। इतनी सारी सामग्री एक अंक में समेटना कठिन है, और वह भी अपने क्षेत्र के धुरंधरों द्वारा। मैं रमेश तिवारी से पूरी तरह से सहमत हूँ जब वह लिखते हैं कि 'अपनी व्यंग्य-रचनाओं से डॉक्टर शेरजंग गर्ग ने हिंदी-व्यंग्य को जो समृद्धि प्रदान की है, उसके लिए हिंदी-जगत् उनका ऋणी रहेगा।'

ISSN 0975-735X

हिंदी साहित्य निकेतन

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

- **निश्तर ख़ानक़ाही एवं डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

ग़ज़ल और उसका व्याकरण	250.00

- **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल**

बृहत् हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश	1500.00
हिंदी तुलनात्मक शोधसंदर्भ	995.00
हिंदी शोध : नई दृष्टि	800.00
हिंदी शोध के नए प्रतिमान	800.00
शोधसंदर्भ-भाग-1	500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2	550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3	525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4	595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5	895.00
शोधसंदर्भ-भाग-6	1500.00
हिंदी तुकांत कोश	300.00

रचनावली

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)

राजेन्द्र मिश्र रचनावली-1 (कविता खंड एक)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-2 (कविता खंड दो)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-3 (कविता खंड तीन)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-4 (कविता खंड चार)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-5 (निबंध खंड)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-6 (उपन्यास खंड एक)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-7 (उपन्यास खंड दो)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-8 (उपन्यास खंड तीन)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-9 (उपन्यास-नाटक खंड)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-10 (कहानी खंड)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-11 (निबंध-डायरी खंड)	1000.00

डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया (संपादक)

डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (एक)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (दो)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (तीन)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (चार)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (पाँच)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (छह)	700.00

डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (सात) 700.00

डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल (संपादक)

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (एक) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (दो) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (तीन) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (चार) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (पाँच) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (छह) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (सात) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (आठ) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (नौ) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (दस) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (ग्यारह) 500.00

प्रहलाद तिवारी समग्र

मेरी समग्र कविताएँ • **प्रहलाद तिवारी** 800.00

मेरी समग्र कहानियाँ • **प्रहलाद तिवारी** 800.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड एक • **प्रहलाद तिवारी** 850.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड दो • **प्रहलाद तिवारी** 850.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड तीन • **प्रहलाद तिवारी** 850.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड चार • **प्रहलाद तिवारी** 850.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड पाँच • **प्रहलाद तिवारी** 850.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड छह • **प्रहलाद तिवारी** 850.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड सात • **प्रहलाद तिवारी** 850.00

समीक्षा एवं समालोचना

सवाल साहित्य के • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 200.00

हिंदी सिनेमा और दांपत्य संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल** 500.00

सिनेमा और साहित्य का अंत:संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल** 200.00

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • **नवलकिशोर शर्मा** 150.00

फिल्म संगीत, संस्कृति और समाज • **नवलकिशोर शर्मा** 350.00

आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक • **धर्मेंद्र उपाध्याय** 300.00

डॉ॰ कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान • **डॉ॰ अंजु भटनागर** 500.00

अमरकांत का कथासाहित्य • **डॉ॰ योगेश गोकुल पाटिल** 400.00

नारी-समस्याओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन • **डॉ॰ अनुभूति** 450.00

राजस्थानी चित्रशैली में आखेट दृश्य • **डॉ॰ सुषमा सिंह** 250.00

भोपाल के संग्रहालयों की चित्रकला • **डॉ॰ सुषमा सिंह** 250.00

मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध • **डॉ॰ ज्योति सिंह** 150.00

मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न • **डॉ॰ ज्योति सिंह** 300.00

काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा • **डॉ॰ मिथिलेश माहेश्वरी** 300.00

सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य • **डॉ॰ मनोजकुमार** 250.00

अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर • **डॉ॰ दीपा के॰** 250.00

आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत)• **डॉ॰ मीना अग्रवाल** 450.00

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह** 350.00

साठोत्तरी हिंदी-ग़ज़ल : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान • **डॉ॰ अनिलकुमार शर्मा** 350.00

हिंदी ग़ज़ल और डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल • **डॉ॰ पूनम अग्रवाल** 595.00

ग़ज़ल संस्कृति और भीतर शोर बहुत है • **भागीनाथ वाकले** 400.00

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की ग़ज़लों में आशावाद के स्वर • **डॉ॰ दीपक पाटिल** 600.00

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का व्यंग्य-साहित्य : कथ्य एवं भाषा • **डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी** 450.00

हिंदी कथासाहित्य में नारी-विमर्श • **प्रा॰ अमृता भरत पाटिल** 540.00

एक साक्षात्कार : पं॰ अमृतलाल नागर के साथ • **डॉ॰ शंकर क्षेम** 150.00

ग़ज़ल : सौंदर्य और यथार्थ • **अनिरुद्ध सिन्हा** 150.00

समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) • **डॉ॰ ज्योति व्यास** 150.00

कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व • **डॉ॰ लालबहादुर रावल** 300.00

जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार • **डॉ॰ अशोककुमार** 350.00

बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य** 500.00

आस्थावाद एवं अन्य निबंध • **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित** 300.00

साहित्य और संस्कृति • **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित** 300.00

हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष • **विनोदचंद्र पांडेय** 300.00

हिंदी बालसाहित्य : डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम का योगदान • **डॉ॰ स्वाति शर्मा** 450.00

भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव • **डॉ॰ पी॰आर॰ वासुदेवन** 300.00

हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति • **अविनाश वाचस्पति, रवींद्र प्रभात** 495.00

हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास • **रवींद्र प्रभात** 300.00

सूरदास का सौंदर्य-चित्रण • **डॉ॰ विजय इंदु** 250.00

हरिऔध का सौंदर्य-चित्रण • **डॉ॰ विजय इंदु** 500.00

साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन • **डॉ॰ मीनल रश्मि** 250.00

समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक चेतना • **डॉ॰ शीला गहलौत** 500.00

संत रविदास • **डॉ॰ सुदेश कुमारी** 300.00

हरिवंशराय बच्चन के काव्य में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ • **डॉ॰ राजकुमार जमदग्नि** 500.00

वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष • **डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल** 200.00

फिजी में प्रवासी भारतीय • **डॉ॰ शुचि गुप्ता** 300.00

मुक्तिबोध का रचना-संसार • **डॉ॰ शिवशंकर लधवे** 200.00

नाटककार पंडित राधेश्याम कथावाचक • **डॉ॰ अशोक उपाध्याय** 200.00
यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक चेतना • **डॉ॰ अनीता रानी** 400.00
सृजन और साहित्य • **डॉ॰ राजेंद्र मिश्र** 400.00
हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता • **डॉ॰ राजेंद्र मिश्र** 500.00
उत्तर आधुनिक निबंध • **डॉ॰ राजेंद्र मिश्र** 450.00
इक्कीसवीं शताब्दी की कविता • **राजेंद्र मिश्र** 550.00
राजेन्द्र मिश्र : सृजन-यात्रा • **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 650.00
समालोचना के फलक • **डॉ॰ बागेश्री चक्रधर** 300.00
शिक्षा की समस्याएँ और हिंदी कथासाहित्य • **डॉ॰ शशिप्रभा** 450.00
ललित निबंध : परंपरा और चिंतन • **डॉ॰ शिवाजी एन॰ देवरे** 300.00
ललित निबंधकार डॉ॰ श्यामसुंदर दुबे • **डॉ॰ शिवाजी एन॰ देवरे** 300.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की ग़ज़ल दृष्टि • **डॉ॰ शिवाजी एन॰ देवरे** 300.00
हिंदी कहानी के नए प्रतिमान • **डॉ॰ अभयकुमार खैरनार** 500.00
हिंदी नाटक के नए प्रतिमान • **डॉ॰ मनोजकुमार** 400.00
हिंदी उपन्यास के नए प्रतिमान • **डॉ॰ जसपालसिंह वळवी** 550.00
दलित-विमर्श और हिंदी साहित्य • **डॉ॰ जसपालसिंह वळवी** 450.00
जनसंख्या अवधारणा एवं लैंगिक संरचना • **डॉ॰ विश्वनाथ पांडेय** 500.00
भारत में सांप्रदायिक सद्भाव • **डॉ॰ गीता यादव** 500.00
एक इंद्रधनुषी व्यक्तित्व : आदित्य प्रचंडिया • **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 600.00
साठोत्तर व्यंग्य और श्रीलाल शुक्ल • **डॉ॰ रमेश तिवारी** 400.00
स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य • **डॉ॰ शेरजंग गर्ग** 700.00
कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्यकारों की • **डॉ॰ हरीश नवल** 300.00
प्रेम जनमेजय के व्यंग्य साहित्य में
सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना • **डॉ॰ साधना झा** 700.00
हिंदी व्यंग्य-निबंध : स्वतंत्रता के बाद • **डॉ॰ आशा रावत** 350.00
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य • **डॉ॰ प्रेम जनमेजय** 500.00
राष्ट्रीयता, संस्कृति और साहित्य • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 700.00
हिंसा तेरे रूप अनेक • **निश्तर खानकाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 400.00
आधी आबादी का सच • **निश्तर खानकाही, डॉ॰ गिरिराजशरण, मीना अग्रवाल** 550.00
साहित्यिक निबंध : मूल्य और मूल्यांकन • **डॉ॰ निशा तिवारी** 400.00
विमर्श विविधा • **डॉ॰ निशा तिवारी** 500.00
जनमानस के पक्षधर हिंदी नुक्कड़ नाटक • **डॉ॰ पी॰वी॰ कोटमे** 400.00
समकालीन साहित्य की दिशाएँ • **डॉ॰ रमेश तिवारी** 400.00
साहित्य और संस्कृति का अंत:संबंध • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 400.00
मोक्षशास्त्र का माहात्म्य • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 400.00
भावों के शिलालेख • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 350.00

विचार और बोध • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 300.00
आस्था के शिलापंख • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 220.00
साहित्य और शोध • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 550.00
समीक्षा के वातायन • **डॉ॰ अलका प्रचण्डिया** 450.00
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया: व्यक्ति और स्रष्टा • **डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया** 450.00
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया : साहित्य और सृजन • **डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया** 600.00
साहित्य की परख • **डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया** 450.00
डॉ॰ निशंक की सृजन यात्रा • **डॉ॰ नागेंद्र ध्यानी 'अरुण'** 400.00
डॉ॰ निशंक की कहानियों में मानवीय संवेदना • **डॉ॰ योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'** 300.00
डॉ॰ निशंक के उपन्यासों में जीवन-दर्शन • **डॉ॰ योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'** 300.00
डॉ॰ निशंक के काव्य में इंद्रधनुषी चिंतन • **डॉ॰ योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'** 250.00

लोकसाहित्य

लोकरंगमंच के विविध आयाम • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा** 200.00
लोकनाट्य सांग : कल और आज • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा** 700.00
लोकज्ञान की मंजूषा • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा** 450.00
विश्वगुरु भारत • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा** 700.00
हरियाणा के लोकगायक • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा** 400.00
हरियाणा के लोककवि • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा** 300.00
विश्वगुरु भारत • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा** 700.00
देवबंद की स्वांग-परंपरा • **डॉ॰ सुरेंद्र शर्मा** 200.00
रुहेलखंड के परंपरागत लोकगीत • **श्रीमती नीरजा द्विवेदी** 200.00

हास्य-व्यंग्य

काका की विशिष्ट रचनाएँ • **काका हाथरसी** 300.00
काका के व्यंग्य-बाण • **काका हाथरसी** 200.00
कक्के के छक्के • **काका हाथरसी** 200.00
लूटनीति मंथन करी • **काका हाथरसी** 200.00
खिलखिलाहट • **काका हाथरसी** 200.00
मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 250.00
बाबू झोलानाथ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 60.00
राजनीति में गिरगिटवाद • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 100.00
आदमी और कुत्ते की नाक • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 150.00
आओ भ्रष्टाचार करें • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 200.00
दूध का धुला लोकतंत्र • **गोपाल चतुर्वेदी** 150.00

आधुनिक बेताल कथाएँ • **गिरीश पंकज**	250.00
भज्जी का जूता • **महेशचंद्र द्विवेदी**	150.00
क्लियर फंडा • **महेशचंद्र द्विवेदी**	120.00
वीरप्पन की मूँछें • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
फ्राडियर और नीम पागल • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
वसीयतनामा • **पं॰ सूर्यनारायण व्यास, सं॰ राजशेखर व्यास**	150.00
नो टेंशन • **डॉ॰ सुरेश अवस्थी**	200.00
पैसे कहाँ से दें • **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह • **डॉ॰ आशा रावत**	100.00
नमस्कार प्रजातंत्र • **महेश राजा**	150.00
ए जी सुनिए • **अशोक चक्रधर**	100.00
इसलिए बौड़म जी इसलिए • **अशोक चक्रधर**	100.00
नमस्ते जी • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
अब हँसने की बारी है • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल	
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ	300.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ	300.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी	300.00
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य • **डॉ॰ शिव शर्मा**	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ शिव शर्मा**	300.00
अपने-अपने भस्मासुर • **डॉ॰ शिव शर्मा**	250.00
प्रतिनिधि व्यंग्य • **दामोदरदत्त दीक्षित**	200.00
हँसते-हँसते कट जाएँ रस्ते • **मधुप पांडेय**	200.00
धमकीबाजी के युग में • **निश्तर ख़ानक़ाही**	200.00
ला ख़र्चा निकाल • **गजेंद्र तिवारी**	200.00
जलनेवाले जला करें • **गजेंद्र तिवारी**	200.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं • **सूर्यकुमार पांडेय**	100.00
ये है इंडिया • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	220.00
आँखों देखा हाल • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	250.00
सच का सामना • **हरीशकुमार सिंह**	150.00
लिफ़्ट करा दे • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	200.00
देवेंद्र के कार्टून • **देवेंद्र शर्मा**	200.00
कार्टून कौतुक • **देवेंद्र शर्मा**	120.00
लिफ़ाफ़े का अर्थशास्त्र • **डॉ॰ पिलकेंद्र अरोरा**	200.00
अजगर करे न चाकरी • **बाबूसिंह चौहान**	200.00
जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग • **डॉ॰ लालित्य ललित**	200.00

विलायतीराम पांडेय ● **डॉ॰ लालित्य ललित**	200.00
नो कमेंट ● **सुमित प्रताप सिंह**	200.00
सावधान पुलिस मंच पर है ● **सुमित प्रताप सिंह**	200.00
चुनिंदा व्यंग्य : आलोक पुराणिक ● **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : आशा रावत ● **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : गिरिराजशरण अग्रवाल ● **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : गोपाल चतुर्वेदी ● **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : प्रेम जनमेजय ● **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : महेशचंद्र द्विवेदी ● **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : श्रवणकुमार उर्मलिया ● **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : सुभाष चंदर ● **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : सुशील सिद्धार्थ ● **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : हरीशकुमार सिंह ● **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : वागीश सारस्वत ● **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
राजेंद्र सहगल के चुनिंदा व्यंग्य ● **राजेंद्र सहगल**	300.00
रमेशचंद्र खरे के श्रेष्ठ व्यंग्य ● **रमेशचंद्र खरे**	350.00

कहानी

एक सपना मेरा भी था ● **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
एक थी माया ● **विजयकुमार**	200.00
अमृत वृद्धाश्रम ● **विजयकुमार**	350.00
सरहदों के पार ● **सुरेशचंद्र शुक्ल**	200.00
छोटे-छोटे सुख ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
कथा जारी है ● **बाबूसिंह चौहान**	250.00
इक्कीस कहानियाँ ● **सत्यराज**	200.00
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) ● **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	250.00
कुत्तेवाले पापा ● **मीना अग्रवाल**	150.00
क्या अच्छा क्या बुरा ● **मीना अग्रवाल**	200.00
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ ● **डॉ॰ दिनेशचंद्र बलूनी**	200.00
एक बौना मानव ●**महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
लव जिहाद ● **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
इमराना हाशिर हो ● **महेशचंद्र द्विवेदी**	150.00
हैं आस्माँ कई और भी ● **नीरजा द्विवेदी**	200.00
कौन कितना निकट ● **रेणु 'राजवंशी' गुप्ता**	120.00
लघु कथाएँ ● **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	150.00
कमरा नंबर 103 ● **सुधा ओम ढींगरा**	150.00
कहानियाँ अमेरिका से ● **सं॰ इला प्रसाद**	150.00

अंतराल • **संगीता**	200.00
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ • **सं॰ डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	150.00
लघुकथाएँ जीवनमूल्यों की • **सं॰ सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'**	150.00
पंद्रह सिंधी कहानियाँ • **सं॰ देवी नागरानी**	200.00
दर्द की एक गाथा • **सं॰ देवी नागरानी**	300.00
भाँति-भाँति की मानुसी • **अंशु त्रिपाठी**	250.00
लड़की हँस रही है • **राजेंद्र मिश्र**	300.00
आजकालीन कहानियाँ • **राजेंद्र मिश्र**	400.00
भूगोल के जख़्म • **राजेंद्र मिश्र**	350.00
आत्मकथा का कोलाज • **नीलम चतुर्वेदी**	200.00
आ से आजादी • **नीलम चतुर्वेदी**	300.00
ऐसा प्यार कहाँ • **नीतू मुकुल**	250.00
रेल कहानियाँ • **कृपासागर साहू**	300.00
डस्टबिन एवं अन्य कहानियाँ • **डॉ॰ अखिलेश पालरिया**	300.00
पुजारिन एवं अन्य कहानियाँ • **डॉ॰ अखिलेश पालरिया**	250.00
डॉ॰ अखिलेश पालरिया की चुनिंदा कहानियाँ • **पुष्पा पालरिया**	525.00
साइबर मैन (लघुकथाएँ) • **सुकेश साहनी**	250.00
जब तक जिंदा हैं • **कुँवर दिनेश**	220.00

उपन्यास

इतिहास की आवाज़ • **राजेन्द्र मिश्र**	450.00
अपनी परिधि में • **राजेन्द्र मिश्र**	550.00
अनोखा उपहार • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
आसरा • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	100.00
तीन बीघा ज़मीन • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
मन के जीते जीत • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
कुल का चिराग • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
नया सवेरा • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
जागृति • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	450.00
जीवन पथ • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	300.00
धूप-छाँव • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	300.00
कालचक्र से परे • **श्रीमती नीरजा द्विवेदी**	200.00
शांतिधाम • **श्रीमती नीरजा द्विवेदी**	250.00
भीगे पंख • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
मानिला की योगिनी • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
और लहरें उफनती रहीं • **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध**	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ शिव शर्मा**	300.00

अराज-राज ● **डॉ॰ मोहन गुप्त**	200.00
सुराज-राज ● **डॉ॰ मोहन गुप्त**	350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी ● **डॉ॰ आशा रावत**	250.00
एक चेहरे की कहानी ● **डॉ॰ आशा रावत**	250.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) ● **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
एक फरिश्ता ऐसा देखा ● **प्रेमसागर तिवारी**	250.00
रोशनी का पहरा ● **डॉ॰ आरती लोकेश**	300.00
विस्थापित ● **प्रहलाद तिवारी**	550.00

एकांकी-नाटक

● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

मंचीय हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
मंचीय सामाजिक एकांकी	200.00
बच्चों के हास्य नाटक	200.00
बच्चों के रोचक नाटक	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक	200.00
बच्चों के उत्तम नाटक	200.00
भारतीय गौरव के बाल-नाटक	200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक	200.00
बच्चों के अनोखे नाटक ● **प्रकाश मनु**	200.00
हास्य-व्यंग्य के बाल-नाटक ● **प्रकाश मनु**	200.00
संसार : एक नाट्यशाला ● **बाबूसिंह चौहान**	250.00
ग्यारह एकांकी ● **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	200.00
संस्कार एवं अन्य नाटक ● **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	300.00
दमन ● **रामाश्रय दीक्षित**	100.00
स्वप्न पुरुष ● **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**	250.00
अफलातून की अकादमी ● **डॉ॰ शिव शर्मा**	150.00
औरत की जंग ● **राजेन्द्र मिश्र**	200.00
प्रजापथ ● **राजेन्द्र मिश्र**	200.00
दृश्य होती कहानियाँ ● **राजेन्द्र मिश्र**	400.00
सूखा पत्ता पीपल का ● **डॉ॰ सुरेंद्र यादव**	300.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले ● **निश्तर ख़ानक़ाही**	125.00
यादों का मधुबन ● **कृष्ण राघव**	150.00
समय के चाक पर ● **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	125.00

समय एक नाटक • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 160.00
दर्पण झूठ बोलता है • **बाबूसिंह चौहान** 60.00
मकड़जाल में आदमी • **बाबूसिंह चौहान** 80.00
उफनती नदियों के सामने • **बाबूसिंह चौहान** 100.00
अनुभव के पंख • **चंद्रवीरसिंह गहलौत** 250.00
मेरे साक्षात्कार • **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी** 250.00
आधी हकीकत आधा फसाना • **डॉ॰ बलजीत सिंह** 200.00
फूलों की महक • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य** 200.00
संवाद साहित्यकारों से • **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त बरसैंया** 200.00

गीत-कविता

निश्तर ख़ानक़ाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/ **निश्तर ख़ानक़ाही** 500.00
कोई आवाज़ देता है • **डॉ॰ कुँअर बेचैन** 250.00
दिन दिवंगत हुए • **डॉ॰ कुँअर बेचैन** 250.00
कुँअर बेचैन के नवगीत • **डॉ॰ कुँअर बेचैन** 200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत • **डॉ॰ कुँअर बेचैन** 250.00
पर्स पर तितली (हाइकु) • **डॉ॰ कुँअर बेचैन** 200.00
मातृभूमि के लिए • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'** 200.00
संघर्ष जारी है • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'** 170.00
जीवन-पथ में • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'** 150.00
देश हम जलने न देंगे • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'** 150.00
तुम भी मेरे साथ चलो • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'** 150.00
झरनों का तराना है • **लक्ष्मी खन्ना सुमन** 200.00
अहसासों के ताने-बाने • **लक्ष्मी खन्ना सुमन** 200.00
समय के भूगोल में • **राजेंद्र मिश्र** 200.00
असाबिया • **राजेंद्र मिश्र** 200.00
आठवाँ राग • **राजेंद्र मिश्र** 200.00
हवाएँ ख़ामोश हैं • **राजेंद्र मिश्र** 200.00
सदियाँ गुज़र रही हैं • **राजेंद्र मिश्र** 300.00
शब्द ही नहीं हैं • **राजेंद्र मिश्र** 300.00
सप्त स्वर • **राजेंद्र मिश्र** 400.00
आपातकालीन कविताएँ • **राजेंद्र मिश्र** 300.00
आजकालीन कविताएँ • **राजेंद्र मिश्र** 450.00
आजकालीन लंबी कविताएँ • **राजेंद्र मिश्र** 400.00
अनंग (लंबी कविता) • **राजेंद्र मिश्र** 250.00
आतंक के खिलाफ (कश्मीर पर कविताएँ) • **राजेंद्र मिश्र** 400.00
शमा हर रंग में जलती है • **रामेश्वरप्रसाद** 150.00
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 250.00

बूँद के अंदर समंदर (मुक्तक) ●	**डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
संकल्पों के शंख (दोहा) ●	**डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मान भी जा छुटकी ●	**गीतिका गोयल**	150.00
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) ●	**रमेश कौशिक**	200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) ●	**रमेश कौशिक**	150.00
गांधारी का सच (खंडकाव्य) ●	**आर्यभूषण गर्ग**	200.00
राधेय (खंडकाव्य) ●	**डॉ॰ आकुल**	120.00
असितचंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) ●	**डॉ॰ आकुल**	120.00
अग्निसुता ●	**राजेंद्र शर्मा**	150.00
सीतायनी ●	**डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
गंगापुत्र भीष्म : शर-शैया से ●	**डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) ●	**शचींद्र भटनागर**	250.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) ●	**शचींद्र भटनागर**	200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) ●	**शचींद्र भटनागर**	200.00
कुछ भी सहज नहीं (नवगीत-संग्रह) ●	**शचींद्र भटनागर**	200.00
त्रिवर्णी (नवगीत-संग्रह) ●	**शचींद्र भटनागर**	200.00
युवाओं के गीत ●	**शचींद्र भटनागर**	400.00
तारा प्रकाश समग्र ●	**तारा प्रकाश**	600.00
उजियारा आशाओं का ●	**तारा प्रकाश**	150.00
बुलंदी इरादों की ●	**तारा प्रकाश**	150.00
चलने से मंज़िल मिलती है ●	**तारा प्रकाश**	200.00
इंद्रधनुष ●	**तारा प्रकाश**	200.00
संवेदनाओं के रंग ●	**तारा प्रकाश**	200.00
सुरों के ख़त ●	**अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	100.00
सुनहरे मंत्र का जादू ●	**अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	100.00
सुनते हुए ऋतुगीत ●	**अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	150.00
सुबह की अंगूठी ●	**अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	150.00
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) ●	**डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) ●	**डॉ॰ मीना अग्रवाल**	150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) ●	**डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
धूप अपनेपन की (मुक्तक-संग्रह) ●	**डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
एक मुट्ठी धूप ●	**नीरजा सिंह**	100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर ●	**डॉ॰ कमल मुसद्दी**	150.00
प्यार के गुलाल से (हाइकु) ●	**डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
हारना हिम्मत नहीं (मुक्तक) ●	**डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
मानव तू जग में सुंदरतम ●	**डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) ●	**डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00

जीवन है मुस्कान (दोहे) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**		150.00
भीतर का संगीत (दोहे) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**		200.00
सुख के बिरवे रोप (दोहे) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**		200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहे) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**		200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहे) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00	
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहे) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**		200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**		200.00
युगस्रष्टा स्वामी रामानंद (महाकाव्य) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**		300.00
खोजें जीवन सत्य (दोहे) ● **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**		150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) ● **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**		200.00
ईश्वर में विश्वास ● **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**		200.00
अनजाने आकाश में ● **महेशचंद्र द्विवेदी**		170.00
बातें कुछ अनकही ● **सत्येंद्र गुप्ता**		200.00
मैंने देखा है ● **सत्येंद्र गुप्ता**		200.00
हौसला तो है ● **सत्येंद्र गुप्ता**		200.00
जिंदगी रुकती नहीं ● **सत्येंद्र गुप्ता**		200.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ ● **नवलकिशोर शर्मा**		180.00
जब चाँद डूब रहा था ● **नवलकिशोर शर्मा**		200.00
एड्स शतक ● **पूरणसिंह सैनी**		150.00
श्रीगोगाचरित (महाकाव्य) ● **पूरणसिंह सैनी**		300.00
श्रीकृष्णचरित (महाकाव्य) ● **पूरणसिंह सैनी**		800.00
राष्ट्र-शक्ति ● **सलेकचंद संगल**		150.00
माँ तुझे प्रणाम ● **सलेकचंद संगल**		150.00
लहरों के विरुद्ध ● **डॉ॰ रामप्रकाश**		200.00
हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता ● **महेंद्र कुमार**		200.00
पीड़ा का राजमहल ● **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**		200.00
मैं एक समुद्र ● **डॉ॰ तारादत्त 'निर्विरोध**		200.00
उड़ान जारी है ● **विनोद भृंग**		200.00
कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) ● **हरिराम पथिक**		200.00
जो जिया वो रचा (मुक्तक-संग्रह) ● **हरिराम पथिक**		200.00
धनुषभंजक राम ● **चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'**		200.00
आवाज सुनो (हाइकु) ● **चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'**		200.00
दरिया मोहब्बत का ● **चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'**		200.00
गीत मैं बन गया ● **चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'**		200.00
एक कुल्हड़ चाय ● **स्वर्ण ज्योति**		200.00
सूर्यनगर की चाँदनी ● **रामेश्वर वैष्णव**		150.00
रात ● **दामोदर खड़से**		200.00

 ISSN 0975-735X

स्मृतियाँ ● **सुषमा अग्रवाल** 200.00
कविताएँ फेसबुक से ● **लालित्य ललित** 200.00
दुनिया इतनी भी बुरी नहीं ● **लालित्य ललित** 200.00
बचे रहेंगे केवल शब्द ● **लालित्य ललित** 200.00
मेरे लिए तुम्हारा होना ● **लालित्य ललित** 250.00
सब पता है ● **लालित्य ललित** 250.00
आँगन घर में टहलेगा ● **लालित्य ललित** 250.00
घर उदास है ● **लालित्य ललित** 300.00
अपने में से तुम्हें देखना ● **लालित्य ललित** 200.00
आदत सी तुम्हारी ● **लालित्य ललित** 250.00
चुप्पी में से उद्घोष ● **लालित्य ललित** 300.00
चुप हैं शब्द और उनके अर्थ ● **लालित्य ललित** 200.00
कभी सोचता हूँ कि ● **लालित्य ललित** 250.00
इतना होने के बाद भी● **लालित्य ललित** 250.00
विरमाल गीत समग्र ● **सं॰ डॉ॰ पंकज विरमाल** 500.00
विस्थापित मन ● **आस्था नवल** 200.00
रंगारंग कविताएँ ● **बलवंत रंगीला** 300.00
सिद्धांत सतसई ● **डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया/संपादन डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया** 300.00
क़तरा-क़तरा सागर ● **प्रेमसागर कालिया** 300.00
श्रीमद्भगवद्गीता (पंजाबी कविता अनुवाद) ● **अनुवादक प्रेमसागर कालिया** 200.00
कविताओं के मन से ● **विजयकुमार** 495.00
सोच की चिंगारियाँ ● **चमनलाल** 200.00
मेरी समग्र कविताएँ ● **प्रहलाद तिवारी** 950.00
शब्द-यात्रा ● **प्रहलाद तिवारी** 200.00
कवि नहीं हूँ, फिर भी ● **डॉ॰ सुरेंद्र यादव** 400.00
अनुनर्तन : बिन तुम्हारे ● **डॉ॰ सुरेंद्र यादव** 350.00
माट्टी की आवाज ● **रामकुमार आत्रेय** 250.00
परस चिन्मयी ● **महेंद्र शर्मा** 200.00
मेघ संचार ● **पवित्र मोहन दाश** 250.00
शब्द-यात्रा ● **प्रहलाद तिवारी** 200.00
तुमसे उजियारा है (माहिया-संग्रह) ● **डॉ॰ ज्योत्स्ना शर्मा** 240.00
संस्तवन ● **डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया** 200.00
स्पंदन मन का ● **योगेंद्र सोनगरिया** 300.00
मेरी लेखनी की जुबानी ● **प्रमोद जोशी** 250.00
बंद कर लो द्वार ● **रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'** 250.00

ग़ज़ल-संग्रह

ग़ज़ल मैंने छेड़ी (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही** 80.00

ग़ज़लों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	150.00
सन्नाटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
ख़ुशबू सा बिखर जाऊँगा (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
प्रतिनिधि ग़ज़लें ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
आदमी के हक़ में (ग़ज़ल-संग्रह) ● **रामगोपाल भारतीय**	100.00
ज़िंदगी गाती तो है/ (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ आकुल**	120.00
आसमान मेरा भी है (ग़ज़ल-संग्रह) ● **किशनस्वरूप**	100.00
बूँद-बूँद सागर मैं (ग़ज़ल-संग्रह) ● **किशनस्वरूप**	100.00
आँचल-आँचल ख़ुशबू (ग़ज़ल-संग्रह) ● **कर्नल तिलकराज**	200.00
ज़ख़्म खिलने को हैं (ग़ज़ल-संग्रह) ● **कर्नल तिलकराज**	200.00
तिराहे पर (ग़ज़ल-संग्रह) ● **शचींद्र भटनागर**	250.00
गुलमुहर की छाँव में (ग़ज़ल-संग्रह) ● **मनोज अबोध**	100.00
मेरे भीतर महक रहा है (ग़ज़ल-संग्रह) ● **मनोज अबोध**	150.00
बहती नदी हो जाइए (ग़ज़लें) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	150.00
अँधियारों से लड़ना सीखें (ग़ज़लें) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
रिश्ते नए अब जोड़िए (ग़ज़लें) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
फ़ासले मिट जाएँगे (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
मुहब्बत भी बगावत है (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ रामबहादुर चौधरी चंदन**	200.00
समकालीन महिला ग़ज़लकार ● **हरेराम 'समीप'**	300.00
अब मोहब्बत हम करें ● **डॉ॰ राजेंद्र सिंह**	300.00

आत्मकथा-संस्मरण, साक्षात्कार, पत्र

मेरा जीवन : ए-वन ● **काका हाथरसी**	300.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक ● **धर्मेन्द्र उपाध्याय**	250.00
आत्मसरोवर ● **ओम्प्रकाश अग्रवाल**	125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु ● **नीरजा द्विवेदी**	200.00
स्विट्ज़रलैंड के वे 21 दिन ● **नीरजा द्विवेदी**	200.00
कुछ अपनी कुछ जगबीती ● **नीरजा द्विवेदी**	250.00
विलक्षण अनुभूतियाँ ● **नीरजा द्विवेदी**	300.00
अतीत की परछाइयाँ ● **नीरजा द्विवेदी**	240.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग ● **महेशचंद्र द्विवेदी**	280.00

फ्राडियर और नीम हकीम • **महेशचंद्र द्विवेदी**	230.00
सफ़र साठ साल का • **डॉ॰ अजय जनमेजय (सं)**	400.00
यादों की गुल्लक • **गीतिका गोयल, डॉ॰ अनुभूति (संपादक)**	300.00
आधी हक़ीक़त आधा फ़साना • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	150.00
मेरे साक्षात्कार • **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी**	250.00
संवाद : साहित्यकारों से • **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'**	200.00
उत्तरोत्तर • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)**	250.00
श्रद्धांजलि • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)**	250.00
सवालों के सामने • **राजेन्द्र मिश्र**	400.00

बाल-साहित्य

गधा बत्तीसी • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
ईनी-मीनी की मजेदार दुनिया • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
चिड़ियों की दुनिया रंगीन • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
कविताओं में पंचतंत्र • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	250.00
छुटके-मुटके जंगल में • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
नन्हे-मुन्ने गीत सुहाने • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
मैं भी स्कूल जाऊँगी • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
नन्ही-मुन्नी बाल ग़ज़लें • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
दादी-नानी कहें कहानी • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	120.00
अस्सी-नब्बे पूरे सौ • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	120.00
ऐसा कैसे हुआ • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	120.00
Tiny -Tots in Forest • **Laxmi Khanna 'Suman'**	200.00
Adventures of the Laughing Donkey • **Laxmi Khanna 'Suman'**	200.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) • **गीतिका गोयल**	200.00
बातूनी कहानियाँ • **गीतिका गोयल**	200.00
धरती पर चाँद (पुरस्कृत) • **शंभूनाथ तिवारी**	200.00
हम बगिया के फूल (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
दिन बचपन के (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
जादूगर बादल (बालगीत) • **विनोद भृंग**	200.00
आटे-बाटे दही चटा के (शिशुगीत) • **बालकृष्ण गर्ग**	200.00
बालकृष्ण गर्ग के बालगीत • **बालकृष्ण गर्ग**	500.00
किशोर मन की कहानियाँ • **डॉ॰ सरला अग्रवाल**	200.00
चलो आकाश को छू लें • **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध**	200.00
मानव-विकास की कहानी • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00

पार्टी गेम्स ● **चाँदनी कक्कड़**	125.00
कागज की नाव ● **डॉ॰ सरोजनी कुलश्रेष्ठ**	200.00
शिक्षाप्रद बालकहानियाँ ● **डॉ॰ अशोक कुमार**	200.00
भारतीय लोकजीवन की कहानियाँ ● **डॉ॰ तारा प्रकाश**	200.00

विविध

उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन ● **डॉ॰ सरिता शाह**	200.00
● **निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल**	
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
आधी आबादी का सच	300.00
● **निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे	300.00
दंगे : क्यों और कैसे	300.00
● **रमेशचंद्र दीक्षित, निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन ● **डॉ॰ गिरिराज शाह**	200.00
गुरु नानकदेव ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
हिंसा तेरे रूप अनेक ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	400.00
आप भी तनावमुक्त हो सकते हैं ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
वेद-वेदांत दर्शन ● **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व ● **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	300.00
कन्हैया गीता ● **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	900.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स ●**डॉ॰ गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर**	450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी ● **मनोज भारद्वाज**	300.00
समुद्री दैत्य सुनामी ● **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	300.00
डगर पनघट की ● **सुधीर गुप्ता**	200.00
थाह सुंदरतम की ● **महेंद्र शर्मा**	200.00
Ecosystem in The Central Himalyas ● **Dr.Vikram Singh IPS**	200.00

अपना आदेश निम्नलिखित पते पर भेजें

हिंदी साहित्य निकेतन

16 **साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)**

फोन : 01342-263232, 09557746346, 07838090732

गुड़गाँव कार्यालय

बी-203, पार्क व्यू सिटी 2, सोहना रोड, गुड़गाँव 122018

0124-4076565